वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विकास

संपादक
सुरेश कुमार जिन्दल
फूलदीप कुमार

रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र (डेसीडॉक)
रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन (डी आर डी ओ)
रक्षा मंत्रालय, मेटकॉफ हाउस, दिल्ली

वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विकास
सुरेश कुमार जिन्दल फूलदीप कुमार

वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विकास

वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विकास

सम्पादक

सुरेश कुमार जिंदल

फूलदीप कुमार

प्रकाशक

रक्षा मंत्रालय
रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन (डी आर डी ओ)
रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र [डेसीडॉक]
मेटकॉफ हाउस, दिल्ली

डी आर डी ओ विशेष प्रकाशन श्रृंखला
वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विकास
द्वारा रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र [डेसीडॉक], दिल्ली

श्रृंखला सम्पादक

सम्पादक
सुरेश कुमार जिन्दल
फूलदीप कुमार

मुद्रण
एस के गुप्ता
हंस कुमार

सम्पादकीय सहायक
अशोक कुमार
नरेश कुमार लोर

विपणन
आर पी सिंह

आई एस बी एन 978-81-86514-41-2

© 2013 सर्वाधिकार सुरक्षित, डेसीडॉक, मेटकॉफ हाउस, दिल्ली

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। भारतीय कॉपीराइट अधिनियम 1957 में स्वीकृत प्रावधानों के अतिरिक्त प्रकाशक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलैक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनः प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में, आंशिक या पूर्ण रूप से, पुनरूत्पादित, संचारित तथा प्रसारित नहीं किया जा सकता है।

इस पुस्तक में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता का उत्तरदायित्व पूर्णतः संबंधित लेखकों का है। आलेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण लेखकों की निजी अभिव्यक्ति हैं। डेसीडॉक अथवा संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केंद्र [डेसीडॉक], डी आर डी ओ, मेटकॉफ हाउस, दिल्ली–110 054 द्वारा अभिकल्पित एवं प्रकाशित।

भूमिका

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व की प्राचीनकाल की उपलब्धियों से लेकर इस शताब्दी में प्राप्त महान सफलताओं की एक लम्बी और अनूठी परंपरा रही है। प्राचीन विश्व में विज्ञान, गणित, खगोल शास्त्र और दर्शन शास्त्र का अद्वितीय विकास हुआ। विश्व कणाद, कपिल, भारद्वाज, नागार्जुन, चरक, सुश्रुत, वराहमिहिर, आर्यभट, गैलीलियो, आर्किमिडीज, अरस्तू, और भास्कराचार्य जैसे वैज्ञानिकों की जन्मभूमि और कर्मभूमि रहा है। इन वैज्ञानिकों ने गणित, ज्योतिष, चिकित्सा शास्त्र, रसायन शास्त्र, खगोल शास्त्र, दर्शन शास्त्र, इत्यादि क्षेत्रों में अभूतपूर्व योगदान दिया। कालांतर में विश्व भर में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के माध्यम से आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन आया।

परम्परागत कुशलताओं को परिष्कृत करके तर्कसंगत एवं स्पर्द्धात्मक बनाने और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के अग्र क्षेत्रों में अग्रिम क्षमताओं का विकास करने के प्रयास होते रहे।

विश्व में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नति लाने वाले दृष्टिवेभाओं को विश्वास था कि विश्व को आधुनिक, औद्योगिक समाज बनाने में विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। अनुभव और परिणाम से यह सिद्ध हो गया है कि उनका विश्वास बिल्कुल ठीक था।

आज विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी एवं नई प्रक्रियाएं और भी प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। वैज्ञानिक ज्ञान और अनुभव, प्रौद्योगिकी, नई प्रक्रियाएं, उच्च प्रौद्योगिकीय औद्योगिक संरचना और कुशल कार्यबल इस नए युग की संपत्ति हैं। आज के विश्व में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी आर्थिक प्रगति और विकास के महत्वपूर्ण वाहक हैं। भारतीय विज्ञान के लिए वर्तमान स्थिति अति महत्वपूर्ण है और यदि सकारात्मक बड़े तथा ठोस कदम इस क्षेत्र में उठाए जाएं तो भविष्य में देश स्थायी और तीव्र प्रगति कर सकता है।

आज के युग में अनेक खोज एवं अन्वेषण कार्य चल रहे हैं जिनसे मानव को प्रकृति को समझने में मदद मिल रही है तथा इस ज्ञान के उपयोग से नित नये संसाधनों की रचना हो रही है। इन संसाधनों से मानवीय कार्य को दक्षता एवं सुविधाजनक रूप से पूर्ण करने में मदद मिल रही है।

प्रस्तुत पुस्तक **वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विकास** जिसमें विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कि पर्यावरण चिकित्सा, भौतिकी, रसायनिकी, भू–विज्ञान, कृषि, जीव विज्ञान, इलैक्ट्रॉनिकी, तथा रक्षा प्रौद्योगिकी के आलेखों को संकलित किया गया है। ये आलेख डी आर डी ओ द्वारा 05–07 दिसंम्बर 2013 के दौरान विश्व की प्रगति में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का योगदान नामक विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हेतु प्राप्त आलेखों से चयनित किए गए हैं।

आशा है कि उच्च कोटि के वैज्ञानिकों एवं अकादमीगणों के इन आलेखों से इन विषयों पर नवीन जानकारी उभर कर आएगी। यह पुस्तक राजभाषा हिन्दी में गहन वैज्ञानिक विषयों पर जानकारी उपलब्ध कराने की वाहक सिद्ध होगी।

सुरेश कुमार जिंदल

फूलदीप कुमार

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख का शीर्षक	लेखक का नाम	पृष्ठ सं0
01.	वर्तमान परिवेश में सरंक्षण खेती की जरूरत– एक अवलोकन	वीरेन्द्र कुमार एवं तापस कुमार दास	01
02.	पावर लाईन का दमन ईसीजी में हस्तक्षेप का उपयोग अनुकूली डिजिटल फिल्टर	नीलम भारद्वाज एवं अरुण तौमर	07
03.	भारत के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जल ग्रहण विकास कार्यक्रम के कारण सूखते पारम्परिक तालाब	अशोक कुमार सिंह	18
04.	वेब उपयोग खनन के माध्यम से आइटम सेट खोज निकालने का लगातार पैटर्न खनन– एक तकनीकी दृष्टिकोण	मंजुला एस, विनोद एन सांब्रानि, तथा अरूण कुमार आनंद	28
05.	भारत में नैनो प्रौद्योगिकी का विकास	अभिषेक जैन एवं विकास यादव	36
06.	इंसान की ऊपरी अंग आंदोलनों EMG संकेतों का उपयोगः तंत्रिका नेटवर्क के आवेदन के साथ मामले का अध्ययन	के के सैनी एवं संजू सैनी	40
07.	परापार्थिव चट्टानों (उल्काओं) में प्लेटिनम समूह तत्वों का विश्लेषण	नरेन्द्र कुमार अग्रवाल, प्रीति अग्रवाल, तथा रवि अग्रवाल	46
08.	इपोमोया कैरिका की पत्तियों के विभिन्न विलायकों के अर्क में एन्टीमाइक्रोबियल गतिविधियों का अध्ययन	शेफाली अरोड़ा, दीपक कुमार, तथा पंकज कुमार मिश्रा	56
09.	मनोविज्ञान तथा भर्ती	आंचल भटनागर एवं विक्टोरिया रोसेन्थल	61
10.	आधुनिक एंटीना विनिर्माण तकनीकः एक विश्लेषण	मनीषा कुंडु एवं मनोज दुहन	67
11.	जननद्रव्य पंजीकरण–भारतीय परिपेक्ष्य	अंजली काक, वीना गुप्ता, तथा ऋषि कुमार त्यागी	73
12.	कार्बन तंतु के निर्माण हेतु उपयोग में आने वाले पॉली–अक्रयलोनाईट्रायल पूर्ववर्ती तंतु यंत्र की बनावट	अरुण कुमार द्विवेदी, संजय के शेटे, तथा तरुण कुमार पारधी	79
13.	प्रक्षेपास्त्र परिसर में अंकीकरण की प्रवृत्तिः एक समीक्षा	हेमंत कुमार, के नागेश्वर राव, तथा एन वेंकटेश	84
14.	ऑटोमोबाइल उद्योग में कार्बन फाइबर का उपयोग	अजय कुमार एवं सचिन मिश्रा	87
15.	सर्वव्यापक संगणिकीः सबसे तेजी से उभरती प्रौद्योगिकी	कमल कुमार रंगा एवं रजनी कमल कुमार रंगा	91
16.	मसालों को हानि पहुंचाने वाले रोग, कीट तथा सूत्रकृमि एवं उनका प्रबन्धन	एम आनन्दराज, राशिद परवेज, तथा एस देवसहायम	95
17.	गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग से एल्यूमीनियम वेल्डिंग एक सहज प्रक्रिया	पवन कुमार एवं राकेश पटेल	104

18.	चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा उपचारित बीजों का पौधों की बढवार तथा उपज पर असर	अनन्ता वशिष्ठ, रवीन्द्र सिंह, तथा डी के जोशी	111
19.	भारत में ऊर्जा के स्रोत तथा भारत के भविष्य पर उनका प्रभाव	जितेन्द्र सिंह	117
20.	विश्व प्रगति में ऊर्जा का योगदान	विकास यादव	120
21.	जैव चिकित्सा अपशिष्ट एवं प्रबंधन	साधना चौरसिया एवं आनन्द देव गुप्ता	124
22.	α से β–चरण की रूपांतरण की यात्रा के दौरान Polyvinylidene (PVDF) फिल्मों में संरचनात्मक परिवर्तन	अंजना जैन, जयंत कुमार एस, तथा राम समया	129
23.	हृदय धमनी रोगों से बचाव में पपीते की भूमिका	जे एल अग्रवाल	136
24.	संकर सांड़ों के वीर्य की गुणवत्ता पर जिंक अनुपूरण का प्रभाव	निशान्त कुमार, शिव प्रसाद, तापस कुमार पटबंधा, तथा आर एस गौतम	142
25.	बाण्डग्राफ तकनीक के उपयोग से नियंत्रकों के साथ मोटरवाहन सस्पेंशन प्रणाली का रूपान्तरण एवं अनुकरण	विकास रस्तोगी, तामेश्वर नाथ, तथा रवि कुमार ठाकुर	147
26.	चयन प्रकिया द्वारा मुजफ्फरनगरी भेड़ों के उत्पादन एवं जनन गुणो में आनुवंशिक सुधार	गोपाल दास	158
27.	ओलिव रिडले समुद्री कछुए के सामूहिक नेस्टिंग के लिए उत्तरदायी कुछ भू–पर्यावरणीय घटकः गहीरमाथा अनुभव	गणेश पृष्टि	163
28.	अंतरिक्ष उपयोग में रिसोर्ससैट–श्रृखंला के प्रतिबिंबन सिद्धांत की व्याख्या और सुदूर संवेदित अनुप्रयोगों आंकड़ों के आंकलन, संसाधन और प्रस्तुतीकरण में कुशल भूमिका	विवेक शर्मा, नेहा गौड़, डी धर, तथा आर रामाकृष्णन	169
29.	मौसम अनुसंधान हेतु इसरो द्वारा प्रक्षेपित उपग्रहों के आंकड़ा संसाधन की व्याख्या और सरल प्रस्तुतिकरण एवं सार्वजनिक अनुप्रयोगों में कुशल भूमिका	नेहा गौड़, विवेक शर्मा, शेख साज़िद मोहम्मद, निकुन्ज दर्जी, डी धर, तथा आर रामाकृष्णन	176
30.	गैर विस्फोटक पदार्थों का नोदकों/प्रणोदकों के साथ सुसंगतता का परीक्षण	सी नेसामणि एवं सोमनाथ सोनी	182
31.	अर्द्धचालक लेजर डायोड और अनुप्रयोग	अभिषेक शर्मा	188
32.	दिष्ट ऊर्जा शस्त्रः अत्याधुनिक युद्ध प्रणाली	अनुज वार्ष्णेय	191
33.	ईंधन, समय एवं श्रम की बचत हेतु उपयोगी उन्नत चूल्हे	मीना सनाढ्य, इन्द्रजीत माथुर, चितरंजन शर्मा, तथा सुनील इन्टोदिया	194
34.	कृषक महिला सशक्तिकरण–दशा एवं दिशा	मीना सनाढ्य एवं पी के दशोरा	198

35.	प्राचीन भारत में विज्ञान का विकास एवं आदान–प्रदान	दीपक राठी एवं फूलदीप कुमार	201
36.	भारत में आपदा प्रबन्धन	तनु	227
37.	बायोजेनेटिक उत्पाद और खाद्य सुरक्षा	वन्दना त्यागी	234
38.	ध्वनि प्रदूषण–धीमी गति का मृत्युदूत	दीपक राठी एवं फूलदीप कुमार	236
39.	विस्फोटक सुरक्षा–एक अवलोकन	आर के खांडेकर	250
40.	रेडियोधर्मी तत्वों के विसंदूषण हेतु वर्तमान मानक चिकित्साएं एवं अनुसंधान	ध्रुव कुमार निषाद	253
41.	सुरक्षित दूरी से विस्फोटक पदार्थों का पता लगाने हेतु रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी का उपयोग	संजय गुलिया, स्वर्ण कुमारी, कमल गुलाटी, विजेयता गंभीर, तथा एम एन रेड्डी	257
42.	प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी उपलब्धियाँ	दीपक राठी एवं फूलदीप कुमार	260
43.	विश्व में विज्ञान और प्रौद्योगिकी व भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान का योगदान	भानुप्रकाश जोशी	264
44.	जीवित जीवाश्म साइलोटम नामक लुप्तप्राय पादप पर्णांग का भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में संरक्षण एवं परिवर्धन	एच सी पाण्डे	269
45.	सामाजिक विकास की वाहकः मोबाइल तकनीक	संदीप भट्ट	272
46.	राकेट मोटर में तनाव मापन	गोरख काची, जयश्री श्रीनाथ कैलास राऊत, रेणु गिल, दत्तात्रेय, प्रकाश क्षीरसागर, प्रवीण देशमुख, तथा विनायक रासने	278

वर्तमान परिवेश में सरंक्षण खेती की जरूरत–एक अवलोकन

वीरेन्द्र कुमार एवं तापस कुमार दास
भारतीय मृदा सर्वेक्षण संस्थान, नई दिल्ली

पिछले कई दशकों से फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती में संसाधनों का अत्यधिक, असंतुलित और अनुचित प्रयोग किया गया। जिसके परिणामस्वरूप आज स्थिति यह है कि हमारे संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। परम्परागत खेती के कारण भूमि के उपजाऊपन एवं फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों की कमी, भूजल स्तर में निरंतर गिरावट, खेतों में खरपतवारों का बढ़ता प्रकोप, बिगड़ती मृदा समतलता, मृदा लवणीयता, खाद्य पदार्थों में विषैले कृषि रसायनों की उपस्थिति, बिगड़ता मृदा स्वास्थ्य, मौसम की विषमताएं तथा उत्पादकता में स्थिरता अथवा कमी जैसी समस्याएं सामने आ रही हैं। साथ ही संसाधनों के असंतुलित प्रयोग से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में लगातार वृद्धि हो रही है। जिसके फलस्वरूप मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसके अलावा खेती में बढ़ती उत्पादन लागत और किसानों की घटती आय चिंता का विषय बना हुआ है। बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण की वजह से कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिनों–दिन घटता जा रहा है। भविष्य में इसके बढ़ने की सम्भावना नगण्य है। देश की बढ़ती आबादी की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन किया जा रहा है। यदि समय रहते हमने प्राकृतिक संसाधनों प्रमुख रूप से मृदा एवं जल संरक्षण पर विशेष जोर नहीं दिया तो भविष्य में गम्भीर खाद्य समस्या का सामना करना पड़ सकता है (शुक्ला एवं द्विवेदी, 2009)। इस सम्बन्ध में, मृदा उपजाऊपन एवं उत्पादकता बढ़ाने में संरक्षण खेती की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। संरक्षण खेती से तात्पर्य संसाधन सरंक्षण की ऐसी तकनीक से है, जिसमें अच्छी फसल की पैदावार का स्तर बने रहने के साथ–साथ संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहे ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी अपने से अच्छा वातावरण सुनिश्चित किया जा सके।

प्रस्तुत लेख में संरक्षण खेती से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तकनीकों जैसेः शून्य जुताई की खेती, भेंडो पर खेती, लेजर विधि द्वारा भूमि का समतलीकरण एवं फसल प्रणालियों में बदलाव का उल्लेख किया गया है। वर्तमान परिवेश को देखते हुए संरक्षण खेती अत्यंत आवश्यक हैं। क्योंकि इसके प्रयोग से बहुत सारे फायदे पाये गये हैं। जिनमें फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ–साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवत्ता भी बढ़ी है। जो कि कृषि की लगातार अच्छी हालत के लिए बहुत जरूरी है।

भविष्य में खाद्यान्न आपूर्ति, पर्यावरण संरक्षण, कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, पौष्टिकता, उत्पादकता और संसाधन–उपयोग दक्षता बढ़ाने हेतु सीमित भूमि में मृदा उर्वरता और जल प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करना होगा। जिससे, जलवायु परिवर्तन, भुखमरी और कुपोषण जैसी गम्भीर समस्याओं से मुक्ति मिल सके।

paper 389.indd 1 10-11-2013 12:17:36

शून्य जुताई की खेती

इस तकनीक द्वारा खेतों की बिना जुताई किये एक विशेष प्रकार की सीड ड्रिल द्वारा फसलों की बुवाई की जाती है। जहां बीज की बुवाई करनी हो, उसी जगह से मिट्टी को न्यूनतम् खोदा जाता है। इसमें दो लाइनों के बीच की जगह बिना जुती ही रहती है। बुवाई के समय ही आवश्यक उर्वरकों की मात्रा बीज के नीचे डाल दी जाती है। इस तरह की बुवाई मुख्यतः रबी फसलों जैसे गेहूँ, चना, सरसों और अलसी में ज्यादा कामयाब सिद्ध हुई है। इन फसलों की बुवाई देरी की अवस्था में 7–10 दिन पहले यानि की समयानुसार की जा सकती है। अतः इस तकनीक द्वारा बुवाई करने पर देरी से बोयी गयी फसलों में होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है। आई.ए.आर.आई के अनुसंधान फार्म पर किये गये प्रयोगों में बिना जुताई से बोयी गयी फसलों की पैदावार 5–10 प्रतिशत अधिक आँकी गई है। साथ ही बिना जुताई द्वारा बुआई करने में लागत कम आती है क्योंकि आम किसान बुवाई के पूर्व खेत की 3–4 बार जुताई करते हैं जिसके कारण होने वाला खर्चा बच जाता है। साथ ही ट्रैक्टर के रखरखाव पर भी कम लागत आती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि रबी फसलों की बुवाई में 2500–3000 रूपये प्रति हैक्टेयर का खर्चा बचाया जा सकता है। इस तकनीक से बुवाई करने पर पानी की मात्रा भी कम लगती है क्योंकि एक तो पलेवा यानि बुवाई–पूर्व सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। इसके अलावा बाद में भी 1–2 सें.मी प्रति सिंचाई पानी कम लगता है। यह भी अवलोकन किया गया है कि बिना जुताई वाले खेतों में खरपतवारों का कम प्रकोप होता है। इसका कारण यह है कि इस तकनीक में मिट्टी की ज्यादा उलट–पुलट नहीं करते हैं। अतः जिन खरपतवारों के बीज मिट्टी की गहरी सतह में होते हैं उन्हें अंकुरण के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिल पाता है। इसी प्रकार मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ और उसके ऊपर निर्भर लाभकारी सूक्ष्म जीव जन्तुओं की क्रियाशीलता पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है जो कि परंपरागत बुआई के तरीके में खेतों की बार–बार जुताई करने पर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने में भी यह तकनीक सार्थक मानी गयी है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में सरंक्षण खेती की तकनीक पर बड़े पैमाने पर प्रयोग किये गये है। यह प्रयोग मुख्यतः धान–गेहूँ, मक्का–गेहूँ, कपास–गेहूँ, अरहर–गेहूँ व सोयाबीन–गेहूँ फसल चक्रों में किये गये हैं (चित्र 2)। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि धान की सीधी बुआई वाली फसल की कटाई–उपरांत यदि गेहूँ की बुआई शुन्य जुताई तकनीक द्वारा की जाती है तथा गेहूँ की कटाई के तुरंत बाद गर्मियों में मूँग की फसल ली जाती है तो सभी फसलों की पैदावार और शुद्ध लाभ परंपरागत विधि से धान–गेहूँ के फसल चक्र की अपेक्षा अधिक प्राप्त किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त सीधी–बुवाई द्वारा धान उगाने से 30–40 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत की जा सकती है(सारणी–1)। इस तकनीक का फसलों की पैदावार पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

बिना–जुताई वाली खेती में कुछ सावधानियाँ और मुश्किलें भी हैं। एक तो बुवाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए ताकि मिट्टी और बीज का संपर्क अच्छी तरह हो जाए। दूसरे बुआई के समय ज्यादा सावधानी रखने की जरूरत होती है कि कहीं सीड ड्रिल की पाइपें बंद न हो जाएं। यद्यपि सीड ड्रिल की पाइपें पारदर्शी होती हैं उनसे बीज गिरता हुआ स्पष्ट नजर आता है। इस तकनीक द्वारा बुआई करने पर लगभग 20–25 प्रतिशत ज्यादा मात्रा में बीज और उर्वरक डालना आवश्यक माना गया है क्योंकि कभी–कभी किसी कारणवश प्रति इकाई क्षेत्र पौधों की कम संख्या व बढ़वार की वजह से पैदावार कम न हो। खरपतवारों के नियंत्रण में भी

paper 389.indd 2 10-11-2013 12:17:36

सारणी 1. धान–गेहूँ फसल–चक्र में संसाधन खेती की तकनीकों का प्रभाव।

तकनीक	धान की पैदावार (टन/है.)	गेहूँ की पैदावार (टन/है.)	गेहूँ के तुल्यांक दोनों फसलों की पैदावार (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रू/है. हजार में)	पानी की उत्पादकता (कि.ग्रा. धान/है.–मि.मी.)
सीधी बुवाई–शून्य जुताई+धान फसल अवशेष	5.15	4.80	13.97	97.5	6.12
सीधी बुवाई–शून्य जुताई+धान फसल अवशेष–मूँग	5.45	4.95	16.50	111.2	6.35
रोपाई–शून्य जुताई द्वारा बुवाई	5.55	4.88	14.76	100.1	3.75
रोपाई–सामान्य बुवाई	5.58	5.07	15.00	102.1	3.65

ज्यादा सावधानी की जरूरत होती है। इसके लिए बुआई से पहले पेराक्वाट अथवा ग्लाईफोसेट नामक खरपतवार–नाशी का प्रयोग करना चाहिए। जिससे पहले से उगे हुए सारे खरपतवार नष्ट हो जाएं। कुछ भारी जमीनों में पौधों की जड़ों की वृद्धि कम हो सकती है। इसके लिए मिट्टी पर फसल अवशेषों या अन्य वनस्पति पदार्थों की परत डालने से पौधों की जड़ों और विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

मेड़ों पर खेती

इस तकनीक में फसलों की बुआई मेड़ों पर करने के लिए एक यन्त्र तैयार किया गया है। इस तकनीक में 70–75 से.मी. की दूरी पर मेड़ें बनाई जाती हैं। जिसमें लगभग 35 सें.मी. चौड़ी मेंड़ और इतनी ही दूरी व गहराई पर नाली सी बन जाती है। बुवाई मेड़ों पर और नाली में भी फसल के अनुसार की जा सकती है। गेहूँ के लिए मेड़ों पर 3 लाइनें बो सकते हैं जबकि सोयाबीन, सरसों, चना, मूँग की दो लाइन काफी होती है। यह तकनीक खेतों की भली–भाँति जुताई करने के बाद या फिर पिछली फसल के लिए बनायी मेड़ों पर बिना जुताई के भी अपनाई जा सकती है।

इस विधि से बुवाई करने के कई लाभ हैं। जैसे वर्षा ऋतु में खेतों में ज्यादा पानी खड़ा होने से मेड़ों पर उगे पौधे ज्यादा सुरक्षित होते हैं क्योंकि अनावश्यक पानी को नालियों में से होकर बाहर निकाला जा सकता है। फसलों की सिंचाई करने पर पानी की मात्रा 20–30 प्रतिशत तक कम लगती है। साथ ही प्रति यूनिट पानी की उत्पादकता भी बढ़ती है। इस तकनीक द्वारा फसल उत्पादन में यह भी देखा गया है कि बीज और खाद की मात्रा 15–20 प्रतिशत कम लगती है क्योंकि इनका प्रयोग सिर्फ मेड़ों पर ही किया जाता है। इस विधि में मेड़ों पर खरपतवार भी कम आते हैं। इसका कारण यह है कि मेड़ों पर फसल के पौधों की संख्या ज्यादा होती है। जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिलता है। यद्यपि नालियों में ज्यादा खरपतवार आते हैं क्योंकि फसल की आरंभिक अवस्थाओं में उनके उगने के लिए पर्याप्त जगह होती है। खरपतवारों की रोकथाम हाथ से चलाने वाले अथवा ट्रैक्टर–चलित यंत्रों द्वारा आसानी से की जा सकती है। इस प्रकार मेड़ों पर बुआई करने से संसाधनों का कम प्रयोग होने के साथ–साथ पैदावार भी 10–15 प्रतिशत ज्यादा या फिर समतल जमीन पर बुआई करने के बराबर ही मिलती है (चित्र 5)।

paper 389.indd 3 10-11-2013 12:17:37

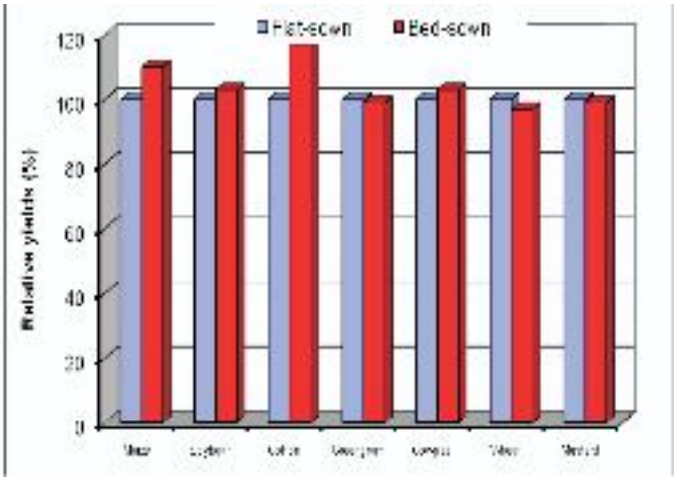

चित्र 1. समतल और मेड़ों पर बुवाई की दशा में विभिन्न फसलों की सापेक्ष उपज।

कपास–गेहूँ फसल चक्र में शुन्य जुताई और मेड़ों पर बुआई बहुत सार्थक पायी गयी है। यदि फसलों के अवशेषों को भी मिट्टी की सतह पर बिछा दिया जाए तो यह तकनीक और भी ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुई है। जिसका मृदा नमी, कार्बनिक कार्बन की मात्रा व तापमान पर तो अनुकूल प्रभाव पड़ता ही है। साथ ही खरपतवारों की रोकथाम में भी सहायता मिलती है। संरक्षण खेती की तकनीकियों द्वारा फसलों की उपज और शुद्ध लाभ में भी बढ़ोतरी आंकी गयी। इसके अलावा सिंचाई जल की उत्पादक–दक्षता में भी सुधार पाया गया (सारणी 2)।

मेड़ों पर बुआई करने के लिए कुछ सावधानियों का ध्यान रखना बड़ा जरूरी है। इसके लिए खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए। अगर अच्छी जुताई के बाद मेड़ों पर बुआई करनी हो तो मिट्टी पूरी तरह से भुरभुरी होनी चाहिए। खेत ढेले वगैरह से पूर्णतया मुक्त होना चाहिए। यदि पिछली फसल के लिए बनायी गयी मेड़ों पर बिना जुताई के बुवाई करनी हो तो खेत घास–फूस व फसल अवशेषों से रहित होना चाहिए। मेड़ों पर बुआई करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मृदा में सही नमी होनी चाहिए अन्यथा नमी की कमी में बीजों का जमाव ठीक से नहीं हो

सारणी 2. कपास–गेहूँ फसल चक्र में संरक्षण खेती की तकनीकों का प्रभाव।

तकनीक	कपासकी उपज (टन/है.)	गेहूँ कीउपज (टन/है.)	दोनों फसलों की गेहूँ तुल्य उपज (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रू/है.) (हजार में)	सिंचाई जल की उत्पादकता (कि.ग्रा./है.)
सामान्य बुआई–समतल भूमि	2.44	4.85	10.29	92.8	9.0
शुन्य जुताई–मेड़ों पर	2.71	4.55	10.60	96.3	11.6
शुन्य जुताई–मेड़ों पर + फसल अवशेष	2.96	4.61	11.23	102.2	12.9

paper 389.indd 4 10-11-2013 12:17:37

पाता है। वाष्पीकरण होने से भी मेड़ों की सतह पर नमी कम रह जाती है। ऐसी स्थिति में गेहूँ जैसी फसल में तो बुआई के 4–5 दिन बाद ही सिंचाई की जरूरत पड़ सकती है ।

लेजर विधि द्वारा मिट्टी का समतलीकरण

संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीकी जैसे कि बिना जुताई की खेती या मेड़ों पर बुआई के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए। अन्यथा बुआई ठीक से नहीं हो पाती है। बीज मिट्टी में सही गहराई पर नहीं पहुंचने से बीजों का अंकुरण एक समान रूप से नहीं हो पाता है। खाद व पानी भी सभी पौधों को समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। वास्तव में किसी संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीक की सफलता खेत के समतल होने पर निर्भर करती है। लेजर विधि एक नई वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें एक विशेष उपकरण द्वारा खेत की मिट्टी को पूरी तरह समतल किया जाता है। समतल भूमि पर फसल उगाने का सबसे बड़ा फायदा पानी की बचत व अधिक फसल उत्पादकता का है। सिंचाई का पानी खेत के हर हिस्से में एक समान मात्रा में और सारे खेत में कम समय में फैल जाता है। धान की फसल के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है जिसमें सिंचाई जल की मात्रा लगभग आधी हो जाती है। आजकल किसानों द्वारा इस तकनीक में बहुत ज्यादा रूचि दिखायी जा रही है। इस मशीन की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा रही है। किसानों के बीच यह मशीन 'कम्पयूटर' के नाम से प्रचलित है। ये मशीने काफी मंहगी है। परंतु छोटे व सीमांत किसानों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ये आसानी से किराये पर उपलब्ध हो जाती है ।

अन्य फसल प्रणालियों में संरक्षण खेती

संरक्षण खेती के अंतर्गत कपास–गेहूं फसल चक्र में अरहर–गेहूं और मक्का–गेहूं फसल चक्रों की अपेक्षा लगभग 1.0–1.5 गुणा ज्यादा उत्पादकता मिलती है (सारणी 3)। फसल अवशेषों के साथ मेंड़ पर बुवाई करना समतल बुवाई की अपेक्षा बेहतर है। साथ ही उपर्युक्त तीनों फसल प्रणालियों के अंतर्गत फसल अवशेषों के साथ मेंड़ों पर बुवाई करने से अधिक फसल उत्पादकता मिलती है (सारणी 3)।

कपास–गेहूं फसल प्रणाली धान–गेहूं प्रणाली की तरह तुलनीय उत्पादकता और शुद्ध लाभ उपलब्ध कराती है। यह धान–गेहूं फसल प्रणाली का विकल्प हो सकती है (सारणी 4)।

मक्का–गेहूं अरहर गेहूं और कपास–गेहूं फसल प्रणालियों में शून्य जुताई द्वारा बुआई के अंतर्गत कम सिंचाई जल की आवश्यकता होती है जिसके परिणामस्वरूप समतल बुवाई की अपेक्षा अधिक सिंचाई जल उत्पादकता मिलती है (सारणी 5)।

सारणी 3. विभिन्न फसल प्रणालियों में शून्य जुताई के अंतर्गत गेहूं के तुल्यांक प्रणाली उत्पादकता।

उपचार	कपास–गेहूं (टन/है.)	अरहर–गेहूं (टन/है.)	मक्का–गेहूं (टन/है.)
परम्परागत समतल बुवाई	11.29	8.81	8.22
शून्य जुताई संकरी मेड	11.60	9.10	8.00
शून्य जुताई संकरी मेड+फसल अवशेष	12.23	9.28	8.26
शून्य जुताई चौड़ी मेड	12.81	9.35	8.71
शून्य जुताई चौड़ी मेड़+फसल अवशेष	12.16	10.35	8.78

paper 389.indd 5 10-11-2013 12:17:37

सारणी 4. विभिन्न वर्षाओं में विभिन्न फसल प्रणालियों के अंतर्गत गेहूं तुल्यांक प्रणाली उत्पादकता और शुद्ध लाभ।

फसल प्रणाली	गेहूं तुल्यांक प्रणाली उत्पादकता (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रु/है.) (हजार में)
मक्का–गेहूं (शून्य जुताई चौडी मेड़)+फसल अवशेष	8.78	61.5
अरहर–गेहूं (शून्य जुताई चौडी मेड़) +फसल अवशेष	10.55	73.8
कपास–गेहूं (शून्य जुताई चौडी मेड) +फसल अवशेष	13.16	95.3
धान की सीधी बुवाई–शून्य जुताई–गेहूं	13.75	100.1
रोपाई धान–गेहँ की परंपरागत बुवाई	14.00	102.2

सारणी 5. विभिन्न शून्य जुताई फसल प्रणालियों में सिंचाई जल की उत्पादकता।

फसल प्रणाली	कुल दिया गया सिंचाई जल (हे.मि.मि.)		सिंचाई जल उत्पादकता (कि.ग्रा./हे.मि.मि.)	
	खरीफ	रबी	खरीफ	रबी
मक्का –गेहूं				
शून्यजुताई व मेडों पर बुवाई	150	250	22.67	20.40
समतल बुवाई	210	350	12.57	14.69
अरहर–गेहूं				
शून्य जुताई व मेडों पर बुवाई	350	250	15.00	19.72
सामान्य बुवाई	490	350	7.67	13.89
कपास–गेहूं				
शून्य जुताई व मेडों पर बुवाई	550	250	16.93	19.40
सामान्य बुवाई	770	350	9.00	13.86

निष्कर्ष

आजकल पूरे विश्व में संरक्षण खेती पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। पिछले कई दशकों से सघन खेती करने से, एक वर्ष में 2–3 फसलें और लगातार एक ही तरह की फसलें उगाने से, रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक व अनुचित प्रयोग, जैविक खादों के प्रयोग की अनदेखी करने के कारण कृषि में ज्यादा उत्पादन लागत और कम फायदा हो रहा है। संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी होने से आज विश्व के कई देशों में संरक्षण खेती बड़े व्यापक स्तर पर अपनाई जा रही है। विश्व में लगभग 100 मिलियन हैक्टेयर से ज्यादा जमीन पर संरक्षण खेती की जा रही है। संरक्षण खेती करने वाले देशों में अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राजील और अर्जेन्टीना प्रमुख हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत की मिट्टी को न्यूनतम हिलाया जाए, उसकी जुताई न के बराबर की जाए, भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाए व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वनस्पति आवरणों से ढ़ककर रखा जाए। हरी खाद या जमीन को ढ़कने वाली अन्य फसलों को फसल चक्र में अपनाया जाए। ऐसा करने से बहुत सारे फायदे पाये गये हैं जिनमें फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ–साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवत्ता भी बढ़ी है जो कि कृषि की लगातार अच्छी हालत के लिए बहुत जरूरी है। उसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य में इसी तरह की खेती को ही अपनाना होगा ताकि हमारी भावी पीढ़ियां अच्छे से अपना जीवन निर्वाह कर सकें।

paper 389.indd 6 10-11-2013 12:17:37

पावर लाईन का दमन ईसीजी में हस्तक्षेप का उपयोग अनुकूली डिजिटल फिल्टर

नीलम भारद्वाज एवं अरुण तौमर

दीन बंधु छोटू राम विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मुरथल, सोनीपत, हरियाणा

सारांश

इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम (ईसीजी) रिकार्ड में कलाकृत्तियों Powerline हस्तक्षेप के रूप में, विभिन्न कारकों की वजह से कर रहे है, Electroencephalogram (ईईजी), विद्युतपेशीलेख (EMG) और आधारभूत भटकना (Baseline Wonder) शोर स्त्रोतो में वृद्धि होने के कारण, ईसीजी का विश्लेषण करने में और नैदानिक जानकारी प्राप्त करने में कई कठिनाई होती है। ईसीजी रिक. ार्ड में ऐसी कलाकृतियों को कम करने के लिए विशिष्ट फिल्टर डिजाईन करना आवश्यक है। वास्तव में प्राथमिकी अनुकूली फिल्टर कम से कम मीन वर्ग एल्गोरिथ्म (LMS Algorithm) के आधार पर, ईसीजी संकेत में 50Hz powerline हस्तक्षेप को नष्ट करने का उद्देश्य पूर्ण करता है। MATLAB के एफडीए (FDA) उपकरण का उपयोग, ईसीजी संकेत को विभिन्न Powerline की आवृत्तियों या विकृति के साथ भ्रष्ट संकेत के साथ फिल्टर द्वारा परीक्षण किया गया। प्राप्त परिणामों को प्रस्तुत कर रहे है।

परिचय

हद्य की विद्युत गतिविधि को ईसीजी 12 लीडस को शरीर के नामित क्षेत्र पर लगाकर ईसीजी मशीन का उपयोग करके मापा जाता है। हद्य से सम्बंधित जानकारी जैसे की mal-functioning (असामान्याओं) का ईसीजी रिकार्ड मे उल्लेख किया है। इन ईसीजी संकेतो के कुछ लक्षण आवृति (Frequency) और उन तरंगो के आकार (morphology) है। और ईसीजी लहरों या तरंगो (Waves) और परिसर (complexes) से बना है।

सामान्य साइनस लय में पी लहर, पीआर अंतराल, पीआर खंड, क्यूआरएस परिसर, एसटी अंतराल और टी लहर है। इस संकेतो के पैरामीटर समय, वोल्टेज और लहर (या तंरग) के पैटर्न है। वोल्टेज imv के कुछ छोटे भाग (Small Division) और उनकी आवृति सामग्री (Content) 0.5Hz के भीतर और 100Hz अलग–अलग व्यक्ति पर निर्भर करता है। हद्य विकारों का पता लगाने और विकृतियों का ईसीजी तरंग के माध्यम से हद्य रोग विशेषज्ञ द्वारा विश्लेषण कर रहे है। कलाकृतियों की उपस्थिति में, ईसीजी तरंगों का विश्लेषण कर पाना बहुंत मुश्किल है। सही निदान के लिए, ईसीजी में उठने (बढ़ने) वाले पैरामीटर जैसी शोर (Noise) और (Spikes), एफआईआर फिल्टर का उपयोग करके तनु (Attenuate) होना चाहिए।

विभिन्न शोधकर्ताओं (पूर्ण समूह टीम (Team) के रूप में) ईसीजी में powerline हस्तक्षेप अनुकूली फिल्टर का उपयोग करने पर काम किया है।

Paper 466.indd 1 10-11-2013 12:15:46

क्र. सं.	नाम	प्रयोजनो का उपयोग	उद्देश्य
1	डैनिय ओल्म्यून लएट अल	चर कदम आकार के साथ अनुकूली शोर वापस लेनेवाला (Adaptive Noise Cancellor ANC) और LMS एलगोरिद्म पैरामीटर के प्रयोग पर काम किया।	ईसीजी संकेतो की रिकार्डिंग में powerline हस्तक्षेप का उन्मूलन किया।
2	गुहूआ हांगकांग एट अल	एक चर कदम कम से कम आकार वर्ग अनुकूली फिल्टरिंग एलगोरिद्म का उपयोग	50Hz हस्तक्षेप जो अपनी आवृति ईसीजी संकेत में छोटे उतार चढाव को खत्म करने में।
3	यूफेंग वू एट अल	एक निष्पक्ष और सामान्य–करण अनकूली शोर में कमी प्रणाली के लिए प्रस्तुत किया है।	ईसीजी संकेतो में याद्धच्छिक शोर को दबाने का प्रयोजन।
4	लू एट एल	आरएलएस एल्गोरिद्म का उपयोग (पुनरावर्ती कम से कम वर्ग)	EMGS से ईसीजी हस्तक्षेप को हटाने में अनुकूली शोर रद्ध फिल्टर
5	गारसेस कोरिया एट अल	Cascaded अनुकूली एफआईआर फिल्टर LMS एल्गोरिथ्म पर आधारित	ईसीजी से विभिन्न कलाकृतियो को दूर करने के लिए उपयोग होता है।

कम से कम वर्ग की गुणांक अद्यतन प्रक्रिया (Coefficient Update process of LMS) पर आधारित प्राथमिक अनुकूली फिल्टर

यहाँ, हम आकृति 1 के अनुकूली शोर वापस लेने वाला (एएनसी) पर विचार करके एल्गोरिथ्म प्राथमिकी LMS का वर्णन कर सकते है।

आकृति 1 में दर्शाए गए अनुसार, ईसीजी संकेत के साथ powerline शोर d(n) प्राथमिक संकेत को और x(n) माध्यमिक संकेत (Powerline शोर) को दर्शाता है। निर्गम संकेत y(n) को प्राथमिक संकेत d(n) में से घटाने पर अनुकूली फिल्टर त्रुटि संकेत e(n) उत्पन्न करता है।

$$e(n)=d(n)-y(n) \qquad 1$$

संकेत त्रुटि = प्राथमिक संकेत – निर्गम संकेत।

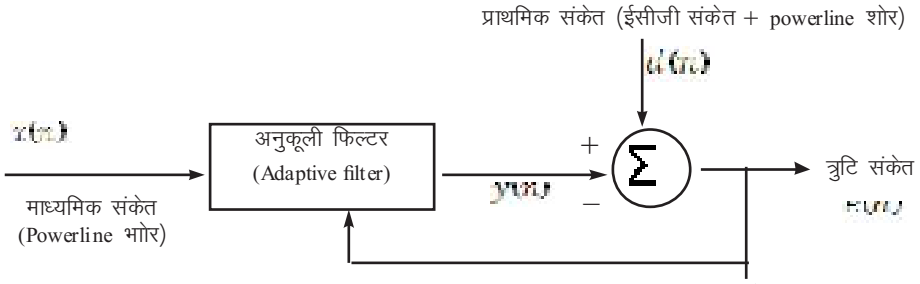

चित्र 1. अनुकूली फिल्टर ईसीजी संकेत में से powerline शोर दूर करने के लिए।

Paper 466.indd 2 10-11-2013 12:15:47

आम तौर पर, एफआईआर फिल्टर के उत्पादन में इनपुट और फिल्टर गुणांक के रूप में नीचे दिखाया गया एक कनवल्शन फिल्टर्स है।

यहाँ पर, L = फिल्टर का क्रम (Order of filter)

$$e(n) = d(n) - y(n) \qquad (1)$$

$x(n)$ = माध्यामक संकेत (Secondary Signal)

h_k = फिल्टर का गुणांक (Filter coefficient)

$y(n)$ = फिल्टर का निर्गम (Filter Output)

त्रुटि संकेत $e(n)$ प्राथमिक संकेत $d(n)$ और फिल्टर निर्गम $y(n)$ के बीच अंतर के रूप में परिभाषित किया गया है।

$y(n)$ का मान $y(n) = \sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k)$ (2)

(1) समीकरण में रखने पर, हम ... प्राप्त करेंगे।

$$e(n) = d(n) - \sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k) \qquad (3)$$

त्रुटि का वर्ग (Square Error)

$$e^2(n) = d^2(n) - 2d(n)\sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k) + \left[\sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k)\right]^2 \qquad (4)$$

एन (N) के नमूने (Samples) के लिए स्क्वायर त्रुटि उम्मीद द्वारा दिया जाता है।

$$E[e^2(n)] = \sum_{k=0}^{N} e^2(n) \qquad (5)$$

$$E[e^2(n)] = \sum_{k=0}^{N}\left[d^2(n) - 2d(n)\sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k) + \left[\sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k)\right]^2\right]$$

$$= \sum_{n=1}^{N}[d^2(n)] - 2\sum_{n=1}^{N} d(n)\sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k) + \sum_{n=0}^{N}\sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k)\sum_{k=0}^{L} h_k x(n-k)$$

$$= \sum_{n=1}^{N}[d^2(n)] - 2\sum_{n=0}^{N} h_k \sum_{k=1}^{L} d(n)x(n-k) + \sum_{k=0}^{L}\sum_{l=0}^{L} h_k h_l \sum_{n=1}^{N} x(n-k)x(n-k)$$

$$= \sum_{n=1}^{N}[d^2(n)] - 2\sum_{k=0}^{L} h_k \sum_{n=1}^{N} d(n)x(n-k) + \sum_{k=0}^{L}\sum_{l=0}^{L} h_k h_l \sum_{n=1}^{N} x(n)x(n-k)(k-l)$$

Paper 466.indd 3 10-11-2013 12:15:47

$$E[e^2(n)] = [d^2(n)] \quad 2\sum_{k=0}^{L} h_k R_{dx}(n) + \sum_{k=0}^{L}\sum_{l=0}^{L} h_k h_L R_x(n)(k-l) \qquad (6)$$

यहाँ पर $R_{dx}(n)$ $R_{dx}(n)$ प्राथमिक और माध्यमिक संकेतों के बीच सहसंबंध पार प्रक्रिया (Cross-Correlation Function) जबकि $R_{xx}(n)$ $R_{xx}(n)$ ऑटो सहसंबंध प्रक्रिया (autocorrelation function) दोनो के बीच है।

$$R_{dx}(n) - \sum_{n=1}^{N} d(n)x(n-k) \qquad (7)$$

$$R_{xx}(n) = \sum_{n=1}^{N} x(n)x(n \quad k) \qquad (8)$$

इस अद्यतन प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य त्रुटि के वर्ग को कम करने के लिए है। इसके साथ यह संभव है कि प्रत्येक के लिए फिल्टर गुणांक सदिश की गणना (Calculate the filter coefficient for each interation k) पिछले गुणांक (previous coefficient) और ढाल (gradient), एक निरंतर से गुणा के बारे में जानकारी होने का यही कारण है।

$$h_k(n \mid 1) - h_k(n) + \mu\left(-\nabla_k\right) \qquad (9)$$

कहाँ μ μ कि अद्यतन की दर को नियंत्रित करता है और यह कदम आकार (Step size) कहा जाता है, एक गुणांक (Coefficient) है।

ढाल (Gradient) के रूप में परिभाषित किया गया है,

$$\nabla_k - \frac{\partial[e^2(n)]}{\partial h_k(n)} \qquad (10)$$

ढाल, ∇_k ∇_k का मान (9) समीकरण में रखने पर,

$$h_k(n+1) - h_k(n) + \mu\left\{\frac{-\partial[e^2(n)]}{\partial h_k(n)}\right\}$$

$$- h_k(n) + \mu\partial\frac{\partial[e^2(n)]}{\partial h_k(n)} \qquad (11)$$

Differentiate w.r.t $(h_k)\ gives\ (h_k)\ gives$

$$h_k(n+1) - h_k(n) - 2\mu e(n)\frac{\partial[e(n)]}{\partial h_k(n)} \qquad (12)$$

$$h_k(n \mid 1) = h_k(n) \quad 2\mu e(n)\frac{\partial\left[d(n) - \Sigma_{k=0}^{L} h_k x(n \quad k)\right]}{\partial h_k(n)} \qquad (13)$$

चूंकि d(n) और x(n), h_k h_k के कार्य नहीं कर रहे है।

$$h_k(n+1) = h_k(n) - 2\mu e(n)x(n \quad k) \tag{14}$$

(14) समीकरण की अभिव्यक्ति एल्गोरिथ्म के अंतिम विवरण के एक समारोह के रूप में फिल्टर गुणांक की गणना, संकेत त्रुटि e(n) और संदर्भ इनपुट संकेत x(n) द्वारा होती है।

गुणांक या कदम आकार μ μ एक स्कैलर कोनसटन्ट (Scalar Constant) है जिसमें स्थिरता को खोने के बिना तेजी से अभिसरण या अनुकूलन की गारंटी करने के लिए चुना जाना चाहिए। फिल्टर स्थिर है अगर μ μ शर्त को संतुष्ट करे :

$$0 < \mu < \frac{1}{10L\ P_{xx}} \tag{15}$$

कहाँ, L = फिल्टर का क्रम (Order of filter)

और P_{xx} = इनपुट संकेत की भाक्ति (Power of Input signal)

$$P_{xx} = \frac{1}{M-1}\sum_{n=0}^{M-1} x^2(n) \tag{16}$$

(14) की व्याख्या है गुणांक $h_k(n-1)$ एक नया सेट उत्पन्न होता है, पिछले अद्यतन द्वारा $h_k(n)$ जोकि संदर्भ इनपुट भोर संकेत के अनुसार है।

प्राथमिक अनुकूली शोर वापस लेने वाला (एएनसी) (FIR Adaptive Noise Canceller) को डिजाइन करना LMS एल्गोरिथ्म का उपयोग करके

Lap एएनसी का उपयोग होता है 50Hz Powerline हस्तक्षेप को हटाने या दूर करने के लिए। फिल्टर का क्रम (Order of filter) 100 है और कदम आकार 0.001 है। डिजाईन Matlab के एफडीए (Fdatool) उपकरण के साथ दिया जाता है। Instantaneous आवेग, अनुकूली फिल्टर की आवृत्ति और चरण की प्रतिक्रियाएं चित्र 2, 3, 4 में प्रदर्शित है।

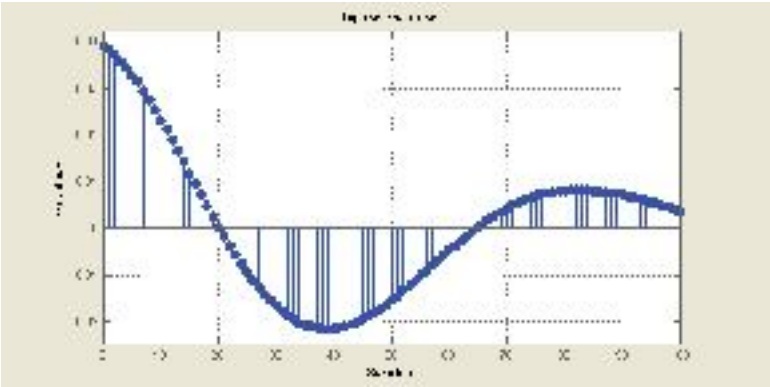

Figure 2. Instantaneous impulse response of the adaptive noise canceller.

Paper 466.indd 5 10-11-2013 12:15:47

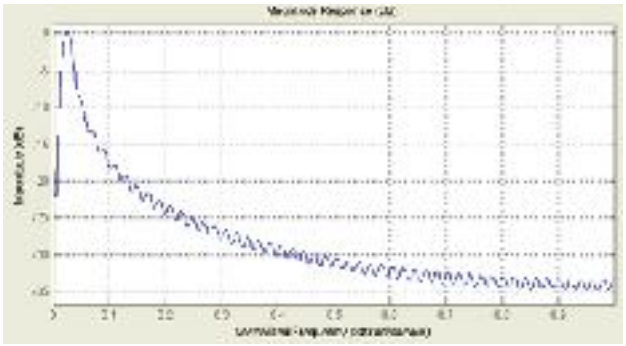

Figure 3. Instantaneous frequency response of the adaptive noise canceller.

परिणाम

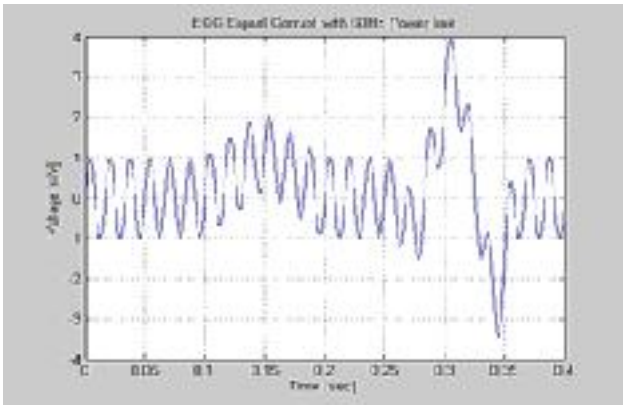

चित्र 4. ईसीजी संकेत 50Hz powerline **के साथ प्राप्त है।**

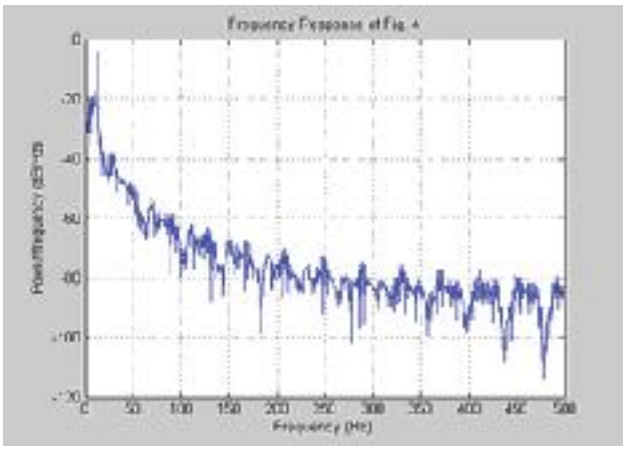

चित्र 5. ईसीजी संकेत की आवृत्ति प्रतिक्रिया 50Hz powerline **के साथ प्राप्त है।**

Paper466.indd 6 10-11-2013 12:15:47

50Hz powerline आवृत्ति पर संकेत की भाक्ति लगभग (-45.21dB)

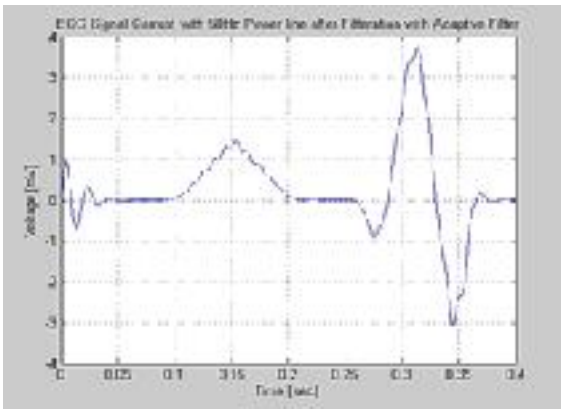

चित्र 7. ईसीजी संकेत अनुकूल फिल्टर के साथ, छलनी (Filtration) के बाद।

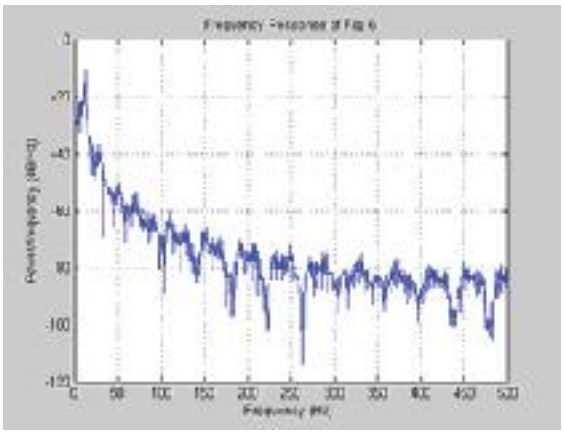

चित्र 8. आवृत्ति प्रतिक्रिया ईसीजी संकेत की (Filtration) के बाद अनुकूल फिल्टर के साथ।

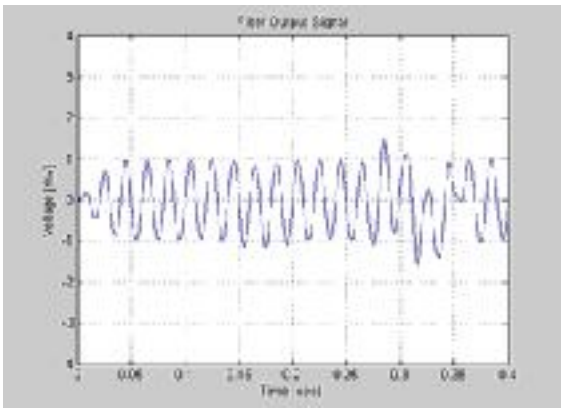

चित्र 9. अनुमानित उत्पादन अनुकूल फिल्टर।

Paper 466.indd 7 10-11-2013 12:15:47

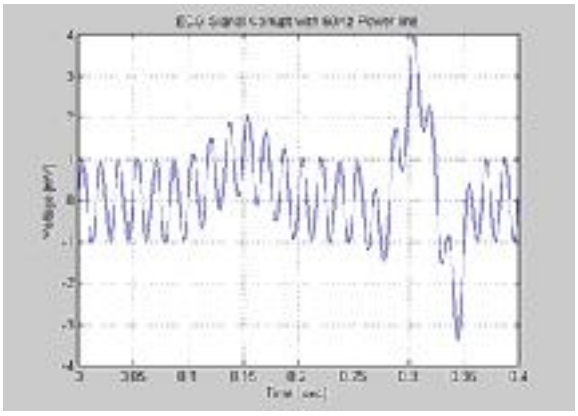

चित्र 10. ईसीजी संकेत को 60Hz powerline हस्तक्षेप प्राप्त करता है।

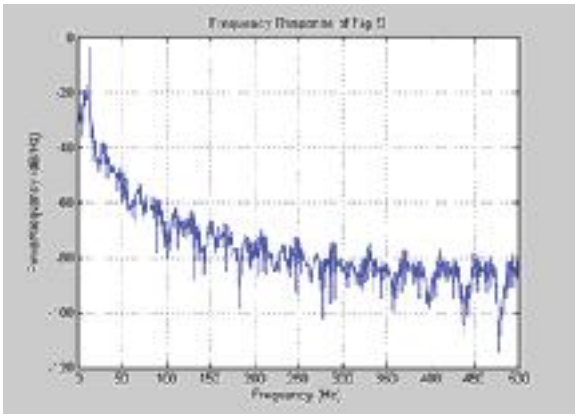

चित्र 11. आवृति प्रतिक्रिया और संकेत की शक्ति 60Hz. पर -46.12dB
(आवृति प्रतिक्रिया ईसीजी संकेत 60Hz Powerline के साथ नष्ट हो जाता है)।

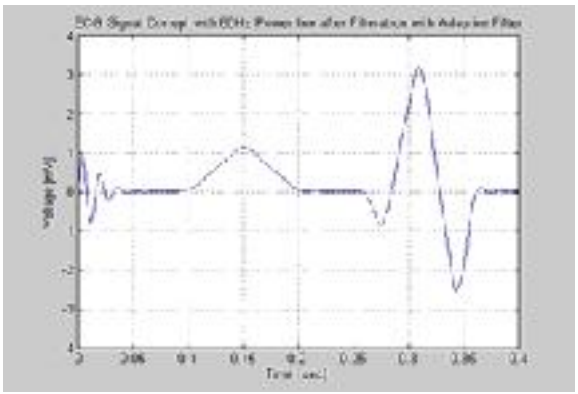

चित्र 12. ईसीजी संकेत अनुकूल फिल्टर का स्वच्छीकरण (Filteration) के बाद।

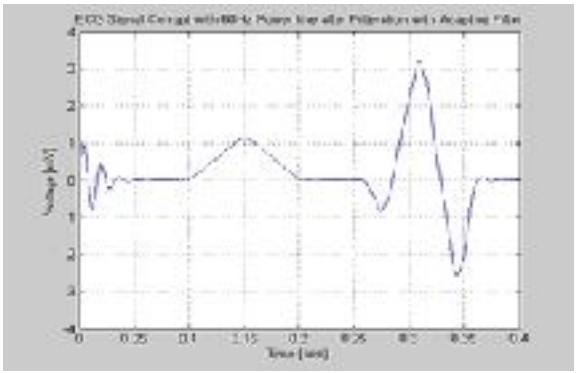

चित्र 13. इसमें 60 Hz आवृत्ति मे सता टन (58.19dB) चला जाता है, जिसका अर्थ है कि अनुकूली फिल्टर हटा दिया गया है।

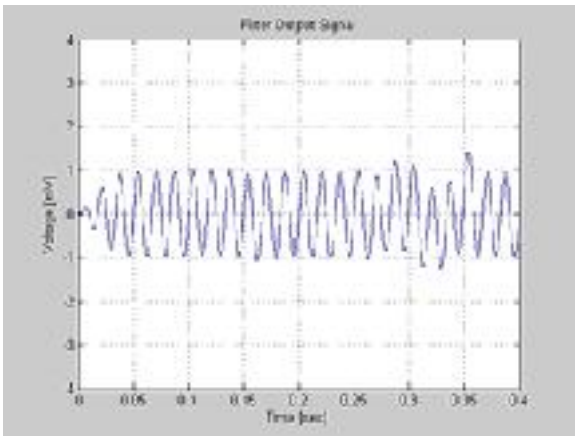

चित्र 14. अनुकूली फिल्टर के अनुमानित उत्पादन।

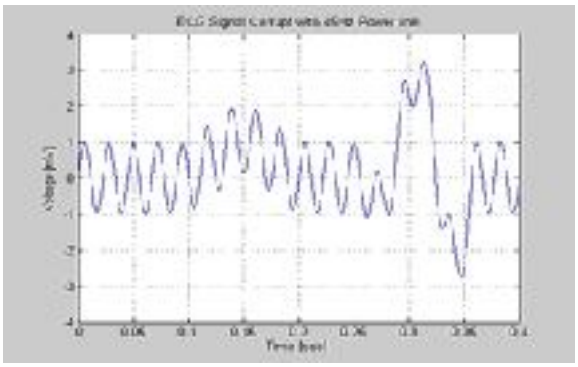

चित्र 15. ईसीजी संकेत 45Hz powerline हस्तक्षेप के साथ भ्रष्ट संकेत से पता चलता है।

Paper466.indd 9 10-11-2013 12:15:47

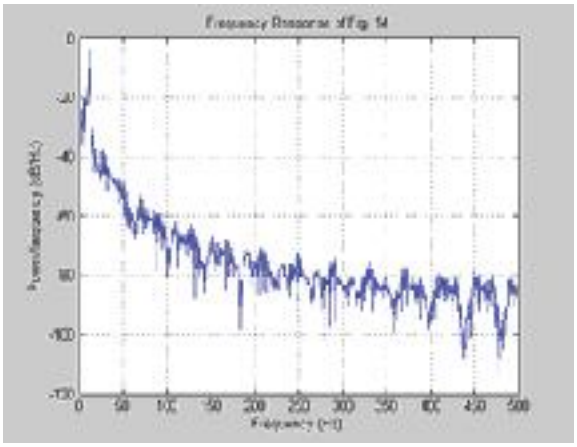

चित्र 16. 46 हर्ट्ज (Hz) पर प्राप्त संकेत की शक्ति (44.99dB) है। इसमें आवृत्ति प्रतिक्रिया है।

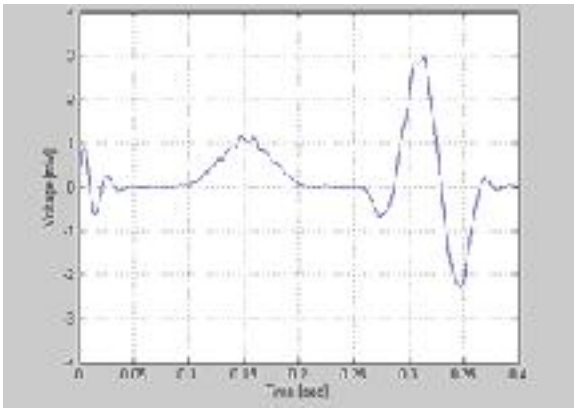

चित्र 17. प्राप्त संकेत जोकि अनुकूल फिल्टर पर लगाया गया है। इसमें फिल्टर उत्पादन प्रदर्शित किया गया है।

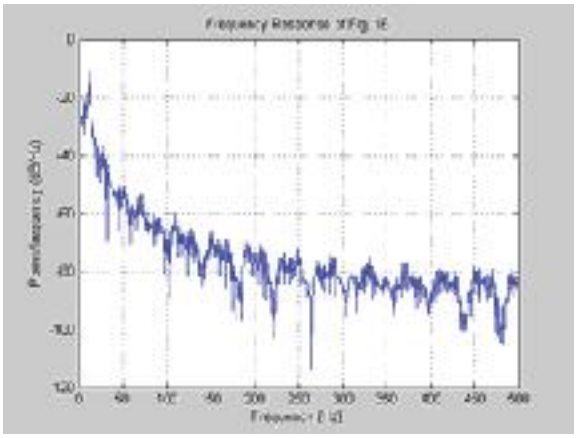

चित्र 18. संकेतो की शक्ति घटकर (37.78dB) हो जाती है, इसका मतलब अनुकूल फिल्टर 46Hz Power line को हटाता है।

Paper466.indd 10 10-11-2013 12:15:47

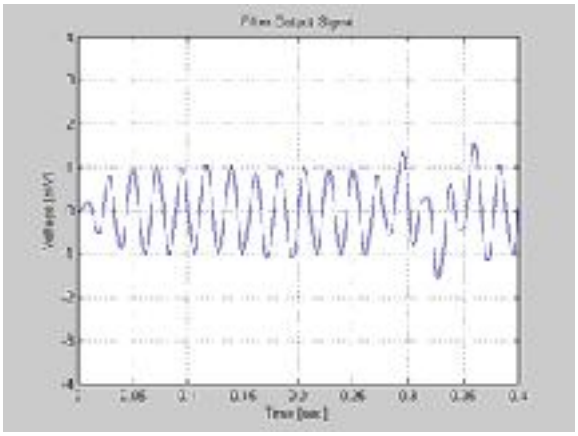

चित्र 10. अनुकूली फिल्टर के अनुमानित उत्पादन।

निष्कर्ष

तात्कालिक आवेग और परिणाम अनुकूली फिल्टर शोर की प्रतिक्रिया है कि फिल्टर बहुत स्थिर है चरण प्रतिक्रिया भी संकेत है कि फिल्टर एक रैखिक चरण है, जो जटिल लहरों को छानने में वांछनीय है। ईसीजी संकेतो की तरह कार्यान्वयन के परिणामों की पुष्टि कर रहे है कि जब इनपुट शोर की आवृत्ति परिवर्तन, अनुकूली फिल्टर इस तरह के बदलाव की पटरियों और उसके गुणांक समायोजित करने के लिए एक ही फिल्टर्ड उत्पादन का उत्पादन समान है। इसलिए अनुकूली फिल्टर सबसे उपयुक्त है, जबकि फिल्टर के बाहर की आवृत्ति स्थिर नहीं है।

सन्दर्भ

1. डैनियल Olguin, Frantz Bouchereau और सर्जियो मार्टिनेज, ईसीजी संकेतो के लिए अनुकूल पायदान फिल्टर LMS एल्गोरिद्म के आधार पर साथ चर पैरामीटर कदम आकार, सूचना विज्ञान, और प्रणालियां, जॉन हॉपकिंस विश्वविद्यालय पर 2005 सम्मेलन, 16 मार्च 2005.
2. मानवीय वान, Rongshen फू और ली शि, ईसीजी के से 50Hz powerline हस्तक्षेप के उन्मूलन एक चर कदम आकर LMS का उपयोग अनुकूली एल्गोरिद्म फिल्टरिंग, जीवन विज्ञान और पत्रिका, वॉल्यूम, 3, 4 नहीं, 90 के पृष्ठों–93, 2006.
3. Yufeng वू Rangaraj एम Rangayyan, YACHAO झूठ और पाप चुन एनजीः भछनन विद्युतहद्लेखी संकेतों का उपयोग कर एक निष्पक्ष और मैडिकल इजीनियरिंग भौतिकी सामान्यीकृत अनुकूली शोर कमी जर्नल प्रणाली, वोल्यूम 31, 17 पन्ने–26 2009.
4. Guohua लू, जॉन स्टुअर्ट Brittain पीटर होलैंड, जॉन Yianni, अलक्जैंडर एल ग्रीन, जॉन एफ स्टीन, टीपू जेड अजीज और Shouyan वैग, सतह EMS से ईसीजी शोर हटाने अनुकूली फिल्टर को उपयोग करने का संकेत है। तंत्रिका विज्ञान पत्र के र्जनल, वोल्यूम 462 14 पृष्ठों–19 2009.
5. सचिन सिंह और के.एल.यादव, ''ईसीजी सिग्लन प्रोसेसिंग के लिए अलग अनुकूली फिल्टर के प्रदर्शन का मूल्यांकन अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका पर कंप्यूटर विज्ञान और इंजीनियरिंग, वोल्यूम 02, नं0 4, 90–93 पृष्ठों, 2006.

Paper 466.indd Sec1:11 10-11-2013 12:15:48

भारत के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जल ग्रहण विकास कार्यक्रम के कारण सूखते पारम्परिक तालाब

अशोक कुमार सिंह
केन्द्रीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, आगरा, उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 75 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांव में रहती है। उसकी जरुरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जल संसाधनों का सही तरीके से पूरा विकास किया जाना चाहिये। जल संसाधनों के विकास में उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, मौसम तंत्र, मृदा, वनस्पति व अन्य जरुरतों को ध्यान में रखा गया था। यह विकास इस तरह से किया गया था, जिससे ग्रामीण क्षेत्र में रहने वालों की आवश्यक जरुरत न केवल पूर्ण हों बल्कि पड़ोसी क्षेत्र के रहने वालों के साथ किसी भी तरह का संघर्ष न हो। साथ ही जल संसाधनों का दुरुपयोग भी न हो। इस तरह का जल प्रबंधन 80 के दशक तक अच्छी तरह से चला। पिछले कुछ वर्षों में भारत व राज्य सरकारों द्वारा चलित जलग्रहण परियोजनाओं के कुछ कार्यक्रम से इस जल संरक्षण व प्रबंघन पर बुरा असर पड़ा है। जलागम कार्यक्रम (watershed programme) में जलसंरक्षण पर अत्यधिक जोर दिया गया है। जिसमें जलग्रहण क्षेत्रों के नालों में जल संरक्षण के लिये छोटे–2 बाँध (एनीकट व चैक डैम) बनाये गये। इन छोटे–2 बांधों को बनाने में दो बातों को ध्यान में नहीं रखा गया–एक तो जलग्रहण क्षेत्र में जल संरक्षण के लिये जल की उपलब्धता व बनाये गये बांधों की जगह का उद्देश्य के अनुसार चुनाव। इन्ही दो कारणों से पारम्परिक तालाबों पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है और गांव की जीविका कहे जाने वाले ये तालाब अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य तालाबों को पुनर्जीवित इस प्रकार से करना है कि तालाब व भूजल उपयोग करने वाले किसानों की जीविका की हानि न हो एवं पर्यावरण में सुधार भी हो सके।

अध्ययन क्षेत्र

कर्नाटक के अर्द्धशुष्क क्षेत्र (semi arid zone) में कुछ समय पहले की गई एक खोज, यह दर्शाती है कि अगर समय रहते उचित उपाय नहीं किये गये तो ये तालाब एक इतिहास का हिस्सा बनकर रह जायेंगे। जलग्रहण विकास के कार्यक्रम के प्रभाव को जानने के लिये कर्नाटक के अलग अलग हिस्सों में तीन तालाबों को चुना गया, जो कि गुडलूर तालाब जिला चित्रदुर्ग, अनुबूर तालाब–जिला बैलारी में स्थित हैं। कर्नाटक के अर्द्धशुष्क क्षेत्र में वेल्लारी जिले के अनुबूरतालाब–जिला बैलारी को विशेष रुप से प्रस्तुत करता हूँ। जो कि 2150 हैक्टेअर क्षेत्रफल में 76^0 22′ से 76^0 33′उत्तरी देशान्तर एवं 14^0 33′ से 14^0 42′ पूर्वी अक्षाश में विस्तरित है। (चित्र 1) इसमें पाँच गाँव अनबूर, बी जी हल्ली, जोगी हल्ली, डी बी हल्ली उपरहल्ला विकास खण्ड उपरहल्ला

Paper 514.indd 1 10-11-2013 12:13:53

में स्थित हैं। जिसमें जलग्रहण की मृदा लाल–दोमट जो कि ग्रेनाइट व गनीसिस की परतों युक्त है। समुद्र तल से ऊंचाई 600–711 मीटर तक है। जलग्रहण क्षेत्र का सामान्य ढ़लान 1.5 से 3.5 प्रतिशत तक है। मुख्य क्षेत्रीय फसलें जैसे– ज्वार, धान, मक्का, रागी, मूंगफली, सूरजमुखी, कपास, चना तथा सब्जियां हैं। इन क्षेत्रों में जल संरक्षण के लिये जल की उपलब्धता 11से 18 प्रतिशत तक मापी गई है।

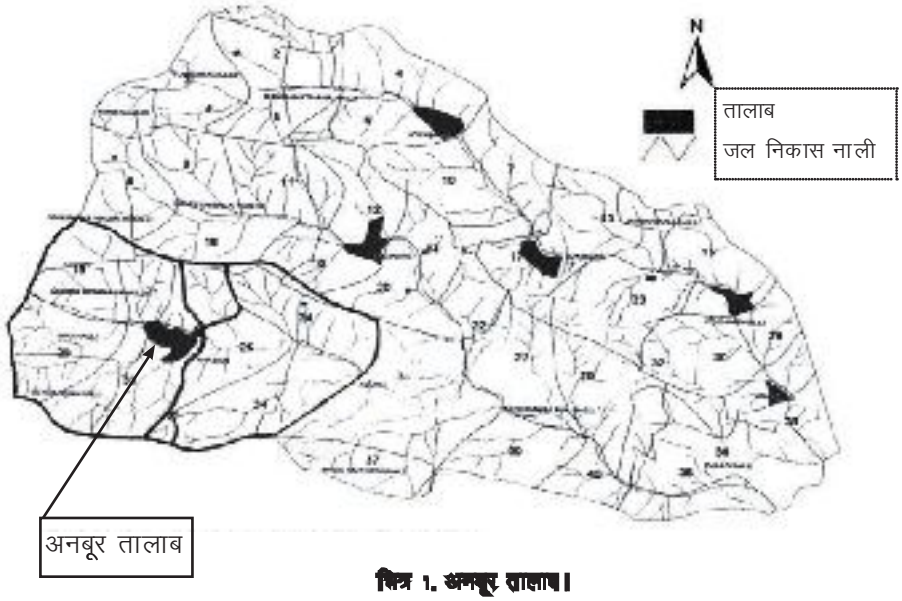

चित्र 1. अनबूर तालाब।

अपवाह जल की गणना :

11 वर्ष (2000 –2010) की वर्षा जल अपवाह (Runoff) की गणना करने के लिये बैल्लारी से ली गई क्षेत्र की सामान्य वर्षा 531 मिलीमीटर (401 से 577 मिलीमीटर) से पाई गई एक दिन की 12.5 मिलीमीटर से अधिक वर्षा को कटावी वर्षा मानकर अपवाह जल के लिये कर्व नम्बर विधि (curve number method) से गणना की गयी जिसमें कटावी वर्षा 271 मिलीमीटर (सामान्य वर्षा की 51 प्रतिशत) और अपवाह जल करीब 69 मिलीमीटर (सामान्य वर्षा का 11 प्रतिशत) पायी गयी (सारणी–1)

सारणी 1. अनबूर तालाब का वार्षिक अपवाह।

वर्ष	कुल वर्षा (मिलीमीटर)	कटावी वर्षा (मिलीमीटर)	अपवाह (मिलीमीटर)	वर्षा के दिन	अपवाह के दिन
2000	547.9	189.1	48.0	43	5
2001	530.1	236.0	76.9	36	6
2002	463.1	200.2	33.3	39	6
2003	506.9	262.0	96.8	36	6
2004	576.8	378.0	108.8	37	10
2005	499.3	257.3	78.7	26	10
2006	568.9	371.8	60.7	33	8

Paper 514.indd 2 10-11-2013 12:13:53

2007	401.3	104.52	20.1	42	3
2008	506.5	348.3	60.6	42	7
2009	654.5	303.0	66.4	47	9
2010	582.2	230.6	41.9	49	7
सामान्य	530.68	270.98	62.9	39	7
		(51 %)	(11 %)		(18 %)

कर्नाटक राज्य के कुछ तालाबों के अपवाह जल में आई कमी की जानकारी की सारांश में समीक्षा

तालाबों का नाम	अपवाह जल में आई कमी के कारण
गुडलूर (जिला चित्रदुर्ग)	नालों में से जमा रेत (silt) का निकालना व खनन के कारण जलग्रहण क्षेत्र में जलभराव की क्षमता का बढ़ जाना।
अनबूर (जिला बैल्लारी)	जलाशय निर्माण के समय तालाब में दो सहायक नालियों द्वारा अपवाहित जल की आमद होती थी परन्तु एक नाली पर जल संरक्षण संरचनाओं के बनने व दूसरी नाली के जलग्रहण क्षेत्र का संरक्षण बहुत अच्छा न होने के कारण अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पा रहीं हैं।
इनचिगरी (जिला बीजापुर)	इनचिगरी (बीजापुर) जलाशय के अधिग्रहण क्षेत्र में नालियों पर किसानों द्वारा बड़े–2 बन्धे बनाने से अपवाह जल की आमद अवरुद्ध हुई है, व इसके अलावा गन्ना व धान जैसी फसलों के लिये अत्यधिक भूजल दोहन होना, क्षेत्र में पेयजल समस्या का मुख्य कारण है।

परिणाम व चर्चा

अनुबूर तालाब का पुराना स्वरुप

अनुबूर तालाब के जल ग्रहण (2150 हैक्टर) में लगभग 531 मिलीमीटर वर्षा होती है। इस तालाब की क्षमता 144 हैक्टर मीटर है। पहले इस तालाब से करीब 65 हैक्टर क्षेत्र सिंचित होता था अनुबूर तालाब का जलग्रहण क्षेत्र तालाब को पूर्ण क्षमता तक न भरने के कारण दो अतिरिक्त नालियां जिनका जलग्रहण क्षेत्र कुल 325 हैक्टर (228 98 हैक्टर) था, इनके बहाव की दिशा में परिवर्तन कर अपवाह जल को तालाब तक लाया गया जिससे कि तालाब में जल स्तर अपनी क्षमता तक आ सके । वर्ष 2004 में अधिकतम अपवाह जल (270 हैक्टर मीटर) जलग्रहण क्षेत्र से प्राप्त हुआ था। वर्ष 2007 जो कि सूखा वर्ष था उसमें अपवाह जल की मात्रा केवल 50 हैक्टर मीटर मापी गई। उपरोक्त आंकड़ों से दर्शित है कि यह तालाब पहले वर्षा के समय एक वार अवश्य भरते थे उसके बाद कुछ मात्रा में अपवाही जल निष्कासित (spill over) होकर नीचे के तालाबों को चला जाता था। (सारणी–2)

वर्षा के गत वर्षों के आंकड़ों से यह पाया गया कि 73 प्रतिशत अपवाह जल माह जुलाई, अगस्त व सितम्बर माह में व 27 प्रतिशत वर्ष के अन्य माहीनो में पाया गया। यह अपवाह जल वर्षा के केवल 7–10 दिनों के अन्दर होता है। जब ये तालाब अपनी क्षमता तक भरते थे तब न केवल 65 हैक्टेयर में विभिन्न फसलों की सिचाई होती थी वरन समाज के विभिन्न वर्गों की जीविका इन्ही तालाबों पर निर्भर थी जिसके कारण ग्रामीण वर्ग गांव छोड़ कर जीविका के लिये शहर की ओर कम पलायन करते थे।

Paper 514.indd 3 10-11-2013 12:13:54

सारणी 1. अनबूर जल ग्रहण क्षेत्र में महीने वार अपवाह जल, मी. मी. (2000–2010).

वर्ष	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	कुल	तालाब में जल की आवक (हैक्टरमी)	तालाब में जल की आवक (हैक्टर मी)	
											दोनो नालियों के बाद	एक नाली के बाद
2000	-	-	5.2	-	1.6	-	41.2	-	48.0	103.20	118.85	107.40
2001	3.2	-	-	-	64.0	9.7	-	-	76.9	165.35	190.40	172.87
2002	-	-	21.3	9.9	2.1	-	-	-	33.3	71.60	82.45	74.86
2003	-	13.3	77.2	-	-	-	5.4	0.9	96.8	208.12	239.67	217.61
2004	11.8	4.2	90.0	-	1.8	-	-	0.9	108.8	233.92	269.40	244.36
2005	-	-	34.4	-	20.1	10.3	-	13.9	78.7	169.21	194.85	145.66
2006	-	10.1	-	-	10.0	12.5	28.1	-	60.7	130.51	150.28	136.45
2007	-	-	2.2	-	-	3.8	14.1	-	20.1	43.22	49.77	45.19
2008	-	6.2	-	-	2.0	3.2	49.2	-	60.6	130.29	150.04	136.23
2009	-	-	-	0.9	4.2	57.6	3.7	-	66.4	142.76	164.30	149.26
2010	2.4	-	0.9	5.2	.02	16.1	-	15.3	41.9	90.09	103.63	96.19
सामान्य	0.16	3.1	21.0	1.5	9.8	10.3	12.9	2.7	62.9	135.3	155.74	138.55

अनबूर तालाब का जल ग्रहण क्षेत्र 2150 है।

अनबूर तालाब के लिये दो अतिरिक्त नालियों का जलग्रहण क्षेत्र 228.98.326 है।

Paper 514.indd 4 10-11-2013 12:13:54

अनुबूर तालाब का वर्तमान स्वरुप

वर्तमान अध्ययन व तालाब के अपवाह जल की मात्रा को देखने के बाद पाया गया कि यह तालाब पिछले 11 वर्षों में अपनी पूर्ण क्षमता तक नहीं भर सका। शोध द्वारा यह पता चला कि तालाब के जल आवक में आयी कमी के कई कारण हैं उनमें से मुख्य कारण निम्न हैं–

1. जलग्रहण क्षेत्र में अत्यधिक जलसंरक्षण के लिये संरचनाओं (structures) का निर्माण होना।
2. भूजल का अत्यधिक दोहन।
3. बंजर जमीन को कृषि योग्य बनाकर खेती करना।
4. सरकारी नीतियाँ।

जलग्रहण क्षेत्र में अत्यधिक जलसंरक्षण के लिये संरचनाओं का निर्माण होना

अनबूर तालाब के जल के जलग्रहण क्षेत्र में जलागम परियोजना वर्ष 1995 में प्रारम्भ हुई जिसमें विभिन्न प्रकार की जल एवं मृदा संरक्षण की 26 संरचनाओं का निर्माण हुआ। (सारणी–3) जिसके कारण अधिकतर अपवाह जल इन संरचनाओं के पीछे रुक जाता है। जिससे तालाब तक बहुत कम अपवाह जल ही जा पाता है। इस अध्ययन से एक विशेष जानकारी यह भी मिली कि इन जल संरक्षण संरचनाओं के पीछे एकत्रित जल का वाष्पीकरण स्तर तालाब के जल के वाष्पीकरण स्तर से कहीं अधिक होता है उससे कहीं अधिक मात्रा में जल का वाष्पीकरण के द्वारा क्षरण भी होता है। (सारणी–4)

सारणी 3. अनबूर तालाब जलग्रहण क्षेत्र में जल संरक्षण संरचनाओं का विस्तृत विवरण।

गांव/संरचनाओं के प्रकार	संरचनाओं की संख्या	जलफैलाव क्षेत्र (हैक्टर)	क्षमता (हैक्टर मी)
बी जी हल्ली			
चैक्डैम	4	1.60	0.64
नाला बन्द	1	4.00	5.60
जोगीहल्ली			
चैक डैम	5	1.50	0.60
नाला बन्द	1	2.25	2.80
डी. बी. हल्ली			
चैक्डैम	2	0.24	0.144
नाला बन्द	1	2.00	2.40
अनबूर			
चैक्डैम	10	2.00	0.60
नाला बन्द	2	4.00	5.60
कुल मात्रा	26	17.59	15.54

Paper 514.indd 5 10-11-2013 12:13:54

सारणी 4. तालाब में जल आवक पर संरचनाओं का प्रभाव।

वर्ष	वर्षा (मि. मि.)	अपवाह जल (हैक्टर मी)	जलागम कार्यक्रम से पहले			जलागम कार्यक्रम के बाद		
			आवक जल (हैक्टर मी)	स्तर जल (हैक्टर मी)	नि कासन (हैक्टर मी)	आवक जल (हैक्टर मी)	स्तर जल (हैक्टर मी)	नि कासन (हैक्टर मी)
2000	547.9	107.4	81.27	69.08	0	75.06	63.8	0
2001	530.1	172.87	142.98	146.94	2.94	130.56	110.98	0
2002	463.1	74.86	46.79	39.77	0	35.02	29.77	0
2003	506.9	217.61	181.42	154.21	10.21	168.33	153.08	0
2004	576.8	244.36	206.15	175.23	31.23	193.74	164.68	20.68
2005	499.3	145.46	121.51	103.28	0	106.67	90.67	0
2006	568.9	136.45	90.05	76.54	0	62.21	52.88	0
2007	401.3	45.19	20.35	17.29	0	14.14	12.02	0
2008	506.5	136.23	101.85	86.56	0	93.04	79.09	0
2009	654.5	140.26	100.13	100.41	0	111.92	95.13	0
2010	582.2	94.19	58.22	40.98	0	35.46	30.14	0
सामान्य	530.7	137.7	104.6	91.8	4.0	93.3	80.2	1.9

भूजल का अत्यधिक दोहन

किसी भी क्षेत्र में अगर सिंचित फसलों की पैदावार और बारानी क्षेत्र की फसलों की तुलना की जाय तो यह पाया गया है कि सिंचित क्षेत्र की फसलों द्वारा 3–5 गुना अधिक लाभ होता है। इसी कारण किसानों ने जलगहण क्षेत्र में सिंचाई के लिये गहरे कूएँ खोदना शुरु कर दिया। 1990 से पहले किसान केवल कम गहरे 76 कूएँ, जिनकी गहराई 10 मीटर तक थी, पर ही आश्रित थे पर आज जलग्रहण क्षेत्र के अन्दर इस स्तर के कूएँ सूख गये हैं। अब इनके स्थान पर नई तकनीकी वाले बोरवैल व टयूबवैल बनने लगे हैं। जिनकी गहराई 300 मी0 से भी अधिक है।इस प्रकार के बोरवैल के कारण क्षेत्र के अन्दर भूजल का अत्यधिक दोहन हुआ व भू–जल स्तर बहुत तेजी से नीचे गिरता गया। जिसके कारण असंतृप्त क्षेत्र (unsaturated zone) में वृद्धि हुई इसके कारण तालाबों व नालियों के अन्दर बहुत कम समय के लिये जल नजर आता है। (सारणी–5)

बंजर जमीन को कृषि योग्य बनाकर कृषि करना

जलागम परियोजना के अन्तर्गत इस बात पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है कि किस तरह से बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया जाय। इसके लिये बंजर भूमि पर बड़े –2 मिट्टी के बन्धे बनाये गये व वर्षा जल को रोका गया। उन खेतों में शंकर प्रजाति की फसलों को उगाया जाता है यह सब प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति को ध्यान में रखकर नही किया जाता है, जिसके कारण जल उपयोग शंकर जाति की फसलों को उगाने में अत्यधिक होता है। शोध से यह भी ज्ञात हुआ कि जहां पहले 214 हैक्टर की सिचाई होती थी वह बढ़कर 336 हैक्टर (57 प्रतिशत अधिक) तक पहुँच गई। वहीं पर भूजल उपयोग 207 हैक्टर मीटर से बढकर 340 हैक्टर मीटर (65 प्रतिशत अधिक) तक पहुंच गया। (सारणी–6) सारणी 6. जलागम कार्यक्रम से पहले व बाद में सिंचाई क्षेत्र व भूजल उपयोग की तुलना।

Paper 514.indd 6 10-11-2013 12:13:54

सारणी 6. समय के अनुसार कुओं की संख्या।

वर्ष	बी. जी0 हल्ली		जोगीहल्ली		सी. बी. हल्ली		अनकूर		कुल
	कुएं	ट्यूबवेल, बोरवेल	कुएं	ट्यूबवेल, बोरवेल	कुएं	ट्यूबवेल, बोरवेल	कुएं	ट्यूबवेल, बोरवेल	
जलग्रहणा क्षेत्र 1965 तक	6(6)	-	20 (20)	-	20 (20)	-	22(22)	-	68 (68)
1965-70	-	-	-	1	-	-	-	-	1
1970-75	-	-	-	-	-	-	-	-	-
1975-80	-	-	-	-	-	-	-	-	-
1980-85	-	-	-	4	-	-	-	-	4

सरकारी नीतियाँ

जलाशयों की वर्तमान स्थिति के लिये सरकारी नीतियां भी दोषपूर्ण हैं इनमें संशोधन अति अनिवार्य लगते हैं वे इस प्रकार से है

1. जलागम विकास परियोजना के तहत निर्मित संरचनाओं के कारण तालाबों के अन्तर्गत अपवाह जल, भू–गर्भ जल पुनर्भरण (ground water recharge) में कमी आयी। 7.5 अश्वशक्ति (HP) तक के पम्पों पर निशुल्क बिजली देना व पम्प के लिये 75 प्रतिशत तक अनुदान या बहुत ही सस्ती दरों पर कर्ज मिलना।
2. भू–गर्भ जल निकालने के लिये कुएं खोदने या बोरिंग करने के सम्बन्ध में सरकारी ठोस नीति का न होना। इसके साथ जल का उपयोग करने वाले लोगों का सक्षम संगठन न होना।
3. भारतवर्ष में 70–80 के दशक में हरित क्रान्ति पर बहुत जोर दिया गया जब कि हरित क्रान्ति के साथ–साथ शुष्क खेती (dry land agrictulre) के विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये था। जिससे कि जल संसाधन पर कम दबाव पड़ता।
4. दक्षिण भारत के तालाबों को पहले सामाजिक देखरेख में मरम्मत व रख–रखाव होता था परन्तु बाद में सरकारी नियंत्रण में हो जाने से इनके रख–रखाव में बहुत कमी आयी।

तालाबों के सुधार हेतु विशेष सुझाव

यह पाया गया है कि आज भी नये जलसंसाधनों का विकास करने में जितना खर्चा आता है, उससे बहुत कम खर्च में इन तालाबों का जीर्णोद्धार किया जा सकता है। यदि इन पुराने तालाबों का जीर्णोद्धार किया जाता है तो समाज के विभिन्न वर्गों के लिये जीवनयापन करने का सहारा मिल जायेगा साथ ही गांवों से लोगों का पलायन भी रोका जा सकेगा। इसके लिये निम्न तथ्यों पर ध्यान दिया जाना बहुत जरुरी है–

1. जो समाज आज इन तालाबों से अलग हो चुका है उसको दुबारा से इनके सुधार व रखरखाव में सहभागी बनाया जाए और ग्राम सभा जैसी चुनी हुई संस्थाओं से भी जोड़ा जाए।

2. जलागम परियोजना के तहत जलसंरक्षण के लिये जो संरचनाएं बनायी जाती हैं उनके

Paper 514.indd 7 10-11-2013 12:13:54

सारणी 6. जलागम कार्यक्रम से पहले व बाद में सिंचाई क्षेत्र व भूजल उपयोग की तुलना।

गांव का नाम,	सिंचित क्षेत्र (हैक्टर)				सिंचाई की गहराई (मीटर)			भूजल दोहन, (हैक्टर मीटर)			
	वर्षा	सर्दी	गर्मी	कुल	वर्षा	सर्दी	गर्मी	वर्षा	सर्दी	गर्मी	कुल
वर्तमान स्थिति											
जलग्रहण	81.46	60.92	35.60	177.98	0.6	1.2	1.8	48.71	73.11	60.32	182.14
कमान्ड	83.06	46.36	28.80	158.22	0.6	1.2	1.8	49.83	55.63	51.84	157.30
कुल	164.52	107.28	64.40	336.20	0.6	1.2	1.8	98.54	128.34	112.36	339.40
पुरानी स्थिति											
तालाब द्वारा सिंचाई	-	65.00	-	65.00	0.6	1.2	1.8	-	-	78.00	78.00
कुएं द्वारा सिंचाई	85.4	61.40	2.20	149.00				51.24	73.68	3.96	128.88
कुल	85.4	126.40	2.20	214.00	0.6	1.2	1.8	51.24	151.68	3.96	206.88

Paper 514.indd 8 10-11-2013 12:13:54

लिये अपवाहजल की मात्रा का विशेष रुप से ध्यान रखा जाय यदि अपवाह जल की मात्रा तालाब की क्षमता से अधिक होने पर ही जलागम क्षेत्र में जल संरचनाऐं बनायी जाएं अन्यथा इन्हें न बनाया जाए।

3. जलसंरक्षण की संरचनाओं की अभिकल्पनाएं (design) इस प्रकार से हों कि इन संरचनाओं में जल अपनी क्षमता का एक गुना ही रुके। शेष जल निचले स्तर के तालाबों व नालियों में पहुँच सके। यह तभी सम्भव है जब जल संरक्षण के लिये संरचनाओं में जलद्वारों का निर्माण किया जाय जिससे कि जब वर्षा समाप्त होने को हो और नालियों में स्वच्छजल बह रहा हो तो उस समय जलद्वारों को बन्द कर दिया जाय। उससे जल संरक्षण संरचनाओं में मिट्‌टी का जमाव रोका जा सकेगा ओर इनकी क्षमता लम्बे समय तक बनी रहेगी।
4. जैसा कि सर्वविदित है कि तालाब प्राचीन काल से ही अर्द्धशुष्क क्षेत्र में बहुत उपयोगी हैं यदि जलग्रहण क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां अनुकूल हों तो वहां पर भूसतह के नीचे जलसंरक्षण संरचनाओं (sub surface water harvesting structures) का निर्माण किया जाय। जिससे जलसंरक्षण संरचनाओं के एकत्रित जल के वाष्पीकरण को कम किया जा सके।
5. नालियाँ जो कि तालाब में जल लाती हैं उनकी लगातार सफाई होनी चाहिए जिससे कि अपवाह जल की गति में अवरोध न हो सके। साथ में एक सुनिश्चित समय अन्तराल पर तालाबों की मिट्‌टी को बाहर निकलवाते (desiltation) रहना आवश्यक है।
6. जलग्रहण क्षेत्र के अन्तर्गत बेकार पड़े कुएं व बोरिंगों को जल पुनर्भरण के उपयोग में लाया जाय।
7. गहरे जल स्रोतों से जल निकालने की प्राथमिकता केवल पीने के पानी के लिए ही होनी चाहिए यह सुनिश्चित करना बहुत जरुरी है।
8. तालाबों में उचित मात्रा में जल होने पर लिफ्ट सिंचाई योजना के तहत किसानों को जलग्रहण क्षेत्र में जल दिया जाय वहीं कमाण्ड क्षेत्र में भूगर्भ जल निकालने की अनुमति होनी चाहिए। जिससे कि लाभार्थी किसानों को समानरुप से लाभ मिल सके।
9. तालाबों के पानी से सिंचाई होने की वर्षा में जलग्रहण क्षेत्र में इस तरह की फसलों का चयन हो जिनमें जल माँग कम व लाभ भी औसत स्तरीय हो, इससे तालाबों में अधिक समय तक जल बना रह सकेगा।
10. पारम्परिक जल संरक्षण की अन्य विधियों, जैसे छत के पानी को इकट्‌ठा कर उपयोग में लाये जाने की विधि को प्रोत्साहित करने की ओर भी ध्यान दिया जाए।
11. कुछ तालाबों में दूसरे जलग्रहण क्षेत्र से जल लाने के लिये नालियों का निर्माण किया जाय या दुबारा से चालू किया जाए।

तालाबों को सुधारने के लिये कानूनी व प्रशासनिक सुझाव

1. योजना का प्रारुप बड़े स्तर पर तैयार हो परन्तु कार्यक्रम ग्राम स्तर से ही शुरु हो।
2. प्राकृतिक संसाधनों के रखरखाव की योजना लम्बे समय के लिये होनी चाहिये।
3. तालाबों के जल पर पीने के पानी का अधिकार पहले होना चाहिये। उसके बाद भूजल भरण व सिंचाई के लिये प्राथमिकताए होनी चाहिए।
4. प्रोत्साहन व प्रताड़ना का कानूनी अधिकार जल उपयोग समिति के पास रहना चाहिए, जिससे भ्रष्टाचार कम हो। इन सबके साथ–साथ भूजल दोहन व प्रबन्धन के लिये भी

प्रभावी कानून बनने चाहिए और ईमानदारी के साथ लागू भी होने चाहिए।

5. तालाब सुधार योजनाओं को राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी योजना जैसी परियोजनाओं के साथ जोड़ा जाना चाहिए ।

निर्णायक परिणाम

तालाबों की वर्तमान स्थिति के लिये सारांश में जलग्रहण विकास से ज्यादा छोटे बाँधों का बनना, भूगर्भ जल का अत्यधिक दोहन व खेती के क्षेत्र में बढोत्तरी, तालाबों के उचित रखरखाव में कमी, व सरकारी कानून को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। आज इन पारम्परिक बहुउद्देशीय तालाबों का दुबारा से जीवित करना बहुत जरुरी हो गया है। जिससे इनके द्वारा पर्यावरण व समाज के सब वर्गों को दुबारा से लाभ मिल सके, उसके लिये ऊपर बताये गये कारणों को समझकर उनका समय रहते समाधान निकालना होगा तभी तालाबों की बहुउद्देशय पहचान बन सकेगी और गाँव के प्राकृतिक वातावरण को, जीविका के साधन बढ़ाने के लिये और अच्छा बनाया जा सकता है।

Paper 514.indd Secl:10 10-11-2013 12:13:54

वेब उपयोग खनन के माध्यम से आइटम सेट खोज निकालने का लगातार पैटर्न खनन–एक तकनीकी दृष्टिकोण

मंजुला एस[1], विनोद एन सांब्रानि,[2] तथा अरुण कुमार आनंद[3]

[1] प्राध्यापिका, गणकयंत्र विभाग, दावणगेरे विश्वविद्यालय, दावणगेरे

[2] प्राध्यापिका, मैनेजमेंट विभाग, दावणगेरे विश्वविद्यालय, दावणगेरे

[3] बिस्नेस इनटेलिजेंसी ऐनलिस्ट, कॉमन वेल्थ बैंक ऑफ ऑस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रेलिया

सारांश

वर्ल्ड वाइड वेब आंकडों की विस्तृत धारा का एक संग्रह है जिसे वेब उपयोग आंकडे के नाम से उल्लेख किया जाता है। आंकडों के प्रचुर मात्रा के कारण ही डाटा रूपी महासागर से संबन्धित जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न मार्ग अपनाने की आवश्यकता पड़ गई है। इसलिए कई शोधकर्ताओं ने अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण और एकीकृत क्षेत्र का प्रस्ताव रखा जिसे वेब उपयोग खनन का नाम दिया गया है। वेब लॉग डेटा सप्रासंगिक डेटा निकालने की प्रक्रिया को वेब उपयोग खनन कहा जाता है। निकाले गए डाटा को सुसंगत और व्यापक दृष्टिकोण से एकत्रित करके उसे क्रमबद्ध रूप से वेब उपयोग खनन में आगे इस्तेमाल करने केलिए योग्य बनाया जाता है। पूर्वकार्यवाही (preprocessing); डेटा खनन की एक तकनीक है जो वेब लॉग डाटा से अप्रासंगिक और असंगत डेटा को हटा देता है। इस पूर्व कार्यवाही डेटा को आगे लगातार होने वाली खनन पद्धति में प्रयोग किया जाता है। लगातार पैटर्न खनन, डाटा खनन के क्षेत्र में बहुत ही रोचक और वर्तमान अनुसंधान क्षेत्र है जो आवेदन की विस्तृत श्रृंखला के साथ है। उपयोगकर्ता की नौगम्यता व्यवहार के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करना ही इस कार्यनीति का मुख्य उद्देश्य है।

प्रस्तावना

आज पूरे संसार में वेब या इंटरनेट की उपयोगता बहुत संख्या के डेटा के साथ अत्यधिक मात्रा में बढ रही है। वेब में मिलने वाली जानकारियाँ अधिकांश सभी क्षेत्रों से संबंधित होती हैं। इसकी मुख्यांश यह है की उपयोगकर्ता को सिर्फ अपने काम से संबंधित जानकारी लेने पर अधिक ध्यान देने से ज्यादा लाभ मिलेगा। वेब से जानकारी या विवरण निकालने की प्रक्रिया को 'वेब खनन' कहते है। इस वेब खनन कार्य को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया गया है–वेब तत्व खनन; वेब विन्यास खनन, और वेब उपयोग खनन। वेब उपयोग खनन बाकी दो खनन, यानि वेब तत्व खनन व वेब विन्यास खनन की तुलना में संपूर्ण स्वतंत्र है। लेकिन यह वेब अकेला नही है। इस वेब उपयोग खनन तकनीक, उपयोग डेटा के पूर्वप्रक्रमन में, उपयोगकर्ता के पैटर्न की आविष्कार करने में और उपयोगकर्ता के बारे में हमारी मदद करता है। चित्र–1 वेब उपयोग खनन के विविध क्रम के बारे में समझाता है। इस पत्र में हम मुख्यतः वेब उपयोग खनन के अलग–अलग भागों में से एक 'लगातार पैटर्न खनन' पर आपका ध्यान उत्कृष्ट करता है। कई सारे डेटा खनन तकनीक, जैसे सांख्यिकीय तकनीक विश्लेषण, संघ के नियम, गुच्छन, वर्गीकरण और अनुक्रमिक पैटन खनन को खनन वेब उपयोग लॉग में इस्तेमाल किया गया है। सांख्यिकीय तकनीक सबसे ज्यादा प्रचलित ठेठ चिमटा है जिसमें सबसे ज्यादा पहुंचे हुए पृष्ठों, औसत पृष्ठों, देखने का समय और नेविगेशन पथ की लंबाई के औसत, सब शामिल हैं। संघ नियम के खनन का उपयोग अधिकतर एक ही समय पर पहुँचे हुए पत्रों से संबंधित जानकारी पाने के लिए

किया जाता हैं। गुच्छन (clustering) को सामान्यतः समान ब्राउज़िंग वरीयताओं या अर्थ की दृष्टि से संबंधित सामग्री को वेब पृष्ठों के साथ समूह उपयोगकर्ताओं के लिए प्रयोग किया जाता है।

लगातार पैटर्न खनन

लगातार पैटर्न खनन, आवेदन की विस्तृत श्रृंखला के साथ डेटा खनन के क्षेत्र में भारी शोधन किया हुआ क्षेत्र है। उनमें से एक है वेब लॉग डेटा के आंकडों में लगातार पैटर्न की खोज के तरीकों का इस्तेमाल किया जाता हैं। अन्य डेटा क्षेत्र की तुलना में लगातार पैटर्न खनन, हाल ही में हुआ एक अपेक्षाकृत विकास है। वर्ष 1993 में राकेश अग्रवाल ने एक प्रतिष्ठित Acmisigmod अंतराष्ट्रीय संमेलन की कार्यवाही में प्रकाशित समाचार पत्र में इस क्षेत्र का परिचय कराया हैं।

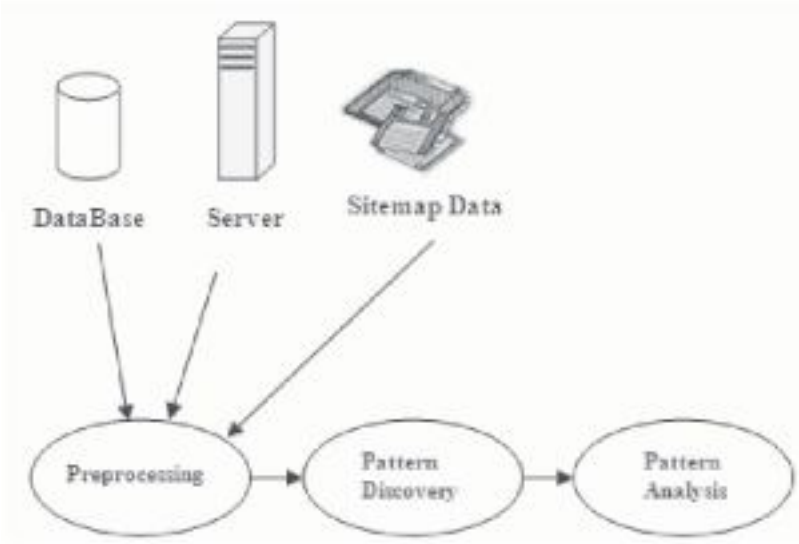

चित्र 1. जेनरल वेब उपयोग खनन।

पूर्वप्रक्रमन (Preprocessing)

डेटा पूर्वप्रक्रमन आपरेशनों का एक सेट है जो उपलब्ध जानकारी की प्रक्रिया और एक तदर्थ स्वरूपित खनन तकनीक (application of mining techniques) के माध्यम से ज्ञान की खोज के लिए इस्तेमाल किया जाने वाले डेटा सेट के निर्माण का नेतृत्व करता है। पूर्वप्रक्रमन का मुख्य उद्देश्य है–नतीजा उत्पादन करना, जिसे साइट की सामग्री को सुधार करने और अनुकूलित करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। यह खनन तकनीक डेटा की गुणवत्ता को बढाने के द्वारा डेटा की मात्रा को कम कर देता है, जिससे लॉग डेटा के मूल आकार लगभग 70 प्रतिशत कम हो जाएगा। इस पूर्वप्रक्रमन के लिए हम वेब लॉग डेटा का इस्तेमाल किया जाता हैं। इस लॉग फैल दो प्रकार के होते हैः वे 1. एक्सटेंडेड कॉमन लॉग फौल (ECLF) एफ और कॉमन लॉग फौल (CLF) पूर्वप्रक्रमन में शामिल हुए प्रमुख कदम हैं–विलय डेटा(data merging), डेटा सफाई (data cleaning), उपयोगकर्ता की पहचान (user identification), सत्र की पहचान (session identification) और डेटा स्वरूपण व संक्षिप्तीकरण (data format and summarization)। डेटा विलस एक तकनीक हैं जो सम्मान के साथ उपयोगकर्ताओं और सत्र की अतिरिक्त जानकारी पुनः प्राप्त करते हुए वेब लॉग डेटा को कई अलग स्रोतों से जोड़ती है। डेटा सफाई एच टी टी पी (H T T P) सर्वर लॉग फ़ाइल से अप्रासंगिक जानकारियाँ

जो खनन प्रयोजनों के लिए बेकार हैं, उन्हें हटाने का काम करता है। उपयोगकर्ता पहचान–जो वेब साइट का उपयोग करता है और जिन–जिन पृष्ठों तक पहुँचा है ऐसे आगंतुकों को पहचानने के लिए इस्तेमाल होता है। एक से अधिक बार वेब साइट की यात्रा किए हुए हर एक उपयोग को अलग करके प्रत्येक सत्र में बदलना ही सत्र की पहचान का लक्ष्य है। इसें मध्यांतर की तकनीक उपयोग करके उपयोगकर्ता के क्लिक–भाप (clickstream) को सत्र में निकालने के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। एकत्रित चर की गणन के साथ अलग अमूर्त स्तर पर ध्यान देने का कार्य डेटा संक्षिप्तीकरण का है। चित्र 2. पूर्वप्रक्रमन के सामान्य कदम का प्रतिनिधित्व करता है। चित्र 3. वेब लॉग सर्वर डेटा पूर्वप्रक्रमन के सामान्य कदम का प्रतिनिधित्व करता है। तालिका 1 आउटपुट या परिणामी डेटा के बारे में बताता है जो डेटा पूर्वप्रक्रमन तकनीक को लागू करने के बाद प्राप्त होता है। इस डेटा को अक्सर या लगातार पैटर्न खनन के लिए इनपुट के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अक्सर पैटर्न खनन, संघ के नियमों में खनन का सबसे महत्वपूर्ण कदम है। अक्सर पैटर्न खनन, डेटा खनन की बुनियादी समस्याओं में एक है। अक्सर पैटर्न दो प्रकार के होते हैं। (क) लगातार आइटम सेटसः यह अव्यवस्थित प्रारूप में स्थित आइटम सेट का संग्रह है जिसे लगातार सेटस भी माना जाता है। (ख) लगातार अनुक्रमः यह आइटम सेट की संग्रह है जो अनुक्रम प्रारुप में व्यवस्थित किया गया है।

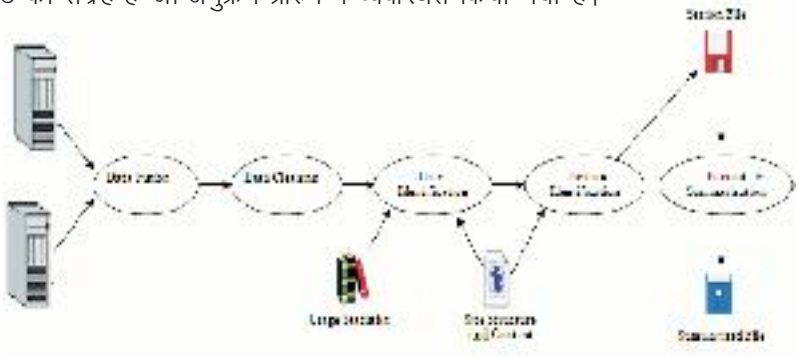

चित्र 2. पूर्वप्रक्रमन के सामान्य कदम।

चित्र 3. पूर्वप्रक्रमन के पहले का इ.सि.एल.एफ. वेब लौंग फैल इनपुट डेटा।

तालिका 1. पूर्वप्रक्रमन के बाद का अउटपुट या परिणामी डेटा।

Session Id	IP Address	Date & Time	URL Accessed
1	120.33.med.umich.edu	1995-08-03 22:42:31	/history/apollo/apollo-13/apollo-13.html
1	120.33.med.umich.edu	1995-08-03 22:42:03	/facilities/lc39a.html
1	120.33.med.umich.edu	1995-08-03 22:43:12	/facilities/mlp.html
1	120.33.med.umich.edu	1995-08-03 22:45:01	/facilities/vab.html
2	128.101.144.178	1995-08-03 23:15:10	/shuttle/missions/sts-69/mission-sts-69.html
3	128.102.143.201	1995-08-04 03:15:22	/shuttle/missions/sts-64/mission-sts-64.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:31:21	/shuttle/missions/sts-69/mission-sts-69.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:35:25	/facilities/vab.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:34:28	/shuttle/missions/sts-71/mission-sts-71.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:15:11	/shuttle/missions/missions.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:15:18	/shuttle/missions/sts-70/mission-sts-70.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:16:50	/shuttle/missions/sts-72/mission-sts-72.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:17:10	/shuttle/missions/sts-72/sts-72-info.html
4	128.102.143.212	1995-08-04 03:17:24	/ksc.html
5	128.102.202.133	1995-08-03 23:13:02	/shuttle/missions/missions.html
5	128.102.202.133	1995-08-03 23:13:50	/shuttle/missions/missions.html
5	128.102.202.133	1995-08-03 23:15:51	/shuttle/missions/missions.html
5	128.102.202.133	1995-08-03 23:16:02	/shuttle/missions/missions.html
6	128.102.236.36	1995-08-03 23:16:43	/history/apollo/apollo-13/apollo-13.html
7	128.102.86.216	1995-08-04 02:23:24	/shuttle/missions/sts-70/mission-sts-70.html

संघ के नियम (Association Rules)

अक्सर पैटर्न खनन, संघ के नियमों पर आधारित है। इस संघ के नियमों को आत्मीयता विश्लेषण के रुप में भी जाना जाता है। यह मुख्य रुप से दो चीज़ों पर ध्यान केंद्रित करता है। वे हैं–सहायता और विश्वास। वर्ष 2000 में श्रीवास्तव ने कहा था कि वेब उपयोग खनन के संदर्भ में संघ के नियम उन पृष्ठों पर उल्लेख करता है जो विशिष्ट सीमा में अधिक मूल्य के साथ समर्थन करता हो। वेब डिज़ाइनर संघ के नियमों की उपस्थिति या अनुपस्थिति की सहायता से अपने वेब साइटों को कुशलता से पुनर्गठन कर सकते हैं। इस संघ के नियम पीढी को एक ही सर्वर सत्र में ज्यादातर एक साथ इस्तेमाल किया जा सकता है। इन पत्रों को हाइपरलिंक के माध्यम से सीधा किसी और के साथ जोड़ा नहीं जा सकता।

संघ शासन पीढ़ी लगातार आइटम, जो डेटाबेस के संदर्भ से निकाला जा सकता है, ऐसे एक सेट से हासिल की गई है। अक्सर आइटम, अक्सर आइटम के सेट हैं जिसमें हर एक आइटम एक तत्व है जो संभव आइटम की एक परिमित सेट से तैयार है।

ऊपर के समीकरण का उपयोग करके विश्वास मूल्य को प्राप्त किया जा सकेगा। इस में उपयोगकर्ता निर्धारित सीमा का तय होगा और उसे न्यूनतम विश्वास के रुप में माना जाएगा। न्यूनतम विश्वास इस सीमा से कम समय के साथ संघ के नियमों को दिलचस्प पैटर्न नहीं समझा गया है। इससे हम संघ के नियम को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं–दो आइटम सेट को देखते हुए–एक्स, वै (X, Y) ऐसे हैं कि $X \cap Y = \emptyset$ एक संघ शासन $X \rightarrow Y$ रुप है और इसका शाब्दिक अर्थ है कि एक्स (X) की उपस्थिति वै (Y) की उपस्थिति का अच्छा संकेत है। एक दिलचस्प संघ का नियम है क्रमशः जिसका समर्थन और विश्वास, न्यूनतम समर्थन और न्यूनतम विश्वास से कम नहीं है।

संघ के नियमों के खनन को आमतौर पर निम्नलिखित दो चरणों से किया जाता है–चरण लगातार आइटम सेट खनन (FIM- Frequent Itemset Mining) एक्गोरिदम को लगातार आइटम सेट समर्थन के साथ–साथ पुनर्प्राप्त करने के लिए डेट पर लागू किया जाता है।

समर्थन (एक्स)= गिनती (एक्स)/ ।डि।

SUPPORT(X)=count(X)/|D|

यह सूत्र समर्थन के मूल को पता लगाने में मदद देगा। डेटा बेस से अक्सर आइटम सेट को निकालने के लिए हम इस समर्थन मूल्य का उपयोग करते हैं; इसके लिए हमें न्यूनतम मूल्य या मूल्य सीमा तैयर करने की ज़रुरत है।

विश्वास (एक्स⟶वाई) = समर्थन (एक्स U वाई/ समर्थन (एक्स)

CONFIDENCE (X⟶Y) = SUPPORT (XUY)/ SUPPORT (X)

चरण : इस चरण में पहले चरण में उत्पादित जानकारियों को संघ के नियमों को दिलचस्प बनाने के लिए प्रयोग किया जाते हैं। चरण 2 को शून्य डेटा सेट की जरूरत नहीं है और इसलिए यह अपेक्षाकत सरल माना गया है।

संघ शासन को बेहतरीन रूप से समझने के लिए एक बुनियादी समस्या को परिभाषित किया जा सकता है–इस समस्या में सुपर मार्केट से वस्तुओं को खरीदने वाले ग्राहक शामिल है। कुछ उपयोगकर्ता द्वारा निर्दिष्ट सीमा से अधिक अक्सर होनेवाले सब सबसेट के बारे में जानकारी प्राप्त करना ही एक कार्य है।

एक किराने की दुकान के लेनदेन के विवरण के डेटासेट मान लीजिए। यहाँ पर आइटम सेट (टमाटर, आलू, प्याज) की आवृत्ति 50 प्रतिशत है क्योंकि ये 4 अभिलेखों में से सिर्फ 2 में मौजूद हैं। एक आइटम सेट की आवृत्त इसकी संभवनीयता का परिणाम है और उसे समर्थन के रूप में भी जाना जाता है। न्यूनतम समर्थन को उपयोगकर्ता के द्वारा तय किया जाएगा जिसे सीमा के संकेत का रूप माना जाता है। इस उदाहरण में न्यूनतम समर्थन को 40 प्रतिशत तय किया गया है इसलिए इस आइटम सेट को प्याटर्न आइटम सेट माना जाएगा। नियम बताता है कि 66 प्रतिशत तय रिकॉर्ड जिसमें टमाटर और आलू है उसमें प्याज भी है। इस नियम का विश्वास है 66 प्रतिशत क्योंकि तीन रिकॉर्ड में से दो में जो टमाटर और आलू है उसमें प्याज भी है। नियम के समर्थन है जो संघ के समर्थन के दाएं हाथ की और बाएं हाथ की ओर है। इस मामले में यह 50 प्रतिशत है क्योंकि 4 रिकॉर्डों में से 2 में टमाटर, आलू, प्याज हैं।

नियम आरः टमाटर, आल⟶प्याज़

(विश्वास : 66 प्रतिशत, समर्थनः 50 प्रतिशत)

Rule R Tomato,Potato⟶Onion (Confidence:66%, Support: 50%)

कारण चरण 2 से ही समर्थन मिलना ज़रूरी है। कई सारे नियमों को लगातार आइटम सेट से एक–एक लेकर समर्थन और विश्वास की गणना की जाएगी।

1. Ø⟶टमाटर, आलू, प्याज

   (समर्थन = विश्वास = 2/4 = 0.5)

2. टमाटर⟶आलू, प्याज

तालिका 2. बाज़र की टोकरी के डेटा सेट का नमूना।

लेनदेन आइडी	बेचे गए आइटम
1	टमाटर, प्याज, आलू
2	टमाटर आलू, बैंगन कद्दू
3	टमाटर, आलू, प्याज, मिर्च
4	नींबू, इमली, मिर्च

(विश्वास = 2 / 3 = 0.66)

3. आल → टमाटर, प्याज
(विश्वास = 2 / 3 = 0.66)

4. प्याज → टमाटर, आलू
(विश्वास) 2 / 2 = 1)

5. टमाटर, आलू → प्याज
(विश्वासः2 / 3=0.66)

6. टमाटर,प्याज→आलू
(विश्वासः 2 / 2=1)

7. आलू, प्याज→टमाटर
(विश्वासः 2 / 2=1)

8. आलू, टमाटर, प्याज→ Ø
(विश्वास : 2 / 2=1)

इन सभी नियमों के लिए समर्थन 0.5 है। टमाटर, आलू, प्याज के संभव सबसेट को बाये हाथ की तरफ दिखाए गए नियमों पर और दाये हाथ की तरफ का हिस्सा नहीं है क्योंकि यह आइटम सेट कें तीन आइटम शामिल है। वे हैं 23=8 के सभी नियम। इसी तकनीक को अगर हम वेब लॉग फ़ाइल्स में लागू करेंगे तो अक्सर वेबसाइटों की समर्थन और विश्वास की गणना कर सकेंगे जो पूर्वक्रमन प्रौद्योगिकी के कार्यान्वयन के बाद प्राप्त किया गया हो। इससे हम आसानी से लगातार वेबसाइटों को पहचान सकते हैं जो हमेशा उपयोगकर्ताओं के द्वारा अपने दिन–प्रतिदिन के कामों में उपयोग किया गया हो उसकी सारा जानकारी हम निकाल सकते हैं।

उपसंहार

अलग–अलग लॉग फ़ाइल को संग्रह करके बनाया गया एक लॉग फ़ाइल को हम इनपुट के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इस फ़ाइल के द्वारा हम वेब से संबंधित सारी जानकारी को इस लगातार खनन प्रक्रिया में उपयोग करते हैं। इस लॉग फ़ाइल में सभी असंगत और अप्रसंगिक डॉटा शामिल होते हैं। इसलिए इन लॉग फ़ाइलों को प्रिसैज़ड तरीके से पूर्वप्रक्रमन करना आवश्यक है। कार्यान्वयन के उद्देश्य से ही हमने नासा वेब फ़ाइलों का डाउनलोड किया है। पूर्वप्रक्रमन पद्धति को दिलचस्प पैटर्न प्राप्त करने के लिए लागू किया गया है। इस तरह कार्यान्वित किए गए तकनीक लॉग फ़ाइल के मूल आकार को 75 प्रतिशत से 85 प्रतिशत कम करता है। वेब उपयोग खनन से ज्ञान प्राप्त करने के लिए पूर्वप्रक्रमन पद्धति ही कुशल तरीका माना गया है। पूर्वप्रक्रमन पद्धति से प्राप्त जानकारियों को अक्सर

पैटर्न की खोज की नियमों के लिए इनपुट के रूप में लिया जाएगा, इस से हम प्रासंगिक वेब साइट के साथ मान्य उपयोगकर्ता नेविगेशन की जानकारियाँ प्राप्त करने मे हमे बहुत ही लाभकारी माना जाता है।

तालिका 3. पूर्वप्रक्रमन के बाद वेब लॉग फ़ाइल का सैज़ 75% से 85% तक कम होने की जानकारी।

Log File Format	Total number of records	Interesting records	No. of Session Identified	Original log file size	Preprocessed log file size
CLF	5166	2224	1218	419 KB	109 KB
ECLF	6323	513	358	1668 KB	55 KB

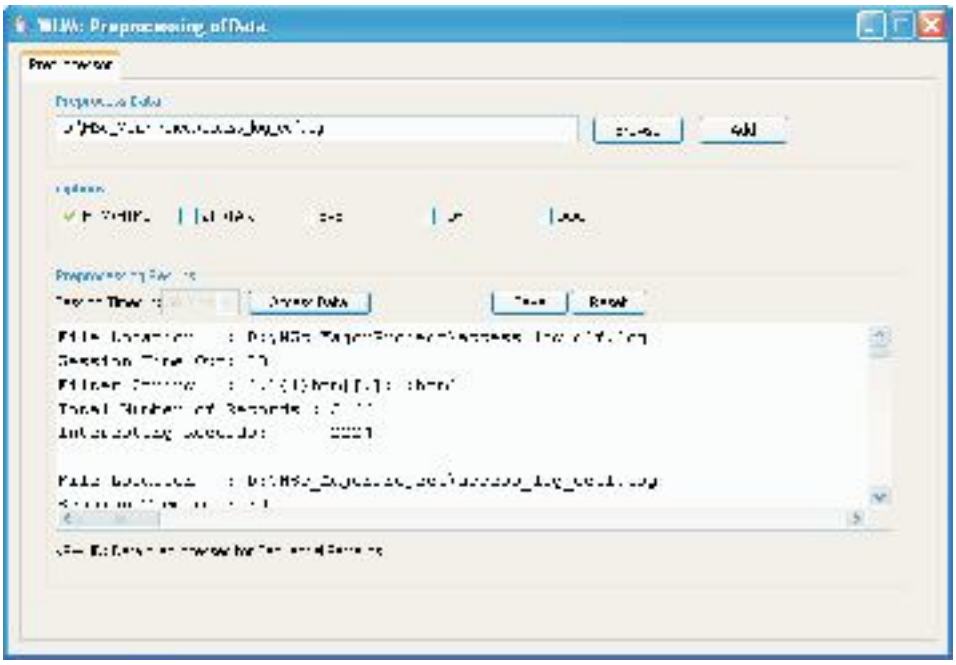

चित्र 4. पूर्वप्रक्रमन बाद का इनट्रेसटेड वेब पैटर्न।

```
mysql> desc logdata;
+---------+--------------+------+-----+---------+----------------+
| Field   | Type         | Null | Key | Default | Extra          |
+---------+--------------+------+-----+---------+----------------+
| slno    | int(11)      | NO   | PRI | NULL    | auto_increment |
| ipadd   | varchar(245) | YES  |     | NULL    |                |
| date    | varchar(245) | YES  |     | NULL    |                |
| referer | varchar(245) | YES  |     | NULL    |                |
| url     | varchar(245) | YES  |     | NULL    |                |
+---------+--------------+------+-----+---------+----------------+
5 rows in set (0.00 sec)
```

चित्र 5. इनटेसटड वेब डेटा को डलैफस डेटाबेस मे टेबल की तरीके मे संभाला गया है।

सन्दर्भ

1. http:/www.w3.org/Daemou/User/Config/(1995).
2. http:/www.w3.org/TR/WD-logfile.html(1996).
3. वेब खनन और उपयोग के पैटर्न,सीएस 748 टि परियोजना के ज्ञान डिस्कवरी। यान व्यांग. फरवरी–2000.
4. प्रिप्रोससिंगः वेब उपयोग खनन, पैटर्न की खोज केलिए एक शर्त। रम्या सि. डॉ. श्रीधर के. एस और कवित जि–2011.
5. वेब उपयोग खननः डिस्कवरी और वेब डेटा से उपयोग के पैटर्न के आवेदन। जे श्रीवास्तव, आर कोले, एम देशपांडे और पि.एन टेन. एक्सल्पोरा, जनवरी–2000.
6. वेब उपयोग खनन का विश्लेषण। हुई यू, ज़ोनगिम लू।
7. पूर्वपक्रमन। प्रोनलज़ेन्जे स्क्रिव ज़ानज़ा, बोजन फयुरल।
8. वेब उपयोग खनन का मूल्यांकन उपयोगकर्ता अगले अनुरोध भविष्यवाणी केलिए दृष्ठिकोण। माथियास ग्रेरि, हेमटन हडढ. नवंबर–2003.
9. वेब निजीकरण के लिए उपयोग खनन के साथ अर्थ ज्ञान का एकीकृत ह्युगु दाई, बामशब मोंबशेर.
10. अनुसंधान और पूर्वप्रक्रमन की वेब उपयोग खनन विकास। ली चोफोंग।
11. वेब उपयोग खननः एक कार्यान्वयन। अनेकेट डैश।
12. डेटा मैंनिंग अवधारणओं और तकनीकों। ज़िवे हान और मैंकेलैन कमबमबर।
13. लगातार पैटर्न कम्पूटर विज्ञान एवं सूचना। अनुराग चौबे, डॉ. रविंद्र पटेल और डॉ. जेम. प्रौद्योगिकी के खनन इंटरनेश्यनल जर्नल. फरवरी–2012.
14. अनुकूलीबाधा लगातार पैटर्न खनन पीसा केडिडि प्रयोगशाला में धकेल। फ्रानस्सिसको बोंची, फासको जिंन्नोंट, अलेस्सी मज़ेंनटि और डिनो पेडेचि.
15. लगातार पैटर्न खनन। क्रिस्टिन बोतगेल्ट।

भारत में नैनो प्रौद्योगिकी का विकास

अभिषेक जैन एवं विकास यादव
गंगा प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन संस्थान, झज्जर, हरियाणा

सारांश

नैनो विज्ञान' आज विज्ञान जगत् का बहुचर्चित शब्द है। स्थूल पदार्थों के लघुकरण से उपजने वाले गुणधर्मीय परिवर्तनों पर आधारित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की इस नवीनतम तकनीक में मानवीय आवश्यकताओं के लिए अनंत संभावनाएं मौजूद है। अतिशयोक्ति नहीं होगी, यदि यह कहा जाए कि आने वाला समय नैनो विज्ञान एवं तकनीक का होगा। पदार्थों के लघुकरण की मात्रा मिलीमीटर से माइक्रान, नैनोमीटर, एम स्ट्राम, पीको, फैन्टो और ऑप्टो तक जाती है। ज्ञातव्य है कि नैनो कणों का आकार कुछ नैनोमीटर से लेकर 100 नैनोमीटर तक होता है। नैनोमीटर, मीटर के एक अरबवें हिस्से को कहा जाता है। हालांकि नैनोमीटर न्यूनतम इकाई नहीं है। इससे भी अन्य छोटी इकाइयां हैं। फिर भी वैज्ञानिकों ने नैनो स्तर पर ही सूक्ष्म निर्माण का प्रयास क्यों किया? वैज्ञानिकों के अनुसार पदार्थों के स्थूल गुणधर्म का परमाणविक गुणधर्म में परिवर्तन नैनोमीटर स्तर पर ही होगा। पदार्थों के सूक्ष्मीकरण की इस तकनीक ने कार्बन को वाष्पित कर उसे अक्रिय गैस में संघनित करने के साथ ही उसकी सूक्ष्म नलिकाएं, गोले, खगोल, बर्फ के फाहे तथा जटिल नैनो कण बनाने में सफलता पाई है। अब तो स्थूल पदार्थ के इन लघु कणों से रक्त कणों से भी छोटे नैनोशैल, नैनोमाइक्रो सुई, रेस्पिरोसाइट और नैनो रोबोटों का निर्माण संभव हो गया है। ऐसा अनुमान है कि नैनो सुई के माध्यम से किसी बीमार कोशिका को सीधे टीका लगाया जाना संभव होगा।

परिचय

पदार्थों के लघुकरण की मात्रा मिलीमीटर सेमाइक्रान नैनोमीटर, एंगस्ट्राम, पीको, फैन्टो और ऑप्टो तक जाती है। नैनो कणों का आकार कुछ नैनोमीटर से लेकर 100 नैनोमीटर तक होता हे। इसमें एक नैनोमीटर 10 ^{9} मीटर, एक एंगस्ट्राम 10 ^{10} मीटर तथा एक नैनोमीटर 10 एंगस्ट्राम के बराबर होता है। नैनोमीटर मीटर के एक अरबवें हिस्से को कहा जाता है।

नैनो पदार्थों का व्यवहार सामान्य पदार्थों के व्यवहार से अलग होता है। अतः इन्हें नियंत्रित करने वाले नियम भी भिन्न होते हैं। वस्तुतः नैनो पदार्थों के व्यवहार को न तो क्वांटम भौतिकी के नियमों से जाना जा सकता है और न ही पुरातन भौतिक की विधियों से। इसे, नैनो व्यवहार को परंपरागत एवं क्वांटम भौतिक के समन्वित नियमों से जाना जा सकता है। सर्वप्रथम कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी के वैज्ञानिकों माइकल रूकज, थामस तिहो एवं कीघ खाब ने पता लगाया कि नैनो युक्तियों से ऊष्मा का प्रवाह सतह की अपेक्षा सोपानी होता है जिसके परिणामस्वरूप नैनो स्तर के परिपथों को बनाने में परेशानी होती है। इस प्रकार नैनो स्तर पर विद्युत चालकत्व क्वांटीकृत हो जाता है। लेकिन लघु कणों से प्रवाहित होने वाले इलैक्ट्रॉन तरंगवत व्यवहार करते हैं।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी विभाग का नैनो टेक्नोलॉजी प्रयास वर्ष 2004 में प्रारंभ हुआ, जिसमें नैनो इलैक्ट्रॉनिक्स पर फोकस किया गया। कार्यक्रम के अंतर्गत संस्थागत क्षमता निर्माण और अनुसंधान व विकास के लिए ढांचागत सुविधाओं तथा नैनो इलैक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में मानव संसाधन विकास पर ध्यान दिया है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (मुंबई) तथा भारतीय विज्ञान संस्थान (बंगलुरू)

में लगभग 100 करोड़ रुपए की लागत से नैनो इलैक्ट्रॉनिक्स उत्कृष्टता केंद्र बनाए जा रहे हैं। इन नैनो इलैक्ट्रॉनिक्स उत्कृष्टता केंद्र के अंतर्गत स्वास्थ्य एवं पर्यावरण निगरानी, आर्गेनिक एवं बायोपालीमर उपकरणों, जी ए एन उपकरणों, ध्वनि आधारित संवेदी उपकरणों, एलसी रे जोनेस्टर्स के लिए चुंबकीय सामग्री आदि के विकास पर काम किया जाएगा। इसके अलावा 25 करोड़ की लागत से 'भारतीय नैनो इलैक्ट्रॉनिक्स उपयोगकर्ता कार्यक्रम' भी भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (मुंबई) तथा भारतीय विज्ञान संस्थान (बैंगलूरू) में प्रारंभ किया गया है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत स्थापित सुविधाओं को बाहरी उपयोगकर्ताओं की भागीदारी एवं सहभागिता के द्वारा नैनो इलैक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र में ज्ञान और विशेषज्ञता को बढ़ाने में सहायता दी जाएगी। वर्ष 2007 में भारत सरकार द्वारा नैनो विज्ञान एवं तकनीक मिशन का अनुमोदन किया गया। इस मिशन के अंतर्गत पहले पाँच वर्षों के लिए 1000 करोड़ रुपए आवंटित किए गए।

इस मिशन का उद्देश्य भारत को विश्व स्तरीय नैनो प्रौद्योगिकी का केंद्र बनाना है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग इस मिशन के कार्यान्वयन की नोडल एजेंसी है। नैनो मिशन के मुख्य क्षेत्र होंगे– नैनो विज्ञान एवं प्रविधि में अनुसंधान क्षमता का निर्माण करना, वृहद् प्रशिक्षित एवं कुशल मानव संसाधन तैयार करना, नैनो तकनीक के राष्ट्रीय विकास के उत्पादों एवं प्रक्रियाएं तैयार करना, इस प्रौद्योगिकी के अंतर्गत अनुसंधान उद्योग एवं शैक्षिक संस्थाओं के मध्य शृंखला स्थापित करना। साथ ही निजी–सार्वजनिक सहभागिता को प्रोत्साहित करना। भारत सरकार ने कुछ अन्य देशों के साथ मिलकर 'अंर्तराष्ट्रीय चूर्ण धातुकर्म एवं नवीन पदार्थ उन्नत अनुसंधान केंद्र (हैदराबाद) में एक 'राष्ट्रीय नैनो पदार्थ (मैटेरियल्स) केंद्र स्थापित किया है। देश को कई शोधार्थी एवं वैज्ञानिक इस ज्ञानवर्धक एवं प्रौद्योगिकी के विकास में संलग्न है।

अक्टूबर 2007 में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय ने चंडीगढ़ में नैनो सिटी परियोजना पर एक प्रस्तुतीकरण दिया। यह परियोजना हरियाणा के पंचकुला जिले में स्थापित की गई है। इसकी संकल्पना एवं योजना कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के पर्यावरण डिजाइन कॉलेज द्वारा की गई है। परियोजना का लक्ष्य जल व विद्युत स्रोतों का पूर्ण एवं दक्षतापूर्ण उपयोग है।

नैनो तकनीक उपागम

मुख्य रूप से नैनो तकनीक में दो प्रकार के उपागमों का प्रयोग किया जाता है। एक को बाटम अप विधि एवं दूसरे को टाप डाउन विधि कहा जाता है। ये दोनों तकनीकें या उपागम वैज्ञानिकों ने अपनी सुविधानुसार तथा पदार्थों की मूल प्रवृति के अनुसार खोजी है। नैनो कणों की प्राप्ति की परम्परागत प्रविधि के अंतर्गत पदार्थ को एक विशेष फर्नेस में वाष्पीकरण के स्तर तक गर्म किया जाता है। तत्पश्चात् द्रव नाइट्रोजन से प्रशिक्षित किए गए सिलेण्डर की सतह तक पदार्थ के वाष्प स्वरूप को पहुँचाया जाता है, जिससे सिलेण्डर की सतह पर पदार्थ के नैनो कण एकत्रित होने लगते हैं। अंततः उपघर्षण द्वारा एकत्रित नैनो कणों को सिलेण्डर की सतह से खुरचकर प्राप्त कर लिया जाता है।

आधुनिक नैनो प्रविधि टाप डाउन के अंतर्गत स्थूल पदार्थ संरचना को नैनो पदार्थ संरचना में तब्दील कर नैनो कणों की प्राप्ति की जाती है। इस तकनीक के माध्यम से स्वतंत्र धातुओं एवं मिश्र धातुओं के कण प्राप्त किए जाते हैं। दूसरी ओर बाटम अप प्रविधि में विद्युत रसायन प्रौद्योगिकीयों के जरिए नैनो कणों को हासिल किया जाता है। इसमें विशेष रूप से मॉलिक्यूलर बीम एवीटेक्सी एवं मेटल आर्गेनिक डिपॉजिसन जैसी तकनीकियों का प्रयोग किया जाता है। विशिष्ट कार्यों एवं उच्च शोध गतिविधियों में प्रयुक्त होने वाले नैनो कणों को इसी तकनीक के जरिये प्राप्त किया जाता है।

नैनो तकनीक की उपलब्धियाँ

नैनो जैव संवेदी

ऐसे नैनो जैव–संवेदियों का विकास किया गया है जिनसे पौधों में लगने वाले रोगों को शुरू में ही पहचानना संभव हो सकेगा। जैव संवेदी नैनोनाक : नैनोवैज्ञानिक ओंकारनाथ श्रीवास्तव ने एक ऐसी 'अपराध अन्वेषण जैव संवेदी नाक' का विकास किया है, जिसके माध्यम से जासूसी कुत्तों की तरह सूंघकर अपराधियों एवं विस्फोटकों के बारे में पता लगाया जाना संभव होगा।

कृत्रिम नैनो हड्डी

कृत्रिम नैनो हड्डी है, जो एक बार आकार पा लेने पर अपना आकार बढ़ाकर प्राकृतिक हड्डी की तरह मजबूत हो जाती है।

नैनो सेंसर

नैनो सेंसर, जैवीय, सर्जिकल एवं रसायनिक सेंसर है जो नैनो कणों के बारे में जानकारी उपलब्ध करता है।

नैनो प्रौद्योगिकी के संबंधित क्षेत्र

नैनो विज्ञान का व्यवहारिक उपयोग नैनोटैक्नोलॉजी के रूप में हो रहा है, जिसमें परमाणविक आकार के अत्यंत सूक्ष्म यंत्रों और उपकरणों का निर्माण किया जा सकता है। नैनो टैक्नोलॉजी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास ने औषधि, जैव–तकनीक, पदार्थ विज्ञान, जीनोमिक्स, सूक्ष्म उपकरणों के निर्माण, कंप्यूटर विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, रोबोटिक्स, संचार और विज्ञान के अन्य अग्रणी देशों में नए द्वारा खोल दिए है।

नैनो जीव एवं कृषि विज्ञान

पर्यावरण की दृष्टि से टिकाऊ औद्योगिक और कृषि प्रणालियों की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए आज दुनियाभर में उद्योगों में रसायन विज्ञान पर आधारित युक्तियों के स्थान पर जैव समाधानों को अपनाया जा रहा है। नैनो प्रौद्योगिकी ने एक ऐसी दुनिया का निर्माण किया है जिसमें चाहे जीन का क्षेत्र हो या प्रोटीन का, कार्बोहाइड्रेट का हो या लिपिड का, जब भी कोशिका स्तर पर कार्य करने की आवश्यकता होगी, नैनो टेक्नोलाजी को ही अपनाना होगा। कृषि के क्षेत्र में भी इस तरह की युक्तियों के उपयोग से उपज बढ़ाई जा सकेगी।

नैनो मेट्रोलॉजी

नैनो तकनीक का संबंध भाप विज्ञान से जुड़ा है। आज समस्त विश्व माइक्रो स्तर की मापन व्यवस्था से परिपूर्ण है तथा इस स्तर पर आसानी से कार्य किया जा रहा है।

नैनो चिकित्सा

नैनो टैक्नोलॉजी पर आधारित युक्तियों के उपयोग से कैंसर, एड्स, मधुमेह और अन्य रोगों के निदान और उपचार में क्रांति लाई जा सकती है। नैनो टैक्नोलॉजी से जैव औषधि के अनेक क्षेत्रों को लाभ हो सकता है।

नैनोरोबोट

वैज्ञानिकों ने चिकित्सा एवं औषधि क्षेत्र में नैनो रोबोट के प्रयोग की संभावना की परिकल्पना की है।

नैनो तकनीक एवं अंतरिक्ष विज्ञान

नैनो तकनीक की विशेषता है कि इसके माध्यम से अत्यंत विकसित लघुरूप तैयार किए जा सकते हैं तथा अनुसंधानों एवं अभियानों में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। नैनो प्रौद्योगिकी से ऐसे रोबोट

बनाए जा सकेंगे जो मंगल ग्रह पर पहुंचकर वहां के वातावरण में ऑक्सीजन और नाइट्रोजन गैसों की उपस्थिति एवं संरचना को पृथ्वी सदृश बनाने में सक्षम होंगे।

ऊर्जा एवं नैनो तकनीक

पिछले कुछ दशकों से विज्ञान एवं इंजिनियरिंग के क्षेत्र में नई एवं विकसित ऊर्जा तकनीकियों का विकास करने के प्रयास किए जा रहे हैं ताकि समस्त विश्व में जीवन क्षमता में विकास हो सके। इस दिशा में एक लंबी छलांग लगाने के लिए वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों ने नैनो तकनीक का प्रयोग ऊर्जा क्षेत्र में करने प्रारंभ कर दिए हैं।

क्वांटम कंप्यूटिंग

नैनो टेक्नोलॉजी की भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं का उपयोग करके विशेष प्रकार के कंप्यूटर प्रोसेसरों एवं मैमोरी डिवाइस का विकास किया जा सकता है। इस तकनीक से आण्विक कंप्यूटरों का विकास भी किया जा सकता है।

डी.एन.ए. नैनो तकनीक

डी एन ए नैनो तकनीक की अवधारणा का सर्वप्रथम आविष्कार वर्ष 1980 में नेडरियन सीमन ने किया। वर्ष 1991 में सीमन प्रयोगशाला ने डी एन ए से निर्मित एक क्यूब के संश्लेषण को प्रकाशित किया। यह पहली नैनो आकार पर आधारित त्रि–आयामी वस्तु थी।

निष्कर्ष

निःसंदेह नैनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग अत्यंत सूक्ष्म उपकरणों एवं यंत्रों के निर्माण के अलावा औषधि, जैव प्रौद्योगिकी, पदार्थ विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी जैसे अनेक क्षेत्रों में किया जा रहा है।

इंसान के ऊपरी अंग आंदोलनों EMG संकेतों का उपयोगः तंत्रिका नेटवर्क के आवेदन के साथ मामले का अध्ययन

के के सैनी एवं संजू सैनी
गंगा तकनीकी कैम्पस, बहादुरगढ़, हरियाणा
डी सी आर विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मुरथल, सोनीपत, हरियाणा

सारांश

तंत्रिका नेटवर्क एक अलग करने के लिए एक प्रणाली की निविष्टियाँ और outputs के बीच बहुत जटिल संबंधों मॉडल की क्षमता ह। इस काम में, EMG स्वस्थ विषयों से प्राप्त संकेतों को अलग ऊपरी अंग विभिन्न तंत्रिका नेटवर्क तकनीकों का उपयोग गतियों वर्गीकृत किया गया है। फ़ीचर मूल्यांकन को स्वीकार करते हैं 4.0 सॉफ्टवेयर और dimensionality कमी का उपयोग कर और तंत्रिका नेटवर्क कार्यान्वयन 7.8 MATLAB का उपयोग किया गया है छह देखरेख (अनुकूली ढाल गिरते, लचीला पीछे प्रचार, मानक रेडियल आधार समारोह नेटवर्क, संभाव्य रेडियल आधार समारोह नेटवर्क, सीखना वेक्टर परिमाणीकरण नेटवर्क और अनुकूली न्यूरो फजी निष्कर्ष प्रणाली) और एक unsupervised नेटवर्क (Kohonen नेटवर्क) वर्गीकरण के लिए लागू किया गया। इन तंत्रिका नेटवर्क तकनीक का प्रदर्शन वर्गीकरण सटीकताए गति, कम्प्यूटेशनल लागत और जटिलता के मामले में तुलना की गई है और यह निष्कर्ष निकाला है कि संभाव्य रेडियल आधार समारोह नेटवर्क बेहतर प्रदर्शन को दर्शाती है।

परिचय

यह काम और एक Electromyography संकेत वर्गीकरण प्रणाली है कि विभिन्न इशारों के बीच भेद करने में सक्षम है के डिजाइन और कार्यान्वयन शामिल है। समग्र लक्ष्य के लिए एक कृत्रिम अंग हाथ ऊपरी अंग से EMG संकेतों का उपयोग को नियंत्रित करने में सक्षम हो जाता है। ऊपरी अंग की मांसपेशियों से EMG संकेतों विभिन्न हाथ आंदोलनों कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क का उपयोग कर के वर्गीकरण के लिए इस्तेमाल किया गया। एक बायोमेडिकल EMG संकेत विद्युतपेशीलेख () संकेत है, कि अपने neuromuscular गतिविधियों के कारण संकुचन के दौरान मांसपेशियों में उत्पन्न विद्युत धाराओं के उपाय है। आम तौर पर, EMG संकेत समय के एक समारोह है और यह अपनी आयाम चरण, और आवृत्ति के रूप में वर्णित है। मांसपेशियों गतिविधि तंत्रिका तंत्र द्वारा नियंत्रित किया जाता है। मांसपेशी शरीर का बहुत महत्वपूर्ण घटक है। यह हमारे आंदोलनों और विभिन्न गतिविधियों के दौरान लागू बल के लिए जिम्मेदार है। मांसपेशियों की एक बड़ी संख्या है जिसके माध्यम से शरीर के आंदोलनों की जगह लेता है। एक मानव की मांसपेशियों पानी 75%, 20% प्रोटीन और 5% खनिज लवण, ग्लाइकोजन और वसा से मिलकर बनता है। वे फाइबर के बने होते हैं और भोजन के ऑक्सीकरण से विभिन्न कार्य करने के लिए आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करने के। EMG संकेत के आयाम प्रकृति में stochastic है। यह सभी कार्रवाई क्षमता के एक निश्चित समय पर उत्पन्न तात्कालिक योग है। संकेत के आयाम 0 से 10mV (pksVh ihd) या 0 से 1.5 एमवी (आरएमएस) के लिए रेंज कर सकते हैं। संकेत के ऊर्जा इलैक्ट्रोड प्लेसमेंट के एक समारोह और मांसपेशियों गतिविधि की राशि है। 1.1 चित्र EMG संकेत की आवृत्ति स्पेक्ट्रम से पता चलता है।

संकेत का प्रयोग करने योग्य ऊर्जा 0 से 500 हर्ट्ज आवृत्ति रेंज के लिए सीमित है, प्रमुख ऊर्जा 50.150 हर्ट्ज रेंज में किया जा रहा है के साथ। प्रयोज्य संकेतों बिजली के शोर के स्तर के ऊपर ऊर्जा के साथ उन लोगों के हैं।

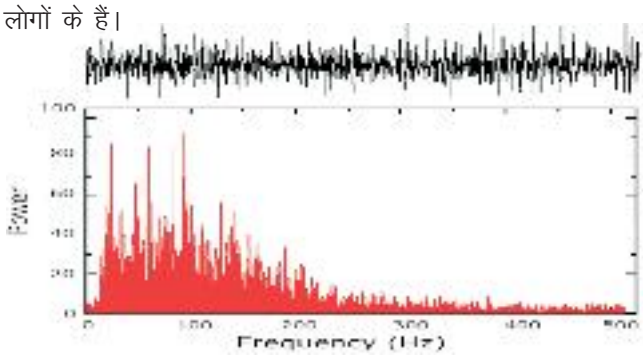

चित्र. 1. EMG सिग्नल की आवृत्ति स्पेक्ट्रम।

संभाव्य तंत्रिका नेटवर्क के उपयोग

संभाव्य तंत्रिका नेटवर्क वर्गीकरण तकनीक का सबसे अच्छा परिणाम दिया है। यह अधिकतम कनवर्जेन्स गति के साथ 95% की एक समग्र सटीकता देता है। यह भी उत्पादन बिल्कुल लक्ष्य वैक्टर के समान वैक्टर दिया। संभाव्य तंत्रिका नेटवर्क के लिए परीक्षण के परिणाम 1 तालिका में दिया जाता है।

तालिका 1. संभाव्य तंत्रिका नेटवर्क के परीक्षण के परिणाम।

Movements	Subject 1	Subject 2	Subject 3	Subject 4	Subject 5
Elbow flexion / extension	1	1	1	1	1
Wrist supination / pronation	1	2	2	2	2
Wrist flexion/extension	3	3	3	3	3
Rest	4	4	4	4	4

उपरोक्त तालिका से, यह स्पष्ट है कि समग्र वर्गीकरण सटीकता 95% है। अभिसरण संभाव्य तंत्रिका नेटवर्क के द्वारा लिया समय 0.05, 955 दुरुपयोग की थी। PNN का उपयोग कर प्रदर्शन 2 तालिका में संक्षेप है।

तालिका 2. संभाव्य न्यूरल नेटवर्क का उपयोग कर परिणाम।

Classification accuracy	**95%**
Convergence time (in seconds)	**0.05955**
Hidden neurons	**40**

सदिश परिमाणीकरण सीखने का उपयोग

सीखने वेक्टर परिमाणीकरण प्रतिस्पर्धी शिक्षण पद्धति को रोजगारण प्रत्येक प्रशिक्षण पैटर्न के लिए संदर्भ वेक्टर निर्धारित किया जाता है कि यह करने के लिए करीब था। इसी उत्पादन न्यूरॉन भी

विजेता न्यूरॉन कहा जाता है। इस न्यूरॉन के साथ जुड़े वजन केवल अन्य सभी वजन और biases अपरिवर्तित छोड़ अद्यतन किया गया। Adaption की दिशा चाहे प्रशिक्षण पैटर्न के वर्ग और संदर्भ वेक्टर मेल या नहीं सौंपा वर्ग पर निर्भर करता है। यदि वे मेल खाना संदर्भ वेक्टर प्रशिक्षण पद्धति के करीब ले जाया गया था, अन्यथा यह प्रशिक्षण पैटर्न से दूर ले जाया गया था। संदर्भ वेक्टर के इस आंदोलन एक पैरामीटर सीखने की दर कहा जाता है के द्वारा नियंत्रित किया गया। दर सीखना फैसला कितनी दूर संदर्भ वेक्टर प्रशिक्षण पैटर्न से स्थानांतरित कर दिया गया है। आमतौर पर, समय के पाठ्यक्रम में सीखने की दर कम हो जाती हैए इसलिए कि प्रारंभिक परिवर्तन प्रशिक्षण की प्रक्रिया के बाद epochs में किए गए परिवर्तनों की तुलना में बड़े होते हैं। सीखने जब संदर्भ वैक्टर की स्थिति शायद ही अब बदलने के लिए समाप्त किया जा सकता है। प्रदर्शन LVQ नेटवर्क का उपयोग कर साजिश आंकड़ा 3 में दिखाया गया है।

प्रशिक्षण 25 epochs में पूरा किया गया था और त्रुटि लक्ष्य करने के लिए वांछित करीब है। सीखना वेक्टर परिमाणीकरण विधि के रूप में अन्य तरीकों की तुलना में बहुत धीमी गति से हो पाया है। स्टफ पद्धति का उपयोग करके परिणाम 4 तालिका में दिखाए जाते हैं।

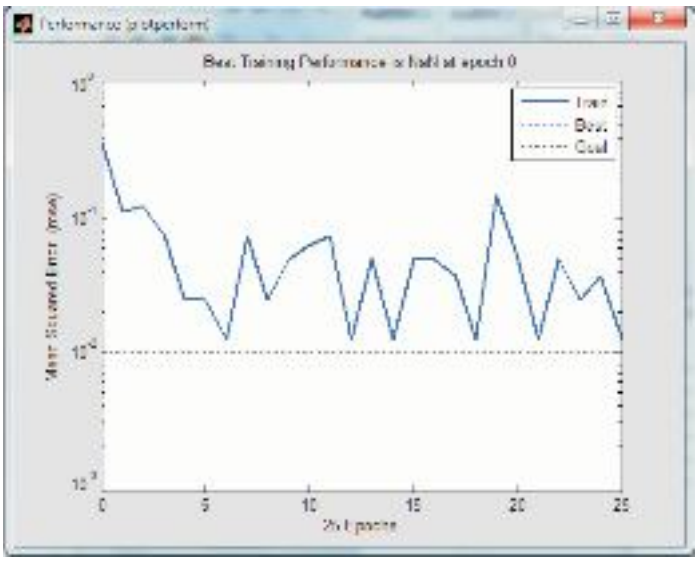

अंजीर. 3. LVQ नेटवर्क के प्रदर्शन साजिश।

ANFIS का प्रयोग

कृत्रिम न्यूरो फजी अनुमान प्रणाली ऊपरी अंग आंदोलनों कमांड लाइन का उपयोग कर के वर्गीकरण के लिए इस्तेमाल किया गया। 100% की एक अधिकतम वर्गीकरण सटीकता और 80% की एक समग्र वर्गीकरण सटीकता के रूप में 5 तालिका में दिखाया में ANFIS परिणामों के उपयोग।

तालिका 4. स्टफ का उपयोग कर परिणाम।

Classification accuracy	**95%**
Convergence time (in seconds)	4.4264
Hidden neurons	8
Number of epochs	25

सारणी 5. ANFIS का उपयोग कर परिणाम।

Upper limb movements	Classification accuracy
Elbow flexion/ extension	60 %
Wrist supination/ pronation	80 %
Wrist flexion/ extension	80 %
Rest	100 %

प्रशिक्षण ANFIS द्वारा लिया समय 1.5251 सेकंड थी

KOHONEN नेटवर्क का प्रयोग

Kohonen नेटवर्क एक unsupervised शिक्षण पद्धति है। Epochs की संख्या 100 करने के लिए सेट कर दिया जाता है, के बाद से, यह एक यादृच्छिक प्रक्रिया है, अधिकतम समग्र सटीकता kohonen नेटवर्क द्वारा दिए गए 55% थी और प्रशिक्षण kohonen नेटवर्क द्वारा उठाए गए समय 7. 3693 सेकंड थी। Kohonen नेटवर्क का परिणाम 6 तालिका में दिया जाता है।

सारणी 6. Kohonen नेटवर्क।

Classification accuracy	55 %
Number of epochs	100
Convergence time (in seconds)	7.3693

इसलिए, यह दिखाया गया है कि एक unsupervised नेटवर्क होने kohonen अच्छा वर्गीकरण सटीकता नहीं दे करता है और यह बहुत ही धीमी गति से किया गया था के रूप में अन्य तरीकों की तुलना में। इसलिए, प्राप्त परिणामों विभिन्न तंत्रिका नेटवर्क तकनीकों का उपयोग करते हुए यहाँ पर चर्चा की गई है। प्रदर्शन धारणा है कि डिजाइन कारकों पर अंग की कमी लोगों को ले जाएगा के साथ स्वस्थ विषयों के एक डेटाबेस पर मूल्यांकन किया गया है।

निष्कर्ष

एक कृत्रिम उपकरण की कार्य क्षमता की आवश्यकताओं को विच्छेदन के स्तर के साथ बढ़ जाती है और इस डिवाइस को नियंत्रित करने के प्रयासों की आवश्यकता है। इसलिए, इस बोझ के लिए क्षतिपूर्ति, चुनौती देने के लिए एक नियंत्रण प्रणाली है जो कृत्रिम अंग का उपयोग करने में मरीज की मदद कर सकते हैं डिजाइन है। इस काम में, विभिन्न कृत्रिम क्लासिफायरफ़ाइल के रूप में तंत्रिका नेटवर्क मॉडल के प्रदर्शन के एक तुलना MATLAB 7.8 जो कृत्रिम उपकरणों के नियंत्रण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है का उपयोग किया गया है। तुलना समग्र वर्गीकरण सटीकता और अभिसरण समय के आधार पर किया जाता है, के रूप में 7 तालिका में दिखाया।

इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि–

- बहुत गरीब वर्गीकरण सटीकता और लंबे अभिसरण अवधि में kohonen नेटवर्क परिणामों के उपयोग के रूप में अन्य मॉडलों की तुलना में तो, सीखने की देखरेख मॉडल वर्तमान समस्या के लिए unsupervised शिक्षण विधि की तुलना में बेहतर परिणाम दे रहे हैं।
- न्यूनतम अभिसरण समय के साथ अधिकतम वर्गीकरण सटीकता में संभाव्य न्यूरल नेटवर्क परिणामों का प्रयोग। तो यह एक सटीक और तेजी से विकल्प है।

तालिका 7. न्यूरल नेटवर्क तकनीकों की तुलना।

Neural Network Model	Overall Classification accuracy	Convergence Time (in seconds)
Multi Layer Perceptron using Adaptive Gradient Descent	85%	1.9723
Multi Layer Perceptron using Resilient back propagation	90%	0.7241
Linear vector quantization	95%	4.4264
Standard RBF network	95%	0.07976
Probabilistic neural network	95%	0.05955
Artificial Neuro Fuzzy Inference System (ANFIS)	80%	1.5251
Kohonen Network	55%	7.3693

- लचीला वापस प्रचार 90% की एक समग्र सटीकता दे दी है, लेकिन वे के रूप में RBF के रूप में तेजी से नहीं थे। वे तेजी से बनाया जा सकता है, लेकिन यह उनकी शुद्धता को प्रभावित करेंगे।
- स्टफ नेटवर्क के रूप में 95% के रूप में सटीक माना जाता आंदोलनों के लिए दिया गया है लेकिन अधिकतम प्रशिक्षण का समय ले लिया।
- कृत्रिम न्यूरो फजी निष्कर्ष प्रणाली (ANFIS) 80% की समग्र वर्गीकरण सटीकता देने भी सतह EMG अपने अभिसरण समय के रूप में वर्गीकरण के लिए एक विकल्प हो सकता है कुछ अन्य मॉडलों की तुलना में कम है।

इसलिए, अगर संभाव्य रेडियल आधार समारोह नेटवर्क ऊपरी अंग आंदोलना, जो आगे कृत्रिम उपकरणों के कामकाज के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है के वर्गीकरण के लिए प्रयोग किया जाता है, यह एक सटीक, तेजी से और कम जटिल विकल्प दे देंगे।

भविष्य स्कोप

समर्थन टमबजवज मशीन (SVM) की तरह अन्य एएनएन मॉडल एक बेहतर सटीकता के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। एक अलग विशेषता सेट समय डोमेनए आवृत्ति डोमेन, समय आवृत्ति डोमेन या किसी भी इन सुविधाओं का एक संयोजन का उपयोग किया जा सकता है। कुछ अन्य आंदोलनों वर्गीकरण के लिए भी विचार किया जा सकता है।

सतह EMG की वर्गीकरण भी निचले अंग आंदोलनों जो आगे कृत्रिम पैरों के कामकाज के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

संदर्भ

1. कार्लो जम्मू डी लुका, (2002), भूतल Electromyography: पता लगाने और रिकॉर्डिंग, DELSYS
2. Fausett, एल (1994), फ्लोरिडा संस्थान 'तंत्रिका नेटवर्क वास्तुकला एल्गोरिदम और अनुप्रयोगों की बुनियादी बातों' टेक, अप्रेंटिस हॉल इंटरनेशनल इंक।
3. M.B.I. Reaz, एम. एस. हुसैन और मोहम्मद यासीन एफ (2006), EMG संकेत विश्लेषण की तकनीक का पता लगाने, प्रसंस्करण, वर्गीकरण, और अनुप्रयोगों, बॉय। Proced. ऑनलाइन 2006,8 (1) :11-35.
4. B.Hudgins P.Parker, और R.Scott (1993), आईईईई लेनदेन बायोमेड "Multifunction myoelectric नियंत्रण के लिए एक नई रणनीति'' इंग्लैंड, खंड 40, नहीं। 1, 82.94 पीपी।

5. EWAbel, PCZacharia (1996), Elsevier विज्ञान लिमिटेड IPEMB मेड के लिए "EMG हस्तक्षेप पैटर्न के तंत्रिका नेटवर्क विश्लेषण" अभियांत्रिकी। मानसिक। वॉल्यूम. 18, नहीं। 1, 12–17 पीपी।

6. बोस एन. के. और लियांग (1998) McGraw हिल प्रकाशनों 'तंत्रिका रेखांकन एल्गोरिदम, और अनुप्रयोगों के साथ मौलिक नेटवर्क' ISBN 9780074635292, 484 iUUks ih.

7. Sebelius एफ और Balkenius सी (1998), तंत्रिका कम्प्यूटिंग 'आभासी कृत्रिम अंग के तंत्रिका नियंत्रण', Springer-Verlag ICANN 98 लार्स एरिकसन।

8. MCSanta Cruz, RRRiso (1999), पहली बार संयुक्त BMES / EMBS सम्मेलन मानवता, अटलांटाए संयुक्त राज्य अमेरिका की सेवा की कार्यवाही "myoelectric कृत्रिम अंग के लिए कलाई आंदोलनों की प्राकृतिक नियंत्रण'।

9. ए कुमार डी.के. और पैन एन डी (2000), 'तंत्रिका और सतह विद्युतपेशी लेखन के वर्गीकरण के लिए तरंगिका अपघटन नेटवर्क' J.EMG और C.Neuro, खंड. 40, नहीं। 6।

10. केविन एंगलहार्टए बर्नार्ड Hudgins और फिलिप ए पार्कर (2001), बायोमैडिकल इंजीनियरिंग पर IEEE लेनदेन 'एक तरंगिका आधारित बहुक्रिया Myoelectric नियंत्रण के लिए सतत वर्गीकरण योजना" ए खंड. 48, नहीं। 3।

11. Edgarg Lamounier, Alcimar Soar मे (2002), "EMG पैटर्न वर्गीकरण के लिए एक आभासी कृत्रिम अंग तंत्रिका नेटवर्क के आधार पर नियंत्रण"।

12. Yonghong हुआंग, केविन B.Englehart, बर्नार्ड Hudgins, एड्रियन डीसी चान (2005), बायोमेडिकल इंजीनियरिंग, वॉल्यूम पर IEEE लेनदेन 'एक गाऊसी ऊपरी अंग संचालित कृत्रिम अंग के Myoelectric नियंत्रण के लिए मिश्रण मॉडल आधारित वर्गीकरण योजना" 52, 11 सं.।

13. Soares ,ए Andrade ,ए Lamounier ई. और Carrijo आर (2003), बुद्धिमान सूचना प्रणालियों के जर्नलए वॉल्यूम 'एक आभासी myoelectric एक EMG पैटर्न मान्यता तंत्रिका नेटवर्क पर आधारित प्रणाली के द्वारा नियंत्रित कृत्रिम अंग के विकास के". 21, नहीं। 2, पृष्ठ. 127.141 ISSN:0925-9902.

14. WISchollhorn (2004), 'तंत्रिका जाल के नैदानिक biomechanics में आवेदन ltd.2004.04.005 Elsevier द्वारा प्रकाशित।

15. MWJiang, RCWang (2005), 2005 आईईईई, शंघाई, चीन की कार्यवाही 'तरंगिका सतह EMG संकेत के बदलने का उपयोग उंगली गति को पहचानने का एक तरीका है'।

परापार्थिव चट्टानों (उल्काओं) में प्लेटिनम समूह तत्वों का विश्लेषण

नरेन्द्र कुमार अग्रवाल, प्रीति अग्रवाल, तथा रवि अग्रवाल
भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद, गुजरात

सारांश

लगभग सामान भौतिक व् रासायनिक गुणों वाले छः दुर्लभ तत्वों (*Ru, Rh, Pd, Os, Ir*, तथा *Pt*) को प्लेटिनम समूह तत्वों के नाम से जाना जाता है। ये सभी प्लेटिनम समूह तत्वों अपनी उच्च तापमान पैर द्रवीभूत होने (रिफ्रेक्टारी) तथा धात्विक खनिजो के साथ समूहित होने तथा उनकी संरचना में पाए जाने की प्रकृति के कारण पहचाने जाते हे ये सभी प्लेटिनम समूह तत्वों परापार्थिव चट्टानों में कुछ ng/g की मात्रा में पाए जाते है परन्तु फिर भी अपनी रेफ्रेक्टोरी तथा सदरों–फाइल प्रकृति के कारण परापार्थिव चट्टानों/उल्काओं/आकाशीय पिंडो के विश्लेषण में अपना विशिष्ट स्थान रखते है।

बहुत लम्बे समय से चहम विश्लेषण के लिए प्रयुक्त तकनीक न्यूट्रॉन एक्टिवेशन एनालिसिस (NAA) के द्वारा केवल प्रभावी रूप से (सही–सही) Ir का ट्री मात्रात्मक विश्लेषण किया जा सकता था। अन्य प्लेटिनम समूह तत्वों जो मात्रात्मक रूप से दस गुना या उससे भी कम मात्रा में पाए जाते हे, उनके लिए ये तकनीक उपयुक्त नहीं थी। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में Inductively Coupled Plasma & Mass Spectroscopy तकनीक के विकास से प्लेटिनम समूह तत्वों ब दुर्लभ मद्र तत्त्व का pg/g(PPT) तक की मत्र में भी पूर्णतया सही रूप से मात्रात्मक विश्लेषण किया जा सकता है। पूर्व में प्लेटिनम समूह तत्वों की इतनी कम मात्रा का जो परपर्थिव चट्टानों का इस मशीन से विश्लेषण किया जा रहा था। उपकरण की आवश्यताएं और सीमाओं को ध्यान में रखते हुए प्रयुक्त रासायनिक विधि के कारन विश्लेस्य (उल्काओ) की मात्र >100 mg की आवश्यकता थी/प्रयुक्त किया जाता था ।

वर्तमान में हमने ICP-Ms के द्वारा विश्लेषण के अध्ययन के लिए नयी रासायनिक तकनीक का विकास किया है। जिससे मशीन की अव्स्यक्ताओ को ध्यान में रखते हुए हम लगभग ~ 1 mg विश्लेष्य की नई रासायनिक तकनीक का प्रयोग करते हुए मशीन के द्वारा विश्लेषण किया है। इस विधि का प्रयोग हमने बल्क कोण–राईट तथा आयरन मेटो–राईट, दोनों ही तरह की उल्काओ का अध्ययन किया तथा दोनों के अलग अलग रासायनिक विधियों का प्रयोग किया है। सभी विश्लेष्य का THERMO X SERIES II QUADRUPOLE ICP-MS मशीन द्वारा विश्लेषण किया है। तकनीक की सफलता की जाँच के लिए कुछ पूर्व विश्लेषित परा–पार्थिव चट्टानों का भी इस तकनीक से विश्लेषण किया तथा पाया कि परिणाम पूर्व–विश्लेषित परिणामो से पूर्णतः मेल खाते है।

प्रस्तावना

परापार्थिव चट्टानों का अध्ययन क्यों ?

परा–पार्थिव चट्टानों में वतावाराणीय प्रभावों के कारण निरंतर परिवर्तन होता रहता है। अतः हम इनके द्वारा किसी गृह की उत्पत्ति के विषय में प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। परन्तु परापार्थिव चट्टानों को एक विशेष समूह कोण–राइड के द्वारा हम किसी भी गृह की उत्पत्ति के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जैसे की किस प्रकार के तत्वों व खनिजों से ये गृह बने हुए हैं। उनके बनाने की परिस्थितियां समय तथा सौर–मंडल में उनके बनाने का स्थान क्या था। ये सभी चट्टानें आपस में खनिजों तथा तत्वों के संघनन से 4.57 बिलियन वर्ष पहले बनी थी। इनके विभिन्न अवयव, जो कि अधिकांश संभवतया अलग–अलग स्थानों और समयों पर सौर–मंडल और प्रोटो–प्लेनेटरी डिस्क में बनी

थी तथा अपने साथ अन्य ग्रहों के खनिजों को भी रखती है। ये सभी चट्टानें आपस में त्वरित तथा सम्पीडण प्रक्रिया के द्वारा निर्मित होती हैं। ये चट्टानें अस्टोराइड तथा कोण–राइड–मिटो–राईट के रूप में पृथ्वी पर गिरती हैं। सामान्यतः जो परा–पार्थिव चट्टाने पृथ्वी पर गिरती हैं, कोण–राइड होते हैं। इस प्रकार की कोई भी चट्टान पृथ्वी पर नहीं बनती है, वर्त्तमान में इन सभी पर उपलब्ध विश्लेषण के आधार पर ये कहा जा सकता है कि ये सभी सौर–मंडल की धूल तथा खनिजो के बने हुए हैं तथा बड़े ग्रहों के निर्माण की प्रक्रिया के दोरान अथवा किसी गृहिये टक्करों के कारण मुक्त होती है तथा पृथ्वी पर गिरती है।[1]

जो परा–पार्थिव चट्टाने पृथ्वी पर गिरती है को मुख्यतः दो भागों में बता जा सकता है।

(1) डिफेरेंसिअल मिटो–राईटः ये सामान्यतः वे अस्टोराइड होते हैं जो बार–बार द्रवित होते हैं तथा खनिजों के विभिन्न परतों के रूप में पाए जाते हैं। ये अधिकांशतया बसाल्ट्स तथा क्रस्ट होते हैं जबकि आयरन मिटो–राईट कोर सैम्पल होते हैं।

(2) प्रिमिटिव मिटो–राईटः जबकि प्रिमिटिव मिटो–राईट (अन–डिफेरेंसिअल मिटो–राईट) वे होते हैं जो प्रारंभिक सौर–मंडल के उनके निर्माण के बाद कभी द्रवित या परिवर्तित नहीं हुए। इस कारण से ये सौर–मंडल के निर्माण के समय की गतिविधियों तथा परिस्थितियों को अपने अन्दर सुरक्षित रखते हैं। तथा कोण–राइड के नाम से जाना जाता है। क्योंकि इनका सबसे मूलभूत गुण–धर्म है ये 80% तक कोनरुल के बने होते हैं।[2]

(3) प्लेटिनम समूह तत्वः लगभग छह समान भौतिक व रासायनिक गुणों वाले छह दुर्लभ तत्वों (*Ru, Rh, Pb, Os, Ir* तथा *Pt* को) प्लेटिनम समूह तत्त्व कहा जाता है।

(4) प्लेटिनम समूह तत्वों का परापार्थिव चट्टानों के अध्ययन में महत्त्वः ये सभी प्लेटिनम समूह तत्व (*Ru, Rh, Pb, Os, Ir* तथा *Pt* को) अपनी उच्च तापमान पर द्रवीभूत होने के गुण (रि–फैक्ट्री) तथा धात्विक खनिजों के साथ सामूहिक होने की अपनी प्रकृति (सदरों–फाइल) तथा अपनी सरंचना में पाए जाने के कारण पहचाने जाते हैं. ये सभी तत्व परा–पार्थिव चट्टानों में ng/g की मात्र में पाए जाते हैं। परन्तु अपनी रि–फैक्ट्री तथा सदरों–फाइल प्रकृति के कारण परा–पार्थिव चट्टानों के विश्लेषण में अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। सारणी 1. में प्लेटिनम समूह तत्व की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया गया है।

(5) पूर्व–प्रचलित प्लेटिनम समूह तत्व के विश्लेषण की तकनीकः बहुत लम्बे समय से चहम विश्लेषण के लिए प्रयुक्त तकनीक न्यूट्रॉन एक्टिवेशन एनालिसिस (NAA) के द्वारा केवल प्रभावी रूप से (सही–सही) Ir का ड्री मात्रात्मक विश्लेषण किया जा सकता था। अन्य प्लेटिनम समूह तत्वों जो मात्रात्मक रूप से दस गुना या उससे भी कम मात्र में पाए जाते हैं, उनके लिए ये तकनीक उपयुक्त

सारणी 1. प्लेटिनम समूह तत्व के मुलभुत गुण–धर्म।

Element	Symbol	Number of Stable Isotopes	Melting Point	Boiling Point	ICP-MS Detection limit
Ruthenium	44Ru	7	2607 K	4423 K	0.5 pg/g
Rhodium	45Rh	1	2237 K	3968 K	0.5 pg/g
Palladium	46Pd	6	1828 K	2830 K	0.5 pg/g
Osmium	76Os	7	3306 K	5285 K	1 pg/g
Iridium	77Ir	2	2701 K	4701 K	0.5 pg/g
Platinum	78Pt	6	2041 K	4098 K	0.5 pg/g

नहीं थी। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में Inductively Coupled Plasma - Mass Spectroscopy तकनीक के विकास से प्लेटिनम समूह तत्वों व दुर्लभ मृदा तत्त्व का pg/g(PPT) तक की मत्र में भी पूर्णतया सही रूप से मात्रात्मक विश्लेषण किया जा सकता है। पूर्व में प्लेटिनम समूह तत्वों की इतनी कम मात्र का जो परा–पार्थिव चट्टानों का इस मशीन से विश्लेषण किया जा रहा था। उपकरण की आवश्यताएं और सीमाओं को ध्यान में रखते हुए प्रयुक्त रासायनिक विधि के कारन विश्लेष्य (उल्काओ) की मात्र >100 mg की आवश्यकता थी/प्रयुक्त किया जाता था।

(6) रासायनिक तकनीक: वर्तमान में हमने ICP-Ms के द्वारा विश्लेस्य के अध्ययन के लिए नई रासायनिक तकनीक का विकास किया है। जिससे मशीन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हम लगभग ~ 1 mg विश्लेष्य की नयी रासायनिक तकनीक का प्रयोग करते हुए मशीन के द्वारा विश्लेषण किया है। इस विधि का प्रयोग हमने बल्क कोण–राईट तथा आयरन मिटो–राईट दोनों ही तरह की उल्काओ का अध्ययन किया तथा दोनों के अलग अलग रासायनिक विधियों का प्रयोग किया है। सभी विश्लेष्य का Thermo X Series II Quadrupole ICP-MS मशीन द्वारा विश्लेषण किया है। तकनीक की सफलता के जाँच के लिए कुछ पूर्व विश्लेषित परा–पार्थिव चट्टानों का भी इस तकनीक से विश्लेषण किया तथा पाया की परिणाम पूर्व–विश्लेषित परिणामो से पूर्णतः मेल खाते है।

(7) ICP-MS उपकरण: प्लेटिनम समूह तत्व के मात्रात्मक विश्लेषण के लिये हमने Thermo X Series II Quadrupole ICP-MS उपकरण का प्रयोग किया है।

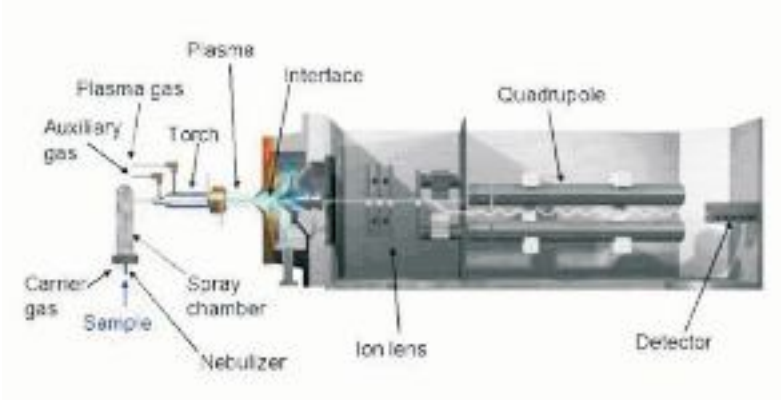

प्रयोग से पूर्व हमने उपकरण को सही परिणामो की प्राप्ति के लिए टयून तथा ऑप्टीमाइज किया तथा इस प्रक्रिया के दौरान लेंस, नेबुलैसेर को अधिकतम गणन संख्या प्राप्ति के लिए अतिशुद्ध तात्विक मानक विलिअनो का प्रयोग किया। लेंस टयून के लिए 115 In तथा नेबुलिसेर को 156 CeO/140 Ce के लिए परिमापन किया तथा उपकरण की मापन क्षमताओ के अनुसार ऑप्टीमाइज परिणाम प्राप्त किया। तब ऑक्साइड डब्ली चार्ज योगिक/तत्वों की मात्रा ज्ञात की इसके लिए 115 In, 238 U व 7 Li मानक का प्रयोग किया तथा 156 CeO/140 Ce तथा 137 Ba (++)/137 Ba की मात्रा ज्ञात की जो क्रमशः 0.0187 तथा 0.0055 प्राप्त हुई, जो की उपकरण की अधिकतम टयून तथा ओपटीमेज़ अवस्था को बताती है। प्लेटिनम समूह तत्व विश्लेषण के लिए मशीन की मात्रात्मक सीमाओं का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है।

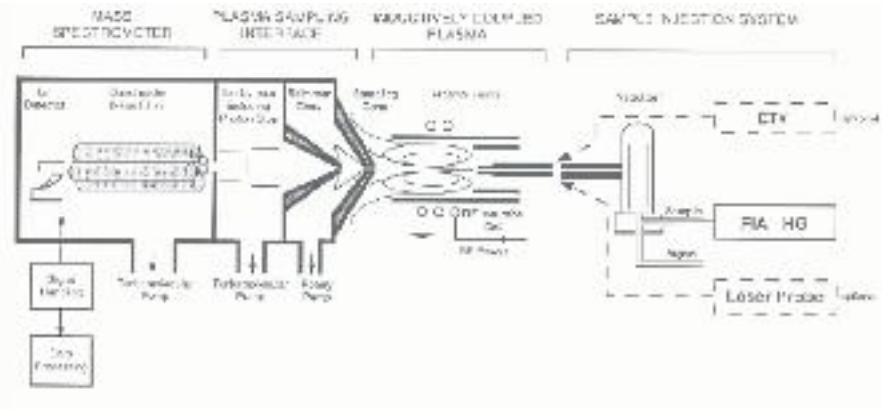

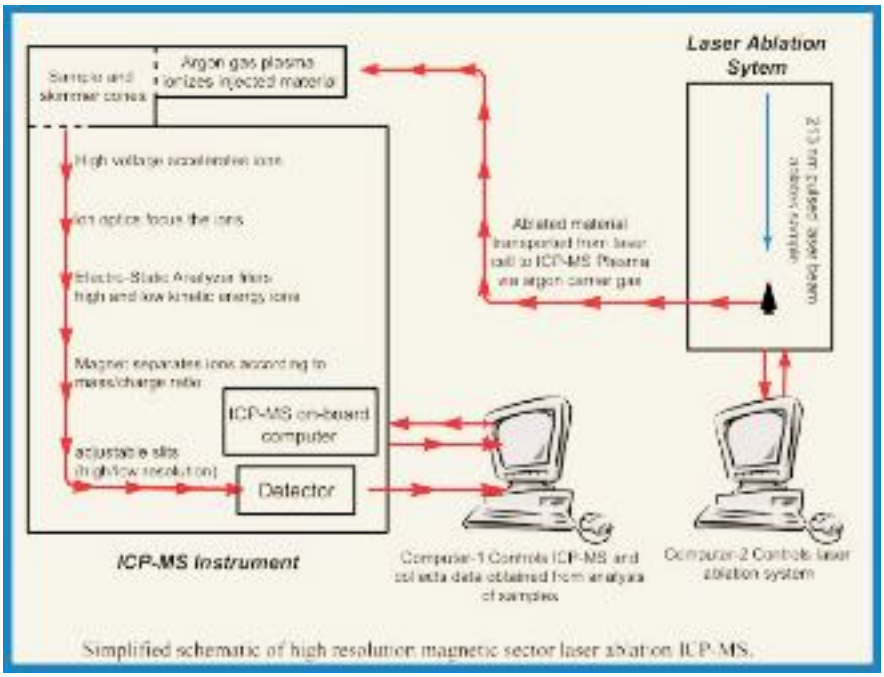

Simplified schematic of high resolution magnetic sector laser ablation ICP-MS.

विश्लेष्य तथा रासायनिक प्रक्रिया

प्रयुक्त नई रासायनिक तकनीक की सफलता की जाँच के लिए तथा भविष्य में इसके प्रयोग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हमने सर्वप्रथम इस विधि से कुछ पूर्व–विश्लेषित तथा कुछ परपर्थिव चट्टानों का विश्लेषण किया है। इस विधि द्वारा हमने पूर्व विश्लेषित परा–पार्थिव चट्टान Bulk Chondrite (Allende) तथा दो IronMeteorite (Koadikanal (चित्र 2) तथा (Bhuka (चित्र 1) (जो वर्तमान भारतीय परपर्थिव चट्टान) है उसका विश्लेषण किया है।

विश्लेषण का अध्ययन किया जा सकता है। परन्तु हमारे पास उपलब्ध विश्लेषण (परा–पार्थिव) चट्टानें हमेशा ठोश अवस्था में होती है अतः हम उसे रासायनिक प्रक्रिया/प्रणाली का उपयोग करते हुए सर्वप्रथम द्रव अवस्था में परिवर्तित करते हैं। प्रस्तावना के अनुसार हम पूर्व में बता चुके हैं कि हमें यहाँ विश्लेष्य की केवल 1 mg मात्र में ही प्लेटिनम समूह तत्वों का विश्लेषण किया है जबकि पूर्व प्रचलित विधियों में ये >/100 mg हुआ करती थी अतः हमने विश्लेषण के द्रवीकरण के लिए प्रयुक्त विधियों के स्थान पर विश्लेष्य की मात्र को ध्यान में रखते हुए नयी रासायनिक प्रक्रिया का प्रयोग किया है। जिससे विश्लेष्य की मात्रा को किसी भी प्रकार के नुकसान से बचा जा सके, तथा प्लेटिनम समूह तत्वों की मात्रा में वाष्पीकरण द्वारा होने वाले परिवर्तन से बचा जा सके तथा उपकरण विश्लेषण में प्रयुक्त रासायनिक विधि के कारण आने वाले व्यतिकरण प्रभावो से बचा जा सके व्यतिकरण प्रभावो को न्यूंतम किया जा सके। अतः प्रत्येक विश्लेष्य में उपलब्ध प्रमुख तत्वों की मात्रा के लिए अलग–अलग रासायनिक विधि का प्रयोग किया जाना आवश्यक है. अतः हमने Allende, Koadikanal तथा Buka के लिए अलग–अलग रासायनिक विधि का प्रयोग किया है।

Allende : इस बल्क कोण–राईट के रासायनिक द्रवीकरण के लिये पूर्णतया 5 शुद्ध पात्र लिए जिन्हें C_2H_5OH तथा mili-Q जल द्वारा साफ किया गया। 4 Allende विश्लेष्य (प्रत्येक ≈1 mg (μg तुला द्वारा) लिया तथा एक पात्र रासायनिक तुल्यक के रुप मे लिया तथा निम्न रासायनिक विधि प्रयुक्त की।

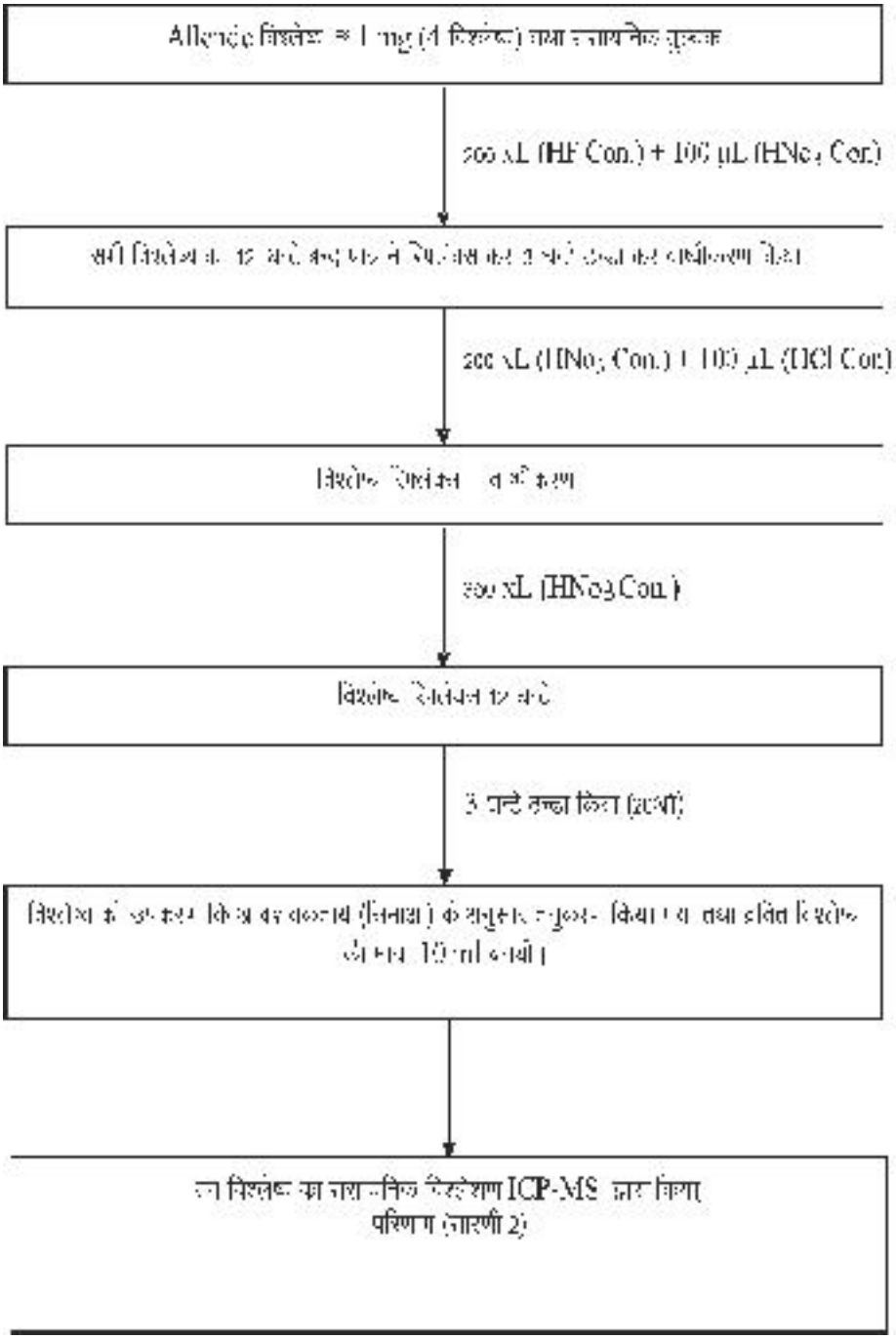

Kodaikanal व Bhuka: Kodaikanal के लिये हमने 4 विश्लेष्य (प्रत्येक ≈1 mg) तथा Bhuka ≈1 mg (1 विश्लेष्य) तथा रासायनिक तुल्यक (2) तथा निम्न रासायनिक विधि प्रयुक्त की।

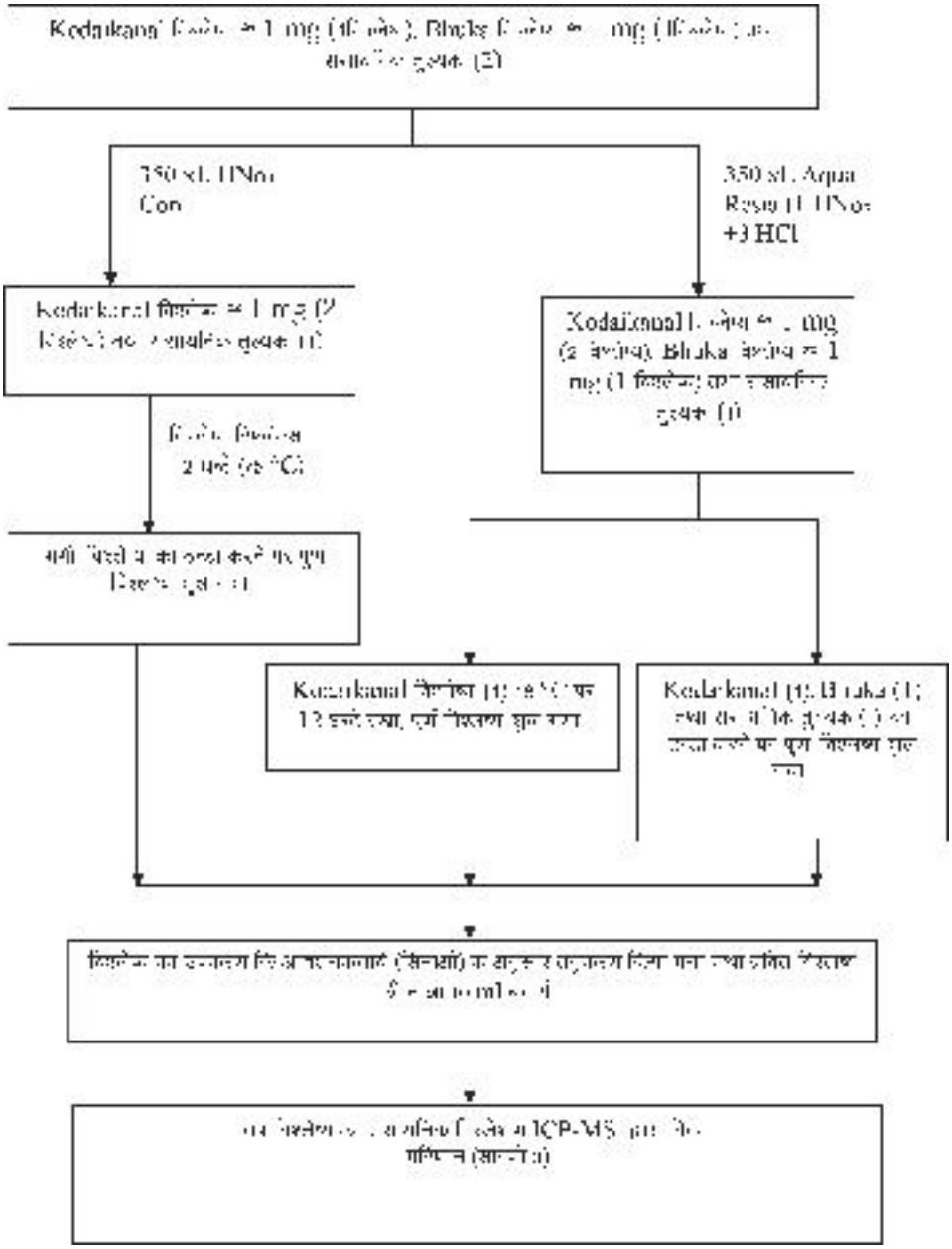

परिणाम तथा विश्लेषण

मैट्रिक्स प्रभाव तथा तनुकरण गुणांकः प्लेटिनम समूह तत्वों तत्व की बहुत कम मात्रा में पाए जाने के कारण तथा विश्लेष्य में उपस्थित अन्य तत्वों, रासायनो तथा उपकरण में प्रयुक्त गैसों के कारण प्लेटिनम समूह तत्वों का मात्रात्मक विश्लेषण प्रभावित होता है। अतः बिलकुल सही प्लेटिनम समूह तत्वों के मात्रात्मक विश्लेषण के लिए उपयुक्त रसायनों तथा मैट्रिक्स का चयन किया जाए जिससे बहुत कम मात्रा में व्यतिकरण प्रभाव हो तथा सही मात्रात्मक विश्लेषण किया जा सके। अतः मैट्रिक्स

प्रभावों तथा संभाविक व्यतिकरण को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त समावयाबी का चयन किया जिसके लिए प्रत्येक समावयाबी पर उपस्थित व्यतिकरण को ध्यान में रखते हुए केवल उस समावयाबी का चयन किया गया जिसके लिए ये व्यतिकरण प्रभाव बहुत कम हो। अतः हमने विभिन्न प्लेटिनम समूह तत्वों के निम्न समावयाबी का चयन किया 101*Ru*, 103 *Rh*, 192 *Ir*, 195 *Pt*.

तनुकरण गुणांकः तनुकरण गुणांक अंतिम विलियन में विश्लेश्य के द्रव्यमान गुणांक पर निर्भर करता है। सरणी 1 में उल्लेख के अनुसार ICP-MS उपकरण विलियन में निश्चित मात्रात्मक उपस्थिति तक ही तत्वों की पहचान कर सकता है। अतः विश्लेश्य की मात्रा के आधार पर हमने उपयुक्त तनुकरण गुणांक वाला विलियन ICP-MS मशीन के लिए निर्मित किया।

मानकीकरण विधि–यहाँ हमने विलियन में प्लेटिनम समूह तत्वों के मात्रात्मक विश्लेषण के लिए मानकीकरण विधि का प्रयोग किया। इसके अंतर्गत हमने अतिशुद्ध प्लेटिनम समूह तत्वों के मानक विलियन की सहायता से मानकीकरण वक्र (0-001 ppb, 0-01 ppb, 0-1ppb, 1 ppb तथा 10 ppb वाले मानक विलिअनो का प्रयोग किया) बनाया तथा इस वक्र का प्रयोग उल्लेखित तनुकरण गुणांक वाले विश्लेष्य तथा रासायनिक तुल्यक वाले विलियोंओ का विश्लेषण किया तथा विश्लेष्य में से रासायनिक तुल्यक वाले गणन के संशोधन के पश्चात विश्लेष्य में उपस्थित तत्व की मात्रा ज्ञात की।

विश्लेषण

Allende–प्रस्तावना में उल्लेख के अनुसार हमने इस विधि का प्रयोग Allende विश्लेष्य द्वारा रासायनिक विधि तथा उपकरण की सीमाओं की जांच के लिए किया है, क्योंकि Allende मिटो–राईट का रासायनिक विश्लेषण विभिन्न विधिओं द्वारा पहले किया जा चूका है। अतः हमने Allende 4 विश्लेष्य (प्रत्येक ~ 1mg) लेकर विश्लेषण तथा परिणाम सारणी 2 में प्रदर्शित किये गए हैं। यहाँ प्राप्त परिणामों के विश्लेषण से हमने पाया कि सभी प्लेटिनम समूह तत्वों चारो विश्लेष्य के लिए सामान आते हैं। तथा इन परिणामो का पूर्व–विश्लेषित परिणामो से जांच करने से पाया की ये पूर्व–विश्लेषित के भी सामान है जबकी सारणी में जो पूर्व–विश्लेषित परिणाम दिए गए हैं, वे विश्लेष्य की 117 mg मात्रा के लिए है। चित्र 1 में इन परिणामों पुनः उत्पादकता को दिखाते हैं।

सारणी 2. Allende Metorite के विश्लेषित तथा पूर्व–विश्लेषित परिणाम।

	Ru	Rh	Ir	Pt
	ppp	ppb	ppb	ppb
Allende 1	707	131	724	1349
Allende 2	706	137	721	1347
Allende 3	683	131	694	1321
Allende 4	680	133	684	1320
Report Allende	683	140	704	1357

Koadikanal : इसके लिए हमने चार विश्लेष्य परा–पार्थिव चट्टान के एक ही हिस्से के समांगी दस्त से लिए तथा प्राप्त परिणामो के विश्लेषण के आधार पर हमने यहाँ पुनः पाया कि सभी विश्लेष्य में परिणाम लगभग मेल खाते हैं तथा इस परा–पार्थिव चट्टान में उपस्थित प्लेटिनम समूह तत्वों की मात्रात्मक उपस्थिति इसके IIE iron metrorite वर्गीकरण के अंतर्गत आने की पुष्टि करती है। इसके लिए हमने इसके परिणामों की तुलना IIE iron metrorite से की है, वो परिणाम सारणी 3 में प्रदर्शित किये हैं तथा विश्लेषण चित्र 2 koadiknal metorite के विश्लेषित परिणामो की पुनः उपादकता तथा पूर्व–विश्लेषित परिणामों से तुलना की है।

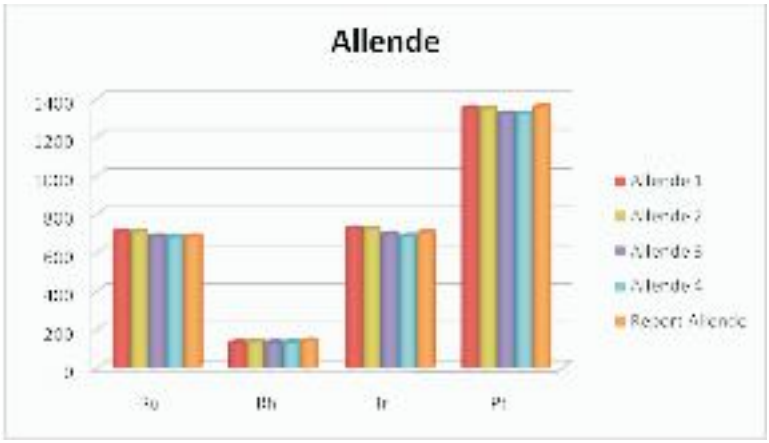

चित्र 1. **Allende Metorite** के विश्लेषित परिणामो की पुनः उपादकता तथा पूर्व विश्लेषित परिणामो से तुलना

तालिका 2. Koadikanal Metorite के विश्लेषित तथा पूर्व विश्लेषित परिणाम।

	Ru	Rh	Ir	Pt
	ppb	ppb	ppb	ppb
Koadikanal 1	5751	1072	4315	8372
Koadikanal 2	5766	1065	4428	8585
Koadikanal 3	5647	1060	4242	8498
Koadikanal 4	5753	1044	4404	8429
REPORT Koadikanal	5775	1063	4305	8451

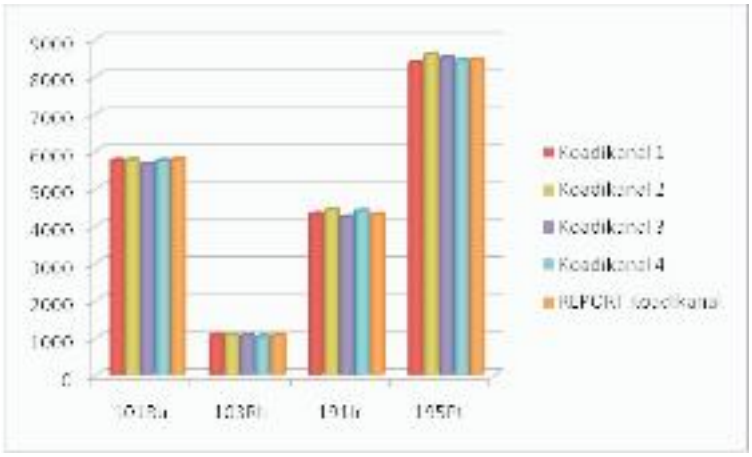

चित्र 2. Koadikanal Metorite **के विश्लेषित परिणामो की पुनः उपादकता तथा पूर्व विश्लेषित परिणामो से तुलना।**

Bhuka: उपरोक्त पूव–विश्लेषित परिणामों के सफलता के आधार पर इस तकनीक का प्रयोग हमने हाल ही के भारतीय परा–पर्थिव चट्टान के विश्लेषण में किया है तथा परिणामो को सारणी 3 में प्रदर्शित किया है, तथा प्लेटिनम समूह तत्वों की मात्रात्मक उपस्थिति के आधार पर हमने Bhuka को IAB iron meteorite के रूप में वर्गीकृत किया है।

तालिका 3. Bhuka Meteorite के विश्लेषित।

	Ru	Rh	Ir	Pt
	ppb	ppb	ppb	ppb
BHUKA	2326	378	1850	2557

परिणाम

1. इस विधि द्वारा 6 में से 4 (*Ru, Rh, Ir, Pt*) का मात्रात्मक विश्लेषण वल्क कांरिते (Allende) तथा iron meteorite (Koadikanal तथा Bhuka) का विश्लेषण किया है।
2. यहाँ प्राप्त परिणामों का पूर्व–विश्लेषित परिणामो से मेल खाना 1 mg विश्लेष्य की मात्रा से विश्लेषण तकनीक की सफलता को दर्शाता है।
3. Allende के सभी चारों विश्लेष्य की मात्रात्मकता आपस में मेल खाती है तथा पूर्व–विश्लेषित परिणामो के लगभग बराबर है।
4. Koadikanal के सभी चारो विश्लेष्य भी मात्रात्मक समानता के आधार पर परिणामों की पुनः प्राप्ति को दिखाती है, तथा इनके प्लेटिनम समूह तत्वों की मात्रा इसके IIE iron Meteorite होने की पुष्टि करती है।
5. प्लेटिनम समूह तत्वों की मात्रात्मकता के आधार पर हमने भारतीय Meteorite Bhuka को IAB के रूप में वर्गीकृत किया है।

इपोमोया कैरिका की पत्तियों के विभिन्न विलायकों के अर्क में एन्टीमाइक्रोबियल गतिविधियों का अध्ययन

शेफाली अरोड़ा[1], दीपक कुमार,[2] तथा पंकज कुमार मिश्रा[1]

[1] यूनिवर्सिटी ऑफ पेट्रोलियम एण्ड एनर्जी स्टडीज़, देहरादून, उत्तराखंड

[2] फार्मास्यूटिकल्स कैमिस्ट्री डॉल्फिन (पी) बायोमेडिकल एवं प्राकृतिक विज्ञान संस्थान, देहरादून

सारांश

हर्बल औषधियां मानव सभ्यता के इतिहास में प्राचीनतम समय से ही दुनिया भर के लगभग सभी देशों की संस्कृतियों एवं सभ्यताओं में स्वास्थ्य लाभ हेतु प्रचुरता से प्रयुक्त की जाती रही हैं। यह आधुनिक सभ्यता के विकास का एक अभिन्न हिस्सा भी रहीं हैं।

इपोमोया (सामान्यतया इसे 'मार्निंग ग्लोरी के रूप में जाना जाता है') गर्म एवं अवतल उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्रों में बहुतायत से पाई जाने वाली लता की एक प्रजाति है। इपोमोया कैरिका का परीक्षण औषधीय पौधों के इथेनॉल अर्क के साथ Antinociceptic एवं Cytotoxicity प्रभाव के लिए किया जा चुका है।

इसी क्रम में इपोमोया कैरिका की पत्तियों के विभिन्न विलायकों के अर्क में antimicrobial गुणों के निरिक्षण हेतु यह शोध कार्य प्रस्तावित है।

इपोमोया कैरिका पौधे की कुचली हुई पत्तियों के अर्क का निष्कर्षण विभिन्न विलायकों के साथ किया गया। आगे इस अर्क का परीक्षण इनके रोगाणुरोधी गतिविधियों हेतु विभिन्न जीवाणु उपभेदों Eschirechia coli, Klebsella pneumonia, Salmonella typhi, Bacillus subtilus, Staphylococcus aurius एवं Aspergillus niger, Penicillum chrysogenum, Sacchomyces cerevesi, Candida albicans आदि कवक उपभेदों के खिलाफ किया गया।

उपरोक्त प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हमने पाया कि इपोमोया कैरिका के पत्तियों के विभिन्न विलायकों के अर्क का प्रदर्शन chloramphenicol and ketoconazole की तुलना में लगभग सभी कवक उपभेदों के मुकाबले बेहतरीन है। यहां हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि Aspergillus niger का कवक उपभेदों के विरूद्ध पेट्रोलियम इथर अर्क ने उत्कृष्ट गतिविधियों का प्रदर्शन किया। इसी प्रकार बेंजीन, क्लोरोफार्म, एसीटोन एवं मीथेनॉल के अर्क का प्रदर्शन Candida albicans एवं Penicilium crysogenum कवक उपभेदों के विरुद्ध एक मानक दवा के रूप में काम करती है।

परिचय

हर्बल इस्म या वानस्पतिक चिकित्सा में जड़ी–बूटियों का प्रयोग उनकी चिकित्सीय या औषधीय गुणों के लिए की जाती है। जड़ी–बूटियों के पौधे एक विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थ का उत्पादन करते हैं, जो मानव शरीर के लिए लाभकारी होता है। विभिन्न प्रकार की बीमारी का इलाज करने के लिए वानस्पतिक चिकित्सा में पौधों के विभिन्न भाग, जैसे पत्तियां, फल, फूल, बीज एवं जड़ आदि उपयोग में लायी जाती हैं। वास्तव में, हर्बल दवा की सफलता का काफी लंबा और सम्मानजनक इतिहास रहा है। प्रतिरोध की वृद्वि जैसी घटनाओं के साथ एंटीबायोटिक दवाओं के लिए पौधो से प्राकृतिक उत्पादों हेतु निर्भरता एक दिलचस्प विकल्प हो सकता है [1, 2] कुछ पौधों के अर्क एवं फाइटोकैमिकल, रोगाणुराधी संपत्तियों के लिए जाने जाते हैं और चिकित्सीय उपचार में बहुत महत्व के हो सकते हैं। पिछले कुछ वर्षो में विभिन्न देशो में महत्त्वपूर्ण अध्ययन किए गए और उनकी प्रभावकारिता प्रदर्शित की गई[3,4]।

इपोमिया, convolvulaceae परिवार (फूल, पौधे) की सबसे बड़ी जाति है और इस परिवार में 500 से अधिक प्रजातियां हैं। इसका नाम ग्रीक शब्द जैसा से उत्पन्न हुआ है जो उसकी twining आदत को दर्शाता है। यह जाति दुनिया में उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्रों में बहुतायत से मिलती है। मानव इपोमिया के alkaloids को विभिन्न प्रकार की चिकित्सा एवं मस्तिष्क से सम्बन्धित यौगिकों के रूप में प्रयोग में ला चुका है। यह जाति विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ जैसे मीठे आलू के tubers और पानी पालक की पत्तियों एवं खाद्य फसलों में प्रयोग हो चुकी है। इपोमिया मोरीटियाना च्यवनप्राश बनाने में प्रयोग लाया जाता है जिसकी वजह से प्राचीन आयुर्वेद में इसे अमृत का नाम दिया गया। इस तरह इपोमिया को विभिन्न प्रकार के रक्त रोग[5] महिलायों में बांझपन, मूत्र संक्रमण, कब्ज एवं gynecological[6] बीमारियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह पौधा Psychedelic[6, 7] anticarcinogenic, Hepato protectivity, oxytoxix [1,2] स्वयं एन्टी ऑक्सीडेंट गुण[9] रखता है। यह पौधा गठिया एवं कवक संक्रमण के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है।[10]

इपोमिया कैरिकिया के इथेनाल के अर्क का इस्तेमाल Governadov valadores लोगों के द्वारा cytotoxicity (BST परख) एंटीऑक्सीडेट गतिविधि चिकित्सकों द्वारा गठिया–विरोधी गुण के परीक्षण के लिए किया जाता [11,13] है। इपोमिया कैरीकिया के antinociceptic प्रभाव का अध्ययन ब्राजील के लोक चिकित्सक ले गणिया एव सूजन[14] के उपचार में किया गया है। इपोमिया कैरिकिया की पत्तियों द्वारा Peroxidase जेल निस्यंदन द्वारा शुद्ध किया गया और इस प्रयोग में G-100 Sephadex, oa Sephadex G-200 स्तम्भ[15] पर अमोलियम सल्फैट एसीतेन fractionation एवं जेल निस्पंदन क्रोमैटोग्राफी का उपयोग किया गया। इसी दिशा में निरंतर प्रयास करके हमने इपोमिया कैरिकिया के विभिन्न विलायकों के अर्क की एन्टीमाइक्रोबियन गातिविधियों का अध्ययन किया जिसे इस शोध पत्र में दर्शाया गया हैं।

सामाग्री एवं तरीके

प्रायोगिक काम इपोमिया कैरिकिया की पत्तियों के विभिन्न अर्क की एन्टीमाइक्रोबियल गतिविधयों का अध्ययन निम्न भागों पर आधारित है:

पौधे की पत्तियों का संग्रह

पौधे की पत्तियां प्रेम नगर देहरादून उत्तराखण्ड भारत के क्षेत्र से और भारतीय रक्षा अकादमी देहरादून के बाहरी क्षेत्र से नवंबर–दिसम्बर के महीने के दौरान एकत्र की गई थीं। संग्रह की गई पत्तियां डॉ एस के श्रीवास्तव (वैज्ञानिक डी/विभागाध्यक्ष) वानस्पतिक सर्वेक्षण केन्द्र भारत (बी.एस.डी.) उत्तरी क्षेत्रीय देहरादून द्वारा प्रमाणित की गईं। एकत्रित पत्तियों को कीचड़ एवं अन्य अवांछनीय सामग्री हटाने के लिए पानी से धोया गया और छाया में सुखाया गया।

अर्क बनाने की विधि

इपोमिया कैरीकिया की 50 सूखी हुयी पत्तियों को अच्छे से कुचल कर पाउडर की तरह बना लिया गया। पत्तियों के पाउडर को एक विशेष प्रकार के यंत्र Soxhlet apparatus में डाकर विलायकों की विभिन्न Polarity के हिसाब से अर्क निकाला गया। विभिन्न विलायकों को बढ़ती हुयी Polarity का क्रम है पैट्रोलियम ईधन, बेन्जिन, क्लोरोकार्म एसीतेन एवं मेथेनॉल।

विभिन्न अर्कों की रोगाणुरोधी गतिविधियों का अध्ययन

इपोमिया कैरिकिया की पत्तियों के अर्क के रोगाणुरोधी गतिविधियों का अध्ययन किया गया। जिसमें पत्तियों के विभिन्न अर्कों की जीवाणुरोधी एवं कवकरोधी गतिविधियों के लिए जांच की गई।

पत्तियों के अर्क की जीवाणुरोधी गतिविधियां : जीवाणुरोधियों के अध्ययन में इस्तेमाल किये गये जीवाणु Escherichia coli, Klebsiella Preumonaie, S. awes, salmonella typhi, Bacillus subtilus है। ये जीवाणु, सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग डाल्फिन बायोमेडिकल संस्थान, माडूवाला देहरादून द्वारा उपलब्ध कराए गए। ये बैक्टीरिया Nutrient agar पर 18–24 घंटे एवं 37 ^{O}C तापमान पर incubate किए गए उपरोक्त बने culture को Nutrient broth में डालकर उसे 37 ^{O}C तापमान में incubate सम्पूर्ण रात के लिए किया गया। यहॉ जीवाणुरोधी गतिविधियों के अध्ययन के लिए Well diffusion तरीका प्रयोग में लाया गया।

Culture media की तैयारी : HI MEDIA प्रयोगशाला, मुम्बई के द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुसार सूक्ष्मजीव मीडिया बनाया गया। यहॉ जीवाणुरोधी गतिविधियों के अध्ययन के लिए Media Mueller hindon agar (MHA) एवं Nutrient broth (NB) लिया गया। इस media को 121 ^{O}C तापमान एवं 15 psi दबाव पर बनाया गया और 15–30 उपद तक Autoclave में sterilized किया गया।

Plate की तैयारी : MHA के 25 ml पूर्व आटोक्लेव को पहले से Sterilize की गई पेट्रीडिश के 90 मी.मी. व्यास पर डालने के पश्चात इन्हें कमरे के तापमान पर जमने के लिए छोड़ दिया गया।

Well diffusion का तरीका : प्लेट्स बनने के बाद, ताजा हुआ microbial broth culture (0.1ml) को MHA Media के उपर डाला गया। इस प्रक्रिया में L आकार का sterilized glam spreader नामक एक विशेष उपकरण laminar flow हेतु प्रयोग में लाया गया। तत्पश्चात 8 मी.मी. व्यास का छेद करने वाले उपकरण की सहायता से 0.1 मी.ली. पत्तियों के विभिन्न अर्क इस छेद में डाले गए। इस विधि के द्वारा विभिन्न अर्क पेट्रीडिश पर लगे हुए जीवाणु को अपनें आसपास क्षेत्र में एक गोल भाग के रूप में दिखाई देता है। पैट्रीडिश को 37 ^{O}C तापमान पर 24 घंटे के लिये गर्म किया गया। उष्मायन के पश्चात अच्छी तरह से या छेद के आसपास निर्मित अवरोध के स्पष्ट क्षेत्र के व्यास मी.मी. में मापे गये और मानक दवा के साथ तुलना की गई।

पत्तियों के अर्क की कवकरोधी गतिविधियाँ : कवक–रोधी अध्ययन के लिए Aspergillus niger, penicillum, chrysogenum, socchromycus, candida albicam आदि कवक लिए गये। इनके culture हेतु डॉल्फिन बायोमेडिकल संस्थान देहरादून के सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग से संपर्क किया गया। यह culture sabourand dextrose agar (SDA) पर तैयार करने हेतु इसे 25^{o}C तापमान पर 72–96 घंटो के लिये उष्मायन पर रखने के पश्चात stock culture को 5 ^{o}C तापमान पर संगृहीत किया गया। ताजा culture प्राप्त करने हेतु sabourand dextrose broth पर culture का एक सववच डाला गया और उसे 72 घंटों के लिए उष्मायन हेतु 25 ^{o}C तापमान पर रखा गया। कवक–रोधी गतिविधियों के अध्ययन हेतु हमने यहाँ भी Well diffusion का प्रयोग किया।

परिणाम एवं चर्चा

विभिन्न अर्कों की रोगाणुरोधी गतिविधियों का अध्ययन

पेट्रोलियम ईथर, बेन्जिन, क्लोरोफार्म, एसीटोन, मेथेनॉल जैसे विभिन्न विलायकों के साथ इपोमिया कैरिकिया के पत्तियों के अर्क जीवाणुरोधी एवं कवक–रोधी गतिविधियों का अध्ययन किया गया।

जीवाणुरोधी गतिविधियाँ : इपोमिया कैरिकिया एवं विभिन्न मानक अर्कों को जीवाणुरोधी गतिविधियों के लिये जांचा गया और निषेध के क्षेत्र को मी. मी. में दर्ज किया गया।

तालिका 1. इपोमिया कैरिकिया के पत्तों की विभिन्न विलायकों के साथ जीवाणुरोधी गतिविधियां।

S. No.	Test organism	Inhibition zone (in mm) Petroleum ether	Benzene	Chloroform	Acetone	Methanol	Standard drug (chloramphenicol)
1.	*E. coli*	-	-	-	-	22	25
2.	*Klebsiella pneumonia*	-	-	-	-	11	16
3.	*Bacillus subtilus*	-	15	-	-	10	26
4.	*Salmonella typhi*	-	-	-	-	13	25
5.	*S.aureus*	-	-	-	-	8	34

उपरोक्त तालिका 1 में इपोमिया कैरिकिया के पत्तों के अर्क के जीवाणुरोधी गतिविधि व्यवहार का प्रदर्शन किया गया हैं। इस तालिका से स्पष्ट होता है कि केवल मेथेनॉल अर्क, ई–कोली एवं klebsilla pneumonaie के लिए अच्छी जीवाणुरोधी गतिविधियाँ दिखाते हैं।

कवक–रोधी गतिविधियाँ : इपोमिया कैरिकिया के पत्तियों के विभिन्न अर्क एवं मानक दवा chlorampherical के विभिन्न कवक के strains का परीक्षण किया गया और निषेध के क्षेत्र को मी.मी. में दर्ज किया गया।

तालिका 2. इपोमिया कैरिकिया के मेथेनॉल अर्क एवं मानक दवा chlorampherical की कवक–रोधी गतिविधियां।

S. No.	Test organism	Inhibition zone (in mm) Pet. ether	Benzene	Chloroform	Acetone	Methanol	Standard drug (Ketoconazole)
1.	*Aspargilus niger*	24	-	-	23	16	19
2.	Candida albicans	-	20	18	26	24	12
3.	Sacchromyces cervisiae	-	21	-	24	25	30
4.	Penicillium *chrysogenum*	-	30	20	22	20	21

उपरोक्त तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि पेट्रोलियम ईथर एवं एसीटोन का अर्क A. niger के विरुद्ध शानदार प्रदर्शन करता है। candida albicans के विरुद्ध पेट्रोलियम ईथर को छोड़कर सभी प्रयोग में लाये गये अर्क बेहतर प्रदर्शन दिखाते हैं। परंतु बेजीन, ऐसीटोन एवं मेथेनॉल अर्क s. cerevisine के विरूद्ध भी अच्छी गतिविधि दिखाते हैं। बेन्जिन एवं ऐसीटोन अर्क p. chrysogenum के विरुद्ध उत्तम गतिविधि दिखाते हैं और क्लोरोफार्म एवं मेथेनॉल भी p. chrysogenum के मुकाबले अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण प्रायोगिक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पेट्रोलियम ईथर एवं एसीटोन का अर्क A.niger के विरुद्ध बेन्जिन, क्लोरोफार्म, एसीटोन व मेथेनॉल का अर्क c. albicam के विरुद्ध एवं बेंजिन व एसीटोन का अर्क p. chrysogenum मानक दवा के रूप में प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि इनका निषेध क्षेत्र मानक दवा chlorampherical से ज्यादा है।

संदर्भ

1. Lu Y, Zhao YP, Wang ZC, Chen SY, Fu CX Composition and antimicrobial activity of the essential oil of Actinidia macrosperma from China. Nat Prod Res 2007, 21, 227-233.
2. Mbwambo ZH, Moshi MJ, Masimba PJ, Kapingu MC, Nondo RS Antimicrobial activity and brine shrimp toxicity of extracts of Terminalia brownii roots and stem. BMC Complement Altern Med 2007, 7-9.
3. Benoit-Vical F, Grellier P, Abdoulaye A, Moussa I, Ousmane A, Berry A. In vitro and in vivo antiplasmodial activity of Momordica balsamina alone or in a Traditional Mixture. Chemotherapy 2006; 52, 288-292.
4. Senatore F, Rigano D, Formisano C, Grassia A, Basile A, Sorbo S. Phytogrowth-inhibitory and antibacterial activity of Verbascum sinuatum. Fitoterapia 2007, 78, 244-247.
5. Nagendra Prasad K, Shivamurthy GR Aradhya SM Ipomoea aquatica, An Underutilized Green Leafy Vegetable: A Review, International Journal of Botany, 2008, 4, 123-129.
6. ayurvedicmedicinalplants.com/index.php?option=com.
7. Uva RH., Neal JC, Ditomaso JM. Weeds of the Northeast, Ithaca, NY, Cornell University Press, 1997, 214-217
8. Tart, Charles T. Major, Psychedelic Drugs: Altered states of consciousness, 3rd ed.. San Francisco (Harper), 1990, 454-460
9. Khatiwora E, Adsul VB, Kulkarni M, Deshpande NR, Kashalkar RV Antibacterial activity of Dibutyl Phthalate: A secondary metabolite isolated from Ipomoea carnea stem journal of Pharmacy Research 2012, 5(1), 150-152.
10. Ruckmani Devi S, Chitra M and Jaya mathi P, Hepatoprotectivity and an antioxidant study of Ipomoea hederacea on experimentally induced hepatotoxic rats, Recent Research in Science and Technology 2010, 2(1), 17-19.
11. Ferreira AA, Silveira D, Alves RB, Oliveira PM, Raslan D.S. Constituents of Ipomoea cairica ethanolic extract, Chem Nat Compounds, 2005, 41-465.
12. Rong-Jyh L, Chung- Yi C, Wen-Li L Cytotoxic, Activity of Ipomoeia cairica, Natural product Research, 2008, 22(9), 747-753
13. Paska C, Innocenti G, Ferlin M, Kunvari M, Laszlo M, Pinoresinol from Ipomoea cairica cell cultures, Natural Product Letters, 2002, 16(5), 359-363.
14. Ferreira AA , Amaral FA, Duarte IDG, Oliveira PM, Alves RB, Silveira D, Antinociceptive effect from Ipomoea cairica, Journal of Ethnopharmacology, 2006, 105(1-2), 148-153.
15. Zheu-fu L, Li-hong C, Wei-qin Z, Process from Ipomoea cairica (L) SW. Isolation, purification and some properties, Process Biochemistry 1996,31(5), 443–448.

मनोविज्ञान तथा भर्ती

आंचल भटनागर एवं विक्टोरिया रोसेन्थल
फेडरल यूनिवर्सिटी ऑफ सांता मारिया, ब्राजील

सारांश

इस लेख का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के महत्त्व को समझना है। इसमें सामान्यतः प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ प्रचलित परीक्षणों के उदाहरण दिए गए हैं तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण के लाभ तथा हानियों को समझने के प्रयास किए गए हैं। इस लेख में भर्ती के दौरान प्रयोग में लाई जाने वाली नई मूल्यांकन तकनीकों के संबंध में हमें जागरूक बनाने के प्रयास भी किए गए हैं और वे तकनीकें कितनी उपयुक्त हैं, इस संबंध में निर्णय करने के हमें अवसर प्रदान किए गए हैं। आरंभ में इस लेख में यह बताया गया है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण क्या है तथा उनका प्रयोग क्यों आरंभ किया गया। तत्पश्चात इस लेख में विभिन्न परीक्षणों जैसे कि ऐल्फा–बीटा परीक्षण, मायर्स–ब्रिग्स प्रकार के संसूचक तथा आरंभिक अभिक्षमता परीक्षावली के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं जिनकी सहायता से और अधिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है तथा लेख में अंततः इस प्रकार के परीक्षण के लाभ तथा हानियों पर विशेष रूप से चर्चा की गई है। यह लेख इस परीक्षण विधि के संबंध में आधारभूत तथ्यों तथा उनके मूल्यों को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

परिचय

अकेले भारत में ही 100% तक पहुंच रहा असमंजस उत्पन्न करने वाला विभेदक प्राप्तांक (कट ऑफ स्कोर), अर्ध–संगत आरक्षणों का पुरजोर समर्थन तथा 3.2 मिलियन छात्रों द्वारा प्रतिवर्ष स्नातक की उपाधि प्राप्त करना इस बात पर प्रकाश डालता है कि हम और हमारी आने वाली पीढ़ियां किस प्रकार की व्यापक प्रतिस्पर्धा का सामना करने जा रही हैं। किंतु हमसे भी अधिक कारुणिक स्थिति उन तथाकथित उच्च शिक्षा प्राप्त, बौद्धिक, आत्माभिमान से भरे लोगों की है जो अपने आरामदेह चैम्बरों में बैठकर इन स्नातक शिक्षाप्राप्त नवयुवकों तथा अन्यों के भविष्य और उनके कल के बारे में निर्णय करते हैं–उन्हें नौकरियों के लिए भर्ती करते हैं।

कर्मचारी किसी भी संगठन की संरचनात्मक तथा कार्यात्मक इकाई होते हैं। किसी भी संगठन के सुचारु तथा उत्तरोत्तर कार्यकरण का उत्तरदायित्व उस संगठन में कार्य कर रहे कर्मचारियों तथा उनके बीच समन्वयन पर निर्भर करता है। अतः जब किसी एक समुदाय से इतनी अधिक आशा की जाती हो तो एक जैसे दिखने वाले उम्मीदवारों में से सही व्यक्ति को चुनना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। किंतु इस बात पर ध्यान देना भी एक रोचक तथ्य है कि इस चुनौती के साथ समय का प्रतिबंध भी जुड़ा होता है, किसी व्यक्ति के साथ साक्षात्कार औसतन लगभग 30 से 40 मिनट की अवधि के बीच समाप्त हो जाता है जिसके आधार पर उस व्यक्ति को नौकरी के लिए भर्ती किए जाने के संबंध में निर्णय लिया जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसे अभिप्रेरित करने वाले कारकों, उसकी बौद्धिक क्षमता और उसके अन्य गुणों के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए मात्र 30–40 मिनट का समय उपलब्ध होता है जिसके दौरान यह कार्य कर पाना वास्तव में अत्यधिक कठिन प्रतीत होता है। इस चुनौती का सामना करने के लिए, संगठन के भावी कर्मचारी की संवेदनशीलता या उसकी स्मृति क्षमता या बौद्धिक

क्षमता या अभिक्षमता या व्यक्तित्व आदि के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिक या मनोमितिक परीक्षण–या किसी अन्य मानकीकृत प्रक्रिया को प्रयोग में लाया जाता है।

मनोमितिक परीक्षणों को निर्धारित करने के लिए प्रथम विश्व युद्ध ने एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाई। कर्मचारियों की भर्ती करने के लिए प्रयोग में लाया गया पहला परीक्षण ऐल्फा–बीटा परीक्षण था जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना द्वारा कतिपय पदों पर भर्ती करने, नेतृत्व वाले पदों तथा अफसरों के रैंक में भर्ती हेतु प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु उपयुक्त व्यक्ति का चयन करने के लिए प्रयोग में लाया गया। ऐल्फा परीक्षण ऐसे व्यक्तियों की भर्ती करने के लिए प्रयोग में लाया गया जो आसानी से पढ़–लिख सकते थे तथा इस परीक्षण के द्वारा संबंधित व्यक्ति की शाब्दिक, सांख्यिकीय एवं निर्देशात्मक क्षमताओं को दर्ज किया गया जबकि बीटा परीक्षण निरक्षर व्यक्तियों या अंग्रेजी नहीं बोलने वाले व्यक्तियों के लिए तैयार किया गया था। यह परीक्षण कालांतर में विकसित किए गए अनेक अन्य मूल्यांकन परीक्षणों के लिए एक आदर्श सिद्ध हुआ। इस परीक्षण की कुछ मदों का एक नमूना नीचे दिया गया है।

- राइफल की तुलना में मशीनगन की मारक क्षमता अधिक होती है क्योंकि

  क. इसका आविष्कार अभी हाल ही में किया गया है।

  ख. इसे अधिक तेजी से दागा जा सकता है।

  ग. इसे चलाने के लिए किसी अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।

- नीचे दिए गए दोनों मदों के संबंध में परीक्षार्थी पहले प्रत्येक मद के सामने लिखे गए वाक्य के शब्दों को सही क्रम में लिखें और तत्पश्चात यह बताएं कि वाक्य सत्य है अथवा असत्यः

  क. खुश है व्यक्ति बीमार हमेशा रहता एक।

  ख. प्रति नहीं हिम पात होता दिन।

ऐल्फा–बीटा परीक्षणों के साथ ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व, अभिक्षमता, सृजनात्मकता, बौद्धिकता आदि की जांच करने के लिए अनेक परीक्षण भी विकसित किए गए। वर्तमान में न केवल कतिपय मानसिक रोगों की पहचान करने के लिए बल्कि किसी व्यक्ति में मौजूद विभिन्न गुणों की पहचान करने के लिए भी विश्वभर में इन परीक्षणों का व्यापक उपयोग किया जाता है। इन परीक्षणों के माध्यम से न केवल भर्ती किए जाने के संबंध में बल्कि पदोन्नतियों के संबंध में भी निर्णय लिए जा सकते हैं। इससे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि चूंकि परीक्षण पर इतना कुछ निर्भर करता है, अतः किसी व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता को ज्ञात करना ही पर्याप्त नहीं हो सकता। व्यक्ति की केवल बौद्धिक क्षमता तथा संज्ञानात्मक क्षमता की बजाय उसकी वास्तविक जीवन की परिस्थितियों तथा उसके द्वारा सामना की जा रही चुनौतियों के बारे में जानना काफी अधिक जरूरी है। उच्च बौद्धिक क्षमता से युक्त व्यक्ति यदि तुनकमिजाजी हो या वह कार्य करने में अक्षम हो तो ऐसा व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की तुलना में अधिक उपयोगी प्रतीत नहीं होता जो औसत बौद्धिक क्षमता से युक्त हो किंतु जो उत्तम सहयोगात्मक कौशल से परिपूर्ण हो। ये छोटी–छोटी बातें जो हमें अन्यों से अलग करती हैं, हमारे "व्यक्तित्व" का निर्माण करती हैं।

अल्बर्ट आइन्सटीन ने ठीक ही कहा है कि "हमें अपनी बौद्धिक क्षमता को अपना भगवान बनाने के लिए कृतसंकल्प नहीं होना चाहिए; वास्तव में यह एक सशक्त कारक है किंतु इससे हमारे व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होता।"

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व से हमें इस बात की पूरी–पूरी जानकारी मिल जाती है कि वह व्यक्ति कतिपय परिस्थितियों में कैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा, किस प्रकार उस परिस्थिति के साथ

तालमेल स्थापित करेगा और कैसे निपटेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के अभिप्रेरण, विचार तथा व्यवहारगत प्रतिरूपों, अभिवृत्तियों, अभिक्षमता या रुझान आदि पर बल देते हुए विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व परीक्षणों को विकसित किया है। हालांकि व्यक्तित्व परीक्षण को मुख्य रूप से एक मुख्य परीक्षण नहीं माना जा सकता क्योंकि लोग सामाजिक दृष्टि से वांछनीय रूप में उत्तर देने का प्रयास करते हैं या उनके द्वारा दिया गया उत्तर उनकी मानसिक दशा के अनुसार भिन्न हो सकता है; तथापि इन परीक्षणों से व्यक्ति की सामान्य सोच तथा उसकी कार्य प्रणाली के बारे में काफी हद तक जानकारी प्राप्त हो सकती है। उदाहरण के लिए, सर्वाधिक सामान्य रूप में प्रयोग में लाए जाने वाला मायर्स–ब्रिग्स प्रकार के संसूचक (एम बी टी आई)[10] का उल्लेख किया जा सकता है, इस प्रकार के परीक्षण में व्यक्ति को अपने बारे में सूचना उपलब्ध कराने के लिए एक प्रश्नावली उपलब्ध कराई जाती है जो इस बात की जानकारी प्राप्त करने के लिए तैयार की जाती है कि व्यक्ति अपने आसपास की परिस्थितियों और परिवेश को समझ पाने में तथा तदनुसार निर्णय लेने में कितना सक्षम है। यह प्रणाली विशेष रूप से संगत प्रणाली है क्योंकि हमारे गुण प्रतिरूप हमारे व्यक्तित्व को परिलक्षित करते हैं। घटनाओं के संबंध में आमतौर पर नकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति अधिक अवसादग्रस्त माना जाता है तथा अभिप्रेरणों की सहायता से ऐसे व्यक्ति को अधिक प्रेरित नहीं किया जा सकता। एम बी टी आई के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली कुछ मदें निम्नवत हो सकती हैं:

- मैं लोगों की सहायता करना पसंद करता हूँ।
  हां/नहीं
- मैं हमेशा समय पर उपस्थित होता हूँ।
  हां/नहीं
- मैं कार्यों को सही रूप में करना पसंद करता हूँ।
  हां/नहीं

प्रत्येक परीक्षण में व्यक्ति को सामान्य वक्र द्वारा निरूपित आलेख पर प्रदर्शित किया जाता है, जिसमें अधिकांश व्यक्ति वक्र के केंद्र में अवस्थित होते हैं जो औसत जनसंख्या को व्यक्त करता है तथा इस केंद्र के दोनों ओर चरम प्रकृति के व्यक्तियों को प्रदर्शित किया जाता है, जैसाकि नीचे दर्शाया गया है। इस मूल्यांकन या अंतिम प्राप्तांक द्वारा कर्मचारियों की भर्ती करने और उन्हें पदोन्नत करने के संबंध में निर्णय करने में सहायता प्राप्त होती है। यहां यह नोट करना भी अत्यधिक रोचक है कि किसी व्यक्ति को आलेख के अंतिम सिरों पर रखना ही हमेशा लाभदायक पहलू सिद्ध नहीं होता। सामान्यतः कुछ व्यक्ति "संबंधित पद के लिए बहुत अधिक योग्य" होने के बावजूद कतिपय कारणों से भर्ती नहीं किए जाते। आलेख के अंतिम सिरों पर रखे जाने से अनेक प्रकार की जटिलताएं भी उत्पन्न होती हैं जैसेकि प्रायः यह बात जानकारी में आती है कि उच्च बौद्धिक क्षमताओं से युक्त व्यक्ति भी प्रायः पद से संबद्ध कार्यों के निर्वहन में अक्षम पाए जाते हैं; ऐसे व्यक्ति अपने बारे में अत्यधिक आश्वस्त होते हैं तथा केवल अपने द्वारा किए गए निर्णयों को ही महत्त्व देते है। इस प्रकार की बातें किसी संरचित संगठन में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न करती हैं। अतः अत्यधिक योग्य होना भी उतना ही खतरनाक है जितना कि बिल्कुल योग्य न होना।

इस प्रकार के परीक्षण इतने कम समय के भीतर अप्रत्याशित रूप से अत्यधिक स्वीकार्य हो गए जिसका मुख्य कारण यह था कि इन परीक्षणों के माध्यम से लैंगिक आधार पर तथा प्रजातीय आधार पर बिना कोई भेदभाव किए कर्मचारियों की भर्ती करना संभव हुआ। अतः पूर्वाग्रह से ग्रस्त इस विश्व में जहां किसी साक्षात्कार के दौरान व्यक्ति के बारे में किए जाने वाले अधिकांश मूल्यांकन इस बात को ध्यान में रखकर किए जाते हैं कि संबंधित व्यक्ति ने किस प्रकार की पोशाक पहनी है या वह व्यक्ति

कितनी गर्मजोशी से हाथ मिलाता है। भर्ती किए जाने के लिए व्यक्ति में मौजूद कतिपय गुणों को ज्ञात करने के लिए एक निष्पक्ष तरीके को अपनाना आवश्यक है। किसी भी संगठन का मानव संसाधन विभाग प्रायः इस कार्य के लिए किसी संगठनात्मक–व्यवहार के संबंध में जानकार किसी मनोवैज्ञानिक की सेवा लेता है जो इस प्रकार के परीक्षण को करने के लिए तथा उसके निर्वचन में प्रशिक्षित होता है। वर्तमान में अनेक प्रकार के परीक्षण प्रचलन में हैं किंतु उन पर आने वाली उच्च लागत को देखते हुए अनेक संगठन उन परीक्षणों को प्रायः प्रयोग में नहीं ला रहे हैं। किंतु अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, यूनाइटेड किंगडम तथा अन्य विकसित देशों में इन परीक्षणों का काफी प्रभावी रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इन परीक्षणों में न केवल किसी व्यक्ति के संबंध में मिथ्या व्याख्या करने का अवसर समाप्त किया जाता है बल्कि इस प्रकार के परीक्षणों को एकसाथ एक बड़े समूह के लोगों पर भी प्रयोग में लाया जा सकता है जिससे आगे किए जाने वाले साक्षात्कार के लिए उम्मीदवारों की एक छोटी सूची तैयार की जा सकती है। मैंने इस बात का व्यक्तिगत तौर पर तब अनुभव किया जबकि साक्षात्कार के लिए चयन किए जाने से पूर्व मुझे रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स नामक परीक्षण से होकर गुजरना पड़ा – यह एक ऐसा परीक्षण है जो व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता, किसी बात को समझने की क्षमता तथा उसकी तार्किक क्षमता को ज्ञात करने के लिए तैयार किया गया है। मेरा मानना है कि इस परीक्षण के माध्यम से परीक्षकों को इस बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है कि कौन विद्यार्थी पाठ्यक्रम सामग्रियों के साथ इष्टतम स्तर तक समन्वय स्थापित कर सकता है। अतः यदि मान लिया जाए कि 500 प्रतिभागियों में से केवल 300 प्रतिभागियों को ही साक्षात्कार के लिए चुना गया तो इससे न केवल समय में बचत हुई बल्कि इस प्रकार के परीक्षण को अपनाने से चयन की प्रक्रिया पूर्णतः पूर्वाग्रहरहित रही तथा पूरी तरह से निष्पक्ष रही।

इसी प्रकार सेना, सशस्त्र सेवा व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षावली (ए एस बी) में भर्ती के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली परीक्षा व्यक्ति के शब्दज्ञान, गणितीय तर्कबुद्धि, सामान्य विज्ञान, पैराग्राफ को समझने की शक्ति आदि के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए तैयार की गई है जबकि भावी पायलटों के लिए तैयार की गई पायलट अभिक्षमता परीक्षावली (पी ए बी टी) उम्मीदवारों की मानसिक सजगता, विश्वास, स्फूर्ति आदि, जिसे किसी अन्य परीक्षण विधि द्वारा ज्ञात कर पाना कठिन है, की जानकारी प्राप्त करने के लिए तैयार की गई। अतः प्रत्येक परीक्षण का निर्धारण इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाता है कि संगठन किसी व्यक्ति में किन गुणों की तलाश कर रहा है तथा यदि उपयुक्त विधि का प्रयोग किया जाए तो थोड़ी समय अवधि के भीतर ही उम्मीदवारों के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त की जा सकती है। यह बात भी ध्यान में रखी जानी चाहिए कि परीक्षण विधियां किन्हीं दो व्यक्तियों की तुलना करने के लिए विकसित नहीं की जातीं, बल्कि इन्हें किसी एक व्यक्ति की इसी

प्रकार के परीक्षण में भाग लेने वाले उसकी आयु की औसत जनसंख्या के साथ उस व्यक्ति की तुलना करने के लिए तैयार की जाती है। अतः परीक्षण से किसी एक "बेहतर" व्यक्ति का चयन नहीं किया जाता बल्कि इसके द्वारा व्यक्ति के कामकाज के तरीके की व्याख्या की जाती है जिसे उस व्यक्ति के संबंध में निर्णय करने या उसकी अन्य व्यक्तियों के साथ तुलना करने के लिए प्रयोग में नहीं लाया जाना चाहिए।

यद्यपि ये परीक्षण संगठनों के लिए एक अत्यधिक उपयोगी साधन प्रतीत होते हैं, किंतु परीक्षण की इन विधियों की अपनी–अपनी त्रुटियां भी हैं। मानव के जटिल मस्तिष्क और उसके कार्यकरण के संबंध में किसी एक सरल परीक्षण के माध्यम से पूरी जानकारी प्राप्त कर पाना अत्यधिक कठिन है, परीक्षण की किसी भी विधि से हम किसी व्यक्ति के बारे में सतही जानकारी ही प्राप्त कर सकते हैं तथा उस व्यक्ति के बारे में एक बहुत बड़ी जानकारी से हम अनभिज्ञ रहते हैं। अतः हम व्यक्ति के केवल एक पहलू के बारे में ही जानकारी जुटा पाते हैं जो उस व्यक्ति में उसे उपलब्ध कराई गई परवर्ती कार्य दशाओं में अभिव्यक्त नहीं भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, यह संभव है कि कोई व्यक्ति उच्च बौद्धिक क्षमता से परिपूर्ण हो किंतु उसके कार्य की दशाएं उसके विकास तथा उसके विचारों को बाधित कर रही हों। कहने का यह अर्थ है कि किसी भी परीक्षण के परिणामों पर पूरी तरह से निर्भर करने पर हम कतिपय बहुमूल्य सूचनाओं से वंचित रह सकते हैं जो बाद की परिस्थितियों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं। इसके अतिरिक्त, परीक्षण के परिणामों के साथ ही प्रायः व्यक्ति को एक "पहचान देने (लेबलिंग)" या उस पर लांछन लगाने का दौर भी शुरू होता है। जिन व्यक्तियों के पास उच्च बौद्धिक क्षमता (आई क्यू) होती है, वे आत्मश्लाघा के शिकार होते हैं और अपने बारे में काफी ऊंची–ऊंची बातें सोचते हैं। इसी प्रकार औसत बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्ति प्रायः इस विचार को भी अपने मन में नहीं लाते कि वे कुछ ऐसा कर सकते हैं जो अविश्वसनीय हो। इसके फलस्वरूप कार्यस्थल पर एक अनावश्यक पद सोपान निर्मित होता है। यहां इस बात को भी ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी एक परिस्थिति से निपटने में कोई व्यक्ति कितना सक्षम है, इसके बारे में किसी एक परीक्षण के माध्यम से जानकारी प्राप्त करना संभव नहीं होता, हालांकि इससे हमें यह ज्ञात हो सकता है कि उस व्यक्ति का सामान्य आचरण और कार्यकरण का प्रतिरूप कैसा होगा, हालांकि ऐसे किसी परीक्षण से व्यक्ति को अभिप्रेरित करने वाले कारकों तथा उसकी रुचियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाना कठिन है। वस्तुनिष्ठ तथा आसानी से प्रयोग में लाए जाने को ध्यान में रखकर तैयार किया गया परीक्षण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, तथापि इस प्रकार के किसी भी परीक्षण के साथ मूल्यांकन की अन्य विधियों जैसेकि साक्षात्कार आदि को भी प्रयोग में लाया जाना चाहिए ताकि व्यक्ति के संबंध में एक पूरी जानकारी प्राप्त की जा सके तथा उसमें अंतर्निहित विशेषताओं को भी ज्ञात किया जा सके।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण विकास के एक नए चरण की शुरुआत है जो एक ऐसी सीमा तक पहुंच चुका है जिसे प्रयोग में लाकर किसी व्यक्ति की क्षमताओं के बारे में जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकती है। प्रयोग में लाए जाने वाले विभिन्न परीक्षणों के समक्ष उपस्थित होने वाली चुनौतियों के बावजूद इन परीक्षणों से होने वाले लाभों तथा उनकी शुद्धता को ध्यान में रखते हुए उन्हें व्यापक पैमाने पर प्रयोग में लाया जा रहा है। अतः मनोवैज्ञानिक परीक्षण तथा मूल्यांकन की कुछ अन्य विधियां किसी व्यक्ति के बारे में जानने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली नूतन तथा प्रभावी विधियां हैं, जिन्हें प्रयोग में लाए जाने से न केवल व्यक्ति के बारे में गलत जानकारी प्राप्त होने की संभावना कम होती है बल्कि इन विधियों को प्रयोग में लाए जाने से व्यक्ति की योग्यता

तथा उसके कामकाज के बारे में एक विहंगावलोकन किया जा सकता है जो उस व्यक्ति के साथ कुछ बैठकों के दौरान समझ पाना अन्यथा कठिन है।

सदर्भ

1. फ्जेचर, रिचर्ड, हैटी, जॉन, इंटेलीजेंस टेस्टिंग– पृष्ठ 22.
2. ऐल्फा टंस्ट http://officia;_asvab.com/samples_rec.htm-
3. लिसा ए.सुजुकी, हैंडबुक ऑफ मल्टीकल्चरल असेसमेंट, पृष्ठ 402.
4. कैम्फुआज, रैड। क्लिनिकल एसेसमेंट ऑफ चाइल्ड एंड एडोलोसेंट इंटेलीजेंस, पृष्ठ 460.

आधुनिक एंटीना विनिर्माण तकनीकः एक विश्लेषण

मनीषा कुंडु एवं मनोज दुहन
डी सी आर यू एस टी, मूरथल, सोनीपत, हरियाणा

सारांश

वायरलेस उपभोक्ताओं का RF प्रदर्शन विभिन्न प्रकार की रेडियो प्रणाली एंटीना से बहुत ज्यादा प्रभावित है। प्रत्येक संचार प्रणाली के लिए एंटीना सिस्टम उच्च किस्म की सेवा प्रदान करने वाला, कम लागत वाला और उस प्रणाली के अनुकूल होना चाहिए। इस पत्र में ऐसी तकनीक की एंटीना निर्माण विधियों का वर्णन किया गया है जो आय उपभोक्ताओं, वायरलेस बाजार, और उत्पाद श्रेणियों की जरूरत है। ये अद्वितीय निर्माण प्रक्रियाएँ निम्नलिखित है–

1. IML (इन मॉल्ड लेबलिंग)
2. P-P (प्रिंट एंड प्लेट सुचालक निर्माण विधि)
3. उच्च प्रदर्शन व कम लागत वाले RF सब्सट्रेट।

इन निर्माण प्रक्रियाओं के प्रोटोटाइप के अनुरूप इनके बैंचमार्क एंटीना संरचना (आधुनिक और पारंपरिक निर्माण प्रक्रिया) और इनको RF प्रदर्शन में तुलना इस पत्र में की गई है। यह तुलना एंटीना के पैसिव मैट्रिक्स जैसेः विकिर्ण दक्षता, एंटीना लाभ पैटर्न, प्रतिबाध मैचिंग, एंटीना, प्रदर्शन इत्यादि में की गई है। इस पत्र के अनुसार, एंटीना के RF प्रदर्शन को बेहतर बनाने की नई तकनीकों की खोज इनकी पैकेजिंग और असैंबलिंग के महत्व को ध्यान में रखकर की जा सकती है।

परिचय

पिछले कुछ वर्षों से उपभोक्ताओं की मांगो जैसे : प्रदर्शन, विश्वसनीयता, कम लागत के कंज्यूमर ग्रेड वायरलेस उत्पादों की सुविधा में तेजी से वृद्धि हुई है। ड्रॉप काल, उपमानक डेटा दर व वायरलेस उत्पादों की सीमित ऑपरेटिंग रेंज की समस्या आजकल बहुत बढ़ गई है। एंटीना निर्माण में थोडी–सी कम या फिर एंटीना स्थापित करने की कोई कमी अच्छे से अच्छे रेडियो सिस्टम (प्रणाली) को ठप बना सकती है। इन कठिन ऑपरेटिंग परिस्थितियों में एक सकारात्मक उपयोगकर्ता को उपभोक्ता डिवाइस के एंटीना को पर्याप्त रेएिसन दक्षता (हॉस्ट रेडियो सिस्टम के साथ मैचड) बीम प्रदान करनी चाहिए।

इन चुनौतीपूर्ण संचारण आवश्यकताओं के अलावा एंटीना इंजीनियरों को एंटीना आकार, इंटर ऑपरेबलिटि (पास वाले एंटीना और रेडियो प्रणाली के साथ), आर एफ स्थिरता/रिपिटेबिलटि यांत्रिक विश्वसनीयता और परिष्करण व कम कीमत जैसी हमेशा रहने वाली कठिनाइयों का सामाना करना पडता है।

इसके अतिरिक्त स्पेस डिवाइस डिजाइन इंजीनियरों को आक्रामक पैकेजिंग के साथ अन्य महत्वपूर्ण उपकरण घटकों (परिषण लाइन, प्रदर्शन आयकन, स्पीकर, कैमरा इत्यादि) का ध्यान रखना पडता है। उन्हें डिवाइस के लिए उपलब्ध जगह में ही कम से कम घटकों को ज्यादा से ज्यादा प्रयोग के लिए लगाना पडता है।

अतिरिक्त डिजाइन चुनौतियों और अगली पीढी की डायवर्सिटी विविधता जरूरतों को देखते हुए हुए MIMO–आधारित वायरलेस उपकरणों को बनाने के लिए एंटीना इंजीनियरों को आधुनिक निर्माण

प्रक्रिया प्रयोग में लाने की जरूरत होती हैं ऐसी तकनीक जो उच्च रेडिएटिड एंटीना प्रदर्शन, आसान पैकेजिंग, बहुत ज्यादा विश्वसनीय सूत्र, आसानी से सिग्नल दोहराने की क्षमता, त्वरित परियोजना कार्यक्रम और कम लागत के उपकरण दे सके।

इन कई गुणा डिजाइन की आवश्यकताओं को देखते हुए, एक बहुत अच्छी तकनीक विकसित की गई है जो एक ऐसा सफल और उन्नत किस्म की मल्टी–रेडियो डिवाइस बना सके, जो उपभोक्ता बाजार की मांगो को पूरा करने वाला हो। इनसे लक्षित उपकरणों के डिजाइन व निर्माण में तेजी व सुविधा आ सकती है।

इन आधुनिक अद्वितिय निर्माण तकनीकों में IML, प्रिंट और प्लेट सुचालक निर्माण, उच्च प्रदर्शन व कम लागत के सबस्ट्रेट शामिल हैं, जो इन सब चुनौतियों को स्वीकार करने वाला एंटीना बना सकती है।

यह पत्र इन आधुनिक निर्माण प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें प्रत्येक तकनीक की सुविधा और क्षमता का तुलनात्मक ढंग से विवरण दिया गया है। इसमें प्रत्येक भाग प्रक्रिया के तकनीकी खोज, योग्यता और क्षमता का प्रारूप तैयार किया गया है और बेंचमार्क एंटीना (आधुनिक व पारंपरिक तरीकों से बना) के लिए प्रयोग होने वाले घटकों का अवलोकन किया गया है। इसमें प्रत्येक निर्माण प्रक्रिया की विशेषताओं, गुणों, उत्पाद कारकों और डिवाइस प्रयोग क्षेत्र के आरंभ से लेकर समापन तक वर्णन है।

वर्तमान स्थिति

इस पत्र के अनुसार, एंबेडेड एंटीना को बनाने के लिए औधोगिक क्षेत्र में मोहर लगी धातु या फलेक्स फिल्म के वाहक वाले एंटीना का निर्माण किया जा रहा है, जो एंटीना धातु के सही होने व ज्यादा समय तक चलने का भरोसा दिला सके। यह प्रक्रिया अपनी उच्च मात्रा निर्माण (HVM) में कम लागत की वजह से औधोगिक क्षेत्र में प्रचलित है। यह प्रक्रिया काफी सफल रही है, परंतु फिर भी इसमें एक कमी है।

एंटीना निर्माता इस बात से अवगत है कि उत्पाद डिजाइन के परिपक्व होने के लिए एंटीना तत्व में बदलाव की जरूरत है क्योंकि मोहर लगी धातु वाले ये एंटीना हीट स्टेकस पर आधारित हैं (धातु को वाहक पर रखने के लिए), जिससे हीट स्टेकस की वजह से रेडिएटिंग तत्व डिजाइन में बदलाव की जरूरत है और इसके लिए प्लास्टिक वाहक को दोबारा बनाना पडेगा। अगर इस तरह के बहुत ज्यादा बदलाव निर्माण चक्र पर किए जाए तो निर्माण कीमत बहुत ज्यादा बढ़ जाएगी।

मोहर लगे प्लास्टिक एंटीना की तरह दो शॉट मार्ल्डिग (ढ़लना) विधि एक आम निर्माण विधि है जिसमें दो शॉट मार्ल्डिग में दो अलग तरह के प्लास्टिक यौगिकों का उपयोग किया जाता है। इनमें से एक ऐसा होता है जिसका उत्प्रेरक चढ़ाया जाए और दूसरा रेडिएटिव तत्व की तरह प्रयोग होता है। पहली मॉल्डिंग प्रक्रिया में कुचालक वाहक बनाया जाता है और उत्प्रेरक प्लास्टिक रेडिएटिंग

चित्र 1. मोहर लगा प्लास्टिक वाहक एंटीना।

तत्व की तरह प्रयोग किया जाता है। मॉल्डिंग प्रक्रिया पूरी होते ही इसके उपर उत्प्रेरक चढ़ाया जाता है। रेडिएंटिग तत्व के डिजाइन के दौरान आगे संशोधन के लिए वाहक मॉल्ड या फिर वाहक मॉल्ड और रेडिएटिंग मॉल्ड, दोनों में परिवर्तन की आवश्यकता है।

वर्तमान में रिलिविंग वाहक को नया स्वरूप देने के लिए रेडिएटिंग तत्व में बदलाव किया जाता है और फलेक्स फिल्म प्लास्टिक वाहक प्रयोग में लाया जाता है। इस दृष्टिकोण से वाहक और रेडिएटिंग तत्व अलग से डिजाइन किए जाते हैं और अंत में दोनों को इकट्ठा किया जाता है। रेडिएटिंग तत्व में परिवर्तन केवल फलेक्स फिल्म घटक को नया रूप देने के लिए किया जाता है। फलेक्स फिल्म प्लास्टिक वाहक की कीमत मोहर लगी धातु रेडिएटिंग तत्व से ज्यादा है परन्तु दो शॉट माल्डिंग से कम है। इसका उदाहरण चित्र 2 में दर्शाया गया है।

चित्र 2. F – PCB **रेडिएटर।**

प्रिंट और प्लेट

प्रिंट और प्लेट तकनीक हीट स्टेकड मोहर लगे धातु वाहक एंटीना, दो शॉट माल्डिंग व फलेक्स बोर्ड प्लास्टिक वाहक एंटीना से अच्छा है। प्रिंट और प्लेट तकनीक में कनफार्मल प्लास्टिक वाहक की मेजबान डिवाइस के अंदर लगाया जाता है। इसके बाद एक कैटालिस्ट मैटिरियल को 3-D वाहक की सतह पर प्रिंट किया जाता है। कैटेलिस्ट लगाने की प्रक्रिया उत्प्रेरक प्रकिया के लिए आधार प्रदान करती है जिससे प्रिंटिड सतह पर सुचालक आसानी से लगाया जा सकता है। इसका उदाहरण चित्र 3 में दिया गया है।

चित्र 3. 3 P-P **प्रक्रिया वाला प्लास्टिक वाहक ।**

इस प्रक्रिया का सबसे बड़ा लाभ यह है कि सुचालक को वाहक पर बनाए रखने के लिए हीट स्टेकस की जरूरत नहीं पडती। इसलिए रेडिएटिंग तत्व में बदलाव करके वाहक को बदलने की जरूरत नहीं पडती। इस प्रक्रिया में कनफार्मल वाहक बनाना बहुत आसान है जो मोहर लगे धातु भागों

के लिए अंसभव है। इसके अतिरिक्त, जब सीधे कनेक्शन की जरूरत पडती है तो इसको उत्प्रेरक चढ़े सुचालक के साथ जोड़ना बहुत आसान है।

इसकी कीमत मोहर लगे धातु वाहक से थोडी अधिक है। इस प्रक्रिया के उच्च कीमत वाली दो शॉट मॉल्डिंग प्रक्रिया की जगह प्रयोग किया जा सकता है।

जहॉ प्रदर्शन की बात आती है वहॉ फलेक्स फिल्म वाहक और P-P वाहक के नुकसान में बहुत कम अंतर है। हालांकि फलेक्स बोर्ड और P-P तकनीक वाहक के एंटीना की दक्षता में बहुत ज्यादा आवृतियों पर अन्तर है।

फलेक्स बोर्ड और P-P एंटीना प्रक्रियाओं में रेडिएटिंग तत्व बनाने के लिए समान डिजाइन का प्रयोग किया जाता है। हम P-P डिजाइन को ज्यादा अच्छा बनाकर उच्च आवृतियों पर प्रदर्शन अंतर ज्ञात कर सकते हैं। कई मामलों में प्रदर्शन बनाम लागत, बचत का व्यापार, बंद उत्पाद के लिए स्वीकार्य हो सकता है।

चित्र 4. वापसी हानि फलेक्स फिल्म वाहक।

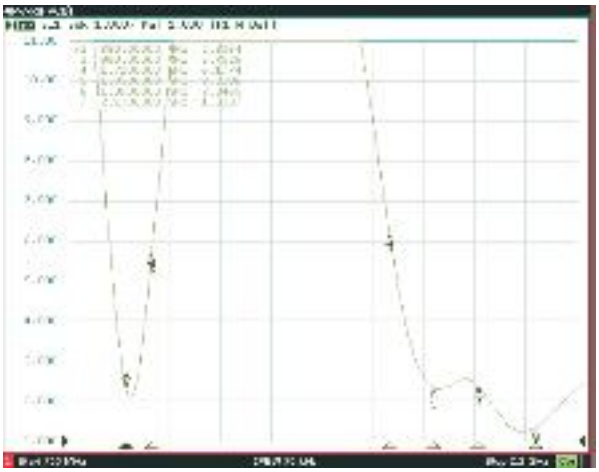

चित्र 5. वापसी हानि P-P वाहक एंटीना।

उच्च प्रदर्शन/कम लगात आर ए सब्सट्रेट

निर्माण के दौरान सारी कठिनाईयॉ डसेट और टर्मिनल डिजाइन में ही नहीं होती बल्कि बेस स्टेशनों के लिए इंफ्रास्ट्रेक्चर एंटीना और ग्राहक परिसर उपकरण भी कठिनाई उत्पन्न करते हैं। जब बड़ी ऐरे की आवश्यकता हो तो मैटिरियल की कीमत इलैक्ट्रॉनिक्स बाजार के लिए एक सीमित कारक बन जाती है। नीचे दिए गए चित्र में एक कम लगात व उच्च प्रदर्शन सबस्ट्रेट दर्शाया गया है।

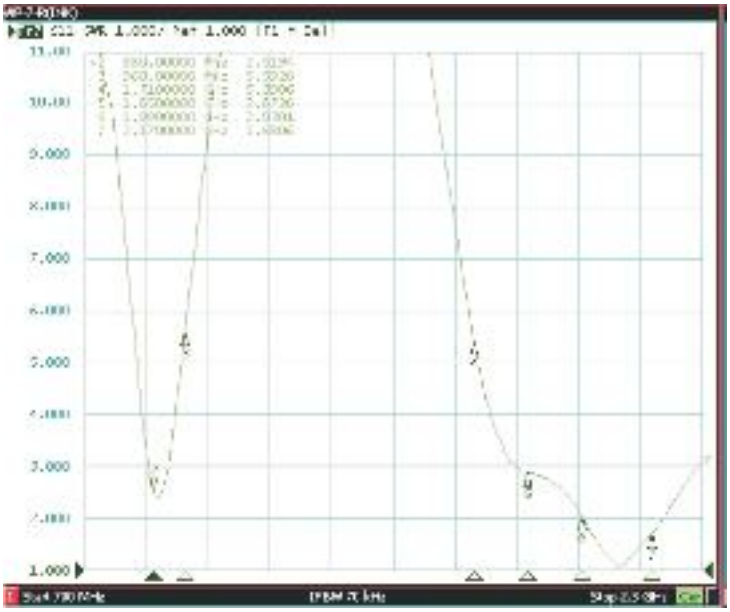

चित्र 6.

WIMAX ग्राहक परिसर उपकरण चित्र 3 में दर्शाया गया है जिसमे P-P तकनीक प्रयोग की गई है और आर (RF) प्रदर्शन बहुत अच्छा है। इस तरह के कम लागत समाधान के अभाव में औधौगिक क्षेत्र में इस तकनीक का प्रयोग बहुत कम किया जाता है क्योंकि इससे कीमत में वृद्धि होती है।

IML (इन मॉल्ड लेबलिंग)

कनफार्मल एंटीना बनाने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का सबसे ज्यादा प्रयोग खाद्य पैकेजिंग उद्योग में किया जाता है। यह प्रक्रिया प्लास्टिक कंटेनरों पर आंतरिक कलाकृति और ग्राफिक्स बनाने के लिए प्रयोग की जाती है ताकि खरोच आदि लगने से खराब न हो। यह प्रक्रिया एक पतली प्लास्टिक की सीट से शुरू होती है जिसके उपर कलाकृति और ग्राफिक्स का पैटर्न बना होता है। अब इस पतली प्लास्टिक सीट को वैक्यूम गठन प्रक्रिया का प्रयोग करके वांछित कंटेनर का आकार दिया जाता है। जैसे ही यह प्रक्रिया खाद्य उद्योग में परिपक्व हुई, इसका प्रयोग उपभोक्ता इलैक्ट्रॉनिक्स बाजार में भी किया जाने लगा।

इस प्रक्रिया के लिए प्लास्टिक सब्सट्रेंट को सुचालक मैटेरियल के साथ प्रयोग किया जाता है। जिससे एक पतली फिल्म से सुरक्षित एंबेडेड एंटीना हॉस्ट डिवाइस में बनाया जाता है। एंटीना तत्व प्लास्टिक के बाहर एक सजावटी ग्राफिक्स के रूप में दिखता है।

एंबेडेड एंटीना को हॉस्टडिवाइस की हाउसिंग में बनाने में अनेक लाभ हैं:

1. एंटीना दक्षता के लिए आवश्यक मात्रा एंटीना डिवाइस की सतह पर वितरित की जाती है।
2. रेडिएटिंग तत्व इंजेक्शन मॉल्ड प्लास्टिक की बाहरी सतह पर मौजूद होता है जो पैटर्न गड़बड़ी और हानि को कम करता है।
3. एंटीना असैंबलिंग और हैंडलिंग के दौरान नुकसान से बच जाता है।

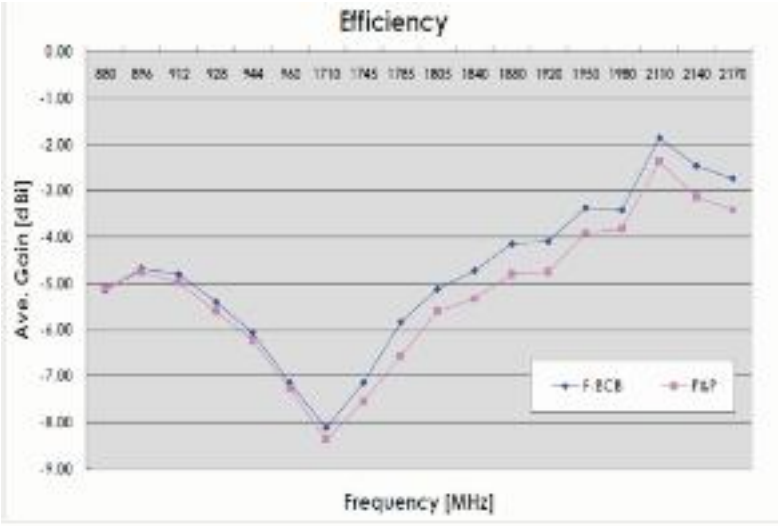

चित्र 7. प्लास्टिक हाउस में एंबेडेड एंटीना।

निष्कर्ष

इस पत्र प्रस्तुति में कम लागत वाली भारी मात्रा उत्पादन एंटीना संरचनाओं पर प्रकाश डाला गया है। इनके अनेक लाभ और हानियों को भी प्रदर्शित किया गया है। इसके अलावा इसमें P-P तकनीक का वर्णन किया गया है जो डिजाइन के दौरान वाहक के पुनर्निमाण की आवश्यकता को कम कर देती है। जिससे प्लास्टिक के वाहक पर फलेक्स फिल्म के निर्माण की जरूरत खत्म हो जाती है।

P-P के इलैक्ट्रिक प्रदर्शन से प्लास्टिक के वाहक पर फलेक्स फिल्म बनाकर तुलना की गई है। इसमें CPE के प्रयोग के बारे में बताया गया है जिसमें कम लागत व उच्च प्रदर्शन वाले सब्सट्रेट का प्रयोग किया गया है। सबसे अच्छी विधि IML है, जिससे हॉस्ट डिवाइस में एंबेडेड एंटीना हाउसिंग की गई है। इस पत्र के अध्ययन से हमें विभिन्न आधुनिक एंटीना निर्माण तकनीकों के प्रयोग के बारे में पता चलता है

IML एंटीना का प्रयोग DTH TV एंटीना के लिए किया जाता है। यह एंटीना DTH व अन्य इंडस्ट्रियों द्वारा एंटीना (RFID, DTV, PC etc.) बनाने के लिए किया जाता है। दो शॉट मॉल्डिंग एंटीना का प्रयोग विभिन्न वायरलेस प्रणाली एंटीना बनाने के लिए किया जाता है। P-P एंटीना का प्रयोग मोबाइल एंटीना बनाने के लिए किया जाता है। अतः ये सब इन तकनीक का प्रयोग करके ऐसे एंटीना बनाए जाते है, जो कम आकार, कम कीमत, व उच्च प्रदर्शन वाले हों।

संदर्भ

1. IEEE paper on advanced antenrs manufacturing Technologies by S.Krapa, D. Witter, M. Martideainem, M. Ellioth, D.Lee, S.Harel, Y. Shalgi, Squaty.
2. Ieeexplore.ieee.org
3. www.serigraph.com
4. www.nabfastrod.org

जननद्रव्य पंजीकरण–भारतीय परिपेक्ष्य

अंजली काक, वीना गुप्ता, तथा ऋषि कुमार त्यागी
राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, दिल्ली

सारांश

इक्कीसवीं सदी मे भूमंडलीकरण निजीकरण तथा विज्ञान एंव प्रौद्योगिकी में हुई प्रगति ने पादप आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से संम्बन्धित कार्यो को प्रभावित किया है। नई अन्तर्राष्ट्रीय संधियों ने बौद्धिक सम्पदा, प्रभुत्व के अधिकारी का कई बार हनन किया हैं जिससे हमारे देश की पादप सम्पदा पर असर पडा है। किसानों तथा वैज्ञानिकों के द्वारा पहचानी गई उत्कृष्ट तथा विशिष्ट गुणों वाले जननद्रव्यों को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता तथा उसका श्रेय उन्हें देने के हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने सन् 1996 में राष्ट्रीय जन्नद्रव्य पंजीकरण समिति का गठन किया जिसका कार्यभार राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो को दिया गया। सन् 1998 में पहला पजीकरण हुआ। पंजीकरण समिति की बैठक हर छमाही में उपमहानिदेशक (फसल) , भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की अध्यक्षता में होती है। अभी तक इस समिति की 25, बैठकों का आयोजन किया जा चुका हैं, जिसमें 186, विभिन्न कृषि बागवानी फसलों के कुल 1049, जननद्रव्यों का पंजीकरण किया जा चुका हैं। इनमें शामिल है। धान्य तथा कूट धान्य (376) दलहन (115) सब्जियों (63) बगवानी फसले (32) स्वापक फसल (62) कन्दीय फसल (23) मिलेटस (67) तिलहन (138) रेशेदार तथा चारा फसले (81) औषधीय सुगन्धित तथा मसाला फसले (48) फूल (41) वन फसले (3), ये सभी जननद्रव्यों अनेक जैविक तथा अजैविक दवाबों, क्वालिटी घटकों, व्याधियों के विरूद्ध प्रतिरोधिता, अच्छी उपज क्षमता, शीत कठोरता तथा विशिष्ट गुणों के कारण पंजीकृत किये गये हैं । सभी पंजीकृत जननद्रव्यों के बीज राष्ट्रीय जीन बैंक में तथा बल्ब, कन्द व रोपण फसलों को फील्ड जीन बैंक में संरक्षित किया गया हैं । इनके उचित प्रबन्धन व उपयोगिता को बढ़ानें के लिए सामग्री हस्तांतरण एग्रीमेंट (MTA) के तहत अनुंसधान कार्यकर्ताओं से प्राप्त अनुरोध के आधार पर आपूर्ति भी की जाती हैं ।

पादप आनुवंशिक संसाधन हर फसल सुधार कार्यक्रम तथा नई किस्मों को विकसित करने में रीढ़ की हडड़ी के समान उपयोगी हैं। इन किस्मों के विकास हेतु प्रजनक वैज्ञानिक अनेक विशिष्ट गुणवत्ता वाले जननद्रव्यों का उपयोग करते हैं जोकि किस्म विकसित होने तथा उसके रिलीज होने के बाद मात्र पैतृक कड़ी बनकर रह जाते हैं। पादप प्रजनन को तथा अन्य वैज्ञानिकों को इन सभी जननद्रव्यों हेतु आधिकारिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए भारतीय कृषि अनुंसधान परिषद् ने पादप पंजीकरण समिति बनाकर अनुसंधान एवं पौधा किस्म विकास के लिए एक श्रेष्ठ कदम उठाया हैं। इसी दिशा में पौधा किस्मों कृषकों और प्रजनकों के अधिकार की सुरक्षा और पौधों की नई किस्मों के विकास को बढ़ावा देने हेतु भारत सरकार ने ''पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम 2001, (पी पी वी और एफ आर) को स्यू जेनेरिस प्रणाली अपनाते हुए जारी किया हैं। इसी अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने हेतू कृषि एवं सहकारिता विभाग कृषि मंत्रालय ने पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण की स्थापना की हैं। बौद्धिक सम्पदा प्रभुत्व अधिकारों के हनन को रोकने के लिए इस सम्पदा को हमें निजी, सार्वजनिक तथा अनुसंधान सस्थाओं में प्रलेखन तथा सूची पत्रीकरण को बढावा देना चाहिए।

फसल सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत वैज्ञानिक अनेक जनन द्रव्यों को इस्तेमाल करते हैं जो कि जैविक और अजैविक दाबों के प्रतिरोधी, बिमारियों की प्रतिरोधिता की गुणवत्ता लिए होते हैं परन्तु किसी

कारणवश जैसे कि उत्तम पैदावार या मंद शस्य परफोरमेन्स, ये संसाधन किस्मों की भांति रिलीज नही हो पाते हैं। इन्हें उचित मान्यता देने तथा इन्हें उत्पन्न करने वाले वैज्ञानिकों को श्रेय देने हेतु सर्वप्रथम सन् 1996 में भारतीय कृषि परिषद ने पंजीकरण हेतु दिशा निर्देशों के निर्धारण हेतु एक समिति का गठन किया।

इस समिति ने उपमहानिदेशक (फसल विज्ञान) की अध्यक्षता में राष्ट्रीय पादप ब्यूरो को इस का कार्यभार सौंपा। शुरुआत में मुख्य फसलों जैसे चावल गेहूं, मक्का, कपास, गन्ना आदि फसलों को ही पंजीकरण करने हेतु नामांकित किया गया था परन्तु सन् 1998 में औषधीय एवं सुगन्धित पौधे, चारा, वानिकी फसले आदि भी सम्मिलित की गई। उसी साल पंजीकरण समिति की तीसरी बैठक (10 दिसम्बर 1998) में विदेशों से आयातित विशिष्ट गुणों वाले जननद्रव्य यदि किसी अन्य गुण के लिए पहचान बनाते हैं तो उन्हें भी इस समिति में शामिल किया जाएगा। तदान्तर 1999, में इन दिशानिर्देशों को फिर से अनुमोदित कर प्रेषित किया गया। इस बार पंजीकरण के लिए परियोजना समन्यवयक/परियोजना निदेशक के Comments के बाद प्रमाणित होने के बाद ही पंजीकरण सन् 2004 में इन दिशा निर्देशों में एक और संशोधन किया गया जिसके तहत यदि कोई पंजीकृत जननद्रव्य बाद में अपने गुणों पर खरा नही उतरा या उसके विशिष्ट गुण असफल रहे तो उसे वापस अपंजीकृत किया जा सकता हैं। इस प्रक्रिया को सशक्त करने के लिए हर फसल आधारित संस्थान को एक जननद्रव्य पहचान समिति बनाने का आदेश भारतीय कृषि परिषद द्वारा दिया गया ताकि वास्तविक तथा सत्यापित जननद्रव्यों का चयन किया जा सके।

इस प्रकार विभाग द्वारा वैध पंजीकरण हेतु भेजे गए पत्रों पर आगे की कार्यवाही की जाती हैं। समिति द्वारा पंजीकृत नमूनों का बीज राष्ट्रीय जीन बैंक में संरक्षित किया जाता हैं। और यदि जीन बैंक में भंडारित करने के कुछ वर्षो बाद यदि आवश्यकता हो तो इन बीजों को पुनः उगाकर या पुनर्सबलीकरण करने के बाद दुबारा से संरक्षित किया जाता हैं। इस विधान के लागू होने से अभी 25 बैठकों का आयोजन किया जा चुका हैं। जिसमें कुल 2596 प्रविष्टियों पर विचार विमर्श किया गया। फलस्वरूप अभी तक कुल 1049 प्रविष्टियों का (जोकि 186 प्रजातियों से सम्बन्धित हैं) सफलतापूर्वक पंजीकरण किया जा चुका हैं।(सारणी 1.) इस सारी सूचना को सार्वजनिक करने हेतु तथा इसके अधिकाधिक वैज्ञानिक इस्तेमाल हेतू इसे विभिन्न पत्रिकाओं, वैज्ञानिक पत्रों तथा बेवसाइट पर भी प्रेषित किया जाता हैं।

पंजीकरण हेतु आवश्यक निर्देश

क पंजीकरण समिति

1. उपमहानिदेशक (फसल विज्ञान) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की अध्यक्षता में बनाई गई ये समिति तीन साल तक वैध हैं।
2. निदेशक, राष्ट्रीय पादन आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो स्थायी सदस्य तथा एक वरिष्ठ वैज्ञानिक (ब्यूरो स्थित) इसका सचिव सदस्य हैं। अन्य सदस्य अध्यक्ष द्वारा समय समय पर नामित किये जाते हैं।
3. आवश्यकता अनुसार फसल विशेषज्ञों को भी शामिल किया जाता है।

ख मुख्य एजेन्सी

1. सभी आवेदनों को निदेशक, रा. पा. आ. सं. ब्यूरो पूसा कैम्पस को प्रेषित करना होगा।
2. सचिव सदस्य सभी आवेदकों को उनके आवेदन प्राप्ति की रसीद भेजेगा।
3. सभी आवेदनों की सूची रा. पा. आ. सं. ब्यूरो अपने डेटाबेस में रखेगा।

ग आवेदन पत्र

पंजीकरण हेतू आवेदन पत्र (फार्म) ब्यूरो की वेबसाईट http://www.nbpgr.ernet.in/download/registration.pdf. से डाउनलोड किया जा सकता हैं।

I पंजीकरण हेतू आवश्यक योग्यता/मापदंड कोई भी जननद्रव्य जो अपने विशिष्ट गुण, एकरूपता और स्थायित्व के लिए पहचानी गई हो तथा उसमें शैक्षणिक, वैज्ञानिक और व्यावसायिक काबिलियत हो उसे पंजीकृत करने हेतु भेजा जा सकता हैं बशर्ते उसके साथ नीचे लिखे कागज़ संलग्न हो–

1 उसके बारे में पूर्व प्रकाशित सूचना जो कि किसी भी स्टेन्र्डड जरनल में छपी हो, उसकी एक प्रति संलग्न करें। या/और

2 कम से कम दो साल का मूल्यांकन डाटा फील्ड जो कि परियोजना निदेशक द्वारा सत्यापित हो या/और

3 संस्थान की वार्षिक रिर्पोट में प्रकाशित डाटा या/और

4 संस्थान की सचिव सदस्य द्वारा सत्यापित सर्टिफिकेट और

5 संस्थान की जननद्रव्य पहचान समिति द्वारा जारी विशिष्टता तथा स्थायित्व का सत्यापनपत्र।

पंजीकरण आवेदन पत्र की स्क्रीनिंग प्रक्रिया

1 सचिव–सदस्य, पंजीकरण समिति सर्वप्रथम प्रत्येक याचिका का अवलोकन करेगा।

2 पूर्णरूप से सही अवलोकित याचिका/आवेदन को निदेशक/परियोजना समन्वयक/परियोजना निदेशक, जो कि उस फसल पर कार्यरत हैं, को उनकी समीक्षा के लिए भेजी जाऐगी।

3 अगर कही कोई त्रुटि रह जाती हैं तो आवेदक को उसे ठीक करने के लिए वापस भेजा जाएगा।

4 पूर्णरूप से ठीक सत्यापित आवेदन को अग्रिम पंजीकरण समिति की बैठक में रखा जाएगा।

5 पंजीकरण समिति का निर्णय अन्तिम होगा।

पंजीकरण वैधता

समिति की बैठक में जो भी आवेदन पंजीकृत किए जाएंगे उन्हें पंजीकरण प्रमाण पत्र जारी किया जाएगा। जारी किये गये ये प्रमाणपत्र वृक्षों एवम् लताओं के लिए 18 साल तथा अन्य फसलों के लिए 15 साल के लिए वैध होंगें।

पंजीकृत जननद्रव्यों का प्रकाशन

सभी पंजीकृत जननद्रव्यों की समुचित जानकारी राष्ट्रीय पंजीकरण नम्बर के साथ आवेदक को भेज दी जाती हैं। इसके अधिकाधिक उपयोग के लिए यह जानकारी अनेक वैज्ञानिक पत्रिकाओं में भी प्रकाशित की जाती हैं जो इस प्रकार है।

1 भारतीय कृषि परिषद द्वारा प्रकाशित न्यूजलैटर।

2 रा. पा. आ. सं. ब्यूरो द्वारा प्रकाशित लगभग सभी प्रकाशन।

3 रा. पा. आ. सं. ब्यूरो वेबसाइट।

पंजीकृत जननद्रव्यों का संरक्षण तथा रखरखाव

1 सभी पंजीकृत जननद्रव्य राष्ट्रीय जीन बैंक में या फिर ब्यूरो द्वारा संबद्ध राष्ट्रीय जननद्रव्य सक्रिय केन्द्रों (कुल 59 केन्द्र चित्र 1) पर संरक्षित किये जाएगे।

2 बीज व रोपण का एक हिस्सा परियोजना निदेशक/परियोजना समन्यवक को भी भेजा जाएगा ताकि वह उसे अपने डीमोन्सट्रेसन फील्ड में लगा कर अन्य इच्छुक वैज्ञानिकों को अवगत कराए।

3 आवेदक संस्थान भी अपने फील्ड में या बीज संग्रह में बीज रखे ताकि आवश्यकता पड़ने पर बीज दिया जा सकें।

आवेदन प्रक्रिया

1 पूर्णरूप से भरे हुए आवेदन पत्र निदेशक, राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, पूसा कैम्पस, नई दिल्ली–110 012 को भेजे जा सकते हैं।

2 सभी कागज़ात भेजने वाले संस्थान के निदेशक द्वारा खर स्टाम्प व हस्ताक्षर के साथ होने चाहिए।

3 भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर बीज उपलब्धता का प्रमाणपत्र साथ में होना चाहिए ।

4 आवेदित जननद्रव्य में कोई भी ऐसी जीन नहीं हैं जोंकि टर्मिनेटर तकनीक द्वारा हैं – ऐसा प्रमाणपत्र भी जरूरी हैं।

5 स्वपरागित फसलों के लिए 2000 बीज तथा परपंरागित फसलों के लिए 4000 बीज मुश्किल से बीज़ बनने वाली फसले जैसे शाक सब्जियाँ, औषधीय एवं सुगन्धित पौधों के लिए 500 बीज।

6 पूर्णपरिपक्व, साफ, बिना किसी बिमारी या संगरीधित बीजों को ही स्वीकृत किया जाएगा।

7 बीज अकुंरण क्षमता 85%, से अधिक हो ।

8 कपड़े कागज़ या प्लास्टिक थैलियों में सुगढ़ता से पैक करके ही बीज भेजे ।

पादप जननद्रव्य पंजीकरण हेतू आवेदन पत्र

1. आवेदन पत्र
2. फसल का नाम
3. वानस्पतिक नाम
4. फसल कोड
5. जैविक स्थिति
6. पंजीकरण हेतू मापदंड
7. जननद्रव्य का रूप
8. जमा की गई मात्रा
10. योग्यता का आधार
11. योग्यता प्रमाण हेतू परीक्षण
12. जननद्रव्य को सुधारने वाले वैज्ञानिक/व्यक्ति का नाम

पादप पंजीकरण समिति द्वारा अभी तक पंजीकृत फसलें।

धान्य तथा कूट धान्य	376	छोटे.मोटे अनाज (मिलेट्स)	67
दलहन	115	तिलहन	138
सब्जियॉ	63	रेशेदार तथा चारा फसलें	81
बगवानी फसलें	32	औषधीय सुगन्धित तथा मसाला फसलें	48
वणिज्यिक फसलें	62	फूल	41
कन्दीय फसलें	23	वन फसलें	3
		कुल 1049	

1. नाम

2. पद

3. पता

दूरभाष फैक्स

ईमेल

13. पत्राचार हेतु व्यक्ति का नाम

1. नाम

2. पद

3. पता

दूरभाष फैक्स

ईमेल

जननद्रव्य की जानकारी

14. आई सी/ईसी नम्बर अन्य पहचान उद्गम स्त्रोत उद्गम स्थान टिप्पणी

15. जननद्रव्य पैतृक जानकारी
    पैत्कता
16 फसल सुधार तरीका
17 प्रमुख लक्षण का प्रलेखन
    लक्षण
18 बीज उत्पादन का वर्ष
19 बीज उत्पादन स्थल
20 बीज मात्रा उपलब्ध
21 संस्थान की जननद्रव्य पहचान समिति की टिप्पणी

वचन पत्र

मैं/हम सुनिश्चित करते हैं कि उपरोक्त लिखित पंजीकरण हेतू जननद्रव्य प्रजाति का बीज राष्ट्रीय जीन बैंक, राष्ट्रीय पादन आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो पूसा कैम्पस में दीर्धावधि भंडारण हेतु जमा करूँगा तथा इसको उपयोग फसल सुधार कार्यक्रम में करने हेतु मिली सूचना के साथ पारस्परिक मानी शर्तों पर मैं यह बीज उसे उचित मात्रा मे उपलब्ध करुगां।

मैं/हम यह भी शपथ लेते है कि इससे सम्बधित सभी सूचना या आलेख या प्रमुख लक्षणों की जानकारी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद/राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक ब्यूरो को पारदर्शी रखते हुए दूँगा।

जमाकर्ता

हस्ताक्षर

नाम, पद तथा पता

कार्बन तंतु के निर्माण हेतु उपयोग में आने वाले पॉली–अक्रयलोनाईट्रायल पूर्ववर्ती तंतु यंत्र की बनावट

अरुण कुमार द्विवेदी, संजय के शेटे, तथा तरुण कुमार पारधी
राष्ट्रीय अंतरिक्ष प्रयोगशाला, बैंगलूरू, कर्नाटक

सारांश

कार्बन तंतु एक उच्च कोटि का तंतु है। इसके मिश्रण का उपयोग बहुत से क्षेत्रों में किया जाता है, जैसे वांतरिक्ष, रक्षा सामग्री, मिश्रित संरचना, खेलकूद सामग्री, इत्यादि। कार्बन तंतु की बनावट पॉली–अक्रयलोनाईट्रायल पूर्ववर्ती तंतु से होता है। इस पूर्ववर्ती तंतु की बनावट सामान्य रूप से भीगी कताई क्रियाविधि से होता है। कार्बन तंतु का गुण–स्वभाव ज़्यादातर पूर्ववर्ती तंतु के गुण–स्वभाव पर निर्भर करता है। पूर्ववर्ती तंतु का गुण–स्वभाव मुख्यतः प्रक्रिया के परिवर्तनशील तत्वो पर निर्भर करता है, जैसे बहुलक विलयन की सांद्रता, स्कंदन की अवस्था, तंतु की धुलाई, गर्म अवस्था मे खिचाव, सुखाव इत्यादि। यह सब प्रक्रिया तंतु की रोम छिद्र के आकार को बराबर बनाने के लिए आवश्यक है। तंतु की यांत्रिक गुणवत्ता को प्राप्त करने में लिए, रोम छिद्र का आकार एवं वितरण एक महत्वपूर्ण अंश है। इस इकाई को बनाने का अभिप्राय यह है की क्रमबद्ध तरीके से पूर्ववर्ती तंतु की धुलाई, खिंचाई एवं रोम छिद्र का आकार एवं इसके वितरण को बराबर नियंत्रण रखते हुए तंतु की यांत्रिक गुणवत्ता को प्राप्त करना है।

प्रस्तावना

कार्बन रेशा एक उच्च कोटि का तंतु है जो सम्मिश्रित पदार्थ को बनाने में प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग मुख्यत' वांतरिक्ष, रक्षा उपकरण, खेलकूद सामग्री, औद्योगिक उपकरण इत्यादि बनाने में होता है। इस कार्बन रेशे का निर्माण प्रायः पॉली–अक्रयलोनाईट्रायल अग्रगामी रेशे से किया जाता है। इस पॉली–अक्रयलोनाईट्रायल अग्रगामी रेशे को बनाने में अधिकतर गीली कताई विधि को अपनाया गया है। इन रेशे की गुणवत्ता इनके निर्माण विधि के कारक जैसे सह–एकलक का अनुपात, डोप की सांद्रत, स्कंदन अवस्था, रेशों की धुलाई तथा खिचाई पर मुख्यतः निर्भर करता है। इन सबमें रेशों की धुलाई तथा खिचाई एक महत्वपूर्ण कारक है जो की रेशों की यांत्रिक गुणवत्ता पर अपना प्रभाव डालता है।

पॉली–अक्रयलोनाईट्रायल अग्रगामी रेशों की खिंचाई से पहले इनकी पूर्णतः धुलाई बहुत आवश्यक हैं इन रेशों की धुलाई तथा खिचाई में इन रेशों का धुलाई समय, पानी का तापमान, तथा खिचाव अनुपात बहुत महत्वपूर्ण है। सही अनुपात मे रेशों का खिंचाव तथा दूसरी अनुकूल परिस्थितियों से रेशों का रोम छिद्र आकार तथा इसका रेशे में वितरण को लगातार कम किया जाता है। इस रोम छिद्र के आकार तथा इसके वितरण को रेशे निर्माण के समय नियंत्रित कर रेशो की यांत्रिक गुणवत्ता को विकसित किया जाता है। इन सभी महत्वपूर्ण क्रियाविधि कारको को ध्यान में रखते हुए एक गीली कताई उपकरण का निर्माण किया गया जिसमें रेशो की धुलाई उपकरण तथा रेशो का अग्रेशन उपकरण के बारे में उल्लेख किया गया है। इस संपूर्ण उपकरण में 10 धुलाई बाथ, 16 रेशे अग्रेशन तंत्र, रेशे की सुखाई उपकरण तथा रेशो को लपेट कर रखने के यंत्र शामिल है।

रेशा धुलाई तथा खिंचाई उपकरण का प्रारूप

इस गीली कताई के उपकरण को बनाने में रेशो को अग्रशित करने तथा इनके धुलाई के उपकरण को अलग अलग बना कर इन्हे आपस मे संहित किया गया है।

रेशे धुलाई/खिंचाई उपकरण का प्रारूप

जैसा की चित्र (1) में दिखाया गया है, इन रेशो की धुलाई का उपकरण में एक धुलाई बाथ, एक पुनः परिसंचरण पंप, छलना तथा इससे संबधित नलिकाए हैं। इसकी प्रारूप निर्माण के लिए इस तरह गणना की गई है।

इस उपकरण के लिए उष्मा संतुलन (1)–

$$Q = \frac{dQ}{dT} = MC_p \frac{dt}{d\theta} = UA\Delta t$$

जहाँ पर

$$\Delta t = (T_1 - t)$$

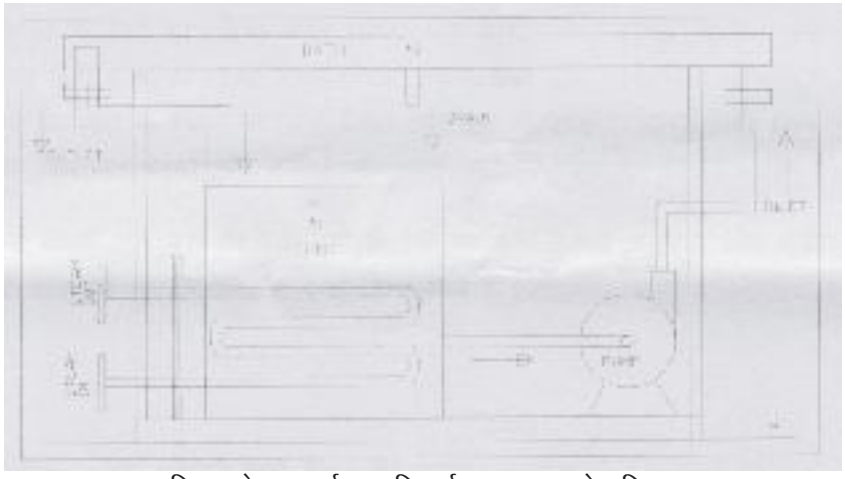

चित्र 1. रेशा धुलाई तथा खिचाई उपकरण का रेखाचित्र।

इस समीकरण को पुनः व्यवस्थित करके इसे इसकी समय सीमा, 0 से θ तथा किसी तापमान से तक के लिए समाकलन करने पर

$$ln\frac{(T_1 - t_1)}{(T_1 - t_2)} = \frac{UA}{MC_p}\theta$$

इस समीकरण को पानी के लिए 25° से 90° सेंटिग्रॅट तापमान तक, तथा 200 लिटर पानी के लिए हल करने पर हमें 17 मिनट का समय प्राप्त होता है जो की समय तथा ऊर्जा की बचत की हिसाब

से बहुत अनुकूल है। इसके अलावा यह बहुत कम जगह मे बना हुआ और चालक के द्वारा निम्नतम हस्तक्षेप वाला उपकरण हैं।

रेशे अग्रशन उपकरण का प्रारूप

रेशे की खिचाई अग्रशन बेलन की चाल बढ़ा कर की जाती है। इन रेशो की खिंचाई के समय रेशो पर दिया गया तनाव एक बाथ तक सीमित रहना जरूरी है, यदि ऐसा नही हुआ तो दिया गया तनाव अगले बाथ तक स्थानांतरित हो सकता है। इस को नियंत्रण में रखने के लिए बेलन और रेशे के कोई फिसलन नही होना चाहिए। यह फिसलन बेलन और रेशे के बीच बने आवरण कोण पर निर्भर करता है।

इस बेलन और रेशे की व्यवस्था में रेशे पर लगे तनाव अनुपात और घर्षण गुणांक के बीच का सूत्र अमोनटोन द्वारा दिया गया है (2).

$$\frac{\sigma_1}{\sigma_2} e^{\mu\theta} \qquad (2)$$

जहाँ, σ_1 = रेशे खिंचने वाले बेलन का तनाव।

σ_2 = रेशे आपूर्ति करने वाले बेलन का तनाव।

μ = बेलन और रेशे के बीच का घर्षण गुणांक।

θ = बेलन और रेशे के बीच का आवरण कोण।

जैसा की चित्र 2 में दिखाया गया है, तीन बेलन, चार बेलन तथा पाँच बेलन काले अग्रषण में आवरण कोण क्रमशः 3710, 5110, तथा 7180 का है, इस व्यवस्था के लिए हम तनाव अनुपात निकल सकते है। तनाव अनुपात बेलन और रेशे के बीच की फिसलन का प्रतीक है। इस तनाव अनुपात के कम होने पर रेशे और बेलन के बीच ज़्यादा फिसलन होती है जो के अच्छे अग्रशण के लिए अवांछित है। इस गणना से हम पाते है की, पाँच बेलन वाली व्यवस्था रेशे अग्रशण के लिए सबसे उत्तम है।

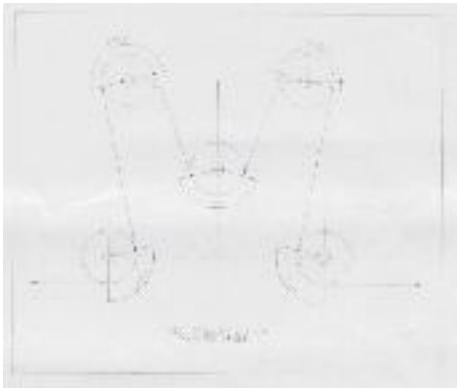

चित्र 2. रेशा अग्रशण में बेलन प्रबंध का रेखाचित्र।

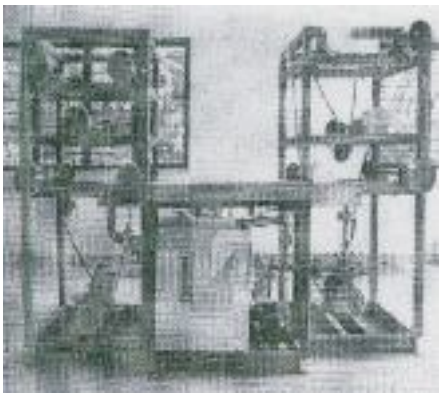

चित्र 3. रेशा अग्रशन तथा रेशा धुलाई का संयोजित।

रेशा अग्रशन तथा रेशा धुलाई/ खिचाई उपकरण को जोड़ कर चित्र (3) मे दर्शाया गया है। इस प्रकार की कुल 10 एकाई से यह गीली कताई संयंत्र का निर्माण हुआ है।

गीली कटाई के उपकरण की योग्यता

निम्नलिखित तरीक़ी से गीली कताई के उपकरण की योग्यता का परीक्षण किया गया ताकि उपकरण लगातार सही अवस्था मे कार्य कर सके।

प्रारूप योग्यता

सभी उपकरणों के निर्माण के पहले आरेख का परीक्षण तथा स्वीकृत कर इनके निर्माण के समय इनकी जाँच की गयी ताकि यह निर्धारित प्रमाण पर खरा उतार सकें। इन उपकरण के प्रेषण के पहले वेलडिंग की परख के लिए इनका हाइड्रो परीक्षण किया गया।

प्रतिष्थापित योग्यता

सभी उपकरणों को इनके निर्धारित स्थान पर बिठाकर सभी उपकरणों को इनके कार्य प्रणाली के लिए परीक्षित किया गया। सभी उपकरण का यांत्रिक तथा विद्युत संबंध कर इन्हें प्रारंभ करने के लिए तैयार किया गया। इन सभी उपकरणों को साथ की साथ डी सी एस से प्रारंभ करने के लिए इनका संबंध तारों से स्थापित किया गया।

कार्य विधि योग्यता

सभी उपकरण को इनके कार्य प्रणाली के परीक्षण हेतु इन सभी का प्रचालन डी सी एस द्वारा किया गया तथा इनके प्रचालन के लिए एक "प्रमाणित कार्य प्रणाली विधि" को विकसित किया गया ताकि इसका सुरक्षित और कुशल प्रचालन हो सके।

कार्य निष्पादन योग्यता

उपकरण की कार्यनिष्पादन क्षमता को परखने के लिए इस सभी का प्रचालन लगातार घंटो तक किया गया। इन दौरान सभी वांछित क्रियाविधि मापदंडो को स्थापित कर इनका संचालन अविरूद्धता के साथ परीक्षण किया गया।

चित्र 4. गीली कताई संयंत्र का संपूर्ण दृश्य।

इस गीली कताई उपकरण के सभी बाथ (धुलाई/खिंचाई) तथा अग्रशन का संयोजित रूप चित्र 4 में दिखाया गया है। यह गीली कताई संयंत्र की लंबाई लगभग 60 मीटर है जो कि चित्र में दो भाग में दर्शाया गया है।

सभी मापदंडो पर खरा उतरने पर एक कम सांद्रता वाले डोप के साथ रेशे निर्माण कर पूरी गीली कताई उपकरण का संचालन किया गया। इस संचालन से प्राप्त हुआ रेशे की रील को चित्र क्रंमाक 5 में प्रदर्शित किया हुआ है।

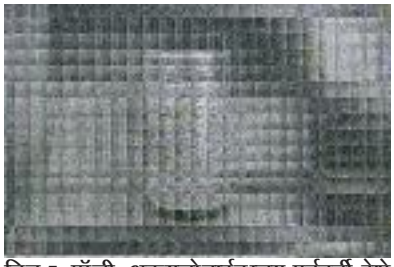

चित्र 5. पॉली–अक्रयलोनाईट्रालय पूर्ववर्ती रेशे की रील।

निष्कर्ष

इस गीली कताई उपकरण की प्रवर्तन से यह सुनिश्चित हो सका कि सभी उपकरण के प्रारूप, इनका निष्ठापन, इनका परीक्षण, तथा इनकी योग्यता सभी क्रियाविधि की ज़रूरत के अनुसार ही प्रतिष्ठित हुई है। सुरक्षा तथा कार्यदक्षता की दृष्टि से यह सभी उपकरण बेहतर सिद्ध होते हुए अपनी

लक्षता को प्राप्त किए हुए है। इन उपकरण से गीली कताई की आभ्यासिक समस्याओं जैसे रेशे का टूटना, सही अनुपात मे रोम छिद्र का आकार तथा इनका वितरण पर नियंत्रण कर उत्तम कोटि की यांत्रिक गुणवत्ता वाले पॉली अक्रयलोनाईट्रायल रेशे का विकास हो सका है।

सन्दर्भ

1. Donald Q kern, prcess heat transfer, page no. 626-628, 1997, Tata McGraw Hill pub, New Delhi.
2. V B Gupta, V K Kothari, manufactured fiber technolgy, First edition 1997, page no 264 Chapman & hall publication.

प्रक्षेपास्त्र परिसर में अंकीकरण की प्रवृत्तिः एक समीक्षा

हेमंत कुमार, के नागेश्वर राव, तथा एन वेंकटेश
अनुसंधान केन्द्र इमारत, हैदराबाद

सारांश

अंकीय पुस्तकालय आजकल पुस्तकालय गतिविधियों का अभिन्न अंग बन गए हैं। अंकीय वातावरण (Digital Environment) में सूचनाओं की आसानी एवं तेजी से उपलब्धता के कारण पुस्तकालय उपयोगकर्ता के सूचनाओं को खोजने के व्यवहार में काफी बदलाव आया है। उन्नत प्रणाली प्रयोगशाला (ए एस एल), रक्षा अनुसंधान विकास प्रयोगशाला (डी आर डी एल) और अनुसंधान केंद्र इमारत (आर सी आई) को संयुक्तं रूप से प्रक्षेपास्त्र परिसर करते हैं। इस लेख में मुख्य रूप से प्रक्षेपास्त्र परिसर के पुस्तकालयों में अंकीकरण की प्रवृत्ति के बारे में बताया गया है।

प्रस्तावना

आज कल बहुत सारे पुस्तकालय सूचनाओं को दिन–प्रतिदिन पाठकों तक पहुँचाने के लिए अंकीय पुस्तकालय का उपयोग कर रहे हैं। हाल में कंप्यूटर और नेटवर्क के क्षेत्र में हुए विकास जैसे इंटरनेट, इंट्रानेट आदि ने सूचनाओं की उत्पत्ति (generation), संग्रह (storage) और पुनः प्राप्ति (retrieval) तथा प्रसार के प्रक्रिया में काफी परिवर्तन लाया है। अंकीय पुस्तकालय वेब प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाले तेजी से विकास का एक निर्गत (output) है, जो उपयोगकर्ताओं को पूरे विश्व में कहीं से भी सूचनाओं को प्राप्त करने में मदद करती है। इस लेख में डी आर डी एल, ए एस एल और आर सी आई में इंटरनेट और इंट्रानेट पर अंकीकरण की प्रवृत्ति के बारे में विवरण दिया गया है।

अंकीय पुस्तकालय के कार्य

अंकीय पुस्तकालय के मूल कार्य निम्नलिखित हैं–

- सूचनाओं का चुनाव, संग्रह और संगठित कर उपयोगकर्ता तक पहुंचना।
- पुस्तकालय के कार्य में लागत प्रभावशीलता को बढ़ाना।
- प्रलेख (document) का अंकीकरण कर उसका परिरक्षण (preservation) करना।
- संसाधनों की सहभागिता तथा नेटवर्किंग को बढ़ाना।
- राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, रिपोर्ट, मानकों तथा एकस्वों (पेटेंटों) को उपलब्धि कराना।
- नई सुविधाओं के लिए उपयोगकर्ता के अनुकूल अंतराफलक (Interface) प्रदान करना।
- उपयोगकर्ता की आवश्यकता के अनुसार तथा पूर्वव्यापी खोज (retrospective search) प्रदान करना।

डी आर डी एल अंकीय पुस्तकालय

डी आर डी एल ज्ञान केंद्र ने 2001 में अंकीय पुस्तकालय सेवाओं की शुरूआत की। संपूर्ण सॉफ्टवेयर डी आर डी एल में ही जावा मंच (Java platform) पर विकसित किया गया है। यह तकनीकी रिपोर्ट, मानक, सम्मेलन लेख, ई–पत्रिका, ई–पुस्तक आदि की पहुँच प्रदान कराता है। इन संसाधनों का उपयोग डी आर डी एल के वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों के अलावा ए एस एल तथा आर सी आई के वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों द्वारा किया जा सकता है। इनके सूचना संसाधन कई गुना बढ़ गए हैं।

यह सूचना संसाधनों की खरीद में पैसे की बड़ी राशि को बचाता है। यह डी आर डी ओ ई–पत्रिका सेवाओं का एक केंद्र बिंदु भी है। डी आर डी एल, ए एस एल और आर सी आई ने मिलकर ए आई ए ए बैठक के पत्रों का 1963 से 2013 तक का ऑनलाइन एक्सेस खरीदा है।

कुछ ई–संसाधन जो डी आर डी एल में उपलब्ध हैं–

- मानक डेटाबेस – बी एस आई, ए एस टी एम, एस ए ई, भारतीय मानक आदि।
- सम्मेलन लेख – ए सी एम, ए आई ए ए, आई टी सी आदि।
- तकनीकी रिपोर्ट – नासा, ए सी एम, ए एस टी एम, एस टी पी आदि।
- ई–पत्रिका – ए आई ए ए, आई ई ई ई, साइंस डाइरेक्ट आदि।
- वीडियो व्याख्यान – ए एस एम विडियो पाठ शृंखला।

ए एस एल अंकीय पुस्तकालय

ए एस एल तकनीकी सूचना केंद्र ने 2002 में अपनी स्थापना के साथ ही अंकीय पुस्तकालय सेवाओं का विकास शुरू कर दिया था। ई–संसाधनों के प्रबंधन एवं इसको उपयोगकर्ता तक पहुँचने के लिए संपूर्ण सॉफ्टवेयर का विकास ए एस एल में ही किया गया है। इसके लिए ए एस पी एवं एम एस एक्सेस का उपयोग किया गया है। यह ई–संसाधनों के लिए बहुत आसान और एकीकृत इंटरफेस प्रदान करता है। हाल ही में पूरे तकनीकी सूचना केंद्र के डेटा बेस से प्रासंगिक सूचनाओं को एक साथ खोजने के लिए फेडरेटेड खोज इंजन का विकास किया गया है। यह उपयोगकर्ता को पत्रिका लेख के अनुरोध तथा वितरण के लिए ऑनलाइन सुविधा प्रदान करता है।

- मानक डाटाबेस – ए एस टी एम, एम आई एल एस पी ई सी, एस ए ई आदि।
- सम्मेलन लेख – ए आई ए ए, आई ई ई ई, एस ए एम पी ई।
- तकनीकी रिपोर्ट – नासा।
- ई–पत्रिका – ए आई ए ए, आई ई ई ई, साइंस डाइरेक्ट आदि।
- वीडियो व्याख्यान – आई पी सी।
- तकनीकी सूचना केंद्र सामयिक सूचना पत्रिका।

आर सी आई अंकीय पुस्तकालय

आर सी आई, टी आई आर सी ने अपने प्रक्षेपास्त्र अंकीय पुस्तकालय का विकास 2004 में शुरू किया। इसके मुख्य संग्रह सम्मेलन लेख, तकनीकी रिपोर्ट, ई–पुस्तकें तथा ई–पत्रिकाएं आदि हैं। संग्रह विकास के लिए ग्रीन स्टोकन सॉफ्टवेयर का उपयोग किया गया था। 2009 से आर सी आई, टी आई आर सी ने स्वयं डिजिटल संपदा प्रबंधन सॉफ्टवेयर (Digital Assets Management Software) का डिजाइन एवं विकास अंकीय सामग्रियों को व्यवस्थित तथा उसे आसानी से खोजने के लिए किया।[1] इसने तकनीकी रिपोर्ट के लिए जारी डी आर डी ओ के दिशानिर्देश के अनुसार परियोजना सूचना केंद्र के लिए सॉफ्टवेयर (Software for Project Information Centre) का भी विकास किया है। आज आर सी आई के पुस्तकालय उपयोगकर्ता अपने स्थापन से ही निम्नलिखित ई–संसाधन का उपयोग कर सकते हैं–

- डी आर डी एल ई–पुस्तकालय।
- ए एस एल ई–पुस्तकालय।
- आर सी आई ई–पुस्तकालय।
- आई ई ई ई पत्रिका।
- ए आई ए ए सम्मेलन लेख।

- एन टी आई एस रिपोर्ट।
- डी आर डी ओ, जे सी सी सी पत्रिका।

निष्कर्ष

वेब प्रौद्योगिकी में होने वाले तेजी से विकास के कारण ई–संसाधन बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं और प्रक्षेपास्त्र परिसर के वैज्ञानिकों तथा कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार के ई–संसाधन उपलब्ध हैं। अंकीय पुस्तकालयों का प्रभाव स्पष्ट रूप से सभी चल रही परियोजनाओं और कार्यक्रमों में अनुभव किया जा सकता है। इसने ई–संसाधनों के बेहतर उपयोग तथा इसके खरीद में होने वाले दोहराव (duplication) को रोकने का एक अच्छा वातावरण बनाया है। पुस्ताकालय वृत्तिकों (Library Professionals) द्वारा स्वतः विकसित सॉफ्टवेयर तथा डी आर डी ओ, ई–पत्रिका सेवाओं के कारण प्रक्षेपास्त्र परिसर में अंकीय पुस्तकालय सेवाओं के एक नए युग का आरंभ हुआ है।

संदर्भ

1. N.Venkatesh, K. Nageswara Rao and S.Kalpavalli : Development of Digital Assets Management Software for Research Centre Imarat, DESIDOC Journal of Library and Information Technology, 32(5), Sept-2012, P: 447-451.

ऑटोमोबाइल उद्योग में कार्बन फाइबर का उपयोग

अजय कुमार एवं सचिन मिश्रा
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, नोएडा, उत्तर प्रदेश

सारांश

कार्बन फाइबर प्रबलित प्लास्टिक अत्यंत मजबूत होता है। आधुनिक युग में कार्बन फाइबर ने उद्योग क्षेत्र में क्रांति ला दी है। लगभग 1980 के दशक में बोनार्ड ने इसके बारे में बताया था। इसका उपयोग सर्वप्रथम ऐरोस्पेस के रिम में हुआ। फिर ऑटोमोबाइल उद्योग ने क्रांति ला दी है। कार्बन फाइबर का प्रयोग उच्च कार की बॉडी, ब्रेक पैड सस्पेन्शन आदि भागों में किया जाता है। कार्बन फाइबर का भार अन्य मैटिरीयल की तुलना में कम होता है। कार्बन फाइबर ने वाहनों के डिजाइन में काफी सुधार किया है। कार्बन फाइबर काफी मजबूत होता है। यह वाहनों को सुरक्षा प्रदान करता है। इसका प्रयोग F1 कारों में किया जाता। कार्बन फाइबर ने मास बचत में भी काफी योगदान दिया है। कार्बन की वृद्धि बाजारों में 9.8 प्रतिशत से बढ़कर 13 प्रतिशत हो गई है।

परिचय

कार्बन– फाइबर–प्रबलित पॉलिमर या कार्बन–फाइबर–प्रबलित प्लास्टिक अत्यंत मजबूत और हल्के फाइबर होते है। इनमे कार्बन फाइबर सम्मिलित होता है। पॉलिमर अक्सर इपॉक्सी होते हैं। लेकिन दूसरे पॉलिमर जैसे पॉलिस्टर एविनाइल एस्टर और नायलॉन कभी–कभी उपयोग किया जाता है। मिश्रण (कम्पोजिट) में बहुत टाइप के फाइबर सम्मिलित होते हैं जैसे केवल ऐलुमिनियम या ग्लास फाइबर इत्यादि। हालांकि कार्बन फाइबर अत्यंत बहुमूल्य होता है। इसके बहुत उपयोग होते है, जैसे ऐरोस्पेस एवं ऑटोमोटिव तकनीकी आदि में। जैसेकि F1 कार और ऐरोप्लेन में। कार्बन फाइबर के तत्व आधुनिक साइकिल, मोटर साइकिल, कार इत्यादि में प्रयोग हो रहे हैं। इसकी विशिष्ट शक्ति और दृढ़ता बहुत महत्त्व रखती है।

कार्बन फाइबर प्रबलित पॉलिमर उच्च ऑटोमोबाइल कारों में उपयोग किया जाता है। हल्का भार उच्च प्रदर्शन के लिए आवश्यक होता है। कार्बन फाइबर की नई विधि विकसित हुई है जो मैटीरियल को उच्च शक्ति प्रदान करती है। रेस कारों के मैटीरियल को इसी तकनीक से बनाया जाता है। यह नई तकनीक उच्च प्रभाव को रोकने की शक्ति देती है। उच्च प्रदर्शन की रेस कार की असेंबली में इस टाइप के कार्बन फाइबर का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

चित्र 1. मोनोकोक चैसिस।

कार्बन फाइबर के गुण

कार्बन फाइबर प्रबलित पॉलिमर मिश्रित मैटीरियल हैं। इसमें दो मिश्रण होते हैं मैट्रिक्स और एक प्रबलित (CFRP) कार्बन फाइबर जो कि मजबूती प्रदान करता है। मैट्रिक्स इपोक्सी के रूप में आमतौर पर एक पॉलिमर प्रबलित के साथ बंधा होता है, क्योंकि CFRP दो अलग तत्त्वों के होते हैं।

नीचे कार्बन फाइबर की यांत्रिकी गुणों की तालिका 1. में दर्शाई गई है–

गुण	कार्बन फाइबर फेबरिक
यंग प्रत्यस्थिरता	70 GPa
निरपेक्ष तन्यता सामर्थ्य	600 MPa
निरपेक्ष संपीडित सामर्थ्य	570 MPa
निरपेक्ष तन्यता तनाव	0.85 प्रतिशत
निरपेक्ष संपीडित तनाव	0.8 प्रतिशत
तापीय प्रसार गुणांक	2.1 Strain/K
घनत्व	1.6 g/cc
तनन– सामर्थ्य	110 MPa
संपीडन सामर्थ्य	110 MPa

कार्बन फाइबर के उपयोग से वाहन उद्योग में बढ़ोतरी

ऑटोमोटिव कार्बन फाइबर अनुप्रयोगों से ऑटोमोटिव की उपयोगिता बढ़ रही है और वाहनों का हल्का वजन तेजी से महत्वपूर्ण हो जाता है। कार्बन फाइबर प्रबलित प्लास्टिक ऑटोमोटिव के अनुप्रयोग बढ़ रहे हैं। Lucintel ऊर्ध्व संशोधित किया गया ह। कार्बन फाइबर बाजार में वृद्धि के अपने पूर्वानुमान के अनुसार अगले पांच वर्षों में 9.8 प्रतिशत प्रति वर्ष से प्रति वर्ष 13 प्रतिशत हो जायेगी। CFRP के उपयोग के अनुसार बी एम डब्ल्यू, मर्सिडीज बेंज, Lamborghini और अन्य उच्च कंपनियों में वृद्धि हुई है। CFRP का उपयोग वजन कम करने के लिए प्रतिबद्ध है। एस जी एल समूह की रिपोर्ट है कि इनकी कार्बन रेशे और व्यापार सम्मिश्र में बिक्री में 2010 के पहले नौ महीनों में 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

सम्मिलित अवधारणा कारों की सामग्री में पसंद की गई है और कार्बन फाइबर का उपयोग उच्च मात्रा में उत्पादन के लिए तेजी से बढ़ रहा है। कार्बन फाइबर को प्रयोगशाला से बाहर लाने के लिए वैज्ञानिक तेजी से कार्य कर रहे हैं ताकि इसको अधिक मात्रा में तैयार कर सकें, और इसके उपयोग में व्यापक रूप में वृद्धि की जा सके।

मास (द्रव्यमान) बचत क्षमता

लगभग 16 प्रतिशत एयरबस A380 जंबो विमान में कार्बन फाइबर होता है। कार्बन फाइबर का प्रयोग एयरोस्पेस ऐलुमिनियम व मिश्र की तरह संचालित है जो व्यावसायिक विमान में वजन को कम केर देता है। यही लाभ मोटर वाहन उद्योगों के लिए उपलब्ध हैं। कम द्रव्यमान मतलब बेहतर ईंधन अर्थव्यवस्था है। लेकिन यह आंतरिक लाभ है जो की त्वरण और शीर्ष गति में वृद्धि करता हे ।

फाइबर सम्मिलित (कंपोजिट) ग्लास फाइबर और ऐलुमिनियम, से 50 से 60 प्रतिशत से हल्का है। कार्बन फाइबर कंपोजिट में टूलिंग लागत कम है। विशेष संस्करण, आला वाहनों और उपभोक्ता ही अलग कुछ करने के लिए मांग कर रहे हैं। स्टील से कार्बन फाइबर की तुलना नीचे दर्शाई गयी है। नीचे दी गई तालिका 3 से देख सकते हैं कि कार्बन फाइबर लगभग 3 गुना मजबूत और स्टील

की तुलना में 4 गुना हल्का होता है–

मैटीरियल	तनन–सामर्थ्य	घनत्व	विशिष्ट सामर्थ्य
कार्बन फाइबर	3.50	1.75	2.00
स्टील	1.30	7.90	0.17

अवसर और चुनौतियाँ

मैटीरियल और इसके उपयोग के अभूतपूर्व स्तर रुचिपूर्ण है, लेकिन बड़े आकार में बाधाएं रहती हैं। हालांकि माल की लागत में गिरावट आई है। यह आवश्यक नहीं होगा की कम लागत के रूप में प्राप्त करें बल्कि यह आवश्यक होगा कि हम कार्बन फाइबर का अच्छा उपयोग कर लें। उपभोक्ताओं द्वारा सूचित किया गया है कि वे अधिक प्रीमियम का भुगतान करेंगे। एसयूवी और लक्जरी कारों की तरह बड़े वाहनों के ड्राइवरों ने बाजार में अधिक अश्वशक्ति और मांग की है।

यदि CAFE की आवश्यकताओं को उठाया जाता है, कार्बन फाइबर कंपोजिट महंगा है, जबकि काफी प्रभावी भी हैं, विनिर्माण क्षेत्र में नवाचारों और ईंधन की अर्थव्यवस्था में सुधार ने और बड़े पैमाने पर कार्बन फाइबर की मांग के लिए अभियान जारी रखा है वांछित प्रदर्शन हल्के संरचनाओं और बॉडी पैनलों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। ऐसी संरचनाओं में निश्चित रूप से व काफी अन्य तकनीकों को किया जाएगा या धातु को, यह अभी तक निर्धारित किया जाना है, और पहले बॉडी संरचना पर विचार कर रहे हैं। बहरहाल अगर इन मुद्दों को हल कर रहे हैं ईंधन सेल कारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कार्बन फाइबर के लिए काफ़ी अवसर है और आपूर्तिकर्ता समुदाय के लिए अन्य बातों पर ध्यान देने की जरूरत है।

उपयोगी जीवन और रीसाइक्लिंग

कार्बन फाइबर प्रबलित पॉलिमर (CFRPs) एक लंबे समय तक उपयोगी तथा सूर्य से संरक्षित है। जब विनाइल से मुक्त (पी वी सी या पोल्यविन्यल क्लोराइड) और अन्य पॉलिमर halogenated, CFRP उष्मा इकाई के रूप मे एक ऑक्सीजन मुक्त वातावरण में polymerization के माध्यम से विघटित किया जा सकता है। यह एक एक कदम प्रक्रिया में एक रिफाइनरी में पूरा किया जा सकता है और कार्बन और मनोमरों का पुनः उपयोग तो संभव है।

F1 कार में कार्बन फाइबर का प्रयोग

1980 के दशक में जेम्स बोनार्ड ने कार्बन फाइबर के बारे में बताया। सर्वप्रथम उन्होंने ऐरोप्लेन के रिम में उसे बताया। इसके बाद इसका प्रयोग वाहनों में किया। इसके उपयोग से ऑटोमोबाइल उद्योग में क्रांति आ गई। F1 कार में पहले जो मैटीरियल प्रयोग होता था, वो बहुत भारी होता था जिससे वाहन के सामर्थ्य पर असर पड़ता था। कार्बन फाइबर के उपयोग से से वहां का भार 50 प्रतिशत तक कम होने लगा। इसके इस्तेमाल से वाहन की गति पर काफी प्रभाव पड़ता है। लागत अधिक होने की वजह से यह महंगे वाहनों में प्रयोग होता है।

चित्र 2. कार्बन फाइबर का F1 में प्रयोग।

F1 की मोनोकॉक बॉडी अब पूरी तरह से इसी से बनाई जाती है। सस्पेंशन सिस्टम, ब्रेक पैड, कार सीट, कार का मटेरियल, कार रिम और अन्य में कार्बन फाइबर का प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

हमेशा से विकसित ऑटोमोबाइल शोधकर्ताओं और डेवलपर्स के लिए खोज का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का विकास तेजी से बढ़ रहा है जिससे निश्चित रूप से रचनात्मक और मिश्रित उत्पादन विकास में वृद्धि होगी। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जाता है कि कार्बन फाइबर ने उद्योगों में और ऑटोमोबाइल और अन्य उद्योगों में भी परिवर्तन की शुरुआत की है।

संदर्भ

1. Basic Properties of Reference Crossply Carbon-Fiber Composite. Oak Ridge National Laboratory (February 2000).
2. http://en.wikipedia.org/wiki/Carbon-fiber-reinforced polymer.
3. Dmitri Kopeliovich Carbon Fiber Reinforced Polymer Composites. substech.com.

सर्वव्यापक संगणिकीः सबसे तेजी से उभरती प्रौद्योगिकी

कमल कुमार रंगा एवं रजनी कमल कुमार रंगा
गंगा प्रौद्योगिकी तथा प्रबंधन संस्थान, झज्जर, हरियाणा
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार

सारांश

सर्वव्यापक संगणिकी नामक शब्द का प्रयोग अनिवार्यतः मानव द्वारा संगणक के साथ हर प्रकार के सम्प्रेषण व उसके हर क्षेत्र में उपयोग के लिए किया जाता है। इस तकनीक में मुख्यतः मानव के दैनिक जीवन और उसके वातावरण में सक्रियता एवं बुद्धिमत्ता की रचना पर ध्यान दिया जाता है। यह भविष्य के कम्प्यूटर का परिवर्तनीय चरण है जहां डेस्कटॉप व नोटबुक से विकसित होते हुए हम एक नई क्रान्ति की ओर बढ़ रहे है। यहाँ हम कम्प्यूटर को मानव जीवन का एक ऐसा अभिन्न अंग बनाने में प्रयासरत है, जिससे मानव इसकी उपस्थिति से ही अनभिज्ञ होगा। इस लेख में हम सर्वव्यापी संगणिकी के आर्विभाव, विकास, डिजाइन व तकनीकी चिन्ताओं पर विचार करेगें।

सर्वव्यापक संगणिकी कम्प्यूटर के इस आधुनिक जगत की तीसरी क्रान्ति है, जो अभी शुरू हुई है, और जहाँ हमें वर्तमान प्रौद्योगिक विकास के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए ठोस विचारात्मक व विकासात्मक प्रयासों की आवश्यकता है। कम्प्यूटर वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के अनुसार इस क्षेत्र में भविष्य में इतना विकास होगा, जो विश्व को विस्मित कर देगा।

परिचय

सर्वव्यापक संगणिकी उपयोगकर्ताओं और संगणक के बीच बातचीत में सुधार का अध्ययन है। मानव संगणक सम्प्रेषन मूल रूप एक मॉडल है, जहाँ मानव और संगणक बातचीत सरल कैसे की जाए इस बारे में बात करते हैं। यहाँ हमारा ध्यान मुख्यतः संगणक को मानव जीवन का अभिन्न अंग बनाने पर केन्द्रित करते हैं, की मानव का उनकी उपस्थिति से अनभिज्ञ रहे। सर्वव्यापक संगणिकी, कंप्यूटिंग जगत में आई तीसरी लहर है जो अभी आरम्भ ही हुई है। यह शांत प्रौद्योगिकी का युग है, जहां प्रौद्योगिकी हमारे जीवन की पृष्ठभूमि में पहुँच चुकी है।

यह लैपटॉप और डेस्कटॉप की बजाय प्रौद्योगिकी जो हमारे वातावरण में अतंर स्थापित हो जाएगी। उपयोगकर्ता और कम्प्यूटर के बीच बातचीत को उपयोगकर्ता इन्टरफेस कहते हैं, जो सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर दोनों में शामिल हैं उदाहरण के लिए एक कैरेक्टर या ऑब्जेक्ट एक व्यक्तिगत संगणक के मॉनीटर पर सॉफ्टवेयर द्वारा प्रदर्शित वस्तुओं इनपुट, कीबोर्ड, माउस जैसे हार्डवेयर बाह्य उपकरणों के माध्यम से उपयोगकर्ताओं से प्राप्त होते हैं।

उदाहरण के लिए एक कॉफी पॉट जो मॉनीटरिंग या निगरानी मशीन है। इस घरेलू उपकरण को सेंसर जोड़कर हासिल किया गया है। इस पिछले डाटा, उपलब्धता और कॉफी में तापमान की रिर्पोट कस्टमाइज्ड वेब पेज पर दर्शाता है। सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग परिवेश खुफिया भविष्य के समाज की ओर दृष्टि प्रदान करता है, जहाँ मानव अपने चारो तरफ नेटवर्किंग और कंप्यूटिंग से लैस, बुद्धिमानी अंर्तसबंधों व गतिविधियों से घिरा हुआ रहेगा जिसमें रोजमर्रा की वस्तुऐं जैसे फर्नीचर, व्हीकल, रोड और स्मार्ट मैटिरियल शामिल है।

मूल अवधारणा

इसके मूल में सर्वव्यापक कंप्यूटिंग के सभी मॉडल छोटी, सस्ती और मजबूत नेटवर्क से पूर्ण मशीनों की दृष्टि प्रस्तुत करता है। यह मुख्य रूप से रोजमर्रा जीवन में सामान्य स्थान तक पहुँचाने का सपना है। उदाहरण के लिए एक साधारण बायोमेट्रिक कपड़ों द्वारा रोशनी और वातावरण को नियंत्रित किया जा सकता है। इसी से एक कमरे की रोशनी व ताप में आवश्यकतानुसार व लगातार बदलाव किया जा सकता है। सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग सिस्टम डिजाइन, अभियात्रिंकी व मानव सम्प्रेषण के रूप में कम्प्यूटिंग व विज्ञान को चुनौती देता है।

एप्पल के मार्क वीजर के अनुसार ''सर्वव्यापक प्रणाली उपकरणों के लिए तीन बुनियादी रूपों में प्रस्तुत करता है।''

टैबस : पहनने योग्य सेंटीमीटर आकार के उपकरण।

पैड : हाथ से प्रचालित/आयोजित मीटर या दशमांश आकार का उपकरण।

बोर्ड : मीटर आकार का सम्प्रेषणीय उपकरण।

वीजर द्वारा प्रस्तावित इन तीनों रूपों की विशेषताएं स्थूल आकार प्रस्तुत करती है। यदि हम इन तीन विशेषताओं के आयाम को देखते है तो सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग की अधिक उपयोग विविध रेंज में इसका विस्तार कर सकते है। इसलिए सर्वव्यापक प्रणालियों के लिए 3 अतिरिक्त रूपों का प्रस्ताव किया गया–

1. धूलः छोटे उपकरण अदृश्य हो सकते है। जैसे माइक्रो इलैक्ट्रोमैकेनिकल सिस्टम जो मिली–मीटर से सेंमी होंगे।

2. त्वचाः प्रकाश उत्सर्जक और प्रावाहिक पॉलीमर संगणक उपकरणों पर आधारित कपड़े अधिक लचीले और योजित सतह प्रदर्शित करती हुई कपड़े और पर्दे के रूप में इस तरह के उत्पादों का गढ़न किया जा सकता है।

3. क्लेः यह अलग–अलग प्रकार की कलाकृतियाँ है।

वास्तुकला

लोकप्रिय तकनीक सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग का आरम्भ मार्क वीजर के लेख से शुरू हुआ। जिसके अनुसार एक मानव सैकड़ो कम्प्यूटरों के साथ बातचीत और उसे परिचय एवं सूचना देता है। उनका जोर मशीन के बजाय मानव पर है। और दैनिक जीवन में व्यक्ति की मदद करने पर दिया गया है। सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग शोध में सक्षम प्रौद्योगिकी जैसे नेटवर्किंग, डाटा प्रबन्धन सूरक्षा और इन्टरनेट पर ध्यान केन्द्रित करती है। हांलाकि यहाँ सबसे महत्वपूर्ण गोपनीयता है जो एक विवादास्पद एवं चिंतात्मक मुद्दा बना हुआ है और सुझाव दिया गया है कि सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग की लम्बी सफलता गोपनीयता सबसे बड़ी बाधा हो सकती है, अतः इसका निवारण अत्यावश्यक है।

सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग की विशेषताएं निम्न हैं–

1. सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग उपकरणः (जैसे लैपटॉप, पी डी ए, सैलफोन आदि) स्थानीय नेटवर्क के माध्यम से दुनिया भर से जुड़े हुए है।
2. स्थानीय कम्प्यूटिंग उपकरणः ये उपकरण एक मानव संगणक (कम्प्यूटर) के स्वामित्व में होते है।
3. इन उपकरणों की जानकारी मानव उपयोगकर्त्ताओं को स्थानीय एवं विश्व स्तर पर साझा करने वाले उपकरण, एक को डाटा हिस्सेदार कहा जाता है और एक जो जानकारी का अवलोकन (प्राप्त) करता है उन्हें पर्यवेक्षक कहा जाता है।

डिजाइन

इस अनुभाग में उपर्युक्त आवश्यकताओं को संतुष्ट कर गोपनीयता नियंत्रक डिजाइन का वर्णन किया गया है। इस डिजाइन के घटक इस प्रकार है।

- स्थानीय व वैश्विक नेटवर्क : यहाँ ब्लूटूथ, वाई–फाई, ईथरनेट, स्थानीय के लिए व इन्टरनेट–वैश्विक के लिए प्रयोग किया जाता है।
- प्रत्येक स्थानीय डिजाइन और गोपनीयता नियत्रंक के बीच कनेक्ट इंटरफेस।
- प्रत्येक स्थानीय नेटवर्क के लिए गोपनीयता नियंत्रक।

गोपनीयता नियत्रंकः इस घटक के निम्नलिखित कार्य है–

क. गोपनीयता नीतियो को डाटा हिस्सेदार व डाटा पर्यवेक्षक से प्राप्त करता है और अगर वे मेल करती है तो उन्हें निर्धारित करता है, अगर वे मेल नहीं खाती तो उन्हें सेट किया जाता है। इस तरह कार्य के लिए गोपनीयता नियंत्रक के भीतर एक नीति मॉड्यूल है।

ख.यह सुनिश्चित करता है कि एक डाटा प्रयवेक्षक, एक डाटा हिस्सेदार की गोपनीय के साथ अनुपालन करे, यह कार्य अनुपालन माड्यूल द्वारा गोपनीयता नियंत्रक के भीतर किया जाता है।

ग. डाटा को डाटा हिस्सेदार व डाटा पर्यवेक्षक के बीच साझा करने के लिए कनेक्शन सेट करता है, जो गोपनीय नीतियों से मेल खाते है।

घ. कनेक्शन हो जाने पर स्थानीय डाटा हिस्सेदार व स्थानीय अथवा वैश्विक पर्यवेक्षक के बीच संवाद स्थापित कराता है।

संप्रेषक (इंटरफेस) : स्थानीय वातावरण के अलावा अन्य वातावरण में उपकरणों के लिए अंतर – गोपनीयता नीतियों का प्रबंधन करना, जिसमें प्रत्येक उपकरण की सीमित कम्प्यूटेशन क्षमता है।

विशेषताएं/सुविधाएं व लाभ

- **उच्च गतिशीलताः** उपकरणों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ मानव पकड़ गतिशीलता को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है।
- **कई उपकरण प्रति कार्यः** यहाँ उपकरणों का आकार बहुत छोटा है, जिनमें सीमित कार्य क्षमता है, इसलिए एक कार्य के लिए हमें कई उपकरणों की आवश्यकता पड़ सकती है।
- **आकार सेंटीमीटर से भी कमः** यहाँ मूल विचार उपकरणों का आकार छोटा करने का है, जिसमें उपकरणों का आकार सेंटीमीटर से भी कम हो जाता है।
- **सीमित बिजली खपतः** क्योंकि उपकरणों का आकार बहुत छोटा होता है, इसलिए उनकी बिजली खपत भी बहुत कम होगी। जहाँ तक छोटा सेल इन उपकरणों को कइ साल चलाने में सक्षम होगा।

अन्य

- गतिशील क्षेत्र आधारित रिर्पोटिंग।
- ध्वनि रहित संचार।
- सन्क्रिप्शन सुरक्षित संचार सुलभता।
- फीचर रीत तात्विक संदेश।
- इन–कार मानचित्रिकरण आदि।

निष्कर्ष

सर्वव्यापक संगणिकी कम्प्यूटिंग जगत, प्रौद्योगिकी व हमारे जीवन में निहित हो सकता है। यह एक महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी विकसित हो गई है, जो उपकरणो को प्रभावी ढ़ग से संवाद करने में, स्वेच्छापूर्ण निश्चित आगे बढ़ते उपकरणों के साथ बातचीत करने में सक्षम है। इसमें हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर का संयोजन व संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर कार्यान्वित किया जा सकता है। मोबाइल ढ़ांचे में तीव्रता कारण यह प्रौद्योगिकी सर्वश्रेष्ठ साबित होगी। यह एक बहुमुखी और संभावित सामरिक प्रौद्योगिकी है, जहाँ विशेष ध्यान उपयोगकत्ताओं पर है। यह अपने भौतिक स्थान से लगभग सब कुछ करने में सक्षम होगी। इस क्षेत्र में विशेष शोध, इस प्रौद्योगिकी को व कम्प्यूटिंग जगत को नए आयाम प्रदान करेगी।

संदर्भ

1. कमल कुमार रंगा, मानव संगणक इंटरेक्शन, कम्प्यूटेशनल इंजीनियरिंग और प्रबंधन (IJCEM), 1.2 पृष्ठ, 2010, इंटरनेशनल जर्नल।
2. Yves Punie, भावी तकनीकी अध्ययन के लिए संस्थान, महानिदेशालय संयुक्त अनुसंधान केन्द्र, यूरोपीय आयोग, 2003 'रोजमर्रा की जिंदगी में परिवेश खुफिया के सामाजिक और तकनीकी दृष्टिकोण? प्रवृत्ति झुकता है क्या'।
3. Tomoko Kodo, सारा Elo, ''कॉफी रेबोटः सर्वव्यापक कंप्यूटिंग का एक उदाहरण है।''
4. जी बेल, पी Dourish, कल की कलः सर्वव्यापक कंप्यूटिंग प्रमुख दृष्टि, स्प्रिंगर–वर्लग लंदन लिमिटेड 2006 पर नोटों।
5. Beyer Holzblatt और प्रासंगिक डिजाइन, Kaufmann 1998 [3]. Oulasvirta,ए, Kurvinen, ई, और Kankainen, टी (2003) Bodystorming में मामले के अध्ययनः वहाँ जा रहा द्वारा संदर्भों को समझना, व्यक्तिगत सर्वव्यापी कंप्यूटर, 7 (2), 125–134.
6. एम Weiser, ''इक्कीसवीं सदी के लिए कंप्यूटर'', साइंटिफिक अमेरिकन, सितंबर 1991, पी पी 94–100.
7. पी Boddupalli, एफ अल बिन अली, एन डेविस, ए शुक्रवार, ओ Storz, और एम वू, ''सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग वातावरण में भुगतान समर्थन'', पांचवें आई ई ई ई कार्यशाला की कार्यवाही पर मोबाइल कम्प्यूटिंग सिस्टम और अनुप्रयोग (2003 WMCSA), Monterey, कैलिफोर्निया, 9–10 अक्टूबर, 2003.
8. J I हांगकांग, जे डी एनजी, एस Lederer, और जे ए Landay, कार्यवाही, डिजाइनिंग इंटरएक्टिव सिस्टम (DIS2004), कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स, 1–4 अगस्त, 2004 पर ACM सम्मेलन गोपनीयता गोपनीयता के प्रति संवेदनशील सर्वव्यापक कंम्प्यूटिंग सिस्टम डिजाइन के लिए जोखिम मॉडल''।
9. मैं गोल्डबर्ग, डी वैगनर, और ई शराब बनानेवाला, ''इंटरनेट के लिए गोपनीयता बढ़ाना टेक्नोलॉजीज'', COMPCON'97 आई ई ई ई, पीपी 103–109, 1997.
10. ए एस केनी और एल कोरबा, गोपनीयता अधिकार प्रबंधन के लिए ''डिजिटल अधिकार प्रबंधन के अनुकूल'' संगणक और सुरक्षा, वॉल्यूम 21, नंबर 7, 2002 नवम्बर, 648–664.

मसालों को हानि पहुंचाने वाले रोग, कीट तथा सूत्रकृमि एवं उनका प्रबन्धन

एम आनन्दराज, राशिद परवेज, तथा एस देवसहायम
भारतीय मसाला फसल अनुसंधान संस्थान, कोझिक्कोड, केरल

सारांश

मसालों के बिना सुगंधित और स्वादिष्ट भोजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह भी सत्य है कि इनके औषधीय एवं धार्मिक कार्यों में उपयोग को भी नज़र अन्दाज़ नहीं कर सकते। वर्तमान में मसालों की खेती के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में गिरावट एवं जनसंख्या की बढोतरी के कारण इनकी बढती मांग के अनुरूप पूर्ति न कर पाना भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिये एक चिन्ता का विषय है। मसाला फसलों के उत्पादन में गिरावट के प्रमुख कारणों में से एक उनको हानि पहुंचाने वाले रोग, कीट, सूत्रकृमि एवं कृषकों का इनका वैज्ञानिक समाधान न जानना है। मसालों की प्रमुख फसलें जैसे काली मिर्च को *फाइटोफथोरा* खुर गलन, पर्ण चित्ती, एन्थ्रकनोज़ एवं विषाणु रोग हानि पहुंचाते हैं वहीं पोल्लू बीटल, थ्रिप्स एवं भाल्क कीट तथा सूत्रकृमियों द्वारा मन्द पतन एवं जड़गांठ रोग काली मिर्च को हानि पहुंचा कर उसकी उपज को कम कर देते हैं। अदरक एवं हल्दी की फसलों को मृदु विगलन, जीवाणु म्लानी एवं पर्ण चित्ती रोग, तना भेदक एवं शल्क कीट, जड़ गांठ एवं जड़ विगलन सूत्रकृमि प्रमुख रूप से हानि पहुंचाते हैं। इन रोगों, कीटों एवं सूत्रकृमियों की समस्याओं का उचित नियंत्रण विधियों द्वारा समाधान किया जा सकता है। इसके लिए कृषकों को जागरूक करके उन तक उचित माध्यम से वैज्ञानिक समाधान की जानकारी पहुंचाने की आवश्यकता है।

परिचय

मसालों को हम उनके सुगन्धित और स्वादिष्ट गुणों के लिए ही नहीं बल्कि इनके असीम औषधीय गुणों के लिए भी जानते हैं। भारत काली मिर्च, अदरक एवं हल्दी के उत्पादन में विश्व के अग्रणी देशों में से एक है।

भारत में वर्ष 2002.03 में काली मिर्च की खेती 223.94 हज़ार हेक्टर क्षेत्रफल में होती थी जिससे 317 किग्राम/हेक्टर की दर से कुल 70.92 हज़ार टन उत्पादन होता था, वही वर्ष 2010–11 में इसका क्षेत्रफल घटकर 183. 77 हज़ार हेक्टर रह गया, जिससे 283 किग्राम/हेक्टर की दर से 51.99 हज़ार टन उत्पादन प्राप्त हुआ। इसी प्रकार अदरक की खेती का क्षेत्रफल वर्ष 2009–10 में 156 हज़ार हेक्टर से 4352 किग्राम/हेक्टर की दर से कुल 679.29 हज़ार टन उपज प्राप्त हुई जबकि 2010–11 में अदरक की खेती का क्षेत्रफल घटकर 149.119 हज़ार हेक्टर रह गया।

काली मिर्च

काली मिर्च; *पाइपर नाइग्रम;* कुल; पाइपरासिया एक बहुवर्षीय आरोही बेल है। इसको मुख्यतः मसाले और औषधि के रूप में उपयोग करते हैं। भारत, विश्व में काली मिर्च का उत्पादक, उपभोक्ता एवं निर्यात करने वाला प्रमुख देश है। केरल तथा कर्नाटक काली मिर्च उत्पादन (97.7 प्रतिशत) में प्रमुख राज्य है। गत वर्षों में इसके उत्पादन में निरन्तर गिरावट आ रही है। इसका मुख्य कारण फसलों को हानि पहुंचाने वाले निम्नलिखित रोग, कीट एवं सूत्रकृमि है।

रोग

मृदु म्लानी: यह रोग मुख्यतः *फाइटोफथोरा* द्वारा पौधशाला में होता है। इस कारण पत्तियों पर काली रंग की चित्ती के निशान पड़ जाते हैं। यह निशान धीरे धीरे बढ़ कर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं जिससे पत्ती सड़ कर गिर जाती है। तने पर भी काले रंग के निशान दिखाई पड़ते है जिस कारण जड़ सड़ जाती है तथा अन्त में पौधा मर जाता है।

इस रोग की रोकथाम के लिये बोर्डियो मिश्रण (1 प्रतिशत) और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) का मासिक अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मेटालेक्सिल 0.01 प्रतिशत (1-25 ग्राम/लिटर पानी) या 0.3 प्रतिशत पोटैशियम फॉस्फोनेट का भी छिड़काव करके इस रोग की रोकथाम कर सकते हैं। जैव नियन्त्रण कारक *ट्राइकोडेरमा* का प्रयोग 1 ग्राम/किग्राम मृदा; *ट्राइकोडरमा* संख्या 10^{10} cfuèg की दर से छिड़काव करने से इस रोग को रोका जा सकता हैं। *स्यूडोमोनस फ्लूरोसन्स* (आई आई एस आर–6) को पोटिंग मिश्रण में 10^{10} cfuèg की दर से डालने से रोग की समस्या में कमी आती है।

एन्थ्राकनोज़ रूयह रोग *कोलोटोट्राइकम ग्लोयोस्पोरोयीड्स* के द्वारा होता है। इस रोग के कारण पौधों की पत्तियों को अत्यधिक हानि पहुँचती है। जिस कारण पत्तों पर भूरे–पीले से काले भूरे रंग की अनियमित चित्तियां पड़ जाती हैं। इस रोग को नियन्त्रण करने के लिए 1 प्रतिशत बोर्डियो मिश्रण या कारबेन्डाज़िम (0.1 प्रतिशत) का उपयोग करना चाहिए।

पर्ण विगलन तथा चित्ती : यह रोग *राइजोक्टोनिया सोलानी* के द्वारा होता है। इसका प्रकोप पौधशाला में अप्रैल–मई के महीने में गरम और आर्द्र वातावरण होता है। इस रोग के कारण पत्ते तथा तने दोनों को हानि पहुंचती है। पत्तियों पर गहरे रंग की चित्ती तथा माइसीलिया थ्रेड्स पड़ जाती है। यह एक पत्ती से दूसरी पत्ती पर फैलती जाती है। तने पर काले रंग का निशान पड़ जाता है जो ऊपर या नीचे की ओर फैलता है जिसस पौधा सूख कर गिर जाता है। पत्तियों पर चित्ती *कोलीटोट्राइकम* प्रजाति द्वारा होती है। इन दोनों रोगों की बोर्डियो मिश्रण 1 प्रतिशत का छिड़काव करके रोकथाम की जा सकती है।

मूल म्लानी : यह रोग मुख्यतः पौधशाला में जून–सितंबर के महीने में *स्केलेरोटियम रोलफसी* द्वारा होता है। इसके कारण पत्तियों तथा तने पर गहरे रंग के निशान पड़ जाते हैं। पत्तियों के अग्र भाग पर सफेद माइसीलियम भी देखा जा सकता है। माइसीलिया थ्रेड्स बाद में तने को खोखला कर देते है जिससे पत्तियां सूखकर गिरने लगती हैं। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में इसको फाइटो. सैनिटरी अर्थात् रोग युक्त पत्तियों तथा पौधे को नष्ट कर देना चाहिए। यद्यपि पौधों पर बोर्डियो मिश्रण 1 प्रतिशत या कार्बनडाज़िम 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करके भी इस रोग पर नियंत्रण किया जा सकता है।

विषाणु रोग : पौधशाला में काली मिर्च के पौधों पर वैन क्लियरिंग, मोसाइक, पीला दाग और छोटे पत्ते विषाणु के स्पष्ट लक्षण होते हैं। यह संक्रमण मुख्यतः रोपण सामग्रियों में होता है तथा विषाणु संक्रमित रोपण सामग्रियों का उपयोग करने से यह संक्रमण पौधों में आ जाता है। इसलिये रोग रहित रोपण सामग्री का उपयोग करना चाहिए। इन विषाणुओं का विस्तार कीटों जैसे एफिड तथा मीलीबग द्वारा भी होता है। इसलिये पौधशाला में पौधों की नियमित देखभाल तथा कीटनाशक रसायनों जैसे डिमेथोयट (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव समय–समय पर करना चाहिए। अगर संक्रमित पौधा दिखे तो उसे उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

कीट

पोल्लु बीटल : पोल्लु बीटल (*लोनगीटारसस निग्रिपेनोनस*) काली मिर्च को हानि पहुंचाने वाला प्रमुख कीट है। इसका प्रकोप मैदानी तथा समुद्र तट से कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में अधिक होता है। बागों में

छायादार जगहों पर इस कीट का अधिक प्रभाव होता है। सितंबर–अक्तूबर के समय इस कीट का प्रकोप अधिक होता है। इसकी वयस्क, लगभग 2.5 मि मी x 1.5 मि मी आकार की काली बीटल है, इसका सिर और गले का हिस्सा पीले भूरे रंग तथा पंख काले रंग के होते हैं। पूर्ण विकसित सूंडी कृमि सफेद रंग की लगभग 5 मि. मीटर लंबी होती हैं।

वयस्क बीटल पौधे की नरम पत्तियों तथा स्पाइक को खाकर हानि पहुंचाती है। मादा नई स्पाइक तथा बेरी पर अण्डे देती है। इसकी सूंडी छेद करके उसके अतिरिक्त तन्तुओं को खाती है तथा संक्रमित स्पाइक काली होकर सड़ जाती है। संक्रमित बेरी भी काले रंग में बदल कर खोखली हो जाती है तथा यह दबाने से टूट जाती है। छाया को पौधों पर कम करने से इस कीट का प्रभाव कम हो जाता है। इस कीट को नियंत्रण करने के लिये जून–जुलाई तथा सितंबर–अक्तूबर में 0.05 प्रतिशत क्वानलफोस का छिड़काव करना चाहिए अथवा 0.05 प्रतिशत क्वानलफोस का जुलाई में तथा 0.6 प्रतिशत नीम गोल्ड (नीम आधारित कीटनाशक) का छिड़काव अगस्त, सितंबर तथा अक्तूबर में अधिक प्रभावी होता हैं। पत्तियों के आन्तरिक हिस्सों तथा स्पाइक पर अच्छी तरह छिड़काव करना चाहिए जहां मुख्यतः व्यस्क कीट होते हैं।

शिखर तना बेधक: शिखर तना बेधक (*सामदिया हेमिडोक्सा*) काली मिर्च के नए पौधों को गंभीर हानि पहुंचाता है। इसका वयस्क छोटा सा पतंग होता हैं, जिसके पंख तेज़ लाल रंग के (10–15 मिमी व्यास) होते हैं। इसके अग्र पंख पीले तथा पश्च पंख भूरे रंग के होते हैं। इसका लारवा नरम शाखाओं पर छेद करके उसके आन्तरिक कोशों को खाता है जिससे शाखाएं काली पड़कर सूख जाती हैं। पूर्ण विकसित लार्वा 12–15 मिमी लंबे भूरे–हरे रंग के होते है। जब यह कीट नई शाखाओं पर आक्रमण करता है तो इसका असर पौधे की वृद्धि पर पड़ता है। इस कीट का प्रभाव सबसे अधिक जुलाई से अक्तूबर के मध्य होता है। इस कीट को नियंत्रण में करने के लिये 0.05 प्रतिशत क्वानलफोस का छिड़काव नई शाखाओं पर जुलाई से अक्तूबर के मध्य एक माह के अन्तराल पर करना चाहिए।

लीफ गाल थ्रिप्स: लीफ गाल थ्रिप्स (*लिओथ्रिप्स करनई*) अधिक उंचाई वाले स्थानों पर नए पौधों को मैदानी क्षेत्रों तथा पौधशाला के अन्दर अधिक हानि पहुंचाते हैं। इसका वयस्क काले (2.5– 3.0 मिमी लंबे) रंग का होता हैं। लारवा तथा प्यूपा कृमि सफेद रंग के होते हैं। थ्रिप्स पत्ती के किनारे को अन्दर की तरफ मोड़कर उसमें गांठें बनाती हैं जिससे पत्ती की सिकुडी हुई आकृति बन जाती है। अत्यधिक हानि होने पर पौधे की वृद्धि पर असर पडता है। इसके नियंत्रण के लिए 0.05 प्रतिशत डाइमीथेट का छिड़काव करना चाहिए।

शल्क कीट: काली मिर्च को विभिन्न प्रकार के शल्क कीट हानि पहुंचाते हैं। मसल शल्क (लेपिडोसेफिस पाइपीरिस) तथा कोकोनट शल्क (एस्पिडयोटस डेस्ट्रक्टर) अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर काली मिर्च के पौधों को तथा मैदानी क्षेत्रों के पौधशाला में अधिक हानि पहुंचाते हैं। मसल शल्क की मादा 1 मिमी लंबी गहरे भूरे रंग तथा कोकोनट शल्क 1 मिमी व्यास की गोलाकार पीले–भूरे रंग की होती है। शल्क कीट गतिरोध होते हैं। यह पौधे के किसी भी भाग पर स्थाई रूप से चिपक कर सार चूसते हैं जिससे पौधे की नई पत्तियों में पपडी पड़ जाती हैं तथा पौधे में पीलापन आ जाता है। अतः पौधा मुरझा जाता है। इसके अत्यधिक ग्रसित होने पर पौधा सूख जाता है। इसका प्रकोप मानसून के पश्चात् ग्रीष्मकाल में अधिक होता है।

अत्यधिक संक्रमित शाखाओं को काटकर नष्ट कर देना चाहिए। इसको नियंत्रण करने के लिए 0.1: डाइमीथोट का छिड़काव 21 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए। पौधशाला में 0.3 प्रतिशत नीम ओयल या नीमगोल्ड (0.3 प्रतिशत) या मछली गंधराल तेल (3 प्रतिशत) का छिड़काव भी करके इस कीट को नियंत्रण किया जा सकता है।

लघु कीट: पत्तियों को खाने वाला कीडा *साइनीगिया* स्पीसीस नए पौधे की पत्तियों तथा स्पाइक को हानि पहुंचाता है। इसको नियंत्रण करने के लिये 0.05 प्रतिशत क्वानलफोस का छिड़काव करना चाहिए। मीलीबग, गाल मिड्जस तथा एफिड्स विशेषकर, पौधशाला में नरम शाखाओं को हानि पहुंचाते हैं। इसको नियंत्रण करने के लिये डाइमीथोट (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए। जड़ों को हानि पहुंचाने वाली मीलीबग को क्लोरोपाइरीफोस (0.075 प्रतिशत) को छिड़कने से नियंत्रण किया जा सकता है।

सूत्रकृमि

सूत्रकृमि बहुत ही सूक्ष्म आकार, बेलनाकार, रंगहीन तथा धागेनुमा होती है। प्रायः इन्हें नग्न ऑखों से नहीं देखा जा सकता है। इन्हें देखने के लिये विशेष प्रकार के सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है। यह मुख्यतः मिट्टी में 5.35 सेमी तक पाए जाते हैं। यह पौधों की जड़ों को बाहर तथा अन्दर दोनों प्रकार से हानि पहुंचाते हैं। इनकी उपस्थिति एक निश्चित संख्या से अधिक होने पर पौधों को पानी तथा अन्य पोषक तत्वों को प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न होती है। इसके कारण काली मिर्च में निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते हैं।

मन्द पतन रोग : यह रोग बरोयिंग सूत्रकृमि, रेडोफोलास सिमिलस, जड़ गांठ सूत्रकृमि मेलोडोगाइन इनकोग्निटा तथा फाइटोफथोरा कैप्सीसी जैसे रोगजनकों द्वारा संयुक्त रूप अथवा एकल संक्रमण के कारण होता है। आर. सिमिलस एक चलित अन्तर्परजीवी है। यह पौधों की जड़ों में प्रवेश करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलते हुए पोषण लेते है तथा एम. इनकोग्निटा एक पूर्ण अन्तपरजीवी है जो जड़ों में एक स्थान से प्रवेश करके उसी जगह से पोषण लेते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

रोगजनक द्वारा पौधे की फीडर जड़ों को हानि पहुंचाने से मन्द पतन रोग उत्पन्न होता है। इसके प्रमुख लक्षणों में नए पौधों की जड़ों में छोटी तथा अनियमित काले रंग की चित्तियां पड़ जाती है जो बाद में एक दूसरे से मिल जाती है। इस कारण जड़ों में रोटिंग आरंभ होती है। रोग ग्रसित पौधों की पत्तियां हल्की पीली (पीलापन) पड़ जाती है। यह इस रोग का प्रमुख बाह्य लक्षण है। रोग ग्रसित पौधा रोग के आरम्भ होने के 3.5 वर्ष के भीतर मर जाता है *आर सिमिलिस* का प्रकोप सितम्बर से नवम्बर माह में अधिक तथा अप्रैल से जून माह में कम होता है। इनकी संख्या पर वर्षा, आर्द्रता, पी. एच. तथा तापमान का भी प्रभाव पड़ता है। इनकी संख्या कम पी एच, 28.30^0 तापमान तथा अधिक आर्द्रता वाले स्थानों पर अधिक होती है।

पौधशाला में सूत्रकृमियों की रोकथाम के लिये पोटिंग मिश्रण को सौरीकृत करके उसमें पोकोनिया क्लामाइडोस्पोरिया या ट्राइकोडरमा हरज़ियानम 1.2 ग्राम/पौधा (10^6 सी एफ यू/ग्राम) की दर से उपचारित करते हैं।

खेतों में पोकोनिया क्लामाइडोस्पोरिया या ट्राइकोडरमा जैसे जैव नियंत्रण कारकों को 50 ग्राम/बेल (10^8 सी एफ यू/ग्राम) की दर से वर्ष में दो बार (अप्रैल–मई तथा सितम्बर–अक्तूबर) उपचारित करने से सूत्रकृमियों की हानि से बचा जा सकता है। अन्तः पादपी जीवाणु जैसे बैसीलस मैमटेरियम तथा करटोबैक्टीरियम ल्यूटियम का उपयोग कर के आर सिमिलस तथा पैसलोमाइसिस लिलासिनस या पौसचोरिया पैनीट्रांस द्वारा आर. सिमिलस तथा एम इनकोगनिटा को नियंत्रण कर सकते हैं।

जड़ गांठ रोग : यह रोग मुख्यतः जड़ गांठ सूत्रकृमि, मेलीडोगाइन स्पी. द्वारा होता है। यह सूत्रकृमि फसल को 15.50 तक हानि पहुंचाते है। रोग ग्रसित पौधे के प्रमुख लक्षणों में पत्तियों का पीलापन, पत्तियों का मुरझाना, फल बनने में विलम्ब, पौधे की वृद्धि न होना आदि होते हैं। यह सूत्रकृमि मिट्टी की उपरी सतह से 30 सेमी गहराई तक बहुतायात से मिलते हैं। इस सूत्रकृमि की मादा गोलाकार, अण्डे के आकार

की होती है। इसके अण्डे जेलेटिन पदार्थ में एकत्रित रहते हैं। यह सूत्रकृमि लगभग 25–30 दिन में अपना जीवनचक्र पूर्ण कर लेती हैं। इसका नर बेलनाकार, धागेनुमा होता है।

इसका लारवा (द्वितीय डिंभक) नई जड़ों को काटकर उसके अन्दर घुस कर पानी तथा भोजन ले जाने वाली कोशिकाओं को अपना भोजन बना लेते हैं। तत्पश्चात् यही सूत्रकृमि गोलाकार होकर जड़ तंत्र में गांठें पैदा करते हैं। यह गांठ भूरे रंग की छोटी अथवा बडी होती हैं। अत्यधिक ग्रसित पौधे में इन गांठों का आकार बडा होता हैं। जिस कारण जड़ माला के आकार की दिखाई देती है तथा जड़ें फूली हुई प्रतीत होती है। सूत्रकृमि द्वारा संक्रमित गांठों को जड़ों से अलग नहीं किया जा सकता। इन गांठों के कारण पौधे मृदा में पोषक तत्व एवं पानी की उपलब्धता होते हुए भी पर्याप्त मात्रा में उसे ग्रहण नहीं कर पाते जिस कारण पौधों की पत्तियां पीली पड जाती है तथा वृद्धि रुक जाती है जिससे पौधे में दुर्बलता आ जाती है। अतः पौधा बौना दिखाई देने लगता है। सामान्यतया काली मिर्च के कुछ कल्टिवर्सों में बड़ी गांठ बनती है जबकि अधिकतर कल्टिवर्सों में छोटी गांठें बनती हैं। इन सूत्रकृमियों का प्रकोप माह दिसम्बर/जनवरी में अधिक तथा अप्रैल/मई के महीने में कम होती है।

काली मिर्च की सूत्रकृमि प्रतिरोधक प्रजातियों को उगाने से रोग के आपतन में कमी आती है तथा पौधे को हानि से बचाया जा सकता है। भारतीय मसाला फसल अनुसंधान संस्थान, कालिकट द्वारा विकसित प्रजाति पौरनमी।

रोग

मृदु विगलन : मृदु विगलन अदरक का सबसे अधिक विनाशकारी रोग है जिसके फलस्वरूप रोगबाधित सभी पौधे नष्ट हो जाते हैं। यह रोग पाइथीयम एफानिडरमाटम के द्वारा होता है। पी वेक्सान्स और पी. माइरीओटाइलम के द्वारा भी यह रोग होता है। दक्षिण पश्चिम मानसून के समय मिट्टी में नमी के कारण इसका प्रभाव अधिक होता है। इसका प्रभाव सर्वप्रथम आभासी तने के निचले भाग में तत्पश्चात् उपर की तरफ फैल जाता हैं। संक्रमित तने का निचला भाग पानी को सोख कर प्रकन्द तक पहुंचता है जिससे यह रोग प्रकन्द तत्पश्चात् जड़ में भी लग जाता है। इसके बाह्य लक्षणों में पत्तियों में पीलापन आ जाता है जो धीरे धीरे पूरी तरह फैल जाता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पत्तों का मध्य भाग हरा रहता हैं जबकि अगला भाग पीला होता है। यह पीलापन पौधे की सारी पत्तियों पर फैल जाता है जिसके कारण पत्तियां सूखकर गिरने लगती है।

इस रोग को नियंत्रण करने के लिये भण्डारण के समय तथा बुआई से पहले बीज प्रकन्द को मैनकोज़ेब (0.3 प्रतिशत) से 30 मिनट तक उपचार करना चाहिए। खेत में पानी का निकास होना चाहिए। अगर खेत में पानी जमा हो रहा है तो इससे इस रोग की समस्या और बढ़ जाती है। पानी के निकास के लिये नाली बना कर पानी का निकास अच्छी तरह करना चाहिए। यह रोग संक्रमित बीज द्वारा भी होता है। इसलिये रोग मुक्त प्रकन्द को ही बुआई के लिये उपयोग करना चाहिए। *ट्राइकोडरमा हरज़ियानम* के साथ नीम के 1 किग्राम/बेड की दर से डालने पर इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। रोग ग्रसित पौधे को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए और उसके चारों तरफ मैनकोज़ेब (0.3 प्रतिशत) डालना चाहिए ताकि यह रोग और अधिक न फैले।

जीवाणु म्लानी : यह रोग रालस्टोनिया सोलानसीरम द्वारा दक्षिण पश्चिम मानसून के समय मिट्टी एवं बीज से उत्पन्न रोग है। इसके लक्षण सर्वप्रथम आभासी तने के निचले हिस्से पर दिखाई पडते हैं और यह ऊपर की ओर बढने लगते हैं। सबसे पहले निचली पत्तियां पीली पड़ती है तत्पश्चात् धीरे धीरे उपर वाली पत्तियां भी पीली पड़ जाती हैं। रोग बाधित तने के संवहनी (वास्कुलर) तन्तु में गहरे

रंग की लाइन पड जाती है और प्रकन्द को दबाने पर उस में से दूध जैसे पदार्थ का स्राव होने लगता है। अन्त में प्रकन्द गल जाता है।

कीट

तना बेधक : तना बेधक (*कोनोगीथस पंक्टिफेरालिस*) अदरक को हानि पहुंचाने वाला प्रमुख कीट है। इसका लार्वा तने को बेधकर उसकी आन्तरिक कोशों को खा लेता है। इसके द्वारा भेदित तने के छिद्र से फ्रास निकलता है। पौधे की उपरी पत्ती पीली पड़ जाती है। इसका वयस्क मध्यम आकार का होता है जिसमें 20 मिमी शल्भ युक्त नारंगी पीले रंग के पंख होते हैं जिस पर सूक्ष्म काले चित्ती के निशान होते हैं। इसका लार्वा हल्के भूरे रंग के होते है। इनका प्रभाव सितम्बर से अक्तूबर माह के बीच अधिक होता है!

तना बेधक को 21 दिनों के अन्तराल से जुलाई से अक्तूबर के मध्य 0.1 प्रतिशत मैलथियोन का छिड़काव करके नियंत्रण किया जा सकता है। जब कीट ग्रसित पौधे पर प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई दें तब छिड़काव करना ज्यादा प्रभावी होता है।

राइज़ोम शल्क : राइज़ोम भाल्क (*अस्पिडियल्ला हरट्टी*) खेत के अन्दर तथा भण्डारण में प्रकन्द को हानि पहुॅचाते हैं। इसकी वयस्क मादा गोलाकार (लगभग 1 मि. मीटर) हल्के भूरे रंग की होती हैं। यह प्रकन्द का सार चूस लेते हैं जिससे वह सूखकर मुरझा जाते हैं जिसके कारण अंकुरण में समस्या आती है। इसकी रोकथाम के लिए प्रकन्द को भण्डारण के समय और बुआई से पहले 0.075% क्विनालफोस से 20–30 मिनट तक उपचारित करते हैं। कीट ग्रसित प्रकन्द को भण्डारण न करके उसे नष्ट कर देना चाहिए।

लघु कीट: पत्ती लपेटक पर्ण वेल्लक के लार्वे (*उदास पोस झोलस*) के लार्वे पत्तों को भेदकर काटते हैं तथा उसको खा लेते है। इसके वयस्क मध्यम आकार की तितली होती है जिसके सफेद चित्ती युक्त भूरे काले रंग के पंख होते हैं इसके लार्वे गहरे हरे रंग का होता है। जब इस कीट का प्रकोप अधिक हो तब कारबरिल (0.1%) या डायमेथोयट (0.05%) का छिड़काव करने से इसको नियंत्रण किया जा सकता है।

जड़ बेधक मुख्यतः नरम राइज़ोम जड़ और आभासी तने के निचले हिस्से को खाते है जिसके कारण पत्तियों में पीलापन आ जाता है और पौधा सूखने लगता है। इस कीट को नियंत्रण करने के लिऐ क्लोरीपाइरिफोस (0.075 प्रतिशत) का मिट्टी में छिड़काव करते है।

सूत्रकृमि

जड़ गांठ रोग : यह रोग मुख्यतः जड़ गांठ सूत्रकृमि, *मेलीडोगाइन* स्पीसीस के द्वारा होता है। यह सूत्रकृमि फसल को 10.50 प्रतिशत तक हानि पहुंचाते हैं। रोग ग्रसित पौधे के प्रमुख लक्षणों में पत्तियों का पीलापन, सूख कर मुरझाना, पौधे की वृद्धि न होना आदि हैं। इस सूत्रकृमि की मादा गोलाकार, अण्डे के आकार की होती है। इसके अण्डे जेलेटिन पदार्थ में एकत्रित रहते हैं। यह सूत्रकृमि एक ही फसल में कई पीढ़ियां पूरी करती है। यह सूत्रकृमि लगभग 25–30 दिन में अपना जीवनचक्र पूर्ण कर लेते हैं। इसका नर वेलनाकार, धागेनुमा होता है। इसका लार्वा नई जड़ों को भेदकर उसके अन्दर घुस जाता है तथा पानी तथा भोजन ले जाने वाली कोशिकाओं को अपना भोजन बनाता है। तत्पश्चात् यही सूत्रकृमि गोलाकार होकर जड़ तंत्र में गांठें पैदा करती हैं। यह गांठ भूरे रंग की छोटी अथवा बडी होती हैं। अत्यधिक ग्रसित पौधे में इन गांठों का आकार बडा होता हैं। जिस कारण जड़ें फूली हुई प्रतीत होती है। सूत्रकृमि द्वारा संक्रमित गांठों को जड़ों से अलग नहीं किया जा सकता। इन गांठों के कारण पौधे मृदा में पोषक तत्व एवं पानी की उपलब्धता होते हुऐ भी पर्याप्त मात्रा में उसे ग्रहण नहीं कर पाते जिस

कारण पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा वृद्धि रुक जाती है जिससे पौधे में दुर्बलता आ जाती है और पौधा बौना दिखाई देने लगता है ।

बुआई के समय बेडों पर पोकोनिया क्लामाइडोस्पोरिया का 20 ग्राम/बेड (10^6 cfu-/ग्राम) की दर से छिड़काव करके सूत्रकृमियों को नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पैसिलोमाइसिस लिलीसीनस, फ्यूसेरियम स्पी., एसपरजीलस नाइड्यूलेन्स तथा स्लंफयूलोरिओपसीस स्पी. के द्वारा भी सूत्रकृमियों को नियंत्रण किया जा सकता है।

अदरक की सूत्रकृमि प्रतिरोधक प्रजातियों को उगाने से रोग के आपतन में कमी आती है तथा पौधे को हानि से बचाया जा सकता है। भारतीय मसाला फसल अनुसंधान संस्थान, कालिकट द्वारा विकसित प्रजाति आई आई एस आर महिमा जड़ गांठ सूत्रकृमि प्रतिरोधक है। इसके अतिरिक्त इसके कई प्रभेदों को भी चिह्नित किया गया है जो, सूत्रकृमियों के प्रतिरोधक है।

वनस्पतियों जैसे नीम ओयल केक (अजाडिरेक्टा इण्डिका) 1टन/हेक्टर की दर से उपयोग करके पौधों को सूत्रकृमियों की हानि से बचाया जा सकता है। पारदर्शी प्लास्टिक भीट को 40 दिनों तक बेडों पर फैलाकर सौरकरण करने से सूत्रकृमियों को नियंत्रण कर सकते हैं। अत्यधिक संक्रमित पौधों को उखाड कर नष्ट कर देना चाहिए। सूत्रकृमियों रहित बीज का उपयोग बुआई के लिए करना चाहिए। सूत्रकृमि को नियंत्रण करने के लिये प्रकन्द को गरम पानी (50^0 C) पर 10 मिनट तक उपचारित करना चाहिए।

अदरक का पीलापन रोग : यह रोग प्राटाइलेन्कस कोफी के द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप हिमाचल प्रदेश में अधिक होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में पत्तियों का पीला पड जाना, प्रकन्द पर गहरे भूरे रंग की चित्ती पड़ जाती है।

आर. सिमिलस ऊतकों के ज़रिये पौधे की अन्त कोशिकाओं में प्रवास करता है जिसके कारण पौधे की उपरी पत्तियों का सिरा झुलस जाती है तथा प्रकन्द छोटा, हल्का हो जाता है तथा उस पर जल युक्त चित्ती पड़ जाती है।

हल्दी

हल्दी (कुरकुमा लोंगा) (कुलः जिंजिबिरेसिया) को अपने धर्मानुष्ठानों के अतिरिक्त मसाला, रंग सामग्री, औषधि और उबटन के रूप में उपयोग किया जाता है। भारत, विश्व में हल्दी का सबसे बडा उत्पादक एवं उपभोक्ता देश है। भारत में आन्ध्रप्रदेश, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, गुजरात, मेघालय, महाराष्ट्र, असम आदि इसे उत्पादित करने वाले प्रमुख राज्य है। इसकी फसल को हानि पहुंचाने वाले रोग, कीट एवं सूत्रकृमि निम्नलिखित हैं।

रोग

पर्ण दाग (लीफ ब्लोच) : यह रोग टापह्रीना मेकुलान्स के द्वारा होता हैं। इसके कारण छोटे, अण्डाकार, आयताकार या अनियमित भूरे रंग के दाग पत्तियों पर पड जाते हैं जो जल्दी ही गहरे पीले या भूरे रंग के हो जाते हैं जिससे पौधे की पत्तियॉ पीली पड़ जाती हैं। इस रोग की अत्यधिकता से पौधों में सूखापन आ जाता है जिसके फलस्वरूप फसल की उपज में कमी आती है। इस रोग को नियंत्रण करने के लिए मैनकोज़ेब (0-2 प्रतिशत) का छिड़काव करते हैं।

पर्ण चित्ती (लीफ स्पोट) : यह रोग कोलीटोट्राइकम केप्सीसी के द्वारा होता है। इसके कारण नई पत्तियों के उपरी भाग में विभिन्न आकार की भूरे रंग की चित्ती पड़ जाती हैं। ये चित्ती बाद में, एक दूसरे से मिलकर पूरी पत्ती पर फैल जाती हैं। रोग ग्रसित पौधे प्रायः सूख जाते हैं। इस कारण राइज़ोम

अच्छी तरह विकसित नहीं हो पाता। इस रोग को नियंत्रण करने के लिए बोरडीयो मिश्रण (1प्रतिशत) का छिड़काव करते हैं।

प्रकन्द गलन : यह रोग *पाइथियम ग्रेमिनिकोलम* या *पी. एफानिडेरमाटम* के द्वारा होता है। इसके कारण आभासी तने का कोलर भाग मुलायम/नर्म पड़ जाता हैं एवं पानी सोखता है जिसके कारण पौधा मर जाता है और प्रकन्द सड जाता है। इस रोग को नियंत्रण करने के लिए भण्डारण करने से पहले तथा बुआई के समय मैनकोज़ेब (0.3प्रतिशत) के साथ 30 मिनट तक उपचार करते है। खेत में इस रोग के लक्षण देखने पर 0.3 प्रतिशत मैनकोज़ेब का छिड़काव करना चाहिए।

कीट

तना शेदक : तना भेदक (*कोनोगथिस पंक्टिफैरीलिस*) हल्दी की फसल को हानि पहुंचाने वाला प्रमुख कीट है। इसका लार्वा आभासी तने को भेद कर उसकी आन्तरिक कोषों को खा लेता है। इसके द्वारा भेदित तने के छिद्र से फ्रास निकलता है। पौधे की उपरी भाग की पत्ती पीली पड़ जाती है। इसका वयस्क मध्यम आकार का होता है। जिसमें 20 मिमी भालभ्युक्त नारंगी पीले रंग के पंख होते हैं जिस पर सूक्ष्म काले चित्ती के निशान होते हैं। इसका लार्वा हल्के भूरे रंग का होता हैं। इस कीट को नियंत्रण करने के लिए मेलिथियोन (0.1प्रतिशत) को 21 दिनों के अन्तराल पर जुलाई से अक्तूबर के बीच छिड़कना चाहिए।

प्रकन्द शल्क : प्रकन्द भाल्क (*अस्पिडियल्ला हारतीया*) खेत तथा भण्डारण में प्रकन्दों को हानि पहुँचाते हैं। इसकी वयस्क मादा गोलाकार (लगभग 1 मिमी) हल्के भूरे रंग की होती है। यह प्रकन्द का सार चूस लेते हैं जिससे वह सूख कर मुरझा जाते हैं जिसके कारण इसके अंकुरण में समस्या आती है। इसकी रोकथाम के लिए प्रकन्द को भण्डारण के समय और बुआई से पहले 0.075 प्रतिशत क्विनालफोस से 20.30 मिनट तक उपचारित करते हैं। कीटग्रसित प्रकन्द को भण्डारण न करके उसे नष्ट कर देना चाहिए।

लघु कीट: लीफ फीडिंग बीटल (*लीमा* स्पीसीस) के वयस्क और लार्वे पत्तों को खा लेते हैं विशेषकर, मानसून काल और उसके समकक्ष यह फसल को ज्यादा हानि पहुंचाते हैं। तना भेदक के प्रबन्धन के लिए मैलिथियोन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव इस कीट के नियंत्रण के लिये भी पर्याप्त है।

लेसविंग वर्ग (*स्टीफानिटस टिपिकस*) पत्तियों को हानि पहुंचाते हैं। इसके कारण पत्तियॉ सूख जाती है। देश के शुष्क क्षेत्रों में, विशेषकर मानसून के बाद यह कीट ज्यादा हानि पहुंचाते हैं। इन कीटों को नियंत्रण करने के लिए डिमेथोयट (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

हल्दी थ्रिप्स: थ्रिप्स (*पानकेटोथ्रिप्स इंडिकस*) पत्तियों को हानि पहुँचाते हैं जिसके कारण पत्तियां मुड़ने लगती है तथा हल्की पड़कर धीरे धीरे सूख जाती हैं। देश के शुष्क क्षेत्रों में, विशेषकर मानसून के बाद यह कीट ज्यादा हानि पहुँचाते है। इन कीटों को नियंत्रण करने के लिए डिमेथोयट (0.05प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

सूत्रकृमि

जड़ गांठ सूत्रकृमि–*मेलोडोगाईन* स्पी. : यह सूत्रकृमि अन्तर्जीवी है जो फसलों की क्षति के लिये उत्तरदायी हैं। इस सूत्रकृमि की कई उप जातियां है, परन्तु उनमें से 2 जिनके नाम क्रमशः *मलोडोगाइन इनकॉगनिटा* तथा *एम. जावानिका* है, मुख्यतः मसाला फसलों में रोग उत्पन्न करती हैं। सूत्रकृमि द्वारा संक्रमित जड़ों से गांठें अलग नहीं की जा सकती हैं। मिट्टी में रहकर यह नई जड़ों को भेद कर उनके अन्दर घुस जाते हैं तथा पानी और खाना ले जाने की कोशिकाओं को अपना भोजन बना लेते है।

जड़ विक्षत सूत्रकृमि–*प्राटाइलेंकस स्पी.* : इस सूत्रकृमि की बहुत सी उपजातियां भारत में पाई जाती है। रोगी पौधे के वायवीय भागों के लक्षण अस्पष्ट होते हैं। पौधे के उपरी भागों की वृद्धि रूकना, पीलापन तथा सबसे प्रमुख लक्षण जड़ों पर धब्बे पड़ना है जिनकी परिसीमा सूत्रकृमि जनसंख्या घनत्व व होस्ट प्रजातियों की संख्या के साथ–साथ बदलती रहती हैं। धब्बे दिखने में छोटे, लम्बे तथा पनीले होते है शीघ्र ही यह धब्बे भूरे या लगभग काले हो जाते हैं।

सूत्रकृमियों की समस्या को जैविक नियंत्रण विधियों द्वारा समाधान किया जा सकता है। इन नियंत्रण विधियों को रोगों की प्रारम्भिक अवस्था में अपनाने से पौधों को सूत्रकृमियों द्वारा अत्यधिक हानि से बचाया जा सकता है।

पौधशाला में सूत्रकृमियों का प्रकोप अधिक होता है। इसकी रोकथाम के लिये पोटिंग मिश्रण को सौरीकृत करके उसमें पोकोनिया क्लामाइडोस्पोरिया या ट्राइकोडरमा हरज़ियानम 1.2 ग्राम/ पौधा/ 10^6 सी एफ यू/ग्राम, की दर से डालते है। खेत में पोकोनिया क्लामाइडोस्पोरिया या ट्राइकोडरमा जैसे जैव नियंत्रण कारकों से उपचारित करने से सूत्रकृमियों की हानि से बचा जा सकता है।

गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग से एल्यूमीनियम वेल्डिंग एक सहज प्रकिया

पवन कुमार एवं राकेश पटेल
वाहन अनुसंधान तथा विकास स्थापन, अहमदनगर

सारांश

एल्यूमिनियम को वेल्ड करने के लिए गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग (Gas Tungstan Arc Welding – GTAW)एक बेहतर प्रक्रिया है। गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग को टंगस्टन अक्रिय गैस वेल्डिंग (Tungstan Inert Gas – TIG) के नाम से भी जाना जाता है। एल्यूमिनियम को वेल्ड करने के लिए बहुत सारी सावधानियां रखनी पडती है, जिनके बिना इसको वेल्डिंग करना बहुत मुश्किल है। इस शोध पत्र में एल्यूमिनियम की विभिन्न श्रेणियों को वेल्ड करने के लिए, वेल्डिंग करने से पहले तथा बाद में किन सावधानियों को ध्यान रखना जरूरी है, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। वेल्डिंग करने के बाद, एल्यूमिनियम के काफी गुण प्रभावित होते है, जिनमें यांत्रिक गुण एवं सूक्ष्म ढांचा (microstructure) मुख्य है।

परिचय

गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनुपभोज्य टंगस्टन इलेक्ट्रोड तथा वर्कपीस के बीच में आर्क पैदा किया जाता है (चित्र सं. 1)। वेल्डिंग क्षेत्र पूर्णतः परिरक्षण गैस (Shielding Gas) से ढ़का रहता है तथा पूरक धातु (Filler Metal) का अलग से प्रावधान किया जाता है। गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग प्रक्रिया में, किस धातु को वेल्ड करना है उसके आधार पर पोलारिटी का चयन किया जाता है। स्टील, निकिल, टाइटेनियम इत्यादि को वेल्ड करने के लिए ऋणात्मक सीधी धारा इलैक्ट्रोड प्रयोग में लाया जाता है। हिलियम परिरक्षण गैस के साथ, एल्यूमिनियम और

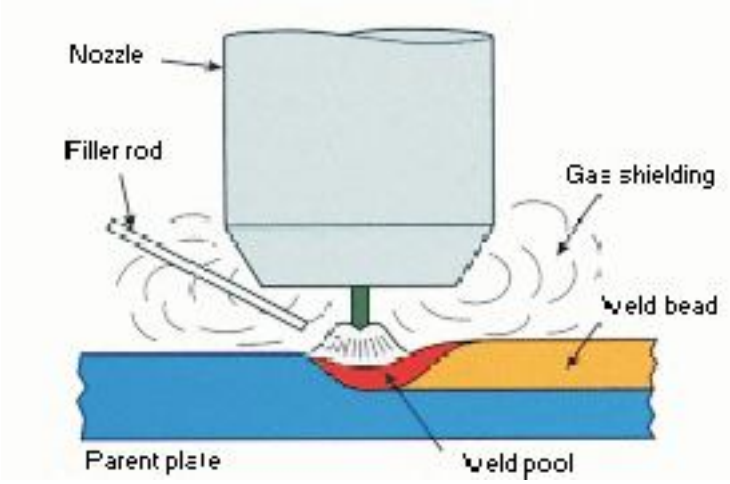

चित्र 1. गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग का योजनाबद्ध चित्र।

मेग्नेशियम को वेल्ड करने के लिए भी उपयुक्त ऋणात्मक इलैक्ट्रोड (Direct Current Electrode Negative DCEN) प्रयोग किया जा सकता है। धनात्मक सीधी धारा इलैक्ट्रोड (Direct Current Electrode Positive - DCEP) उपरोक्त की तुलना में कम प्रयोग होता है क्योंकि इसमें टंगस्टन इलैक्ट्रोड पिघलने की संभावना अधिक रहती है जो कि एक काफी कीमती धातु है। मूलभूत रूप से कम मोटाई या कम गलनांक वाली धातुओं को वेल्ड करने के लिए इस वेल्डिंग का प्रयोग किया जाता है।

प्रत्यावर्ती धारा (Alternating Current - AC) सामान्यतः एल्युमिनियम तथा मेग्नेशियम को वेल्ड करने के लिए प्रयोग की जाती है क्योंकि यह ऋणात्मक तथा धनात्मक सीधी धारा इलैक्ट्रोड का मिश्रण है। धारा के एक चक्र में आधा भाग ऋणात्मक तथा आधा भाग धनात्मक होता है, जो कि टंगस्टन इलैक्ट्रोड को पिघलने से बचाता है तथा सतह पर जमी हुई आक्साइड की परत को साफ करता है।

गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग में प्रयोग होने वाला इलैक्ट्रोड टंगस्टन मिश्र (Tungsten Alloy) धातु का बना हुआ होता है जिसका गलनांक 3422 डिग्री सेंटिग्रेड होता है [1]। इतना अत्याधिक गलनांक होने के कारण यह वेल्डिंग प्रक्रिया में उपभोग नहीं होता है। टंगस्टन इलैक्ट्रोड का ब्यास 0.5 से 6.4 मिमी तथा लंबाई 75 से 610 मिमी तक हो सकती है [2]। पूरक धातु सामान्यतः मूल धातु के समान गुण वाली रहती है तथा छड के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। कभी–कभी पूरक धातु का प्रयोग नहीं किया जाता है, तब इस प्रकार की वेल्डिंग को Autogenous वेल्ड कहते है। वेल्ड क्षेत्र को वातावरण में उपस्थित ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन से निष्क्रिय रखने के लिए परिरक्षण गैस का प्रयोग अति आवश्यक है। ऐसा न करने से वेल्डिंग में कई प्रकार के दोष उत्पन्न होते है तथा यह परिरक्षण गैस आर्क को स्थापित करने में काफी मदद करती है। परिरक्षण गैस का चुनाव निम्नलिखित पर निर्भर करता है।

1. जिस धातु को वेल्ड करना उसका प्रकार (Type of Material)।
2. जोड का डिजाइन (Joint Design)।
3. अंतिम वेल्ड ज्यामितिय (Final Weld Geometry)।

प्रत्यावर्ती धारा के साथ अधिकतर आर्गन परीक्षण गैस प्रयोग में लाई जाती है क्योंकि इससे आर्क को शुरू होने में आसानी रहती है, आर्क से ज्यादा सफाई कार्यवाही की जाती है तथा अच्छा वेल्ड मिलने की आशा रहती है [3]। दूसरी परिरक्षण गैस हिलियम ज्यादा वेधन (Penetration) प्राप्त करने के लिए तथा ज्यादा गति से वेल्ड करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है, जबकि इसकी सफाई कार्यवाही आर्गन की तुलना में कम रहती है तथा समान मात्रा को वेल्ड करने के लिए हिलियम गैस ज्यादा मात्रा में प्रयोग होती है [4]। गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग में आर्गन तथा हिलियम गैस का मिश्रण भी परिरक्षण गैस के रूप में उपयोग में लाया जाता है। ऐसा करने से दोनों गैसों के अच्छे गुणों का उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि हिलियम एक महंगी तथा हल्की गैस है इसीलिए इसको ज्यादातर आर्गन के साथ प्रयोग में लाया जाता है। एल्यूमिनियम अधिकतर प्रत्यावर्ती धारा के साथ गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग से वेल्ड किया जाता है। एल्यूमिनियम को वेल्ड करने से पहले वेल्ड करने वाला क्षेत्र अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए तथा 175 से 200 डिग्री सेंटीग्रेड तक गरम कर लेना चाहिए, ऐसा करने से अच्छा वेधन तथा ज्यादा गति प्राप्त होती है।

अलौह मिश्र (Non-ferrous Alloys) अलौह धातु जैसे एल्युमिनियम, कोबाल्ट, लैड, मेग्नेशियम, टाइटेनियम आदि के उप–उत्पादक (byproduct) है। अलौह मिश्र अचुंबकीय होते हैं। इनकी अच्छी सामर्थ्य, कम वजन तथा जंग से लडने की क्षमता के आधार पर मोटरगाडी (Automobile), वायुयान

(Aircraft), संचार उपकरण, पानी वाल्व, संगीत उपकरण, ज्वलनशील तथा विस्फोटक बनाने में उपयोग किया जाता है। अच्छी चालकता होने की वजह से विद्युत उपकरणों के लिए एल्युमिनियम उत्तम समझी जाती है।

एल्युमिनियम मिश्र (Aluminium Alloys)

शुद्ध एल्युमिनियम एक चांदी की तरह सफेद तथा हल्की नीली आभा लिए अलोह धातु है। इसका आपेक्षिक घनत्व 2.70 तथा गलनांक 650 डिग्री सेंटिग्रेड है। जब इसमें अन्य धातुएं मिश्र की जाती है, इसकी बहुत सारी विशेषताएं तथा प्रयोग का क्षेत्र बढ जाता है। इसका संकेत Al तथा परमाणु संख्या 13 है। यह पानी में विलेय नहीं होती है। एल्युमिनियम एक बहुत ही रासायनिक प्रतिक्रियात्मक अलोह है। एल्युमिनियम मिश्र, स्टील, पीतल, निकल तथा तांबे की तुलना में वजन में हल्के होते हैं। ये विभिन्न आकार व आकृति में उपलब्ध है। इनको कई प्रकार की प्रणाली से जोड़ा जा सकता है, लेकिन उसमें वेल्डिंग, ब्रेजिग तथा रिवेटिंग मुख्य है। शुद्ध एल्युमिनियम का प्रतिफल सामर्थ्य (Yiled Strength) 7.0 से 11.0 MPa (मेंगा पारकल) तक होता है। लेकिन एल्युमिनियम मिश्र का प्रतिफल सामर्थ्य 200.0 से 650 मेगा पास्कल तक हो सकता है। एल्युमिनियम मिश्र अपने उत्तम सामर्थ्य/वजन के अनुपात की वजह से वायुयान तथा रॉकेट में उपयोग किये जाते है। एल्युमिनियम को स्वचलित वाहन, रेल, कार, पनडुब्बी, पैकिंग, निर्माण कार्य इत्यादि में उपयोग में लाया जाता है।

एल्युमिनियम पहली बार सन् 1825 में एक अशुद्ध रूप में पैदा किया गया था, बाद में यह बाक्साइट अयस्क (Bauxite Ore) के रूप में सफलता से प्राप्त हुआ। एल्युमिनियम मिश्र की विभिन्न श्रेणियां ''दि एल्युमिनियम एसोसिएशन'' के अंतर्गत पंजीकृत है। ये श्रेणियां निम्नलिखित है।

1. 1xxx: 99.5 % शुद्ध एल्युमिनियम – इस सामग्री में कम यांत्रिक सामर्थ्य लेकिन ज्यादा विद्युत एवं उष्मीय चालकता होती है। यह ज्यादातर पैकेजिंग तथा बिजली उपकरणों में उपयोग किया जाता है। इस श्रेणी के आम मिश्र 1100, 1050, 1070 तथा 1350 है।
2. 2xxx: इस श्रेणी में लगभग 6.0 % तक तांबा (Copper) मिश्रित रहता है, जिससे इस उपचार गर्मी (Heat Treatment) द्वारा कठोर बनाने में सहायता मिलती है। यह उच्च शाक्तिशाली मिश्र धातु है, जो कि विमानों में उपयोग की जाती है। सबसे आम मिश्र 2014, 2017 तथा 2024 है।
3. 3xxx: इसमें 2.5 % तक मैगनीज मिश्रित रहता है। सामान्यतः यह छतों की चादर, वाहन चौखट (Vehicle Panelling) तथा सामान्य शीट धातु के काम आता है। आमतौर पर 3103, 3003 मिश्र धातुओं का प्रयोग किया जाता है।
4. 4xxx: इसमें 13.0 % तक सिलिकान हो सकता है तथा व्यापक रूप से पूरक सामग्री व कास्टिंग (Casting) बनाने में काम आता है। आम कास्टिंग मिश्र A413, A380 तथा A357 है। AWS ER 4043 मुख्य पूरक मिश्र है।
5. 5xxx: यह 5.0 % तक मैग्नीशियम रखता है तथा व्यापक रूप से यांत्रिक घटक (Engineering Components), दबाव पोत (Pressure Vessels) तथा परिवहन उपकरणों में प्रयोग होता है। आम मिश्र धातु में 5083, 5454 तथा 5251 है AWS ER 5183 तथा 5356 मुख्य पूरक मिश्र है।
6. 6xxx: इसमें लगभग 1.2 % मैग्नीज तथा 1.7 % सिलिकान रहता है। बडे पैमाने पर म्राजतनकमक खण्ड सभी आकृति एवं आकार में बनाए जाते है। आम मिश्र 6061, 6063, 6082 तथा 6016 है।
7. 7xxx: इसमें जिंक तथा मैग्नीशियम मिश्रित रहता है। आमतौर पर सैन्य पुलों, विमान संरचना, सैन्य वाहनों तथा रेलयान बनाने में उपयोग होता है। यह एक अत्यंत शक्तिशाली एल्युमिनियम मिश्र है इसमें 7005, 7017, 7039 तथा 7020 मुख्य मिश्र है।

8. 8xxx: इन उपरोक्त से अलग तत्व–एल्युमिनियम मिश्र

9. 9xxx: अभी तक पंजीकत नहीं।

उपरोक्त श्रेणियों की पहली संख्या दर्शाती है कि वह कौन सा एल्युमिनियम मिश्र है। दूसरी संख्या 0 से 9 तक हो सकती है तथा 0 से पता लगता है कि इसकी अशुद्धता पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसी तरह से 1 से 9 तक अलग–अलग तरह की अशुद्धता को दर्शाता है। एल्युमिनियम मिश्र उष्मा उपचरित तथा उष्मा उपचारित होते है। 1xxx, 3xxx, 4xxx तथा 5xxx श्रेणियॉ उष्मा उपचारित है तथा 2xxx, 6xxx तथा 7xxx श्रेणियां उष्मा उपचारित हो सकते है।

वेल्डिंग प्रक्रिया का चयन (Selection of Welding Process)

एल्युमिनियम को ac/dc गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग, लेजर बीम वेंल्डिंग (LBW), इलेक्ट्रान बीम वेल्डिंग (EBW) तथा Friction वेल्डिंग से वेल्ड किया जा सकता है, लेकिन प्रत्यावर्ती धारा (ac) के साथ गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग से अधिकतर वेल्ड किया जाता है। व्यवसायिक वेल्डर कम मोटाई की चादरों को वेल्ड करने के लिए इसे सर्वोत्तम मानते है। एल्युमिनियम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वेल्ड करने के बाद अपना रंग नहीं बदलती है। एल्युमिनियम की सतह पर एक आक्साइड परत जमी हुई रहती है जिसका गलनांक 1800 डिग्री सेंटिग्रेड से ज्यादा होता है। एल्युमिनियम को वैल्ड करते समय, एल्युमिनियम को गलाने से पहले इस आक्साइड को हटाना बहुत आवश्यक है लेकिन इसको साफ करने या हटाने के तुरंत बाद फिर से नई परत जम जाती है। अतः या तो इसको अक्रिय चेम्बर में वेल्ड करना पडता है या फिर प्रत्यावर्ती धारा (ac) गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग एक बेहतर विकल्प में काम आता है। एल्युमिनियम उष्मा का अति उत्तम सुचालक है, इसलिये वेल्डिंग को शुरू करने के लिए ज्यादा ऊष्मा की आवश्यकता होती है तथा एक बार वेल्डिंग शुरू होने के बाद कम ऊष्मा की जरूरत पडती है। वेल्डिंग करते समय अंतिम सिरे पर अत्याधिक उष्मा एकत्रित हो जाती है जो कई प्रकार के दोष उत्पन्न करती है। उपरोक्त का असर कम करने के लिए एल्युमिनियम वर्क पीस के दोनो सिरों पर (शुरू और अंत में) एक अतिरिक्त प्लेट लगाते है।

पूरक सामग्री का चयन (Selection of Filler Metal)

वेल्डिंग करने से पहले सही पूरक धातु का चयन महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जब हम असामान्य धातु को वेल्डिंग करते है तब यह चयन और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पूरक सामग्री पर शक्ति,

तालिका 1. विभिन्न एल्युमिनियम मिश्र को वेल्ड करने के लिए पूरक धातुओं की सिफारिश।

मूल धातु	सिफारिश की गई पूरक धातु	
	अधिकतम सामर्थ्य के लिए	अधिकतम दीर्घीकरण के लिए
1100	1100	1100, 4043
3003	5183, 5336	1100, 4043
5005	5183, 4043, 5356	5183, 4043
5083	5356, 5554	5554, 5356
5086	5556	5183, 5356
6061	4043, 5183	5356
6063	4043, 5183	5356
7005	5356, 8183	5183, 5356
7039	5356, 5183	5183, 5356

मुलायमता, जंग प्रतिरोधक क्षमता तथा कम तापमान पर सेवा की क्षमता निर्भर करती है। एल्युमिनियम मिश्र की विभिन्न श्रेणियों को वेल्ड करने के लिए पूरक धातुओं की सिफारिश तालिका 1 में दिखाई गई है।

एल्युमिनियम वेल्डिंग पर सुझाव

एल्युमिनियम वेल्डिंग करते समय निम्नलिखित सावधानियां अपेक्षित हैं।

क. वेल्डिंग करने से पहले मूल धातु पर जमी हुई ग्रीस तथा धूल को स्टेनलेस स्टील के तार ब्रुश द्वारा साफ करना चाहिए।

ख. वेल्डिंग करने से पहले मूल धातु पर जमी हुई एल्युमिनियम आक्साइड की परत को हटाना अति आवश्यक है क्योंकि इसका गलनांक मूल धातु के गलनांक से लगभग तीन गुना होता है।

ग. वेल्डिंग करने से पहले तथा बाद में वेल्ड क्षेत्र को गरम करना, इससे वेल्ड को शुरू करने में आसानी रहती है तथा बाद में उच्च शीतलन दर कम करके विभिन्न दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है।

घ. उचित व्यास का टंगस्टन इलेक्ट्रोड तथा पूरक धातू प्रयोग मे लानी चाहिए, जो कि मूल धातु की मोटाई तथा किनारे के स्वरूप पर निर्भर करता है।

ज. उचित मात्रा की धारा तथा वेल्ड गति का उपयोग करना चाहिए, जो कि मूल धातु की मोटाई तथा पूरक/टंगस्टन इलैक्ट्रोड के व्यास पर निर्भर करता है।

तालिका–2 में गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग में उपयोग होने वाले विभिन्न सीमाओं को दर्शाया गया है।

चित्र 2 में मूल धातू एल्युमिनियम मिश्र 7039 का एक सूक्ष्म ढांचा दिखाया गया है। चित्र 3 में एक वेल्ड किया हुआ सूक्ष्म ढांचा दिखाया गया है। इसमें मुख्यतः ऊष्मा प्रभावित भाग (Heat Affected Zone - HAZ), Fusion Boundary (FB) तथा वेल्ड भाग को दर्शाया गया है। वेल्ड भाग के कण बडे तथा दंतवाकार है। वेल्ड भाग तथा (HAZ) के बडे कण वेल्ड जोड की यांत्रिक गुणवत्ता तथा शक्ति को कम करते है।

एल्युमिनियम में वेल्डिंग के दौरान होने वाले दोष

उपरोक्त में चर्चित सभी सावधानियॉ न रखने पर तथा कुशल कारीगर न होने के कारण निम्नलिखित दोष उत्पन्न होते हैं।

तालिका 2. गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग में निर्धारित सीमाएं।

मूल धातु की मोटाई (मिमी)	वेल्डिंग स्थित	जोड का प्रकार	प्रत्यावर्ती धारा (एम्पियर)
1.6	फ़्लैट	वर्ग कब्जा जोड	70–100
1.6	क्षैतिज, उर्ध्व	वर्ग कब्जा जोड	70–100
1.6	ऊपरी	वर्ग कब्जा जोड	60–90
3.2	फ़्लैट	वर्ग कब्जा जोड	125–160
3.2	क्षैतिज, उर्ध्व	वर्ग कब्जा जोड	115–150
3.2	ऊपरी	वर्ग कब्जा जोड	115–150
6.4	फ़्लैट	60° एकल कोण	225–275
6.4	क्षैतिज, उर्ध्व	60° एकल कोण	200–240
6.4	ऊपरी	100° एकल कोण	210–260

चित्र 2. मूल धातु एल्युमिनियम मिश्र 7039 का एक सूक्ष्म ढांचा।

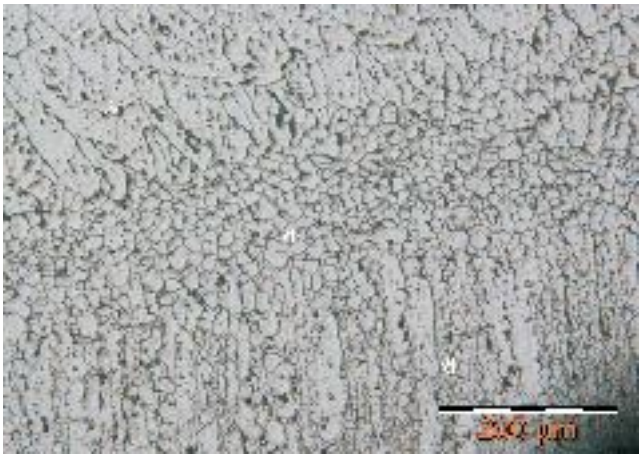

चित्र 3. वेल्ड क्षेत्र (v)] Fusion boundary (c) एवं HAZ (l) का एक सूक्ष्म ढांचा।

क. वेल्ड भाग में मूल धातु की तुलना में लगभग 30 तक कठोरता कम हो जाती है क्योंकि उपयोग में लाई गई पूरक धातु की कठोरता कम होती है।

ख. अत्यधिक धारा प्रयोग करने पर मूल धातू के जलने की आशंका रहती है तथा कम धारा रहने पर मूल धातु के न पिघलने की समस्या रहती है। अतः सही मात्रा की धारा का चुनाव आवश्यक है।

ग. उचित गति से वेल्ड न करने से दरार (Crack) तथा पूरी धातु न पिघलने की समस्या पैदा होती है।

घ. एल्युमिनियम को वेल्ड करने के बाद मूल की अपेक्षा में यांत्रिक गुण (Tensile Strength, Microstructure & Elongation) अत्याधिक प्रभावित होते है। इसीलिए एल्युमिनियम को कम से कम वेल्ड करना चाहिए।

ज. उचित वेल्डिंग प्रक्रिया की सीमाओं का प्रयोग न करने से वेल्ड ज्यामिति भी अच्छी नहीं मिलती है, जो सीधे यांत्रिक गुणों तथा सूक्ष्म ढॉचे को प्रभावित करती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है।

1. गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग एल्युमिनियम की पतली चादरों को वेल्ड करने के लिए एक बेहतर प्रक्रिया है।
2. उचित वेल्डिंग सीमाओं का चयन करने से दोष–मुक्त वेल्डिंग प्राप्त की जा सकती है।
3. प्रत्यावर्ति धारा के साथ गैस टंगस्टन आर्क वेल्डिंग द्वारा एल्युमिनियम को वेल्ड करना आसान होता है क्योंकि आक्साइड परत आसानी से निकल जाती है।

संदर्भ

1. विकलस ई पी ''Pulsed current and its application'' वेल्डिंग जरनल 1970, **49**(4), पृष्ठ सं. 255–262.
2. कैम्बल आर डी तथा लिक्यूर्सिरी ई जे ''A guide to the use of tungsten electrode for GTAW'' वेल्डिंग जनरल 1995, **74**(1), पृष्ठ सं. 39–45.
3. मुखोपाध्याय जी एल ''Shielding gases for GMA & GTA welding'', इंडियन वेल्डिंग जनरल 1933, **74**(1), पृष्ठ सं. 225–230.
4. ईलिस, एम. बी. डी. तथा स्पीलर, के आर ''Gas shielded fusion welding of aluminium alloys'' वेल्डिंग तथा मेटल फेब्रिकेशन, नवम्बर/दिसम्बर 1993 पृष्ठ सं. 441–444.

चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा उपचारित बीजों का पौधों की बढ़वार तथा उपज पर असर

अनन्ता वशिष्ठ, रवीन्द्र सिंह, तथा डी के जोशी
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

देश की आबादी बढने तथा शहरीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि में कमी आ रही है। आधुनिक कृषि की सबसे बढ़ी चुनौती है कम भूमि में अधिक पैदावार प्राप्त करना। कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए हमें बीजों की गुणवत्ता को बढाना अति–आवश्यक है। बीजों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए बीजों को बुवाई से पूर्व कई प्रकार के उपचार दिये जाते हैं जिनमें रासायनिक उपचार भी होते हैं। इन उपचारो के देने से यद्यपि बीजों की गुणवत्ता बढ़ती है लेकिन इसके साथ ही वातावरण भी दूषित होता है। चुम्बकीय क्षेत्र एक ऐसी भौतिकीय तकनीकी है, जिससे अंकुरण की दर में विकास होता है, पौधों की जड़ों एवं तनों में वृद्वि होती है, उपज में भी वृद्वि होती है साथ ही वातावरण भी दूषित नहीं होता है। चुम्बकीय क्षेत्र से बीजों का उपचार एक ऐसी ही भौतिकीय तकनीक है। इससे हमें निम्न लाभ होते हैं:

- अंकुरण की दर, उनका विकास, पौधे के तनों तथा जड़ों में वृद्वि होती है।
- अंकुरण प्रतिशत बढ़ने से खेत में बीजों की मात्रा कम लगती है तथा उत्पादन लागत में भी कमी आती है।
- इससे वातावरण को दूषित नही होता।
- फसल जल्दी पकती है, इसकी अवधि कम हो जाती है तथा उपज में बढ़ोतरी होती है।

बीज पौधे का भविष्य निर्धारित करता है। यदि बीज की गुणवत्ता अच्छी है तो बीज का अंकुरण तथा पौधे की बढ़वार भी अच्छी होगी जिससे उपज में भी बढ़ोतरी होगी। चुम्बकीय क्षेत्र से उपचार करने पर बीज की गुणवत्ता में सुधार होता है। जिससे बीज जल्दी अंकुरित होता है और पौधों की वृद्धि में समानता पायी गई।

चुम्बकीय क्षेत्र का फसल पर असर जानने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, में अध्ययन किया गया। इसके लिए सबसे पहले चने, मक्का तथा सूरजमुखी के बीजों के अंकुरण विशेषताओं में अधिकतम वृद्वि के लिए स्थिर चुम्बकीय क्षेत्र और अवधि के मानकीकरण के लिए परीक्षण किया गया। बीजों को विभिन्न चुम्बकीय क्षेत्रों 50 से 250 मिली टेस्ला (50 मिली टेस्ला के अंतराल पर) पर 1 से 4 घंटे (1 घंटे के अंतराल पर) तक चुम्बकीय क्षेत्र जनरेटर द्वारा उपचारित किया गया। बीजों को 3 सेमी व्यास तथा 7 सेमी लम्बाई के बेलनाकार नमूनाधारक में डालकर चुम्बकीय क्षेत्र जनेरेटर के उत्तर तथा दक्षिण दोनों ध्रुवों के बीच रखा गया। विभिन्न विधुत चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करने के लिए विद्युत प्रवाह, जो कि चुम्बकीय क्षेत्र जनरेटर में प्रवाहित होती है, को परिवर्तित किया गया। बीजों पर चुम्बकीय क्षेत्र का असर जानने के लिए उपचारित तथा बिना उपचारित बीजों का अंकुरण जानने के लिऐ पेपर में लपेटकर रखा गया तथा 8 दिन के उपरांत इनका निरीक्षण किया गया।

चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा उपचारित बीजों का मक्का की फसल पर असर

प्रयोगशाला में किए गये उपरोक्त अधययन से यह पता चला है कि बिना उपचारित बीजों की तुलना में उपचारित बीजों के अंकुरण में 5–9.5, अंकुरण की गति में 9–20, तने की लम्बाई में 17–87, जड़ों की लम्बाई में 3–34 प्रतिशत, ओज पौधों के शुष्क भार में बढ़ोतरी पाई गई। उपरोक्त दिए गए सभी चुम्बकीय क्षेत्रों के संयोजन से अंकुरण तथा अंकुरण बढ़ोतरी सम्बन्धी सभी सूचकांक में वृद्धि पाई गई लेकिन इनमें से सबसे ज्यादा वृद्वि सबसे ज्यादा बढ़ोतरी बीजों को 200 मिली टेस्ला क्षेत्र में 1 घंटे तक उपचारित करने पर पायी गयी। उपरोक्त अध्ययन में दिए गए सभी चुम्बकीय क्षैत्र तथा समय के मेल–जोल का सकारात्मक प्रभाव पाया गया लेकिन कुल समय तथा चुम्बकीय क्षेत्रों के मेल–जोल का अंकुरण तथा पौधे की लम्बाई पर अच्छा असर पड़ा, इसका कारण यह है कि प्रतिध्वनि घटना (अनुनाद) के कारण बीज की आंतरिक ऊर्जा बढ़ जाती है तथा यह तभी सम्भव है जब उपयुक्त चुम्बकीय क्षेत्र दिया जाता है। चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित बीजों का पौधों पर असर जानने के लिए बीजों को 200 मिली टेस्ला 1 घंटे तक उपचारित किया गया तथा उपचारित बीजों को खेत में बोया गया। उपचारित तथा बिना उपचारित बीजों से उगे पौधों में बढ़ोतरी के सूचकांक मापे गए। फसल का समय–समय पर अवलोकन किया गया। अध्ययन में यह पाया गया कि उपचारित बीजों से उगे पौधों की लम्बाई, तने का शुष्क भार, जड़ों के शुष्क भार, पत्ती क्षेत्रफल सूचकांक में बिना उपचारित बीजों से उगे पौधों की तुलना में वृद्धि पाई गई। उपचारित बीजों द्वारा उगे पौधों की लम्बाई, जड़ों की सतह का क्षेत्रफल, जड़ों का व्यास तथा आयतन में बिना उपचारित बीजों की तुलना में काफी वृद्धि पाई गई। (तालिका–1)। अन्य अध्ययनों में भी यह पाया गया कि बीज को चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित करने पर बीजों की अंकुरण, अंकुरण की दर, पौधों की लम्बाई तथा उपज में वृद्धि होती है।

चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा उपचारित बीजों का चने की फसल पर असर

चुम्बकीय क्षेत्र का फसल पर असर जानने के लिए चने (पूसा–1053) के बीजों को विभिन्न चुम्बकीय क्षेत्रों पर चुम्बकीय क्षेत्र जनरेटर द्वारा उपचारित किया गया। बीजों पर चुम्बकीय क्षेत्र का असर जानने के लिए उपचारित तथा बिना उपचारित बीजों का अंकुरण जानने वाले पेपर में लपेटकर 20 डिग्री सेल्सियस तापमान पर रखा गया तथा 8 दिन के उपरांत इनका निरीक्षण किया गया। उपरोक्त अधययन से यह पता चला है कि बिना उपचारित बीजों की तुलना में उपचारित बीजों के अंकुरण में 5–11 प्रतिशत, अंकुरण की गति में 8–26 प्रतिशत, तने की लम्बाई में 5–60 प्रतिशत, जड़ों की लम्बाई में 38–57 प्रतिशत, पौधों के शुष्क भार में 25–47 प्रतिशत की बढ़ोतरी पायी गयी। उपरोक्त सभी दिये गये चुम्बकीय क्षेत्र में से सबसे ज्यादा बढ़ोतरी बीजों को 100 मिली टेस्ला 1 घंटे तक उपचारित करने पर पायी गयी।

चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित बीजों का पौधों पर असर जानने के लिए बीजों को 100 मिली टेस्ला 1 घंटे तक उपचारित किया गया तथा उपचारित बीजों को खेत में बोया गया। उपचारित तथा बिना उपचारित बीजों से उगे पौधों में बढ़ोतरी के सूचकांक मापे गए। अध्ययन में यह पाया गया कि उपचारित बीजों से उगे पौधों की लम्बाई, तने का शुष्क भार, जड़ों के शुष्क भार, जड़ों तथा तनों के शुष्क भार का अनुपात, शाखाओं की संख्या में बिना उपचारित बीजों से उगे पौधों की तुलना में वृद्धि पाई गई। उपचारित बीजों द्वारा उगे पौधों की लम्बाई, जड़ों की सतह का क्षेत्रफल, जड़ों का व्यास तथा आयतन में बिना उपचारित बीजों की तुलना में काफी वृद्धि पाई गई (तालिका–2)।

एक और अध्ययन में चने के बीजों को 100 मिली टेस्ला 1 घण्टे तक उपचारित करके बोया गया। फसल का समय–समय पर अवलोकन किया गया। उपरोक्त अध्ययन में यह पाया गया कि

तालिका 1. चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित बीजों से उगे पौधों की बढ़वार।

बुआई के बाद समय	चुम्बकीय क्षेत्र (मिली/ टेस्ला)	तने की लम्बाई (सेमी)	पत्तियों की संख्या (प्रति पौधा)	पत्ती क्षेत्रफल सूचँकाक	हरित लवक सूचँकाक (मिली ग्राम/ (ग्राम)	तने का शुष्क भार (ग्राम प्रति पौधा)	जड़ों की कुल लम्बाई (सेमी)	जड़ों की सतह का क्षेत्रफल (सेमी2)	जड़ों का व्यास (मिमी)	जड़ों का आयतन (सेमी3)	जड़ों का शुष्क भार (ग्राम प्रति पौधा)
38 दिन	उपचारित 200मिली टेस्ला (1 घंटे)	1.20 ± 0.042	10.83 0.021	2.29± 0.014	1.84 ± 0.895	6.15± 34.74	586.77± ±	322.66 ± 14.22	1.666 ± 0.106	14.227 ± 1.430	3.22 ± 0.016
	बिना उपचारित	1.07 ± 0.023	8.33	1.93± 0.003	1.83 ± 0.019	3.82± 0.395	226.62 ±15.35	102.75 ±9.82	1.438± 0.059	3.719± 0.479	1.09± 0.008
51 दिन	उपचारित 200मिली टेस्ला (1 घंटे)	1.53± 0.011	13.33	2.40± 0.052	2.52± 0.073	19.15± 1.553	1805.74 ±19.53	555.10 ± 12.44	0.977 ± 0.082	13.773 ± 2.509	7.3 ± 0.018
	बिना उपचारित	1.30± 0.046	11.67	1.99± 0.154	2.56 ± 0.113	13.99± 2.893	994.09 ±35.32	323.72 ±7.16	1.044± 0.067	8′461± 1.851	4.72± 0.028
67 दिन	उपचारित 200मिली टेस्ला (1 घंटे)	1.74± 0.026	11.67	5.17± 0.301	1.39± 0.091	114.9± 15.741	2042.17 ±17.97	833.57 ± 10.23	1.485 ± 0.491	33.215 ± 1.902	7.1 ± 0.224
	बिना उपचारित	1.55± 0.044	10.67	4.46± 0.212	1.803± 0.057	91.57± 14.697	1540.73 ±19.11	556.13 ±19.55	1.147± 0.103	163.239 ±3.251	4.2 0.121

तालिका 2 चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित बीजों से उगे पौधों की बढ़वार।

चुम्बकीय क्षेत्र (मिली/ टेस्ला)	तने की लम्बाई (सेमी)	तने का शुष्क भार (ग्राम)	जड़ों का शुष्क भार (ग्राम)	जड़ों तथा तने के शुष्क भार का अनुपात	जड़ों की कुल लम्बाई (सेमी)	जड़ों की सतह का क्षेत्रफल (सेमी2)	जड़ों का आयतन (सेमी3)	जड़ों का व्यास (मिमी)	शाखाओं की संख्या (प्रति पौधा)
बिना उपचारित	15.22	0.282	0.030	0.106	94.1	8.29	0.053	0.280	4
उपचारित 100 मिली टेस्ला (1 घंटे)	19.77	0.422	0.098	0.233	170.9	16.44	0.130	0.318	5
एस एस डी (5 प्रतिशत)	0.89	0.020	0.065	0.025	13.9	1.32	0.015	0.022	0.4

उपचारित बीजों से उगे पौधों में बिना उपचारित बीजों की तुलना में तने की लम्बाई में 34.7 प्रतिशत, तने के शुष्क भार में 80 प्रतिशत, जड़ों के शुष्क भार में 30.4 प्रतिशत, पत्ती क्षेत्रफल सूचकांक में 38.7 प्रतिशत तथा हरित लवक सूचकांक में 22.7 प्रतिशत की वृद्धि, शाखाओं में वृद्धि तथा जड़ों में ग्रंथि बनने में वृद्धि पाई गई, साथ ही उपज में 15 प्रतिशत तक की वृद्धि पाई गई (तालिका–3)। उपचारित

तालिका 3. चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित चने के बीजों द्वारा उगे पौधों पर असर।

चुम्बकीय क्षेत्र (मिली/ टेस्ला)	तने की लम्बाई (सेमी)	जड़ों में ग्रंथि (प्रति पौधा)	तने का शुष्क भार	जड़ों का शुष्क भार (ग्राम)	पत्ती क्षेत्रफल (ग्राम)	हरित लवक सूचकांक सूचकांक	शाखाओं की संख्या (प्रति पौधा)
बिना उपचारित	16.33 ± 0.33	3.33 ± 0.33	0.40 ± 0.023	0.23 ± 0.023	0.49 ± 0.047	1.214 ± 0.06	3.67 ± 0.33
उपचारित 100 मिली टेस्ला (1 घंटे)	22.0 ± 0.58	4.33 ± 0.33	0.72 ± 0.055	0.30 ± 0.014	0.68 ± 0.034	1.489 ± 0.128	5.67 ± 0.67

तालिका 4. चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित चने के बीजों द्वारा उगे पौधों की जड़ों पर असर।

चुम्बकीय क्षेत्र (मिली/ टेस्ला)	जड़ों की कुल लम्बाई (सेमी)	जड़ों की सतह का क्षेत्रफल (सेमी^{2})	जड़ों का आयतन सेमी^{3})	जड़ों का व्यास (मिमी)	शाखाओं की संख्या (प्रति (प्रति पौधा)		फलियों की संख्या (प्रति पौधा)	
					मुख्य शाखा	उप शाखा	दाने वाली फलिया	बिना दाने वाली फलिया
बिना उपचारित	179.2 ± 5.53	20.44 ± 1.29	0.183 ± 0.018	0.311 ± 0.003	3.33 ± 0.33	11.10 ± 1.033	24.33 ± 1.76	24.33 ± 2.03
उपचारित 100 मिली टेस्ला (1 घंटे)	379.31 ± 11.80	33.35 ± 1.83	0.228 ± 0.023	0.345 ± 0.012	0.67 ± 0.033	20.67 ± 2.33	49.00 ± 1.53	7.33 ± 0.33

बीजों द्वारा उगे पौधों में बिना उपचारित पौधों की तुलना में जड़ों की कुल लम्बाई में दुगुनी वृद्वि, सतह क्षेत्रफल में 63.2 प्रतिशत की वृद्वि, आयतन में 24.6 प्रतिशत की वृद्धि, औसत व्यास में 7.5 प्रतिशत की वृद्धि तथा फलियों की संख्या में दोगुनी वृद्धि पाई गई। (तालिका–4)

एक और अध्ययन में चने के बीजों को 100 मिली टेस्ला 1 घण्टे तक उपचारित करने के बाद खेत में में बोया गया। फसल का समय–समय पर अवलोकन किया गया। इस अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि जड़ों की लम्बाई, तने की लम्बाई, बायोमास, शाखाओं की संख्या में बिना उपचारित पौधों की तुलना में बढ़ोतरी पाई गई, बुआई के अलग–अलग समयों पर जड़ों की लम्बाई में 31 से 48 प्रतिशत, तने की लम्बाई में 1 से 18 प्रतिशत तथा बायोमास में 50 प्रतिशत से ज्यादा बढ़ोतरी पाई गई (तालिका–5)।

चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा उपचारित बीजों का सूरजमुखी की फसल पर असर

सूरजमुखी के बीजों पर चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव जानने के लिए सूरजमुखी (के बी एस एच–1) को विभिन्न चुम्बकीय क्षेत्रों से उपचारित किया गया। बीजों पर चुम्बकीय क्षेत्र का असर जानने के लिए उपचारित तथा बिना उपचारित बीजों का अंकुरण जानने वाले पेपर में लपेटकर 25 सेल्सियस तापमान पर रखा गया तथा 8 दिन के उपरांत इनका निरीक्षण किया गया। अध्ययन में यह देखा गया कि बिना उपचारित बीजों की तुलना में उपचारित बीजों के अंकुरण में 5–11, अंकुरण की गति में 9–15 तने की लम्बाई में 6–41, जड़ों की लम्बाई में 16–80, पौधों के शुष्क भार में 5–13, ओज सूचकांक 1 व 2 में 18–74 तथा 10–25 प्रतिशत की बढ़ोतरी पायी गयी। उपरोक्त दिये गये चुम्बकीय क्षेत्रों में से सबसे अधिक बढ़ोतरी बीजों को 200 मिली टेस्ला 2 घंटे तक उपचारित करने पर पाई गई।

तालिका 5. चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित चने के बीजों द्वारा उगे पौधों पर असर।

बुआई के बाद समय	चुम्बकीय क्षेत्र	जड़ों की कुल लम्बाई (सेमी)	तने की लम्बाई (सेमी)	बायोमास (ग्राम) प्रति पौधा	मुख्य शाखाओं की संख्या (प्रति पौधा)	उप शाखाओं की संख्या (प्रति पौधा)	फलियों की संख्या (प्रति पौधा)	
							दाने वाली फलिया	बिना दाने वाली फलिया
90 दिन	बिना	10.8	41.2	3.0	2	5.4	---	---
	उपचारित 100 मिली टेस्ला(1 घंटे)	16.0	43.2	7.3	3	9.4	---	---
130 दिन	बिना उपचारित	12.5	52.7	10.6	2	12.6	35.6	---
	उपचारित 100 मिली टेस्ला(1 घंटे)	18.3	62.6	21.7	3	17.3	81.6	---
156 दिन	बिना	13.2	72.6	43.5	3	14.6	102.3	3.2
	उपचारित 100 मिली टेस्ला(1 घंटे)	17.3	73.4	65.2	4	19.7	177.7	6

चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित बीजों का पौधों पर असर जानने के लिए बीजों को 200 मिली टेस्ला 2 घंटे तक उपचारित किया गया तथा उपचारित बीजों को खेत में बोया गया। उपचारित तथा बिना उपचारित बीजों से उगे पौधों में बढ़ोतरी के सूचँकाक मापे गये। फसल का समय–समय पर अवलोकन किया गया। अध्ययन में यह पाया गया कि उपचारित बीजों से उगे पौधों की लम्बाई, तने का शुष्क भार, पत्तियों की संख्या पत्तियों का क्षेत्रफल हरित लवक सूचँकाक, जड़ों की लम्बाई, जड़ों की सतह का क्षेत्रफल, जड़ों का व्यास, जड़ों का आयतन तथा उपज में बिना उपचारित बीजों से उगे पौधों की तुलना में वृद्वि पाई गई (तालिका–6)। अकुंरण अवधि के समय चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित बीजों में

तालिका 6. चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित सूरजमुखी के बीजों द्वारा उगे पौधों पर असर।

चुम्बकीय क्षेत्र (मिली/टेस्ला)	तने की लम्बाई (सेमी)	पत्तियों की संख्या (प्रति पौधा)	हरित लवक सूचकाँक (मिली ग्राम/ग्राम)	पत्ती क्षेत्रफल (सेमी^{2})	तने का शुष्क भार (ग्राम प्रति पौधा)	जडों की कुल लम्बाई (सेमी)	जडों की सतह का क्षेत्रफल (सेमी^{2})	जडों का व्यास (मिमी)	जडों का आयतन (सेमी^{3})
उपचारित 200 मिली टेस्ला (2 घंटे)	112.4	25	2.65	1411.4	20.476	883.25 ± 45.55	212.79 ± 26.2	0.80 ± 0.0.46	0.80 ± 0.36
बिना उपचारित	77.8	18.6	2.17	764.2	10..254	349.29 ± 67.81	81.46 ± 16.4	0.74 ± 0.033	1.52 02.33

बिना उपचारित बीजों की तुलना में एमाइलेज, डिहाइड्रोजेनेस ओर प्रोटिइज एंजाइम की सक्रियता में वृद्धि पाई गई।

उपरोक्त किए गए अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि चुम्बकीय क्षेत्र से बीजों को उपचारित करने से उनकी गुणवत्ता बढ़ जाती है जिससे पौधों तथा जड़ों की वृद्धि होती है। बीजों को चुम्बकीय क्षेत्र से उपचारित करना एक सरल तकनीक है। अतः इसको अन्य फसलों पर भी अपनाना चाहिए, लेकिन इसके लिए सबसे पहले चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता और अवधि के मानकीकरण के लिए आरम्भिक परीक्षण की सख्त जरूरत है, क्योंकि चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता तथा अवधि का असर विभिन्न फसलों पर अलग–अलग होता है। इसीलिए फसलों में सर्वोतम परिणाम प्राप्त करने के लिए बीजों को विशिष्ट चुम्बकीय क्षेत्र से ही उपचारित करना चाहिए।

भारत में ऊर्जा के स्रोत तथा भारत के भविष्य पर उनका प्रभाव

जितेन्द्र सिंह
गंगा प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन संस्थान, झज्जर, हरियाणा

भूमिका

पहिये और आग की खोज ने मानव जीवन को एक नई दिशा प्रदान की थी। इन्हीं की खोज के बाद मानव जाति ने एक नई सभ्यता की शुरूआत की और एक जंगली जीवन का त्याग कर, गाँव, नगर की स्थापना की। इन दोनों ने मानव जीवन की सभ्यता को पहली बार ऊर्जा और बल दोनों तत्त्वों का ज्ञान करवाया। पहली बार मानव उष्मा, ऊर्जा और गतिज ऊर्जा के महत्व को जान पाया।

विस्तार

कालांतर में ऊर्जा के भिन्न–भिन्न स्त्रोत सामने आते गए जैसे की लकड़ी, गोबर के उपले, कृषि के अवशेष इत्यादि। यह सब प्राथमिक स्त्रोत थे जो स्थानीय स्तर पर ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए उपयोग में लाए जाते थे फिर मानव की खोजी प्रवृति के कारण मानव ने अलग–अलग तरह के ऊर्जा के भण्डार खोजे, अलग–अलग तरह के यांत्रिक औजार और यंत्र बनाए जिनसे काम करना व ऊर्जा उत्पन्न करना संभव हुआ। मनुष्य ने खेती बाड़ी करना सीखा और तरह तरह के व्यवसाय अपना कर अपने जीवन तथा समाज को संवारा तथा आगे बढ़ाया। अगर कुछ पल रूक कर सोचे, अगर मानव जीवन में ये दोनों खोज नहीं होती तो क्या हम यहां तक पहुंच पाते? शायद नहीं। क्योंकि ऊर्जा एक ऐसा तत्व है जिसके बिना इस पूरी सृष्टि में कुछ भी संभव नहीं है। इसलिए हम कह सकते हैं कि उस आदिम जीवन से लेकर आज के आधुनिक जीवन तक का सफर अगर हम तय कर पाये हैं तो शायद ऊर्जा के कारण। ऊर्जा के महत्व को हम न ही तब नकार सके थे न ही आज!

प्राचीन काल में तकनीकी सहायता की कमी की वजह से शायद हम ज्यादा ऊर्जा के स्त्रोतों की खोज नहीं कर पाए थे इसलिए ऊर्जा के स्त्रोत परम्परागत रूप के उपयोग किए जा रहे थे।

अगर आज के आधुनिक युग की बात करें तो हमारे पास इतना सशक्त तकनीकी ज्ञान है कि हम अणु के अंदर की ऊर्जा को भी उपयोग ामें ला सकते हैं जिसे हम परमाणु ऊर्जा के नाम से संबोधित करते हैं। जो कि सबसे ताकतवर एवम् महत्वपूर्ण ऊर्जा का स्त्रोत है। परमाणु ऊर्जा के अलावा आज हमारे पास कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैर, गोबर गैस, भू–तापीय ऊर्जा, पणन ऊर्जा, सौर ऊर्जा, ज्वार भाटा ऊर्जा इत्यादि जैसे कई ऊर्जा के आपसी परिवर्तन ताप–यांत्रिक–विद्युत अथवा ताप–विद्युत के परिवर्तन ने मानव के जीवन को एक नई क्रांति प्रदान की है जिसके चलते आज हम इस मंजिल पर पहुंचे हैं। आज ऐसा कोई आधुनिक यंत्र, मशीन नहीं जो ऊर्जा के बिना काम कर सके। हमारे आधुनिक उद्योग, कारखाने, घर, यातायात एवम् अन्य सभी तरह की मशीनें एवं उपकरण ऊर्जा के बिना व्यर्थ है। शायद यह कहना गलत न होगा कि आज हम एक दिन खाने के बिना जी सकते हैं परंतु ऊर्जा (विद्युत) के बिना एक दिन जीना बहुत ही मुश्किल है। आज हम जो इंधन विद्युत उत्पादन कर रहे हैं उनमें से सबसे मुख्य कोयला है। कोयला हमें प्राकृतिक रूप से खदानों से मिलता है। कोयले को जलाकर हम ताप–विद्युत उत्पन्न करते हैं? भारत में साठ प्रतिशत विद्युत कोयले से उत्पन्न की जाती

है। भारत विश्व के 7 प्रतिशत कोयले का उत्पादन करता है। प्रति वर्ष 512.3 मिटरीक टन कोयले का उत्पादन करता है। भण्डार/उत्पादन के दर के हिसाब से हमारे पास सिर्फ 120 वर्ष का कोयले शेष है। दूसरा मुख्य ऊर्जा का स्रोत खनिज तेल है उसके मुख्य तत्व पेट्रोल और डीजल है। विश्व के कुल तेल के उत्पादन का केवल 0.5 प्रतिश ही हमारे पास बाकी सारा हमें आयात करना पड़ता है। हम अपनी मांग के 75 प्रतिशत तेल का आयात करते हैं। वर्तमान भण्डार/उत्पादन दर से हमारे पास सिर्फ 20 वर्ष तक ही तेल के स्रोत रहेंगे।

प्राकृतिक गैस हमारा तीसरा ईंधन एवं विद्युत उत्पादन का विकल्प है। भारत के पास विश्व के 0.6 प्रतिशत गैस के स्त्रोत है जिसमें से हम 60 प्रतिशत विद्युत उत्पादन एवं इंधन के रूप में प्रयोग करते हैं बाकि 40 प्रतिशत उद्योगों में इस्तेमाल किया जाता है। हमारे पास गैस का कोई भी विकल्प नहीं होगा।

अगर परमाणु ऊर्जा की बात करें तो हमारे पास 17 परमाणु ऊर्जा उत्पादन इकाई है जिसकी कुल क्षमता 4560 मेगावाट है जो कि कुल ऊर्जा का 2.9 प्रतिशत ही है। परमाणु ईंधन के हमारे पास बहुत ही सीमित संसाधन है जो कि अच्छे स्तर के नहीं है। दूसरा परमाणु ऊर्जा को उपयोग में लाना एवं इसके अवशेष का निपटारा करना एक बहुत ही जटिल, खर्चिला एवं प्रकृति नाशक कार्य है। अगर नवीनतम आकड़ों की बात की जाए तो भारत के पास 16 70, 77.36 मेगावाट की उत्पादन क्षमता है जिसमें से 60 प्रतिशत, कोयले से, 9.13 प्रतिशत गैस से और 0.57 प्रतिशत तेल से पैदा की जाती है। जल विद्युत का हिस्सा 18.98 प्रतिशत है। परमाणु ऊर्जा का योगदान 2.30 प्रतिशत है। अगर अक्षय ऊर्जा संसाधनों की बात करें तो उनका हिस्सा केवल 12 प्रतिशत है। अगर हम गौर करें वो हमारी कुल ऊर्जा का लगभग 70 प्रतिशत भाग क्षय ऊर्जा संसाधनों से प्राप्त किया जाता है जो कि बहुत जल्द ही समाप्त हो सकता है। इसके बाद हमारे पास सिर्फ अक्षय ऊर्जा के स्रोत (पवन, सौर, एवं जल विद्युत) ही बचेंगे जिनकी उत्पादन क्षमता बहुत ही कम है। अगर आकलन किया जाये तो हमारी मौजूदा मांग का एक चौथाई का पूरा नहीं कर पायेंगे। जबकि ऊर्जा की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अक्षय ऊर्जा की इकाई की स्थापना एवं रखरखाव बहुत ही महंगा और उत्पादन की क्षमता बहुत ही कम है। इसलिए हम ऊर्जा की मांग को पूरा नहीं कर पायेंगे। अब हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम ऊर्जा के इस संकट से कैसे उभर पायेंगे? उभर पायेंगे या नहीं?

क्या हम फिर से चौदहवीं या पन्द्रहवीं शताब्दी में पहुंच जायेंगे जहां ऊर्जा के रूप में मांसपेशीय ऊर्जा होगी जो मनुष्य और पशुओं द्वारा प्रदान की जायेगी फिर से एक कठिन जीवन की शुरूआत या फिर हमारे पास इसका कोई विकल्प है।

अगर सच कहा जाए तो हमारे पास उचित उत्तर नहीं है हम सब नहीं जानते हमारा भविष्य क्या होगा। परंतु मन में विश्वास है कि कोई न कोई विकल्प हम निकाल ही लेंगे। लेकिन उसकी समय सीमा क्या होगी जिसके बारे में हम कुछ भी नहीं कह सकते लेकिन जब तक ऊर्जा का कोई स्थायी विकल्प नहीं मिल जाता तब तक क्या हम ऐसे ही हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहेंगे।

शायद नहीं! और हमें बैठना भी नहीं चाहिए जब तक हमें कोई स्थायी विकल्प नहीं मिल जाता तब तक हमें ऊर्जा संरक्षण के कई महत्वपूर्ण कदम उठाने होगे।

1. मौजूदा सभी संसाधनों का समुचित प्रयोग एवं संरक्षण।
2. ऊर्जा की बचत।
3. ऊर्जा की बचत करने वाले/कम ऊर्जा का उपयोग करने वाले उपकरणों का प्रयोग।

4. भारत में औसतन 300 सौर दिन होते हैं जिसे कि सौर ऊर्जा हमारा सबसे प्रमुख स्रोत बनता जा रहा है। इसका ज्यादा से ज्यादा एवं उचित प्रयोग ऊर्जा की समस्या को हल कर सकता है।
5. हमारी प्राथमिकता यही होनी चाहिए कि हम अपनी जरूरत की ऊर्जा स्वयं उत्पन्न करें एवम् उसका सही प्रयोग करें।
6. हमें ऐसे उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए जो यांत्रिक कार्य भी करे और ऊर्जा भी उत्पन्न करे जैसे कि साइकिल।
7. प्राकृतिक उद्यानों की तरह हमें ऊर्जा उद्यानों का आविष्कार करना चाहिए जिनमें यांत्रिक–विद्युत परिवर्तन करने वाले यंत्र हो जैसे कि ब्यायाम की मशीनें एवम् यंत्र।
8. अक्षय ऊर्जा ही कल का भविष्य अतः इसका समुचित प्रयोग एवम् विस्तारीकरण सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। इटली की तरह सभी सरकारी एवम् गैर सरकारी भवनों की खिड़कियों, छतों एवम् दीवारों पर सौर ऊर्जा के शैल लगाकर विद्युत का उत्पादन करें।

ऊर्जा के संरक्षण के साथ हमें पर्यावरण की भी रक्षा करनी पड़ी। ज्यादा से ज्यादा पेड़–पौधे लगाने होंगे ताकि धरती के वातावरण को ठंडा रखा जा सके जिससे ऊर्जा की बचत हो और पृथ्वी पर जीवन बना रहे।

''एक व्यक्ति–एक वृक्ष–एक ऊर्जा की इकाई यही जीवन बचाने की जुगत है भाई।''

''भविष्य अगर बनाना है

पर्यावरण एवं ऊर्जा को बचाना है।''

विश्व प्रगति में ऊर्जा का योगदान

विकास यादव
गंगा प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन संस्थान, झज्जर, हरियाणा

सारांश

ऊर्जा, आर्थिक विकास और जीवन स्तर बेहतर बनाने के लिए एक आवश्यक साधन है। समाज में ऊर्जा की बढ़ती हुई जरूरतों को उचित लागत पर पूरा करने के लिए उर्जा के गैर परंपरागत वैकल्पिक, नए और फिर से उपयोग में लाए जा सकने वाले स्रोतों जैसे– सौर, पवन और जैव उर्जा, आदि के विकास और संवर्द्धन पर निरंतर ध्यान दिया जा रहा है। विश्व भर में उर्जा सुलभता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान के लिए परमाणु उर्जा के विकास पर निरंतर शोध एवं कार्य किया जा रहा है। प्रगति के पथ पर चलते हुए मनुष्य ने ऊर्जा का विविध रूप से प्रयोग करके अपने जीवन को सरल बनाया है। एक उच्च वृद्धि दर को कायम रखने और सभी नागरिकों की अनिवार्य ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए भारत को 2005–06 के स्तरों से, 2031 तक अपनी प्राथमिक ऊर्जा आपूर्ति को 3 से 4 गुणा और विद्युत उत्पादन क्षमता को 5 से 6 गुना तक बढ़ाना है। 1947 से प्रतिस्थापित विद्युत क्षमता 1400 मेटावाट थी जो 31 मार्च, 2009 में बढ़कर 1,50,574 मेगावाट हो गई, इसमें तापीय एवं डीजल ऊर्जा 96,295 मेगावाट, जलविद्युत 36,917 मेगावाट, पवन उर्जा 13,245 मेगावाट तथा नवीकरणीय एवं परमाणु ऊर्जा का हिस्सा 4,120 मेगावाट है। अतः कहा जा सकता है कि विद्युत के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली कुल ऊर्जा का लगभग 60 प्रतिशत तापीय परियोजनाओं से 25 प्रतिशत जल विद्युत परियोजनाओं से, 20 प्रतिशत परमाणु विद्युत से, 4 प्रतिशत डीजल एवं गैस आधारित परियोजनाओं से तथा 1 प्रतिशत विद्युत सौर ऊर्जा, पवन, बायोगैस तथा पन–बिजली घरों से प्राप्त है।

परिचय

भारत में बिजली का विकास 19वीं सदी के अंत में शुरू हुआ। सन् 1897 में दार्जिलिंग में बिजली आपूर्ति शुरू हुआ। सन् 1897 में दार्जिलिंग में बिजली आपूर्ति शुरू हुई तथा तत्पश्चात् सन् 1902 में कर्नाटक में शिवसमुद्रम पनबिजली घर काम करने लगा। स्वतंत्रतापूर्व बिजली की आपूर्ति मुख्य रूप से निजी क्षेत्र करता था और यह सुविधा भी कुछ शहरी क्षेत्रों तक सीमित थी। पंचवर्षीय योजनाओं के विभिन्न चरणों में राज्य बिजली बोर्डों का गठन देशभर में बिजली आपूर्ति उद्योग के सुव्यवस्थित विकास की ओर एक महत्वपूर्ण कदम था। अनेक बहुउद्देशीय परियोजनाएं आरंभ हुई और ताप, जल और परमाणु बिजली घरों की स्थापना के बाद से बिजली उत्पादन में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। देश में बिजली व्यवस्था, उत्पादन एवं विकास का कार्य विद्युत मंत्रालय के अंतर्गत आता है। इसके कार्यों में भावी योजनाएं निर्मित करना, नीतियां निर्धारित करना, निवेश संबंधी निर्णयों के जरिए परियोजनाओं का चयन कार्यान्वयन, निगरानी, प्रशिक्षण एवं श्रम शक्ति विकास के साथ ही जल एवं तापीय विद्युत उत्पादन, परीक्षण एवं वितरण संबंधी कानून बनाना एवं उन्हें लागू करना है। केंद्रीय क्षेत्र में उत्पादन और संप्रेषण परियोजनाओं के निर्माण और संचालन का काम केंद्रीय क्षेत्र के बिजली निगमों अर्थात् राष्ट्रीय ताप बिजली निगम (एन टी पी सी), पूर्वोत्तर विद्युत ऊर्जा निगम (एन एच पी सी), पूर्वोत्तर विद्युत ऊर्जा निगम (एन ई ई पी सी ओ), भारती बिजली ग्रिड निगम लिमिटेड (पी जी सी आई एल) को सौंपा गया है। संयुक्त क्षेत्र के दो बिजली निगम सतलुज जलविद्युत निगम एवं टिहरी पनबिजली विकास निगम क्रमशः हिमाचल प्रदेश में नायपा–झाकड़ी बिजली परियोजना एवं उत्तराखंड में टिहरी पनबिजली

परियोजना के लिए जिम्मेदार हैं। वैधानिक निकाय दामोदर घाटी निगम, भाखड़ा व्यास प्रबंधन बोर्ड एवं ऊर्जा कुशलता ब्यूरो भी बिजली मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में है।

ऊर्जा के परम्परागत स्रोत

आज से लाखों वर्ष पूर्व पृथ्वी के नीचे दब गए जीव–जंतुओं एवं वनस्पतियों के स्वरूप में दाब एवं ताप के कारण परिवर्तन आ जाने से महत्वपूर्ण ईंधनों का निर्माण हुआ। इन जैविक पदार्थों के अजैविकीकरण से जिस ईंधन की प्राप्ति होती है उसे अजैव ईंधन कहा जाता है। कोयला, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस अजैव ईंधन ही है जो आज के युग में ईंधन के रूप में सर्वाधिक प्रयुक्त हो रहे हैं। ऊर्जा की अधिकांश आपूर्ति जीवाश्म ईंधन–कोयला, पैट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस से की जाती है। जीवाश्म ईंधन ऊर्जा के अनवीकरणीय स्रोत है। रासायनिक रूप से जीवाश्म ईंधन में मुख्यतः हाइड्रोकार्बन होते हैं।

कोयला

ईंधन अथवा ऊर्जा के पारंपरिक एवं अजैविक स्रोतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोयला है। यह ऊर्जा का एक बहु–उपयोगी स्रोत है। इसे घरेलू ईंधन में प्रयोग में लाने के साथ–साथ औद्योगिक इकाइयों एवं विद्युत उत्पादन में भी उपयोग में लाया जा सकता है। कोयला देश की व्यावसायिक ऊर्जा की सर्वाधिक जरूरत को पूरा करता है। जोकि चित्र 1 में दिखाया गया है। कोयले में मुख्यतः कार्बन तथा उसके यौगिक होते है। कार्बन तथा हाइड्रोजन के अतिरिक्त नाइट्रोजन, आक्सीजन तथा गंध कभी रहते हैं। इसके अलावा फास्फोरस तथा कुछ अकार्बनिक द्रव्य भी पाये जाते हैं। कोयले की किस्मों पीट, लिग्नाइट, बिटूमिनस एवं एन्थ्रेसाइट में से पीट, लिग्नाइट, बिटूमिनस एवं एन्थ्रेसाइट में से एन्थ्रेसाइट उच्चतम कार्बन अंश एवं निम्न आर्द्रता अंश युक्त कठोर कोयला है। भारत में कोयला एवं लिग्नाइट के भंडार के उत्खनन एवं विकास की जिम्मेदारी कोयला मंत्रालय की है। कोल इंडिया लिमिटेड एवं 7 अन्य सहवर्ती संस्थाएं कोयला क्षेत्र का प्रबंधन देखती है और नेवली लिग्नाइट कारपोरेशन लिमिटेड लिग्नाइट क्षेत्र का प्रबंधन देखता है।

तेल

यह अति लघु समुद्री प्राणियों, सूक्ष्म पौधों और जंतुओं से, जो 10 से 20 करोड़ वर्ष पूर्व अवसादों के नीचे सामधिस्थ हुए थे, प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग अधिकतर उद्योगों में भट्टियों और बॉयलरों में किया जाता है।

प्राकृतिक गैस

यह एक ज्वलनशील गैसीय सम्मिश्रण है जिसमें अधिकांशतः हाइड्रोकार्बन शामिल होते हैं। प्राकृतिक गैर से लगभग 85 प्रतिशत मीथेन, 10 प्रतिशत ईथेन के अतिरिक्त प्रोपेन, ब्युटेन, पेन्टीन तथा अन्य एल्केन्स शामिल होते हैं।

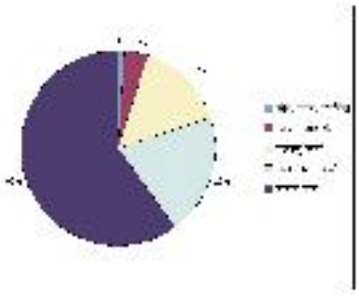

चित्र 1.

गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोत

गैर–परंपरागत ऊर्जा तकनीक के विकास के लिए वर्ष 1987 में कंपनी अधिनियम के अंतर्गत भारतीय नवीकरणीय ऊर्जा विकास एजेंसी (इरेडा) का गठन किया गया। यह एजेंसी नई एवं नवीकरणीय तकनीक के लिए वित्त प्रबंधन के साथ–साथ ऊर्जा उत्पादकों को वित्तीय सहायता उद्यमियों को परामर्श सेवा, तकनीक के विकास एवं उन्नति में सहायता प्रदान करती है। गौरतलब है कि यह एजेंसी नव एवं नवीकरणीय ऊर्जा संबंधी शोधकार्यों का भी खर्च वहन करती है।

उल्लेखनीय है कि नवीकरणीय स्रोत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य की ऊर्जा से व्युत्पन्न होते हैं। जैसे सौर ऊर्जा, बहते पानी की ऊर्जा, ज्वार भाटा, सागर तरंगों, वायु एवं बायोमास से दोहित ऊर्जा स्रोतों का दोहन तब तक संभव है जब तक पृथ्वी, सूर्य से प्रकाश एवं ऊर्जा प्राप्त करती रहेगी। कुछ उर्जा स्रोतों के दीर्घकाल तक उपलब्ध रहने की संभावना है जैसे–नाभिकीय ऊर्जा और भू–तापीय ऊर्जा।

वर्तमान में भारत उन गिने चुने देशों में शामिल हो गया है। जिन्होंने 1973 से ही नए तथा पुनरोपयोगी ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करने के लिए अनुसंधान और विकास कार्य आरंभ कर दिए थे। परन्तु एक स्थायी ऊर्जा आधार के निर्माण में पुनरोपयोगी ऊर्जा या गैर–परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के उपयोग एक उत्तरोत्तर बढ़ते महत्व को तेल संकट के तत्काल बाद 1970 के दशक के आरंभ में पहचाना जा सका। आज पुनरोपयोगी और गैर–परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के दायरे में सौर, ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जलविद्युत बायोगैस, हाइड्रोजन, ईंधन कोशिकाएं, विद्युत वाहन, समुद्री ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा आदि जैसी नवीन प्रौद्योगिकियां आती है। भारत में ऊर्जा क्षमता कम से कम 45000 मेगावाट है जिसमें गुजरात के तटीय क्षेत्र की क्षमता 500 मेगावाट है। भारत में अब तक 8,757 मेगावाट क्षमता जोड़ी गई है, जिससे जर्मनी, अमेरिका और स्पेन के बाद भारत विश्व में चौथे स्थान पर पहुंच गया है।

पवन ऊर्जा

वायु की गति के कारण अर्जित गतिज ऊर्जा 'पवन ऊर्जा होती है। यह एक नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है। कई शताब्दियों से पवन का ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रयोग होता रहा है। अनाज फटकने में पवन चालित नौकाओं आदि में। आधुनिक पवन चक्कियों का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि वे पवन ऊर्जा को यांत्रिक या विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर सके। पवन चक्की के कार्य करने के लिए न्यूनतम पवन वेग 15 कि.मी. प्रति घंटा होना आवश्यक है। पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय तरल प्राकृतिक गैस के आयात सहित तेल तथा प्राकृतिक गैस की खोज और उत्पादन, शोधन, वितरण, विपणन आयात–निर्यात एवं पेट्रोलियम उत्पादों के संरक्षण के लिए उत्तरदायी है। देश की दो राष्ट्रीय तेल कंपनियों तल और प्राकृतिक गैस निगम लिमिटेड (ओ एन जी सी) और आयल इंडिया लिमिटेड (आई ओ एल) तथा निजी एवं संयुक्त उपक्रम कंपनियां देश में तेल और प्राकृतिक गैस की खोज तथा उत्पादन में कमी है। भारत में कोयले के बाद पैट्रोलियम उत्पाद उर्जा के प्राथमिक स्रोत है ओर इनकी खपत निरंतर बढ़ती जा रही है। देश के तीव्र विकास के लिए ऊर्जा क्षेत्र की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सौर ऊर्जा

सूर्य ऊर्जा का सर्वाधिक व्यापक एवं अपरिमित स्रोत है, जो वातावरण में फोटॉन (छोटी–छोटी) प्रकाश–तरंग पटिकाएं के रूप में विकिरण से ऊर्जा का संचार करता है। भारत विश्व के ऐसे भाग में स्थित है जहां सूर्य का प्रकाश प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। भारत को प्रतिवर्ष 5000 ट्रिलियन किलोवाट घंटा के बराबर ऊर्जा मिलती है। प्रतिदिन की औसत भौगोलिक स्थिति के अनुसार 4–7 किलोमीटर घंटा प्रतिवर्ग मीटर है। वैश्विक सौर रेडिएशन का वार्षिक प्रतिशत भारत में प्रतिदिन 5–5 किलोमीटर प्रति वर्ग मीटर है। गौरतलब है कि उच्चतम वार्षिक रेडिएशन लद्दाख, पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात में सौर ऊर्जा हमें प्रकाश और आज के रूप में मिलती है। हम इसका प्रयोग दो रूप से कर सकते

हैं– सौर फोटो वोल्टेइक और सौर तापीय। इसके माध्यम से हम सूर्य के प्रकाश को सीधे विद्युत में परिवर्तित कर सकते हैं या फिर आंच के रूप में सौर ऊर्जा को सीधे विद्युत में परिवर्तित करने की युक्तियां सौर सेल कहलाती है। सर्वप्रथम व्यवहारिक सौल सेल 1954 में बनाया गया जो लगभग 1 प्रतिशत सौर ऊर्जा को विद्युत में परिवर्तित कर सकता था वहीं आधुनिक सौर सेलों की दक्षता 25 प्रतिशत है। ऊर्जा मंत्रालय न छोटे स्थल पर उपयोग के लिए 25 एवं 100 किलोवाट की दो सौर फोटो वोल्टाइक ऊर्जा परियोजनाओं की स्थापना की। विश्व की सबसे बड़ी सौर वाष्प प्रणाली आंध्र प्रदेश में तिरूमला में स्थापित की गई। भारत सौर परियोजनाओं की स्थापना की। विश्व की सबसे बड़ी सौर वाष्प प्रणाली आंध्र प्रदेश में तिरुमला में स्थापित की गई। भारत सन् 1962 में विश्व का वह पहला देश बन गया जहां सौर–कुकरों का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन किया गया।

जल ऊर्जा

भारत की कुल ऊर्जा का 25 प्रतिशत जल विद्युत परियोजनाओं का भाग है।

बायोमास ऊर्जा

यह जैव ऊर्जा का एक रूप है। जैविक पदार्थों का उपयोग ऊर्जा उत्पादन में किया जाता है। पादप एंजाइम, जीवाणु आदि ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्रोत है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की प्राथमिक ऊर्जा उपयोग का 15–50 प्रतिशत बायोमास से प्राप्त हो सकता है। गौरतलब है कि इस समय विश्व की प्राथमिक ऊर्जा का लगभग 11 प्रतिशत बायोमास द्वारा ही पूरा होता है।

नाभिकीय ऊर्जा

नाभिकीय उर्जा से विश्व की कुल विद्युत का 1/6 भाग प्राप्त होता है। यद्यपि भारत में इसका प्रतिशत काफी कम है। परमाणु ऊर्जा की खोज सर्वप्रथम फ्रांसीसी वैज्ञानिक हेनरी बेकुरल ने 1896 में की थी। अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के आंकड़ों के अनुसार, परमाणु ऊर्जा एजेंसी के आंकड़ों के अनुसार, परमाणु, ऊर्जा में फ्रांस अग्रणी देश है जिसकी कुल ऊर्जा आवश्यकता का 76.18 प्रतिशत परमाणु ऊर्जा से प्राप्त होता है। वहीं भारत की कुल ऊर्जा खपत में परमाणु ऊर्जा का योगदान मात्र 2.03 प्रतिशत है।

महासागरीय (ज्वारीय) ऊर्जा

प्रत्येक पूर्णमासी व अमावस्या को महासागरीय तट पर उच्च ज्वार आता है जिससे जल का स्तर कुछ मीटर तक उठ जाता है। ज्वार भाटे में जल स्तर के बढ़ने व गिरने से अर्जित ऊर्जा ज्वारीय ऊर्जा कहलाती है। महासागरीय तरंगों की ऊर्जा से उचित मूल्य पर विद्युत के उत्पादन के लिए वही स्थान उपयुक्त माना है जहां तट के प्रति किलोमीटर से 40 मेगावाट ऊर्जा प्राप्त हो सके।

निष्कर्ष

एक उच्च वृद्धि दर को कायम रखने और सभी नागरिकों की अनिवार्य ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए भारत को 2005–06 के स्तरों से, 2031 तक अपनी प्राथमिक ऊर्जा आपूर्ति को 3 से 4 गुणा और विद्युत उत्पादन क्षमता को 5 से 6 गुणा तक बढ़ाना है।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट एवं प्रबंधन

साधना चौरसिया एवं आनन्द देव गुप्ता
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश

सारांश

जहां तक उपचार की बात की जाए तो मानव एवं अन्य जीवों के लिए हितकर होता है किन्तु उपचार के दौरान निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों के बारे में सोचा जाए तो यह एक विकराल समस्या है। जितनी तेजी से निजी एवं सरकारी क्षेत्र के चिकित्सालय खुल रहे हैं उतनी ही अधिक मात्रा में ठोस एवं द्रव अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। चिकित्सा के क्षेत्र में तो वैज्ञानिकों के द्वारा बहुत अविष्कार कर लिया गया है, परन्तु उनसे निकले अपशिष्ट पदार्थों का उचित निपटान/हस्तन/व्ययन की ओर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। चिकित्सा के दौरान निकला अपशिष्ट पदार्थ पर्यावरण के विभिन्न घटकों को भी अपूर्णनीय क्षति पहुंचाता है। इसीलिए अपशिष्टों के उचित प्रबंधन एवं व्ययन हेतु केन्द्र सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने पर्यावरण संरक्षण नियम 1988 के अन्तर्गत 20 जुलाई 1998 में जैव चिकित्सा अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हस्तन) नियम 1998 को बनाया जिसको क्रमशः वर्ष 2000 एवं 2003 में संशोधित किया गया। हमारे देश में इस तरह के कई नियम बनाये जा चुके हैं किन्तु उनके क्रियान्वयन में काफी समस्याएं आ रही हैं। अस्पतालों में प्रशिक्षित कर्मचारियों का होना अनिवार्य किया जाना चाहिए तथा आम नागरिकों में जन जागरूकता होनी चाहिए जिससे की जैव चिकित्सा अपशिष्ट का संक्रमण कम हो तथा पर्यावरण स्वस्थ्य रहे। इस प्रपत्र में जैव चिकित्सा अपशिष्ट का वर्गीकरण एवं उनके प्रबंधन पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावना

जैव चिकित्सा अपशिष्ट से आशय है कि ठोस, द्रव अपशिष्ट या कोई मध्यवर्ती उत्पाद, जो जीवों के चिकित्सा निदान एवं प्रतिरक्षीकरण के दौरान या जहाँ वो तैयार किए जाते हैं ऐसे अनुसंधान के दौरान जिनका जन्म होता है जैव चिकित्सा अपशिष्ट कहलाता है। चिकित्सा देखभाल हमारे जीवन, स्वास्थ्य और भलाई के लिये महत्वपूर्ण है, लेकिन अपशिष्ट चिकित्सा गतिविधियों से उत्पन्न खतरनाक, विषैला और घातक हो सकता है। आपको इस प्रकार को अपशिष्ट शहरों में जहाँ तहाँ या तो निजी एवं सरकारी अस्पतालों के आस–पास बडी मात्रा में पडे हुए दिखाई देंगे। यदि इस प्रकार के खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों को बिना उपचारित किए फेंक दिया जाए तो यह विभिन्न प्रकार से जलवायु एवं मृदा को प्रदूषित करेंगे एवं उनका उपचार करना बहुत ही कठिन साबित होगा। हम जानते हैं कि पहले भी चिकित्सालय थे एवं उनके द्वारा भी इस प्रकार का अपशिष्ट उत्पादन होता है किन्तु तब इसकी मात्रा बहुत कम थी एवं तब हमारे आस–पास उनके हस्तन एवं व्ययन हेतु जनसंख्या के अनुसार पर्याप्त जगह थी इस वजह से अपशिष्टों का प्रबंधन एवं ब्ययन हो जाता है, इसके कारण मानव जाति ने तब किसी प्रकार का खतरा महसूस नहीं किया किन्तु आज की स्थिति एक दम विपरीत है। चिकित्सालयों से उत्पन्न वह सभी अपशिष्ट जो संक्रमित है उनका पृथककरण, जनन ग्रहण, परिवहन, भण्डारण, उपचार एवं ब्ययन नियम में प्रकाशित विधियों के मुताबिक प्राधिकृत प्राधिकारी की अनुज्ञा से ही होगा। इस नियम के अनुसार चिकित्सा अपशिष्टो को 10 वर्गों में विभाजित किया गया है।

अलग–अलग प्रकार के अपशिष्टों को उनके प्रकृति के अनुसार उपचार करने की विधियों का ब्यौरा नीचे सारणी 1 में दिया जा रहा है–

सारणी 1. जैव चिकित्सा अपशिष्ट के प्रवर्ग।

अपशिष्ट प्रवर्ग	अपशिष्ट प्रकार	उपचार एवं व्ययन विकल्प
प्रवर्ग संख्या 1	मानवीय शरीर के अपशिष्ट : रक्त और शरीर द्रव (मानवीय ऊतक, अंग, शरीरान्ध शरीर द्रव, रक्त और उत्पाद तथा रक्त से संतृप्त या रिसते हुए मद, रक्त से संदूशित शरीर द्रव और उपचार, शल्य किया या शव परीक्षा या अन्य चिकित्सीय प्रकियाओं के दौरान/ पश्चात् हटाये गए शरीर द्रव)	यदि संक्रामक हो ते भस्मन और यदि असंक्रामक हो तो दबाया जाना।
प्रवर्ग संख्या 2	पशु और बूचड़खाना अपशिश्ट : पशु ऊतक, अंग, शरीरांग, रक्त भ्रवण करते शव, द्रव रक्त और रक्त उत्पाद, रक्त और द्रव से संदूशित मद, शल्य क्रिया, उपचार और शव परीक्षण अपशिष्ट और अनुसंधान में प्रयुक्त प्रयोगकारी पशुओं के अपशिष्ट/पशु चिकित्सा अस्पतालों, महाविद्यालयों, पशुग्रहों, पशुधन फार्मों द्वारा जनन किए गए अपशिष्ट।	ठोस के लिए विसंक्रमण और दबाया जाना, द्रवों के लिए उपचार और व्ययन
प्रवर्ग संख्या 3	सूक्ष्म जीव विज्ञान और प्रौद्योगिकी अपशिष्ट : (प्रयोग शाला संवर्धनों के अपशिष्ट, सूक्ष्म जीवों जिनमें अनुवंशिक्त इंजीनियर किये गये सूक्ष्म जीव भी हैं के रख रखाव या नमूने, जीवित या क्षीणोकृत वैक्सीन, मानवीय और पशु कोशिका संवर्धन जो अनुसंधान में प्रयुक्त हुये हों और अनुसंधान और औद्योगिक प्रयोगशालाओं के संक्रामक एजेन्ट, जैविकों के उत्पादन के अपशिष्ट, सवर्धनों के अंतरण में प्रयुक्त आविश, पात्र और युक्तियां)	आटोक्लेविंग/सूक्ष्म तरंगण और भस्मन
प्रवर्ग संख्या 4	अपशिष्ट तीक्ष्णाग्र : ऐसी सुइयाँ, स्केल्पेल, ब्लेड, शीशा आदि जो सवर्धन और काटने में सूक्ष्म हो। इसमें प्रयुक्त और अप्रयुक्त दोनों प्रकार के तीक्ष्णाग सम्मलित हैं।	विसंक्रमण, शीर्णन और भू–भराई / पुनः चकण (पीवीसी प्लास्टिक और शीशे की वस्तुओं के लिए) में व्ययन।
प्रवर्ग संख्या 5	फेंकी गयी औषधियां : (अपशिष्ट जिसमें पुरानी, संदूशित और त्वणित औषधियां समाविष्ट हैं।)	भस्मन या विनाश और भू–भराई में व्ययन
प्रवर्ग संख्या 6	ठोस अपशिष्ट : (दूशित सूती कपडों, पट्टियों, प्लास्टर के सांचों, सन के धागों, विस्तरों, रक्त से संदूशित सामाग्री जिसमें पैकिंग सामाग्री सम्मिलित है, से जनन हुआ अपशिष्ट)	यदि संक्रामक हो तो भस्मन, यदि असंक्रामक हो तो आटो क्लेविंग/सूक्ष्म तरंगण/नगर पालिका डम्प/भू–व्ययन
प्रवर्ग संख्या 7	परित्यजनीय वस्तुएं: (तीक्ष्णाग्रो से भिन्न परित्यजनीय वस्तुओं से जनन हुए अपशिष्ट)	रासायनिक उपचार /आटोक्लेविंग / सूक्ष्म तरंगण और शीर्णन द्वारा विसंकमण और सुरक्षित भू–भराई में व्ययन/पीवीसी/प्लास्टिक का पुनः चक्रण
प्रवर्ग संख्या 8	द्रव अपशिष्ट : (प्रयोगशाला और धुलाई, सफाई, गृह व्यवस्था और विसंकमण किया कलापों से जनन हुए अपशिष्ट)	रासायनिक उपचार द्वारा विसंकमण और नालियों में व्ययन
प्रवर्ग संख्या 9	भस्मन/राख : (किसी भी जैव चिकित्सा अपशिष्ट के भस्मन से राख)	सुरक्षित भू–भराई में व्ययन
प्रवर्ग संख्या 10	रासायनिक अपशिष्ट : (जैविकों से उत्पादन में प्रयुक्त रासायन विसंकमण में प्रयुक्त रासायन जैसे कि कीटनाशी माल आदि)	द्रवों के लिए रासायनिक उपचार और नाली में व्ययन तथा ठोस के लिए भस्मन या भू–व्ययन

सारणी 2. जैव चिकित्सा अपशिष्ट के प्रवर्ग

अपशिष्ट प्रवर्ग	अपशिष्ट प्रकार	पात्र का प्रकार	रंग कोड
प्रवर्ग संख्या 1	मानवीय शरीर के अपशिष्ट, रक्त और शरीर द्रव	एकल प्रयोग पात्र/प्लास्टिक के धारण थैले	लाल/पीला
प्रवर्ग संख्या 2	पशु और बूचड़खाना अपशिष्ट	एकल प्रयोग पात्र/प्लास्टिक के धारण थैले/बोरे	नारंगी
प्रवर्ग संख्या 3	सूक्ष्मजीव विज्ञान और जीवन प्रौद्योगिक अपशिष्ट	एकल प्रयोग पात्र/प्लास्टिक के धारण थैले	पीला
प्रवर्ग संख्या 4	अपशिष्ट तीक्ष्णाग्र	पुनः प्रयोग किये जा सकने योग्य/एकल प्रयोग प्लास्टिक, शीशे या धातु के मजबूत पात्र	पीला/नीला
प्रवर्ग संख्या 5	फेंकी गयी औषधियां	पुनः प्रयोग की जा सकने योग्य मजबूत गत्ते/शीशे/प्लास्टिक के धारण थैले	पीला/नीला
प्रवर्ग संख्या 6	ठोस अपशिष्ट	अपशिष्ट थैले/बोरे	पीला/काला
प्रवर्ग संख्या 7	परित्यजनीय वस्तुएं	पुनः प्रयोग किये जा सकने योग्य/मजबूत पात्र/प्लास्टिक के धारण थैले	पीला/काला
प्रवर्ग संख्या 8	द्रव अपशिष्ट	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
प्रवर्ग संख्या 9	भस्मन राख	प्लास्टिक थैले/बोरे	काला
प्रवर्ग संख्या 10	रासायनिक अपशिष्ट	मजबूत पात्र/प्लास्टिक के थैले	पीला/काला

प्रवर्गों के अनुसार जैव चिकित्सा अपशिष्टों के उपचार की विधियाँ

उपरोक्त जानकारी के अनुसार जैव चिकित्सा अपशिष्टों को प्रवर्गों के अनुसार विभाजित किया गया है इससे उनके पृथकरणीय हेतु विभिन्न प्रकार के कनस्टर (डिब्बों) का उपयोग करते हैं। ताकि इस प्रबंधन में समय एवं पैसा दोनों बेकार न हो जिसका विस्तृत वर्णन सारणी 2 में किया गया है।

टिप्पणी

पीला– संक्रमित अपशिष्ट और/या भस्मन के लिए अपशिष्ट।

नीला– आटोक्लेविंग/समतुल्य उपचार के लिए अपशिष्ट।

लाल– दबाए जाने के लिए मानवीय शरीर के अपशिष्ट।

नारंगी– विसंक्रमण और दबाये जाने के लिए पशु अपशिष्ट।

काला– नगर पालिका डम्प के लिए असंक्रामक अपशिष्ट।

इन रंगीन डिब्बों के ऊपर खतरों के प्रतीक/निशान को भी प्रदर्शित करना आवश्यक है जिससे इन्हें किसी अन्य उपयोग हेतु न प्रयोग किया जा सके। इसके लिए अलग–अलग प्रारूप नियम में निर्धारित किए गए हैं एवं चिकित्सालयों में जैव चिकित्सा अपशिष्ट सम्बन्धित क्रियाकलापों की जानकारी प्रदूशण नियंत्रण बोर्ड या प्रदूषण नियंत्रण कमेटी को समय–समय पर दी जाती है। जैव चिकित्सा अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हस्तन) नियम 1998 के प्रारूप उपयोगिता निम्नलिखित हैं।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हस्तन) नियम 1998, दिशा निर्देशों और वर्दी का कोड प्रदान करता है। पूरे राष्ट्र के लिए अभ्यास, यह स्पष्ट रूप से इस नियम में उल्लेख किया गया है कि दखलकार (एक व्यक्ति है जो सम्बन्धित संस्था/परिसर पर नियंत्रण है) जैव चिकित्सा अपशिष्ट सृजन संस्था (जैसे अस्पताल, नर्सिंग होम, क्लीनिक, डिस्पेन्सरी, पशु चिकित्सा संस्था, पशुघर, रोग प्रयोगशाला, रक्त बैंक आदि) पर है कि इस तरह को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए जिम्मेदार होगा।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट के पर्यावरणीय जोखिम

1. कटे फटे अंगों/पैथालॉजी द्वारा फेंके जाने वाले संक्रमित पदार्थों के द्वारा फैलने वाला संम्भावित संक्रमण।
2. कांच एवं प्लास्टिक के सामान पुनः बिना उपचारित किये उपयोग में लाना।
3. निजी एंव सरकारी अस्पतालों के आस–पास फैले जैव चिकित्सा अपशिष्ट के उचित व्यवस्थित न होने के कारण आदमियों एवं जानवरों का प्रभावित होना।
4. भस्मन के दौरान उत्पादित राख को समुचित स्थान पर न फेकने के कारण तथा उस दौरान निकली विषैली वायु से वातावरणीय प्रदूषण का खतरा।
5. विषैले तथा संक्रमित रासायनिक जल का बिना उपचार के नदी या नालों के मिलने से उत्पन्न होने वाला भूमिगत जल एवं अन्य जल के प्रदूषित होने का खतरा।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट के प्रबंधन के सुझाव

1. जैव चिकित्सा अपशिष्ट के प्रबंधन एवं हस्तन से सम्बन्धित विषय को चिकित्सा महाविद्यालयों में पढ़ाया जाना अनिवार्य होना चाहिए।
2. निजी एवं सरकारी अस्पतालों में उपस्थित स्टाफ को प्रशिक्षण देना चाहिए या प्रशिक्षित व्यक्ति को ही वहां चुना जाना चाहिए।
3. अस्पतालों में ही जैव चिकित्सा अपशिष्ट को प्रवर्गों के अनुसार पृथक्करण कर उसे उपचारित करना चाहिए।
4. ज्यादा से ज्यादा हमेशा पुनः उपयोगी (रिसाईकेबल) पदार्थों के उपयोग को बढावा देना चाहिए।
5. जैव चिकित्सा द्रव अपशिष्ट के निष्कासन हेतु अलग–अलग नालियों का उपयोग करना चाहिए।
6. भस्मन एवं उपकरणों जैसे कि आटोक्लेव, रासायनिक उपचार हेतु उपयोग आने वाले उपकरण, सूक्ष्म तरंगण आदि का उचित रख–रखाव कुशल कर्मचारियों द्वारा करवाना चाहिए।
7. इस विषय में जन जागरूकता अभियानों को बढावा देना चाहिए।
8. प्लास्टिक का उपयोग यथासम्भव कम कर देना चाहिए।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हस्तन) नियम 1998, बनने के बाद आज लगभग 14 वर्ष बाद भी इसका प्रबंधन उचित रूप से नहीं हो पा रहा है। आज भी आप लोगों को अस्पतालों के आस–पास संक्रमित कांच, कचरा इत्यादि का दिखाई देना एवं उस पर कुत्ते, सुअर एवं गाय इत्यादि लगी

हुयी दिखाई देती हैं उसके बावजूद यदि यह अपशिष्ट किसी संयुक्त जैव चिकित्सा अपशिष्ट उपचार सुविधा केन्द्र (CBWTF) तक पहुंच गया है तो भी इसका उचित उपचार बहुत कम जगहों पर ही हो पा रहा है। कहीं–कहीं तो इस प्रकार के अपशिष्ट को कहीं भी या निगम द्वारा चिह्नित भूमि पर फेंक दिया जाता है जो कि गलत है। इस प्रकार का गलत कार्य करने पर भारतीय दंण्ड संहिता के खण्ड 269 एवं 270 के अन्तर्गत संक्रमित कचरा फेंकने वाले के खिलाफ कार्यवाही करने का प्रावधान है। हमें चाहिए की जैव चिकित्सा अपशिष्ट का अच्छी प्रकार से प्रबंधन एवं हस्तन करें ताकि इससे होने वाले स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय क्षति को रोक सकेंगे।

संदर्भ

1. गॉर्डन जे जी, लगाम हार्डट पी ए, डेनिस(2004) जी एः चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन : मेहाल तटरक्षक (ईडी) अस्पताल के महामारी विज्ञान और संकमण नियंत्रण, लिपिनकाट विलियम्स और विल्किन्स प्रकाशन पेज 1773–85.
2. राव एस, रेनियाल आर. के. भाटिया एस एस शर्मा (2004) वी. आर. बायोमेडिकल अपशिष्ट प्रबंधनः अस्पतालों की एक ढांचागत सर्वेक्षण, एम जे ए एफ आई, वाल्यूम.60,4
3. एम भार्मा (2002)ः अस्पताल अपशिष्ट प्रबंधन और निगरानी (प्रथम एड.), जेपी ब्रदर्स मेडिकल प्रकाशन.
4. पंडित नायब, इत्यादि जैव चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधनः गुजरात भारतीय जम्मू सार्वजनिक स्वास्थ्य के एक जिले में जागरुकता और प्रथाएं 2005,49:245–7.
5. राव पीएच चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन जागरुकता और प्रथाओंः भारत में तीन राज्यों के एक अध्ययन में अपषिष्ट प्रबंधन के तरीके 2008,26:297–303
6. चौहान, माया सिंह और किशोर मालवीयः मौजूदा इन्दौर भाहर के अस्पतालों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन. भारतीय पर्यावरण विज्ञान,6,43–49 (2002).
7. भार्मा, भालिनि, चौहान एस वी एस। आगरा के तीन सुप्रीम सरकारी अस्पतालों में जैव मेडिकल अपशिष्ट प्रबंधन के मूल्यांकन। पर्यावरण मार्च 2008 जीव विज्ञान के जर्नल, 29:159–62.

α से β–चरण की रूपांतरण की यात्रा के दौरान Polyvinylidene (PVDF) फिल्मों में संरचनात्मक परिवर्तन

अंजना जैन, जयंत कुमार एस, तथा राम समया
राष्ट्रीय एयरोस्पेस प्रयोगशाला, बैंगलूरू

सारांश

β-polyvinylidene फ्लोराइड चरण transducer अनुप्रयोगों के लिए (PVDF) मजबूत piezoelectric गुणों को दर्शाता है। वर्तमान काम में, PVDF की फिल्मों को विलायक डाली पद्धति का उपयोग करके तैयार किया गया है। β–चरण को उपयुक्त थर्मामीटरा–यांत्रिक उपचार के द्वारा प्राप्त 50-85 °C तक अलग. अलग तापमान पर खींच कर तैयार किया गया है। 80 °C पर खींच कर तैयार फिल्मों में crystallinity की वृद्धि हुई। α–चरण से β–चरण की रूपांतरण की यात्रा के दौरान PVDF में संरचनात्मक परिवर्तनों को खोजने के लिए एक्स–रे विवर्तन तकनीक का उपयोग करके एक विस्तृत अध्ययन किया गया।

परिचय

β-polyvinylidene फ्लोराइड (PVDF) fluoropolymer परिवार की एक प्लास्टिक सामग्री है, जिसका संरचनात्मक सूत्र[1] में दिखाया गया है। इसमें हाइड्रोजन और फ्लोराइड कार्बन श्रृंखला से जुड़ी है। PVDF की संरचना polyethylene (PE) और polytetrafluoroethylene (PTFE) के बीच मध्यवर्ती है, जो इसे एक उच्च लचीलापन और मुख्य श्रृंखला संरचना के लिए कुछ sterochemical बाधा देता है[1] यह अनेक विशेषताओं जैसे ferroelectricity piezoelectricity और pyroelectricity, का प्रदर्शन करता है। Piezoelectricity की बुनियादी शर्त है कि यह एक noncentro-lefer संरचना होनी चाहिए। 32 बिंदु समूहों में से 11 Centro- सममित होते हैं। और 21 non-centro-सममित में से 20 piezoelectric[2] हैं।

PVDF लचीला (इसलिए आसानी से वक्रित सतह पर गठित किया जा सकता है), हल्के वजन, अच्छा रासायनिक प्रतिरोध, कठोर, उत्कृष्ट यांत्रिक शक्ति, उत्कृष्ट घर्षण के प्रतिरोध, चिकनी, उत्कृष्ट

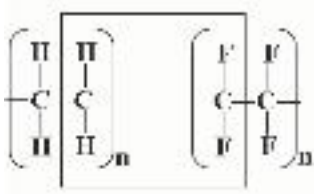

(I)

PVDF का संरचनात्मक सूत्र

अवस्था और अच्छे रासायनिक प्रतिरोधक है! यह बड़े क्षेत्र transducers को तैयार करने के लिये आसानी से कट सकता है और इसका जटिल आकार में गठन हो सकता है। PVDF चार अलग अलग चरणों α, β, γ और δ में मौजूद है[3-8], जिसमें से β चरण में मजबूत piezoelectric प्रभाव मौजूद है। α– चरण सबसे सामान्य संरचना है और अन्य तीन चरणों को α–चरण से यांत्रिक तनाव, गरमी और बिजली के क्षेत्र के आवेदन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। PVDF के प्रमुख लाभ इसकी कम

ध्वनिक प्रतिबाधा है, जो पानी, मानव ऊतक और अन्य कार्बनिक पदार्थों के करीब है[9-11] इसका उच्च लोचदार अनुपालन और ढांकता हुआ ताकत है जो 80 केवी/मिमी के क्रम के मजबूत बिजली क्षेत्र को withstands करता है। PVDF उच्च–प्रभाव प्रतिरोधक है और वाणिज्यिक चिपकने वाले पदार्थ के साथ जोड़ा जा सकता है। PVDF एयरोस्पेस में विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए उत्तम है जैसे, विमान के महत्वपूर्ण हिस्सों पर एक कंपन सेंसर, दबाव सेंसर। यह जैव चिकित्सा अनुप्रयोगों और उद्योगों की एक विस्तृत सरणी में भी प्रयोग किया जा सकता है। यह व्यापक रूप से रासायनिक प्रसंस्करण उद्योग में, अर्धचालक उद्योग में, और तार और केबल उद्योग में प्रयोग किया जाता है।

अतीत में सेंसर अनुप्रयोगों के लिए β चरण PVDF फिल्मों व्यापक अध्ययन किया गया है[11-15] इस दस्तावेज़ में, α– से β चरण परिवर्तन के दौरान तापमान में विभिन्नता के साथ संरचनात्मक परिवर्तन पर एक्स–रे विवर्तन तकनीक का उपयोग करके विस्तृत अध्ययन किया गया है।

प्रायोगिक विवरण

PVDF फिल्में (~ 40 μm मोटी) वाणिज्यिक उपलब्ध Pennwalt इंडिया लिमिटेड से प्राप्त PVDF छर्रों से सॉल्वैंट डाली विधि द्वारा हासिल की गईं। इस विधि में, PVDF के छर्रों का dimethyl formamide (DMF) में संतृप्त समाधान बनाया गया और एक गिलास प्लेट पर डाला गया। समाधान को एक ओवन में सुखाया गया और α चरण फिल्में प्राप्त की गई। β चरण PVDF प्राप्त करने के लिए α चरण फिल्में यंत्रवत् गर्म खिंचाव की गईं। ये ध्रुवीय संरचना के साथ सभी ट्रांस TTTT रचना है।

β चरण को प्राप्त करने के लिए, एक व्यवस्थित अध्ययन किया गया। इन फिल्मों को 50 °C से 85 °C विभिन्न तापमानों पर खींचा गया। चरण की विशेषता के लिए इन फिल्मों को एक्स–रे विवर्तन पद्धति का उपयोग करके विवर्तन पैटर्न Rigaku एक्स–रे diffractometer में ग्रेफाइट monochromator के साथ Cuk α विकिरण का उपयोग करके लिया गया। सभी मामलों में, 2θ, 10° से 60° रेंज में विवर्तन पैटर्न दर्ज किया गया था और नमूना 1°/minute स्कैन की गति पर घुमाया गया। अनुक्रमण इकाई सेल आयामों *a*=4.96, b=9.64, c=4.62 Å α-चरण के लिए और *a*=8.58, *b*=4.91, *c*=2.56 Å (हसेगावा एट अल[16]) का उपयोग किया है। सबसे तीव्र प्रतिबिंब (110) था।

परिणाम और चर्चा

चित्र 1b, PVDF pallets चित्र 1 विलायक डाली विधि द्वारा प्राप्त PVDF फिल्म (~ 100 μm) को दिखाता है।

स्फटिक चरण की जांच एक्स–रे विवर्तन (XRD) तकनीक का उपयोग करके की गई है। इस प्रकार प्राप्त की गई PVDF फिल्मों का XRD पैटर्न चित्र 2 में दिखाया गया है।

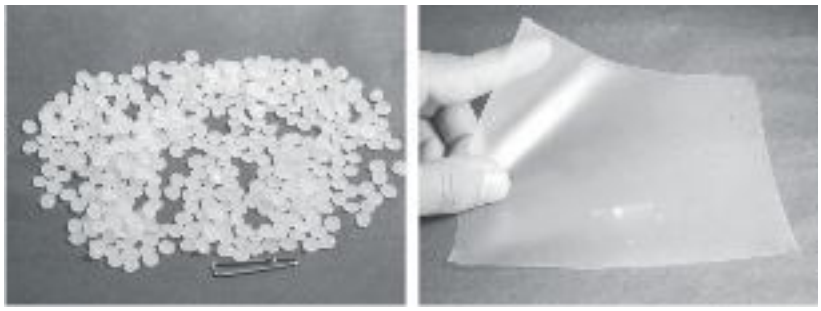

चित्र 1. α-PVDF फिल्म।

XRD पैटर्न से यह स्पष्ट है कि RT पर सबसे तीव्र प्रतिबिंब (110), 2θ=20.16° पर होता है, जो चरण α–PVDF फिल्म है, जो एक अर्ध–क्रिस्टलीय संरचना (चित्र 2) है। चित्र 2 में PVDF के β-चरण को दिखाया गया है। β–चरण PVDF फिल्म (चित्र 3) को प्राप्त करने के लिए, α–चरण फिल्मों

चित्र 2. अलग–अलग तापमान पर पर तनी α-Polyvinylidene फ्लोराइड फिल्मों के एक्स–रे विवर्तन पैटनर्स।

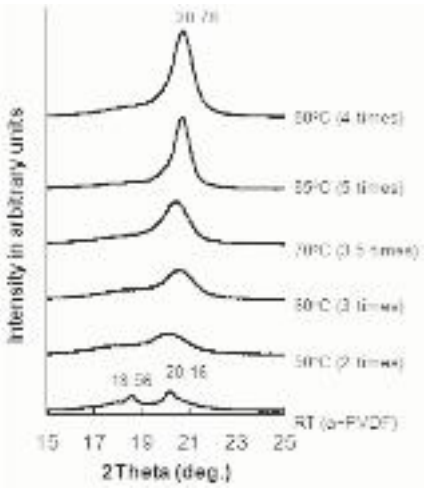

का एक विशेष रूप से डिजाईन किया गया खींचने का यूनिट (चित्र 4) का उपयोग कर विभिन्न तापमानों पर खींचा गया।

50 °C पर खींचा गया फिल्म एक्स–रे विवर्तन द्वारा जांचा गया। यह स्पष्ट है कि β–चरण में कई चोटियों गायब हो गई और सबसे तीव्र प्रतिबिंब (110), अब 2θ=20.06 पर होता है। इसलिए इसके बाद β–चरण के रूपांतरण के लिए, प्रतिबिंब (110) पर ध्यान किया जाएगा।

चित्र 3. α-PVDF गर्म खींचने के बाद प्राप्त की फिल्म ।

चित्र 4. α-PVDF गर्म खींचने के बाद प्राप्त की फिल्म ।

60-80 °C पर खींचीं गई फिल्मों में तापमान के साथ प्रतिबिंब (110), की crystallinity बढ़ जाती है और 85 °C पर प्रतिबिंब (110), की crystallinity कम होना शुरू होती है। तो अधिकतम crystallinity पाने के लिए फिल्मों के 80 °C पर खींचा जाना चाहिए। 80 °C पर खिंचाव भाज्य 4 है।

β–PVDF चरण की इकाई सेल orthorhombic समरूपता अंतरिक्ष समूह के रूप में तालिका. 1 में उल्लेख किया गया है। 80 °C पर खिंचाव भाज्य 4 के साथ, 2θ (110) प्रतिबिंब का मान 20.78 व है। β–चरण PVDF मूल्य, β–चरण हसेगावा, एट अल[16] द्वारा दी PVDF की सूचना के मूल्यों के साथ अच्छे समझौते में हैं। यह तालिका–2 में दिखाया गया है।

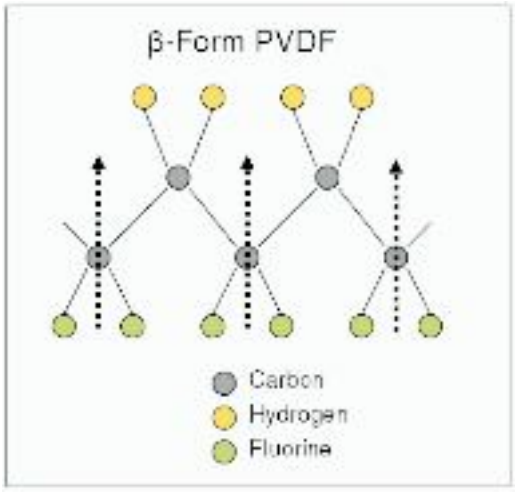

चित्र 5. β-PVDF का क्रिस्टल संरचना ।

रासायनिक सूत्रः CH_2-CF_2

घनत्व (ρ) 1.78 x 10^3 kg/m^3

यह नोट किया है कि β–चरण सभी तापमान 50 °C से 85 °C पर प्राप्त किया जा सकता है। कम तापमान पर, 50 °C और 60°C (चित्र 6 और 7) चोटी गहनता कम है और 2θ प्रतिबिंब व्यापक है, जो संकेत करता है कि Crystallite माप कम है और माइक्रो तनाव ज़्यादा है । 70 °C से 85 °C तापमान में, 2 θ मूल्य उच्चतर कोण देता है और प्रतिबिंब (110) नुकीला हो जाता हैए जो पूरी चौड़ाई में आधा मॅक्सिमा (FWHM) में कमी का संकेत (चित्र 6) है, जो बड़ा crystallite माप और छोटे माइक्रो तनाव का संकेत है।

तालिका–1. PVDF α-और β–चरण का क्रिस्टल डेटा।

α–PVDF	β–PVDF
क्रिस्टल सिस्टमः Monoclinic	क्रिस्टल सिस्टमः Orthorhombic
अंतरिक्ष समूहः $P2_1/c$-C_{2h}^5	अंतरिक्ष समूहः $Cm2m$-C_{2v}^{14}
a 4.96 Å	a 8.58 Å
b 9.64 Å	b 4.91 Å
c 4.62 Å	c 2.56 Å
α γ 90°?β	α β γ 90°

तालिका 2.

क्रिस्टलयी फार्म	Crystallographic सतह	Bragg कोण 2θ हसेगावावा etal के इकाई सेल आयामों के अनुसार	वर्तमान काम में Bragg कोण 2θ	आणविक Conformations
PVDF–α–phase	(110)	20.13	20.16	TGTG
PVDF–β–phase	(110)	20.80	20.78	TTTT

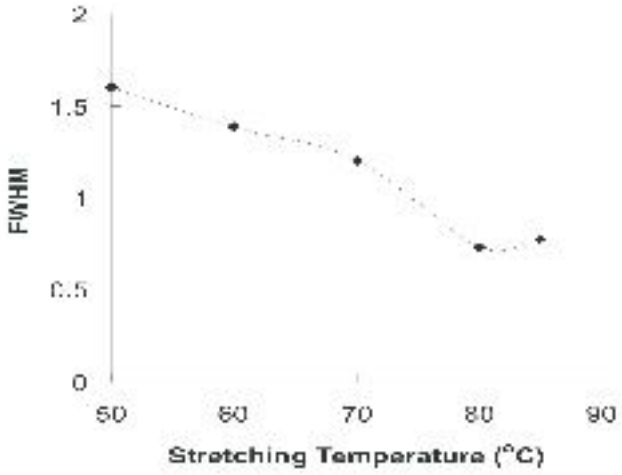

चित्र 6. FWHM में भिन्न–भिन्न तामान पर खींचने के साथ विभिन्नता।

Crystallite माप और माइक्रो तनाव मान की गणना Keijser *etal*[17] विधि का उपयोग कर के भी की गई और यह पाया जाता है कि β–चरण PVDF फिल्म के लिए crystallite माप 6.94 से 14.35 nm और माइक्रो तनाव 0.025 से 0.012 से बदलता है (चित्र 7 और 8)। यह बताता है कि 80 °C पर 4 के खिंचाव कारक से crystallite माप अधिकतम और माइक्रो तनाव सूक्ष्म हैं।

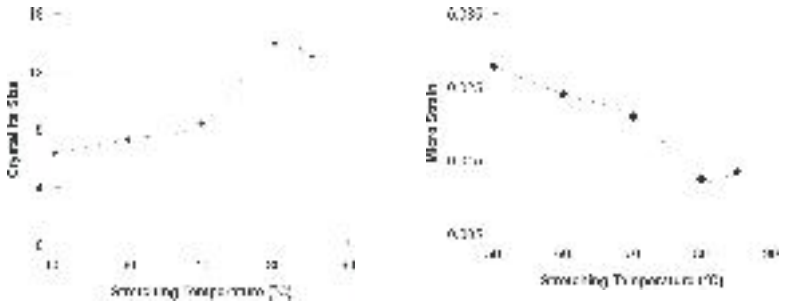

चित्र 7. और 8. क्रिस्टलीय आकार और सूक्ष्म तनाव में खींच तापमान के साथ विभिन्नता।

इन परिणामों के सुझाव है कि β चरण में अधिकतम crystallinity 80 ºC पर 4 खींच कारक के साथ खींच तापमान पर प्राप्त होता हैं।

निष्कर्ष

PVDF की फिल्में विलायक डाली पद्धति का उपयोग करके विकसित की गई। विभिन्न तापमान 50 ºC से 80 ºC पर खींच द्वारा संरचनात्मक परिवर्तन जांचा गया । एक्स–रे विवर्तन तकनीक के विश्लेषण से अधिकतम crystallinity 80 ºC पर, 4 के खिंचाव कारक के साथ प्राप्त कर लिया गया। β–चरण PVDF फिल्म के लिए विभिन्न तापमान 50 °C से 85 ºC पर Crystallite माप और माइक्रो तनाव मूल्य क्रमशः 6.94 nm से 14.35 nm और 0.025 से 0.012 थे।

संदर्भ

1. पी. De Santis, ई. Gigkio, A.M Liquori, और Ripamonti, t. ikWfyej foKku. A1: 1383 (1963)
2. GH Haertling, ज अम. सिरेमिक. सोसायटीए 82 (4) 797-818 (1999).
3. Sessler, G. M, t acoustic सोसायटी अमेरिकाए 70 (6), 1596-1608 (1981).
4. जयसूर्याए एसीए Schirokauer, ए और Scheinbeim, ज. पॉलिमर साइंसः भाग खः पॉलिमर Phy, 39, 2793 - 2799 (2001).
5. वह एक्सए Yao, के और Gan, बीके, सेंसर और Actuators, 139, 158-161 (2007).
6. Dargaville, tr, और सेलिनाए एम सीए एट अल.लक्षणए Sandia रिपोर्ट (2005).
7. Akdogan, ई.के., Allahverdi, एम. और सफ़ारीए ए, IEEE transactions on ultrasonics, ferroelectrics, and frequency control, 52 (5), 746-775 (2005).
8. Mhalgi, एमवी, Khakhar, DV और मिश्र, ए, पॉलिमर इंजीनियरिंग और साइंस 1992-2004 (2007).
9. हैरिसनए जे एस और Ounaies, Z, रिपोर्ट NASA/CR-2001-211422 ICASE 2001-43.
10. Wegener, एम, Kunstler, डब्ल्यूए रिक्टर, के.एच. और Gerhard-Multhaupt, ज. एप्लाइड फिजिक्स 92 (12), 7442-7447 (2002).
11. Piezo फिल्म सेंसर तकनीकी मैनुअल, www.msiusa.comA
12. Kubouchi, वाई, kumetani, वाई, Yagi, टी., Masuda, टी. और Nakajima, ए, Pure और एप्लाइड कैमिस्ट्री 61 (1), 83-90 (1989).
13. केप्लरए आरजीए "Ferroelectric, Pyroelectric, and Piezoelectric properties of Poly (vinylidene Fluoride)," संपादक Nalwa, एच एस, Marcel Dekker, इंक, न्यू यॉर्क 183-232 (1995).
14. जैनए ए, श्रंलंदजी, एस और कुमार, HH, ISAMPE सम्मिश्र पर राष्ट्रीय सम्मेलनः INCCOM-7, 4-5 (2008).
15. रावए एनपी, Dargahi, जे. Kahrizi, एम. और प्रसाद, एस, IEEE, 1167-1170 (2003).

16. हसेगावा, आर, Takahashi, वाई, Chatani, वाई और Tadokoro, एच, पॉलिमर ज, 3,600-610 (1972).

17. डी Keijser, गु. एच., Langford, जी, Mittemeijer, EJ और Vogels, A B P, जर्नल ऑफ एप्लाइड क्रिस्टलोग्राफीए 15, 308-314 (1982).

हृदय धमनी रोगों से बचाव में पपीते की भूमिका

जे एल अग्रवाल
सरस्वती इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, अनवरपुर, हापुड़, उत्तर प्रदेश

सारांश

यह अध्ययन 24 स्वस्थ, सफेद नर खरगोशों पर किया गया। खरगोशों को 6–6 के सूमहों में विभक्त किया गया, पहले समूह के खरगोशों को मानक भोजन दिया गया। दूसरे के खरगोशों को मानक भोजन के साथ 120 ग्राम पका पपीता (कैरीका पपाया) दिया गया। दूसरे समूह के खरगोशों में रक्त वसा, कोलेस्ट्रोल स्तर बढ़ाने के लिए मानक भोजन के साथ गरी का तेल और कोलेस्ट्रोल दिया गया। चौथे समूह को इस भोजन के साथ ही पपीता भी दिया गया। सभी खरगोशों को प्रयोगशाला की परिस्थिति में अभ्यस्त होने के पश्चात इनको विभिन्न प्रकार के भोजन दिए गए फिर छः सप्ताह इनके कान से रक्त लेकर इनमें रक्त वसा अवययों, कोलेस्ट्रोल तथा हृदय धमनी रोगों के मापदण्ड एस जी पी टी (ए एस टी) और सी के–एम बी एन्जाइम की माप की गई और इनके ई सी जी को रिकार्ड किया गया। फिर इन खरगोशों में हृदय धमनी रोगों की परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए त्वचा के नीचे आइसो प्रोटीनॉल हाइडोक्लोराइड (आई.पी.टी.,5 मि.ग्रा. भार) के इन्जेक्शन लगाए गए। इसके पश्चात सभी खरगोशों में 6 और 24 घंटे पश्चात, एन्जाइम स्तर और ई.सी.जी. परीक्षण दोहराया गया। अध्ययन के परिणाम से स्पष्ट रूप से ज्ञान हुआ कि पपीता सेवन करने वाले खरगोशों के रक्त वसा, कोलेस्ट्रोल स्तर अपेक्षाकृत कम बढ़ता है। साथ ही आई. पी. टी. के कारण होने वाले समूह के खरगोशों में एन्जाइम के स्तर में कम वृद्धि होती है साथ ही ई.सी.जी. द्वारा यह भी सिद्ध हुआ कि पपीता सेवन करने वाले समूह के खरगोशों में हृदय की मांसपेशियों में अपेक्षाकृत कम क्षति होती है। अतः नियमित रूप से पपीता सेवन करने से हृदय धमनी रोगों से बचाव हो सकता है।

प्रस्तावना

पपीता (कैरिका पपाया) मूलतः दक्षिणी अमेरिका का फल है, पर देश में इसका उत्पादन सभी क्षेत्रों में आसानी से होता है। आयुर्वेद और पुरानी मान्यताओं के अनुसार यह हृदय को शक्तिशाली बनाता है, और इसमें अनेक अन्य औषधीय गुण होते है। प्राप्त विवरणों के अनसार पपीता की रसायनिक संरचना और इसके अवयव कारपीन के गुणों का विस्तृत अध्ययन हो चुका है पर इसके हृदय धमनी रोगों के बचाव और रक्त वसा कोलेस्ट्रोल स्तर पर प्रभाव की विशेष जानकारी अभी तक नहीं है।

हृदय धमनी रोग विश्व में मौत का सबसे मुख्य कारण है देश में इन रोगों का प्रकोप बढ़ रहा है। अब र्निविवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि दीर्घकालीन समय तक रक्त कोलेस्ट्रोल और ट्राईग्लिसराइड बसा स्तर बढ़ने से समय पूर्व और गम्भीर रूप से धमनियों में एथरियोस्कोकोरोसिस (काष्ठियकरण) हो सकता है, जोकि हृदय धमनी रोगों (एन्जाइना, हृदय घात) का मूल कारण है। यदि रक्त कोलेस्ट्राल और वसा के स्तर को कम कर दिया जाता है तो इन रोगों से बचाव हो सकता है। पपीते के नियमित सेवन से शरीर की जैवरासयानिक प्रक्रियाओं पर प्रभाव के अध्ययनों की कमी है। अध्ययनों से पता चला है कि सामान्यता और कार्बन टेट्राक्लोराइड जो कि यकृत को क्षतिग्रस्त करता है के इन्जेक्शन देने के पश्चात खरगोशों को यदि साथ में पपीते का सेवन भी करते है तो रक्त कोलेस्ट्राल और ट्राईग्लिसराइड वसा स्तर नियन्त्रित बना रहता है।

वर्तमान अध्ययन में पपीता सेवन करने के प्रयोगात्मक उच्च वसा स्तर उत्पन्न खरगोशों में पपीते के प्रभाव और इसके हृदय धमनी रोगों से बचाव में भूमिका का पता लगाने का प्रयास किया गया है।

सामग्री एंव विधि

चौबीस नर खरगोशों जिनका वजन 1.2 से 1.5 कि ग्रा का चयन कर अलग अलग पिंजड़ों में नम्बर डाल कर रखा गया। सभी खरगोशों को 120 ग्राम प्रतिदिन खरगोशों का मानक आहार (गोल्ड मोहर इण्डिसा लि) और पर्याप्त मात्रा में पानी दिया गया। तीस दिन प्रयोगशाला की परिस्थितियों में अभ्यस्त होने के पश्चात इनको चार समूहों में विभाजित किया गया।

- प्रथम समूह के खरगोशों को 120 ग्राम प्रतिदिन मानक आहार दिया गया।
- दूसरे समूह के खरगोशों को 120 मानक आहार के साथ 30 ग्राम पपीते को रोजाना दिया गया।
- तीसरे समूह के खरगोशों को 100 ग्राम मानक आहार के साथ ही 20 ग्राम गरी का तेल और 200 मि ग्रा कोलेस्ट्रोल दिया गया जिससे इनमें उच्चरक्त कोलेस्ट्रोल, वसा स्तर उत्पन्न हो जायें।
- चौथे समूह के खरगोशों को उपरोक्त भोजन के साथ 30 ग्राम पपीता भी दिया गया।

उपरोक्त भोजन चार सप्ताह देने के पश्चात इनकी कान की शिरा से रक्त निकाल कर रक्त कोलेस्ट्रोल, ट्राइग्लिसराइड और एच डी एल – कोलेस्ट्रोल स्तर की जांच की गई फिर इसके दो सप्ताह पश्चात पुनः रक्त में एस जी पी टी और सी के – एम बी के स्तर की माप की गई और इनमें ई सी जी की रिकार्डिंग (बी पी एच इण्डिया, माडल नं 508) की विशेष रूप से निर्मित इलैक्ट्रोड द्वारा जांच की गई।

इस अध्ययनों के पश्चात इन खरगोशों को आइसोप्रोटीननॉल ट्राइक्लोराइड (आई पी टी, सिग्मा यू एस ए) के इन्जेक्शन, 5 मि ग्रा त्वचा के नीचे दिए गए जिससे इनके एन्जाइना या हृदय घात की दशा उत्पन्न हो जाए। फिर इन खरगोशों में रक्त की जाचें और और ई सी जी परीक्षण छह और चौबीस घंटे पश्चात किया गया। प्राप्त परिणामों का विश्लेषण किया गया जिससे निष्कर्ष निकल सके।

परिणाम

उपरोक्त प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ कि खरगोशों को गरी का तेल और कोलस्ट्रोल खिलाने से इनमें रक्त कोलेस्ट्रोल, ट्राइग्लिसराइड स्तर में कई गुना बढ़ोतरी हो जाती है जबकि एच डी एल–सी के स्तर में कमी हो जाती है। यह सम्बन्ध सामान्य स्तर में खरगोशों में उच्च वसा स्तर खरगोशों में ज्यादा पाया गया। सी के–एम बी स्तर में तो दोनों ही तरह के समूह के खरगोशों के महत्वपूर्ण अन्तर नहीं मिला पर पपीता सेवन करने वाले खरगोशों में एस एस टी के स्तर में महत्वपूर्ण कमी देखी गई। आई पी टी (वीटा एडनरजिक ब्लाकर) के कारण हृदय की मांसपेशियों में एन्जाइम और कभी–कभी हार्ट अटैक उत्पन्न हो सकता हैं। यह इन्जेक्शन देने से सभी खरगोशों में ए ए टी और सी के– एम बी के स्तर में बढ़ोतरी पाई गई पर इनके स्तर जिनसे हृदय की मास पेशियों में क्षति ग्रस्त होने का संकेत प्राप्त होता है के स्तरों में पपीता सेवन कर रहें दोनों ही समूह के खरगोशों में अपेक्षाकृत कम बढ़ोतरी पायी गयी।

आई पी टी देने के पश्चात ई सी जी के परिणामों के अनुसार भी 6 घण्टे पश्चात सभी खरगोशों की हृदय गति में बढ़ोतरी पपीता सेवन कर रहे खरगोशों में अपेक्षाकृत कम हुई। इसी प्रकार पपीता सेवन करने वाले सामान्य खरगोशों में 50 प्रतिशत और उच्च वसा स्तर समूह के 83.33 प्रतिशत खरगोशों की हृदय गति अनियमित पायी गयी जबकि उच्च वसा स्तर समूह के खरगोशों में 33.34 प्रतिशत में पायी गयी। इसी प्रकार ई सी जी के अन्य परिवर्तनों से भी सिद्ध हुआ कि पपीता सेवन करने से सामान्य रक्त वसा और उच्च वसा दोनों ही समूहों के खरगोशों को आई पी टी इन्जेक्शन देने के पश्चात पपीता सेवन नहीं कर रहे उच्च वसा स्तर समूह के सभी खरगोशों और दो सामान्य वसा स्तर

समूह के खरगोशों की हृदय गति रूकने के कारण मृत्यु हो गयी जबकि पपीता सेवन करने वाले दोनों समूह के खरगोश इस परिस्थितियों में भी जीवित रहे।

व्याख्या

पिछले कुछ दशकों से अनेक शोधकर्ताओं ने अनेक फलों, सब्जियों, मसालों एवं औषधीय पौधों जैसे कि गुगुल 13, लहसुन 14, प्याज 15, करेला 16, इत्यादि के रक्त कोलेस्ट्रोल कम करने के प्रभाव का सिद्ध किया है। पूर्व अध्ययनों के अनुसार हमें पता लगा कि सामान्य खरगोशों द्वारा नियमित रूप से पपीते के सेवन करने से शरीर का वजन बढ़ता है और रक्त वसा (ट्राईग्लिसराइड, में कोलेस्ट्राल स्तर घटाने और एच डी एल बढ़ाने की क्षमता साथ ही पपीते के सेवन से रक्त मे यूरीया एसिड के स्तर में कमी हो जाती है।

वर्तमान अध्ययनों से पुनः इस तथ्य की पुष्टि हुई कि पपीता सेवन करने से रक्त कोलेस्ट्राल और ट्राईग्लिसराइड वसा के स्तर में कमी होती है साथ ही यदि उच्च वसा स्तर है तो भी पपीता इनके स्तर में कमी ला सकता है। उच्च बसा कोलेस्ट्रोल स्तर हृदय धमनी रोगों की सम्भावना के लिए महत्वपूर्ण कारण है, और स्वस्थ रहने के लिए रक्त वसा कालेस्ट्रोल स्तर घटना सामान्य रखना, यदि बढ़ा है तो कम करना तथा एच डी एल स्तर बढ़ना आदर्श स्थिति होती है जिससे हृदय धमनी रोगों के मूल कारण हृदय की कारोनरी धमनियों के काष्टीकरण की संभावना कम हो जाती है या मंद गति से होती है फिर एन्जाइना और हार्टअटैक से बचाव होता है।

पपीता सेवन करने वाले सामान्य और उच्च स्तर रक्त ट्राईग्सिलसराइड और कोलेस्ट्रोल वाले दोनों की समूह के खरगोशों के स्तर में कमी और एच डी एल स्तर में बढ़ोतरी हुई साथ ही इनमें ई सी जी को हृदय की क्षति ग्रस्त करने वाले बदलाव में भी अपेक्षाकृत कम बदलाव और क्षतिग्रस्त को दर्शित (सी के एस बी) करने वाले एन्जाइम में भी कम बढ़ोतरी हुई इन सभी परिणामों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पपीता सेवन हृदय धमनी रोगों से सुरक्षा प्रदान कर सकता है।

पपीते में अनेक पोषक तत्व और अपोषक रसायन मौजूद होते है। एक रसायन कारपीन जिनको हृदय के लिए पुष्टिदायक माना जाता है, भी पपीते में मौजूद होता हैं रसायनिक संरचना से पता चला है कि पपीते में अनेक अन्य लाभदायक तत्व वीटा–कैरोटिन (विटामिन ए का पूर्वरूप) विटामिन सी, विटामिन ई, 19,20,21 भी मौजूद होते हैं। पेक्टिन के रक्त कोलेस्ट्राल कम करने के गुण की जानकारी पूर्व भी सिद्ध हो चुकी है[22]। क्योंकि इसके सेवन से कोलेस्ट्रोल का अवशोषण आंतो से कम मात्रा में होता है और भोजन पदार्थों में मौजूद कोलेस्ट्राल ज्यादा मात्रा में मल द्वारा निकल जाता है। यह मान्यता है कि पेक्टिन पित्त लवणों से जुड़कर ना सिर्फ कोलेस्ट्रोल के पाचन और अवशेषण को कम करता है, अन्य वसा अवययों के पाचन अवशोषाण में कभी लाता है। साथ की यकृत में वसा के निर्माण में भी कमी करता है, साथ ही पपीते में मौजूद स्ट्रॉराल भी कोलेस्ट्रोल के पाचन के लिए आवश्यक कोलेस्ट्रायइस्ट्रेज एन्जाइम से प्रतिस्पर्धा कर कोलेस्ट्रोल के स्तर को कम कर देते हैं।

विटामिन ई, सी, बीटा कैरोटिन एवं अन्य तत्व एंटीऑक्सीडेंट होते है, जोकि कोशिकाओं की झिल्ली को क्षतिग्रस्त होने और शरीर के लिए हानिकारक फ्री–रेडिकल के कारण होने वाले ऊतकों को क्षतिग्रस्त होने तथा रक्त रूकने के पश्चात पुनः शुरू होने से होने वाली क्षति से बचाव करता है।

वर्तमान अध्ययन द्वारा स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया है कि पके पपीते के सेवन से ना सिर्फ रक्त वसा, कोलेस्ट्राल स्तर में कमी आती है बल्कि इसके सेवन से हृदय धमनी रोगों से बचाव हो सकता है।

इस दिशा में अन्य अध्ययनों/शोधों की आवश्यकता है जिनसे पपीता में मौजूद इस प्रभाव के लिए जिम्मेदार तत्व का पता करके और इसकी कार्यविधि का भी ज्ञान हो सके। पर हमारे मत में प्रकृति ने पपीते और अन्य प्राकृतिक औषधीय पौधों को इस रूप में बनाया कि इसमें शरीर पर अनेक स्वास्थ्यवर्धक प्रभाव हों। अतः नियमित रूप से पपीता का सेवन करें जिससे रक्त वसा कोलेस्ट्रोल स्तर पर नियन्त्रण हो सके और हृदय धमनी रोग (एन्जाइना, हार्टअटैक) से भी बचाव हो सकें।

तालिका 1. विभिन्न समूहों के खरगोशों के रक्त कोलेस्ट्राक, वसा स्तर।

जांचे	नियन्त्रित समूह (मानक आहार)	मानक आहार के साथ पपीते का सेवन करने वाला समूह	उच्च रक्त वसा स्तर समूह	उच्च रक्त वसा स्तर के साथ पपीता सेवन करने वाला समूह
रक्त कोलेस्ट्राल स्तर (औसत) मिग्रा ± एस.डी.	317.10 ± 0.78	229.96 ± 8.98	1144.46 ± 13.83	1156.50 ± 30.8
रक्त ट्राईग्लिसराइड मि०ग्रा० ± एस.डी०	166.74 ± 4.9	226.28 ± 9.85	232148 ± 26.1	242.86 ± 2.28
औसत रक्त एच०डी०एल० स्तर मि०ग्रा० ± एस०डी०	35.03 ± 3.53	44.07 ± 6.16	33.57 ± 1.39	31.99 ± 1.27

तालिका 2. रक्त ए एस टी और सी के एस वी एन्जाइमा का स्तर।

जांचे	समय (घंटों में)	प्रथम समूह	द्वितीय समूह	तृतीय समूह	चतुर्थ समूह
औसत ए०एस० टी०	आई०पी०टी० देने से पूर्व	14.16 ± .23	16.60 ± .14	27.66 ± 2.16	17.00 ± 1.26
	आई०पी०टी० इन्जेक्शन देने के 6 घण्टे पश्चात	49.83 ± 6.4	30.23 ± 8.28	124.75 ± 45.78	55.56 ± 7.13
	आई० पी० टी० केन्द्रानुसार देने के 24 घण्टे के पश्चात	85.50 ± 9.97	16.0 ± 13.93	सभी खरगोशों की मौत	74.16 ± 9.97
औसत	आर० पी० टी० देने से पूर्व	13.95 ± 1.77	13.65 ± 1.38	19.30 ± 1.6	18.50 ± 1.46
	आर० पी० टी० केन्द्रानुसार देने के 6 घण्टे पश्चात	1262 ± 43.99	984.83 ± 428.06	1717.50 ± 53.04	1473.33 ± 41.79
	आर० टी० पी०केन्द्रानुसार देने के 24 घंटे पश्चात	1915.03 ± 39.93	1473.33 ± 76.33	सभी जानवरों की मृत्यु	1841.16 ± 43.30

तालिका 3. ई सी जी में बदलाव।

मापदण्ड	समय/घण्टे	समूह 1	समूह-2	समूह-3	समूह-4
औसत हृदय गति ± एस0डी0	आई0पी0टी0 से पूर्व	257 ± 4.65	272.66 ± 19.59	205.18 ± 8.93	206.16 ± 7.09
	आई0पी0टी0 देने के 6 घंटे पश्चात	382.83 ±4.94	251.66 ± 24.96	381.16 ± 10.79	284.8 ± 7.19
	आई0पी0टी0 देने के 24 घंटे पश्चात	246.66 ± 15-8	315.43 ± 28.19	सभी खरगोश मर गए	320.58 ± 16.5
हृदय की रिदम	आई0पी0टी0 के पूर्व	नियमित	नियमित	नियमित	नियमित
	आई0पी0टी0 देने के 6 घंटे पश्चात	अनियमित	नियमित	अनियमित	नियमित
	आई0पी0टी0 देने के 24 घंटे पश्चात	दो खरगोश मर गए	नियमित	सभी खरगोश मर गए	33.34 प्रतिशत अनियमित
क्यू आर एस में बदलाव	आई0पी0टी0 देने के पूर्व	–	–	50 प्रतिशत में असामान्य	16.67 प्रतिशत में असामान्य
	आई0पी0टी0 देने के 6 घंटे पश्चात	66.34 प्रतिशत में असामान्य	16.67 प्रतिशत में असामान्य	100 प्रतिशत में असामान्य	33.34 प्रतिशत में असामान्य
	आई0पी0टी0 देने के 24 घंटे पश्चात	2 खरगोश मरे	100 प्रतिशत में असामान्य	सभी खरगोश मर गए	33.34 प्रतिशत असामान्य
एस0टी0 सेगमेंट में बदलाव	आई0पी0टी0 देने के पूर्व	सामान्य	सामान्य	83.33 प्रतिशत में नीचे	सामान्य
	आई0पी0टी0 देने के 6 घंटे पश्चात	100 प्रतिशत में नीचे	50 प्रतिशत में नीचे	50 प्रतिशत में नीचे और 50 प्रतिशत में ऊपर	100 प्रतिशत में नीचे
	आई0पी0टी0 देने के 24 घंटे पश्चात	2 खरगोश मरे	सामान्य	सभी खरगोश मरे	50 प्रतिशत में ऊपर और 50 प्रतिशत में नीचे

सदर्भ

1. चोपड़ा आर एन चोपड़ा, आई सी, हाण्डा के एल एवं कपूर एल डी इन्डियन ड्रगस ऑफ इण्डिया–11 (1958), 309।
2. कीर्तिकर के आर एवं बसु बी डी, इन्डियन मेडिसिनल पलान्ट 11 (1962), 1096।
3. वैल्थ ऑफ इन्डिया भाग दो, सी, पपाया (1972), 221।
4. मारफो, ई के, ओका, ओ एल, एवं एफोलाबी, ओ ए फूड केमेस्ट्री 22 (1987), 259।
5. चन्द्राशेखरन एल, विद्यारतन, सी एस एवं सिरसी, एम जे सांइस, इन्डस्ट्रियल रिचर्स 20 (1984), 213।
6. ईमरूआ, ए सी जे न्यूट्रीशन प्रोडक्शन 45 (1982), 123।
7. वेरव्रिक डी एन , क्रिटिन एस एवं क्रिकर ई पिडयाट्रिक्स 68 (1981), 721।

8. वैटेमलर एन, वरम्सन डी एम एवं लिन्डवर्ग एच एन इन पैथोजेनेसिस आफ एथ्रीयोस्कलोरोसिस आर डब्लू बिल्सर बाटलमोर 1972, पेज 3।
9. कुमार अजय, पांण्डे एच एन शर्मा आर एम, जोशी एल डी एवं पंत एम सी इ ज क्लीनिकल बायोकेम 1989, 28।
10. जलाटिकिस ए, जैक बी, किलनक मेडिसिन, 41 (1953) 486।
11. फोस्टर एल बी एवं डूक आर टी केमेस्ट्री, 19, (1973), 338।
12. वरस्ट्रिन एम, स्लोनिक एच आर एवं मारफेन आर जे लिपिड रिसर्च 2, (1970) 538।
13. लाउ बी एच लाम एफ एवं नान चैग आर न्यूट्रिशयन रिसर्च 7 (1987) 139।
14. सैनानी जी एस देसाई डी बी गोरे एन एच, नाटू एस एम, इन्डियन ज मैडि रिसर्च 69 (1979), 776।
15. उपाध्याय जी एल कुमार अजय, पंत एम सी ज डायवेटिक एसो इ 25 (1985), 12।
16. लाल जे, चन्द्रा एस, साहू एम इन्डियन डूगस 19 (1982) 406।
17. हसन एफ एम हैंगी एम वाई एवं गलाल ए एम एस इजिप्शियन जर्नल ऑफ फार्मा साइंस 21 (1982), 199।
18. दुबे, आई सी एवं पदमनाभन एन ई, ज फिजि फार्मा 18 (1974), 198।

संकर सांड़ों के वीर्य की गुणवत्ता पर जिंक अनुपूरण का प्रभाव

निशान्त कुमार, शिव प्रसाद, तापस कुमार पटबंधा, तथा आर एस गौतम
राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन 2 साल की उम्र के 16 संकर सांडों में जिंक अनुपूरण का वीर्य की गुणवत्ता पर प्रभाव जानने के लिए किया गया। 16 संकर सांडों को चार समूह में विभाजित किया गया तथा हर समूह में चार सांड रखे गए। पहला समूह नियंत्रित समूह था जिसमें बिना किसी जिंक अनुपूरण के सामान्य आहार दिया गया, दूसरे एवं तीसरे समूह में क्रमशः 35 एवं 70 पी पी एम जिंक सल्फेट (अजैविक जिंक) दिया गया तथा चौथे समूह में 35 पी पी एम जिंक प्रोपिओनेट (जैविक जीन) दिया गया। अध्ययन की शुरुआत में जिंक अनुपूरण से पहले चारों समूहों से वीर्य एकत्रित कर उसकी गुणवत्ता का आकलन किया गया। उसके बाद चारों समूहों को 9 महीने तक आहार के माध्यम से जिंक अनुपूरण किया गया। अध्ययन के आखिरी तीन महीनों में प्रत्येक सांड के 6 वीर्य स्खलन किया गया तथा वीर्य की गुणवत्ता पर जिंक अनुपूरण के प्रभाव को जानने के लिए वीर्य के विभिन्न मापदंडों का आकलन किया गया। हमारे अध्ययन में अजैविक एवं जैविक जिंक अनुपूरण से संकर सांडों के वीर्य की गुणवत्ता पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया। परिणाम ने ये दर्शाया कि जिंक ने दोनों जैविक एवं अजैविक रूप में वीर्य की गुणवत्ता को बढाया। सभी समूहों में जैविक जिंक का अधिक लाभकारी असर देखा गया।

प्रस्तावना

जिंक (जस्ता) एक बेहद आवश्यक सूक्ष्म खनिज लवण है जो 200 से अधिक किण्वक (Enzyme) की गतिविधि के लिए जरूरी है। जिंक की डी एन ए एवं आर एन ए के संगठन, प्रोटीन संश्लेषण और कोशिका विभाजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है (स्मिथ एवं एकिन्बामिजो, 2000)। नर पशु प्रजनन में इस खनिज लवण की विशेष भूमिका है। जिंक नर पशुओं के वृषण (Testis), अधिवृषण (Epididymis) एवं प्रोस्टेट ग्रंथि (Prostate gland) के कार्यों को भी प्रभावित करता है (एबिस्च एवं सहयोगी, 2003)।

विभिन्न शोधकर्ताओं ने ये पाया है कि जिंक शुक्राणुजनन की प्रक्रिया को उत्तेजित करता है, शुक्राणुओं की गतिशीलता को नियंत्रित करता है तथा शुक्राणु झिल्ली को स्थिरता प्रदान करता है (केण्डल एवं सहयोगी, 2000, बान्ग एवं सहयोगी, 2002 तथा रोबलेस्की एवं सहयोगी, 2003)। जिंक की कमी से वृषणों के वजन में कमी आती है, वो शिथिल हो जाते हैं तथा उनकी शुक्राणुजनन क्षमता में कमी आ जाती है (मार्टिन एवं सहयोगी, 1994)।

गो पशुओं के लिए जिंक का सामान्य अनुशंसित स्तर 35–40 पी पी एम है जो कि पशु के शरीर को स्वस्थ एवं उसकी प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखता है। जिंक के जैविक/कार्बनिक रूप को अजैविक/अकार्बनिक रूप से अधिक फायदेमंद पाया गया है।

आज तक संकर सांडों में वीर्य की गुणवत्ता तथा जिंक अनुपूरण से सम्बन्धित बेहद कम काम हुए थे। इसके अलावा जैविक/कार्बनिक जिंक अनुपूरण के वीर्य की गुणवत्ता पर प्रभाव का किसी ने अध्ययन नहीं किया था। इसलिए वर्तमान शोध अजैविक जिंक (जिंक सल्फेट) एवं जैविक जिंक (जिंक प्रोपिओनेट) अनुपूरण का संकर सांडों के वीर्य की गुणवत्ता पर प्रभाव जानने के उद्देश्य से किया गया।

सामग्री एवं विधि

इस अध्ययन में 2 साल की उम्र के 16 युवा एवं स्वस्थ संकर सांडों को शामिल किया गया। उनका औसत शारीरिक वजन 316±0.77 किलो था। उन्हें चार समूह में विभाजित किया गया तथा प्रत्येक समूह में चार सांडों को रखा गया। सभी पशुओं को सामान्य आहार के रूप में आवश्यकता अनुसार दाना मिश्रण, भूसा एवं हरा चारा खिलाया गया।

प्रस्तुत शोध की शुरुआत में जिंक अनुपूरण से पहले सांडों के सभी समूह से वीर्य एकत्र किया गया तथा उसकी गुणवत्ता का आकलन किया गया। वीर्य एकत्रित करने के लिए कृत्रिम योनि तथा एक डमी पशु का प्रयोग किया गया।

इसके बाद सारे पशुओं को 9 महीने तक खिलाया गया तथा तीन समूह के सांडों को आहार के माध्यम से जिंक अनुपूरण किया गया। पहले समूह के पशुओं को बिना किसी जिंक अनुपूरण के सामान्य आहार दिया गया। दूसरे एवं तीसरे समूह के सांडों को क्रमशः 35 एवं 70 पी पी एम जिंक सल्फेट (अजैविक जिंक) तथा चौथे समूह के पशुओं को 35 पी पी एम जिंक प्रोपिओनेट (जैविक जिंक) दिया गया। आहार के निर्माण एवं जिंक की गणना के लिए सारे साडों के शरीर का वजन 15 दिनों के अंतराल पर लिया जाता रहा। अध्ययन के आखिरी तीन महीनों में प्रत्येक समूह के प्रत्येक सांड के 6 वीर्य स्खलन को एकत्रित किया गया तथा वीर्य की गुणवत्ता पर जिंक अनुपूरण के असर को जानने के लिए वीर्य के विभिन्न मापदंडों का आकलन किया गया।

वीर्य के जिन मापदंडों का आकलन अध्ययन की शुरुआत में तथा जिंक खिलाने के बाद किया गया, वे निम्नलिखित थे –

1. वीर्य की मात्रा/आयतन (Semen Volume) – वीर्य की मात्रा ग्लास ट्यूब में देखकर रिकार्ड की गयी।
2. वीर्य पी एच – वीर्य के पी एच को पी एच मीटर द्वारा नापा गया।
3. वीर्य में शुक्राणुओं की सांद्रता (Sperm Concentration) – शुक्राणुओं की सांद्रता का आकलन हेमोसाइटोमीटर विधि द्वारा किया गया।
4. शुक्राणुओं की सामुहिक गतिशीलता (Mass motility of the Sperm) – जब ताजे स्खलित वीर्य को माइक्रोस्कोप द्वारा देखा जाता है तो उसमे अत्यन्त तीव्र गति से भंवर उठते हुए तथा विलुप्त होते हुए दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं भंवरों की सक्रियता के आधार पर उन्हें 0–5 स्केल में विभाजित किया गया। 3–5 श्रेणी की मास गतिशीलता वाले वीर्य को बेहतर गुणवत्ता वाला माना जाता है।
5. शुक्राणुओं की व्यक्तिक गतिशीलता (Individual motility of Sperm) – इसके लिए वीर्य की एक बूंद को ग्लास स्लाइट पर डालकर उसे कवर स्लिप से ढक दिया गया तथा माइक्रोस्कोप में देखकर सारे प्रगतिशील शुक्राणुओं की गणना की गयी। अच्छे गुणवत्ता वाले वीर्य में शुक्राणुओं की व्यक्तिक गतिशीलता 70 प्रतिशत से ज्यादा होती है।
6. जीवित शुक्राणु प्रतिशत (Live Sperm Percentage) – वीर्य में उपस्थित जीवित शुक्राणुओं की संख्या जानने के लिए इयोसिन निग्रोसिन अभिरन्जन विधि का उपयोग किया गया। अच्छी गुणवत्ता वाले वीर्य में 70 प्रतिशत से अधिक जीवित शुक्राणु होते हैं।
7. असामान्य शुक्राणु प्रतिशत (Abnormal Sperm Percentage) – वीर्य में उपस्थित असामान्य शुक्राणुओं की गणना के लिए रोज बंगाल अभिरन्जन विधि का उपयोग किया गया। अच्छी गुणवत्ता वाले वीर्य में असामान्य शुक्राणु 20 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए।

8. अक्षत एकरोसोम प्रतिशत (Intact Acrosome Percentage) –वीर्य में उपस्थित अक्षत एकरोसोम की गणना के लिए जिम्सा अभिरन्जन विधि का उपयोग किया गया। संतोषजनक वीर्य की गुणवत्ता के लिए अक्षत एकरोसोम प्रतिशत 70 प्रतिशत से ज्यादा होने चाहिए।

सांख्यिकीय विश्लेषण

अध्ययन की अवधि के दौरान एकत्र किए हुए आंकड़ों का स्नेडेकोर एवं कोचरान द्वारा वर्णित विधि द्वारा विश्लेषण किया गया।

परिणाम एवं विवेचना

हमारे अध्ययन में अजैविक एवं जैविक जिंक अनुपूरण से संकर सांडों के वीर्य की गुणवत्ता पर प्रभाव देखा गया। परिणाम ने ये दर्शाया कि जिंक ने दोनों जैविक एवं अजैविक रूप में वीर्य की गुणवत्ता को बढाया। सभी समूहों में जैविक जिंक का अधिक लाभकारी असर देखा गया। संभवतः इसकी वजह ये है कि जैविक जिंक का अवशोषण एवं उदग्रहण अधिक होता है तथा पशु के शरीर में जैविक जिंक ज्यादा मात्रा में उपलब्ध होता है।

अध्ययन की शुरुआत में संकर सांडों के वीर्य के मापदंड

प्रस्तुत अध्ययन की शुरुआत में जिंक अनुपूरण से पहले 16 संकर सांडों के वीर्य के मापदंडों का औसत मान तालिका 1 में दिया गया है। परिणाम से यह ज्ञात हुआ कि किसी भी समूह में इन मानकों के बीच कोई महत्त्वपूर्ण अंतर नही था। सभी सांडों के वीर्य सामान्य गुणवत्ता वाले थे।

तालिका 1. अध्ययन की शुरुआत में संकर सांडों के वीर्य के मापदंडों का औसत मान।

क्रमांक	वीर्य के मापदंड	औसत मान (± मानक त्रुटि)
1.	वीर्य की मात्रा (मिली.)	2.84±0.13
2.	वीर्य में शुक्राणुओं की सान्द्रता(मिलियन प्रति मि.ली.)	785±62.1
3.	वीर्य पी एच	6.64±0.04
4.	शुक्राणुओं की सामूहिक गतिशीलता (0–5)	3.15±0.96
5.	शुक्राणुओं की व्यक्तिक गतिशीलता(%)	75.11±1.35
6.	जीवित शुक्राणु (%)	77.05±1.24
7.	असामान्य शुक्राणु (%)	12.0±1.10
8.	अक्षत एक्रोसोम (%)	78.69±1.35

संकर सांडों में जिंक अनुपूरण के पश्चात वीर्य मापदंडों का औसत मान

16 संकर सांडों को जिंक अनुपूरण के बाद के वीर्य मापदंडों का औसत मान तालिका 2 में दिया गया है। इस अध्ययन में यह पाया गया कि जिंक अनुपूरण का सांडों की वीर्य गुणवत्ता बढाने में सकारात्मक प्रभाव है। परिणाम में ये दर्शाया गया कि जिंक खिलाने से सांडों के विभिन्न समूहों के वीर्य की गुणवत्ता में सुधार हुआ।

वीर्य की मात्रा :जिंक पूरक समूहों में औसत वीर्य की मात्रा नियंत्रित समूह के मुकाबले महत्त्वपूर्ण ($P<0.05$) रूप से ज्यादा पाई गई। हालांकि तीसरे एवं चौथे समूह के बीच कोई महत्त्वपूर्ण फर्क नहीं पाया गया। वीर्य की मात्रा मुख्य रूप से वृषण, अधिवृषण एवं प्रोस्टेट ग्रंथी के स्राव से बनती है। यह सूचित है कि जिंक वृषण एवं प्रोस्टेट ग्रंथी को उत्तेजित करता है। संभवतः जिंक के इस गुण की वजह से सारे जिंक पूरक समूहों में वीर्य की मात्रा महत्त्वपूर्ण ($P<0.05$) रूप से बढ़ी हुई पाई गई।

तालिका 2. संकर सांडों में जिंक अनुपूरण के पश्चात् वीर्य मापदंडों का औसत मान।

क्र. वीर्य के मापदंड	समूह–I	समूह– II	समूह– III	समूह–IV
1. वीर्य की मात्रा (मि.ली.) *	2.37+0.04[a]	4.70+0.04[b]	5.86+0.11[c]	6.38+0.18 [d]
2. वीर्य में शुक्राणुओं की मादकता (मिलियन/मि.ली.)**	760.83+1.14	1012.08+8.7[b]	1409.58 17[c]	1472.09+ 17.6 [c]
3. वीर्य पी एच**	6.75+0.01[a]	6.73+0.01	6.63+0.01[c]	6.61+0.01 [b]
4. शुक्राणुओं की सामूहिक गतिशीलता (0–5)**	2.71+0.11	3.37+0.10[b]	3.96+0.04[c]	4.33+0.09 [d]
5. शुक्राणुओं की वैयक्तिक गतिशीलता *	72.58+0.4[a]	77.25+0.8[b]	83.37+ 0.7[c]	88.04+0.6 [c]
6. जीवित शुक्राणु *	73.46+0.6[a]	80.65+0.7[b]	86.62+ 0.3[c]	87.31+0.7 [c]
7. असामान्य शुक्राणु	13.17+0.3	12.29+0.3	11.94+0.43	12.53+ 0.2
8. अक्षत एक्रोसोम**	76.06+0.4[a]	81.17+0.6[b]	86.50+ 0.5[c]	87.04+ 0.7[c]

*P < 0.05

**P < 0.01

a, b, c, d एक पंक्ति में औसत मान के साथ जो विभिन्न सुपरस्क्रिप्ट हैं, उनमें महत्त्वपूर्ण फर्क है।

वीर्य में शुक्राणुओं की सांद्रता : परिणाम से यह संकेत मिलता है कि जिंक अनुपूरण का वीर्य में शुक्राणुओं की सांद्रता पर सकारात्मक प्रभाव है। जिंक पूरक समूहों में शुक्राणुओं की सांद्रता नियंत्रित समूह के मुकाबले बेहद ज्यादा पाई गई। हालांकि समूह 3 एवं 4 के बीच सांख्यकीय रूप से महत्त्वपूर्ण फर्क नहीं था। जिंक अनुपूरण का वीर्य में शुक्राणुओं की सांद्रता पर अनुकूल प्रभाव के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

- शुक्राणु जनन की प्रक्रिया में व्यापक कोशिका विभाजन की आवश्यकता होती है तथा कोशिका विभाजन में जिंक की बेहद महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
- डी एन ए एवं आर एन ए के संगठन एवं प्रोटीन संश्लेषण में जिंक की विशेष भूमिका है।
- शुक्राणु जनन की प्रक्रिया में शामिल सबसे महत्त्वपूर्ण किण्वक (enzymes) जिंक युक्त किण्वक होते हैं। उदाहरणार्थ सॉरबीटल डी हाइड्रोजिनेट, लैक्टेट डी हाइड्रोजिनेज इत्यादि।
- इनके साथ–साथ जिंक वृषण को उत्तेजित कर सक्रिय बनाता है जो शुक्राणु जनन में सहायक है।

वीर्य पी एच–परिणाम से पता चला कि समूह 3 एवं 4 के सांडों के वीर्य का पी एच समूह 2 एवं 1 के सांडों के मुकाबले महत्त्वपूर्ण ($P<0.01$) रूप से कम था। हालांकि सभी सांडों के वीर्य का पी एच सामान्य सीमा के अन्दर था। इस अध्ययन में जिंक पूरक समूह में वीर्य पी एच के घटने का कारण सम्भवतः प्रोस्टेट ग्रन्थि द्वारा अम्लीय स्राव की वृद्धि थी।

वीर्य में शुक्राणुओं की सामूहिक तथा व्यक्तिक गतिशीलता–परिणाम यह साफ साफ संकेत देते हैं कि जिंक अनुपूरण से वीर्य में शुक्राणुओं की सामूहिक एवं व्यक्तिक दोनों तरह की गतिशीलता में महत्त्वपूर्ण बढोतरी हूई है। हमारे परिणाम पिछले शोधों के परिणाम के साथ सहमति में हैं जो पुरूष (वांग एवं सहयोगी 2002) एवं खरगोश (थारवट 1998) में किये गए थे। जिंक ए टी पी प्रणाली द्वारा ऊर्जा के उपयोग को नियंत्रित करके शुक्राणुओं की गतिशीलता को नियंत्रित करता है। शुक्राणुओं की गतिशीलता में बढोतरी की एक सम्भव वजह यह भी हो सकती है कि जो किण्वक शुक्राणुओं की गतिशीलता में सक्रिय भूमिका निभाते हैं वे जिंक युक्त किण्वक हैं।

जीवित शुक्राणु प्रतिशत–परिणाम से यह पता चलता है कि सर्वाधिक जीवित शुक्राणु प्रतिशत चौथे समूह में रिकार्ड किए गए। नियंत्रित समूह के मुकाबले सारे जिंक पूरक समूहों में यह प्रतिशत महत्त्वपूर्ण ($P<0.01$) रूप से अधिक था। हमारे परिणाम पिछले शोधों के परिणाम के साथ सहमति में हैं जो पुरुष एवं खरगोश में किए गए थे। जिंक शुक्राणु झिल्ली को स्थिरता प्रदान करता है, प्रोटीन एवं किण्वकों के रिसाव को रोकता है, डी एन ए एवं आर एन ए को संगठित करता है तथा इसके एंटीऑक्सिडेन्ट

गुण भी हैं। इन सभी कार्यों की वजह से सम्भवतः जिंक पूरक समूहों में जीवित शुक्राणु प्रतिशत ज्यादा थे।

असामान्य शुक्राणु प्रतिशत–परिणाम यह दर्शाते हैं कि किसी भी समूह में असामान्य शुक्राणु प्रतिशत में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं था। यह प्रतिशत 11– 13 के बीच में रिकार्ड किया गया। जिंक अनुपूरण का वीर्य के इस मापदण्ड पर कोई प्रभाव नहीं देखा गया।

अक्षत एक्रोजोम प्रतिशत–परिणाम यह बताते है कि शुक्राणुओं के अक्षत एक्रोजोम प्रतिशत जिंक पूरक समूहों में अधिक थे। नियंत्रित समूह एवं जिंक पूरक समूहों के बीच महत्त्वपूर्ण ($P<0.01$) अन्तर रिकार्ड किया गया। सम्भवतः यह फर्क जिंक के ऐन्टिऑक्सिडेन्ट गुण तथा शुक्राणुओं की झिल्ली को स्थिरता प्रदान करने की क्षमता की वजह से हो।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संकर सांडों के आहार में जिंक अनुपूरण से वीर्य की गुणवत्ता बढती है। जिंक के जैविक / कार्बनिक रूप के अनुपूरण से ज्यादा लाभकारी परिणाम पाए गए।

संदर्भ

1. एबिस्ट टी एम डब्लू , वैन हीर्डे डब्लू एल , थॉमस सी एम जी , वैण्डर पुट एन , वांग डब्लू आई (2003) steegers Theunissen RPM C677T methylene tetrahydrofolate reductase polymorphism interfere with effect of folic acid and zinc sulphate on sperm concentration. Fertil Steril 2003,80:1190-1194.
2. स्मिथ ओ बी, ऑकिनबामिजो ओ ओ, (2000) (Micronutrients and reproduction in farm animals. Anim Reprod Sci
3. केण्डल एन आर, मैकमुलेन एस, ग्रीन ए , रोडवे आर जी, (2000) Effect of zinc cobalt and selenium soluble glass bolus on trace element status and semen quality of ram lambs. Anim Reprod Sci. 2000,62:277-283.
4. मार्टिन जी बी , वाईअ सी एल , मार्के सी एम, बलेकबेरी एम ए (1994) effect of dietery zinc deficiency on the reproductive system of young male sheep: testicular growth and the secretin of inhibin and testoserone. J Reprod Fertil 1994, 101:87-96.
5. वॉग डब्लू आई मर्कस एच एम , थॉमस सी एम , स्टीगर्स थयूमिसेन आर पी (2002) Effect of follic acid and zinc sulphate on male factor sub fertility a double blind redomised placed controlled tryle Fertile Steril 2002 .77:491-498.
6. थारवट ई ई (1998). जीम नेम of zinc sulphate to improve semen characteristices and fertility of New Zealand rabit buk during hot season. Ann Agric Sc. Cairo 1998 special issue 3: 750-770.

बाण्डग्राफ तकनीक के उपयोग से नियंत्रकों के साथ मोटरवाहन सस्पेंशन प्रणाली का रूपान्तरण एवं अनुकरण

विकास रस्तोगी[1], तामेश्वर नाथ,[2] तथा रवि कुमार ठाकुर[2]

[1][illegible]

[2][illegible]

सारांश

हाल के दिनों में मोटरवाहन निर्माता और शोधकर्ताओं ने सक्रिय नियंत्रण तकनीकों के माध्यम से वाहन में कम्पन के प्रभाव को कम करने की सम्भावनाओं पर काफी ध्यान दिया है। यह रूचि में वृद्धि और वाहन के प्रदर्शन में सुधार के लिए इलैक्ट्रॉनिक नियंत्रित सस्पेंशन की क्षमता में जागरूकता के कारण है। सड़क पर वाहनों की सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली दुर्घटनाओं की रोकथाम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हाल के दिनों में इस क्षेत्र में बढ़ती प्रौद्योगिकी और इलैक्ट्रॉनिक–नियन्त्रण प्रणालियों के साथ तेजी से विकास हुआ है। यहाँ पर सक्रिय सस्पेंशन–नियंत्रण वाहन के प्रतिरूपों की चर्चा की गई है। एक पूरी तरह से सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली की अवधारणा वाहन को सबसे अच्छा प्रदर्शन और नियन्त्रण प्रदान करती है। एक सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली का लक्ष्य सस्पेंशन प्रणाली के पूर्ण बैंड–विथ को नियंत्रित करना होता है। यह भार ले जाने, नियंत्रण और सवारी गुणवत्ता बढ़ाने का तरीका माना जाता है। यहाँ, सक्रिय सस्पेंशन प्रतिक्रिया के साथ निष्क्रिय सस्पेंशन प्रतिक्रिया की तुलना की गई है। प्रणाली की प्रतिक्रिया 'सिम्बोल शक्ति' सॉफ्टवेयर द्वारा प्रेरित होती है। यह अनुसंधान निष्क्रिय, अर्ध–सक्रिय और सक्रिय सस्पेंशन प्रणालियों की व्याख्या करता है। विभिन्न वाहनों के भौतिक और गणितीय प्रतिरूपों का भी उल्लेखित किया गया हैं।

परिचय

वाहन अनुसंघान का मूल उद्देश्य वाहन नियंत्रण, वाहन प्रदर्शन, एवं सवारी गुणवत्ता के क्षेत्र में विकास प्राप्त करना है। यह सस्पेंशन प्रणाली के उपयोग द्वारा प्राप्त किया जा सका है। सस्पेंशन प्रणाली प्रायः दो प्रकार की होती हैः–सक्रिय एवं निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली। हमारे यहाँ प्राय अधिकांश वाहनों में निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली को उपयोग में लाया जाता है, जो कि स्प्रिंग्स और डैम्पर्स से बनी होती है। निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली उपभोक्ता जरूरतों और मांग के अनुरूप प्रदर्शन करने में विफल पाई गई है। सवारी गुणवत्ता, वाहन नियंत्रण, एवं सड़क वाहन गुणवत्ता के क्षेत्र में ऐच्छिक विकास प्राप्त करने के लिए सक्रिय सस्पेंशन प्रणालियों के उपयोग से प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए, सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली (3, 4, 5) निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणालियों (1, 2) के तुलना में बेहतरीन प्रदर्शन कर रही है। सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली के अन्तर्गत वाहन के मूल ढांचे पहियों को प्रेरक (actuators) द्वारा नियंत्रित किया जाता है। प्रायः प्रेरक (actuators) द्रव्यचालित शक्ति द्वारा संचालित होते हैं।

यह अनुसंधान वाहन के पूर्ण/अर्ध/एक–चौथाई प्रतिरूपों के नियंत्रक, जो सक्रिय और निश्क्रिय सस्पेंशन प्रणालियों के लिए है, के उपयोग पर केन्द्रित है। सस्पेंशन प्रणाली के प्रदर्शन में सुधार के लिए सक्रिय सस्पेंशन तत्व के साथ पी आई डी और अभिभूत नियंत्रकों का विकास किया गया है। इस प्रणाली को "सिम्बोल शक्ति" सॉफ्टवेयर द्वारा जाँचा एवं परखा गया है।

paper 266.indd 1 10-11-2013 12:11:56

अस्थिर पूर्ण/अर्ध/एक–चौथाई वाहन के प्रतिरूप (निष्क्रिय प्रणाली के लिए)

(i) एक चौथाई वाहन का प्रतिरूप के लिए

वाहन की सस्पेंशन प्रणाली के गति विज्ञान को जानने एवं समझने के लिए, वाहन के एक–चौथाई प्रतिरूप, जिसका स्वतंत्रता की कोटि (Degree of freedom) -2 है, को प्रयोग में लाया गया है।

(ii) वाहन के अर्ध–प्रतिरूप के लिए

वाहन का अर्ध प्रतिरूप जिसका स्वतंत्रता की कोटि (Degree of freedom) 4 है, के लिए योजनाबद्ध आकृति इस प्रकार है।

(iii) वाहन के पूर्ण प्रतिरूप के लिए

वहन का पूर्ण प्रतिरूपत चित्र–3 में दर्शाया गया है। वाहन का एक पूर्ण प्रतिरूप, दो अर्ध और चार एक–चौथाई प्रतिरूप के बराबर होता है।

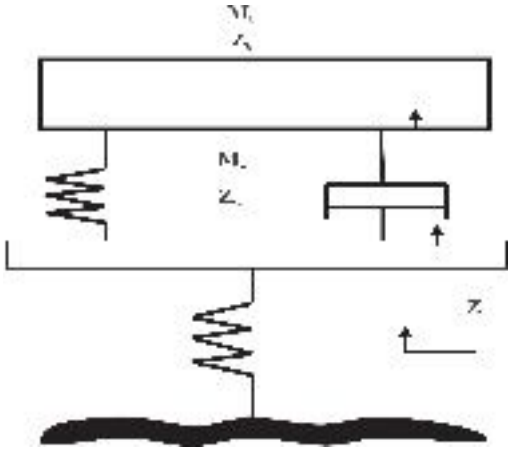

चित्र 1. वाहन के एक–चौथाई प्रतिरूप का व्यवस्था चित्र।

निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली में जब प्रेरक (actuators) लगा हो तो उसे सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली कहते हैं। सम्पूर्ण सस्पेंशन प्रणाली को नियंत्रित करने वाला actuator एक तरह का मोटर होता है। यह विद्युत प्रवाह, द्रव्यचालित शक्ति, अथवा वायु शक्ति दबाव द्वारा संचालित हो जाता है।

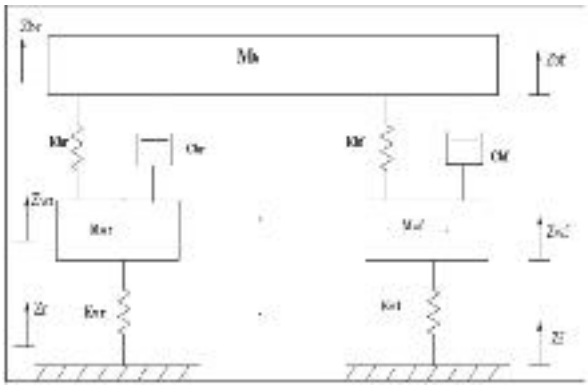

चित्र 2 वाहन के अर्ध–प्रतिरूप का व्यवस्था चित्र।

paper 266.indd 2 10-11-2013 12:11:56

वाहनों के एक–चौथाई/अर्ध/पूर्ण हिस्सों का प्रतिरूपण (नियंत्रक रहित)

(a) वाहन के एक–चौथाई हिस्से (निष्क्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

(b) वाहन के अर्ध हिस्से (निष्क्रिय) का बाण्डग्राफ प्रतिरूप।

(c) पूर्ण वाहन (निष्क्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

(d) वाहन के एक–चौथाई हिस्से (सक्रिय) का प्रतिरूप।

(e)अर्ध–वाहन (सक्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप

इस प्रकार से पूर्ण वाहन (सक्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप भी बनाया जा सकता है।

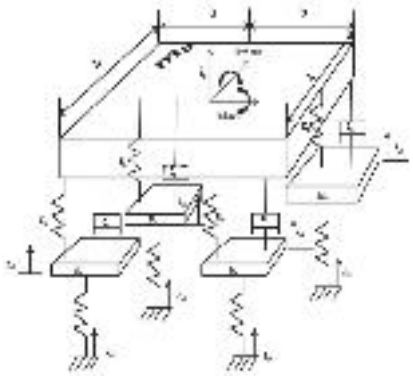

चित्र 3. वाहन के पूर्ण प्रतिरूप का व्यवस्था चित्र।

वाहनों के एक–चौथाई/अर्ध/पूर्ण हिस्सों का प्रतिरूपण (नियंत्रक सहित)

बॉण्डग्राफ तकनीक के साथ नियंत्रकों (पीआईडी, अभिभूत नियंत्रक) को प्रयोग में लाये जाने से सुधार एवं बदलाव, इस प्रकार दर्शाये गए हैं।

चित्र 4. वाहन (कार) के एक–चौथाई हिस्से (निष्क्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

paper 266.indd 3 10-11-2013 12:11:57

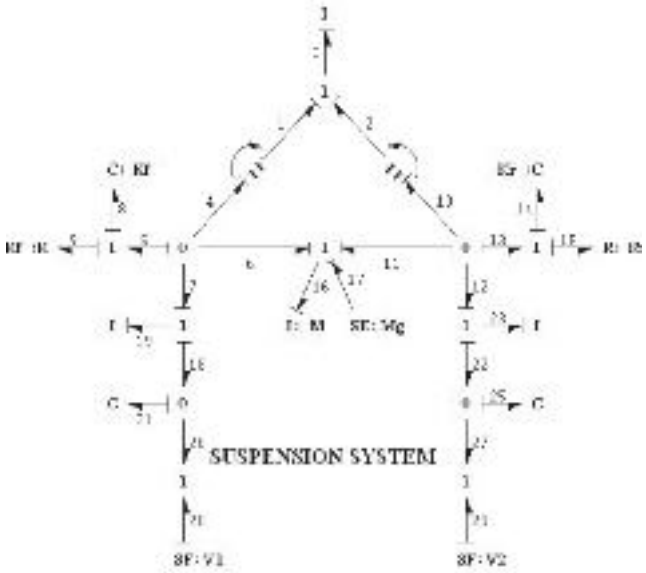

चित्र 5. वाहन के अर्ध हिस्से (निष्क्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

- पी आई डी नियंत्रक (निष्क्रिय) के साथ वाहन के एक–चौथाई हिस्से का प्रतिरूप।
- पी आई डी नियंत्रक (निष्क्रिय) के साथ वाहन के अर्ध हिस्से का प्रतिरूप।

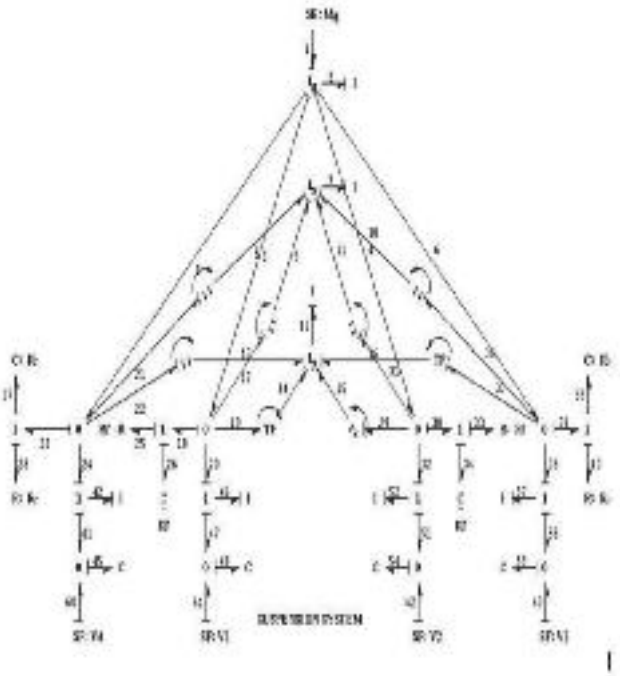

चित्र 6. पूर्ण वाहन (निष्क्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

paper 266.indd 4 10-11-2013 12:11:57

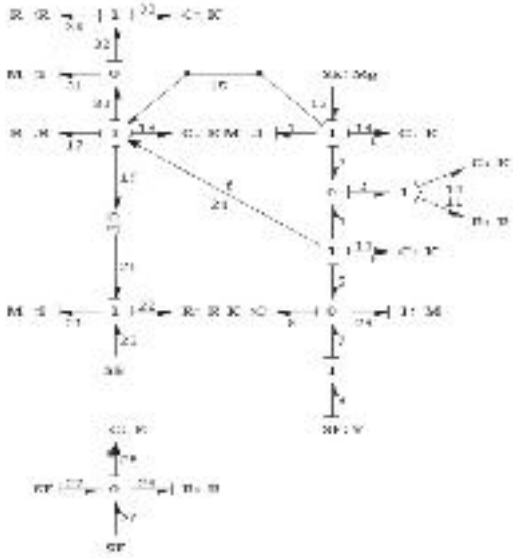

चित्र 7. वाहन के एक–चौथाई हिस्से (सक्रिय) का प्रतिरूप।

(a) पी आई डी नियंत्रक (निश्क्रिय) के साथ पूर्ण वाहन का बॉण्डग्राफ प्रतिरूपण।

• अभिभूत नियंत्रक (निश्क्रिय) के साथ वाहन के एक–चौथाई हिस्से का प्रतिरूप।

• अभिभूत नियंत्रक (निष्क्रिय) के साथ वाहन के अर्द्ध हिस्से का प्रतिरूप।

• अभिभूत नियंत्रक (निष्क्रिय) के साथ पूर्ण वाहन का प्रतिरूप

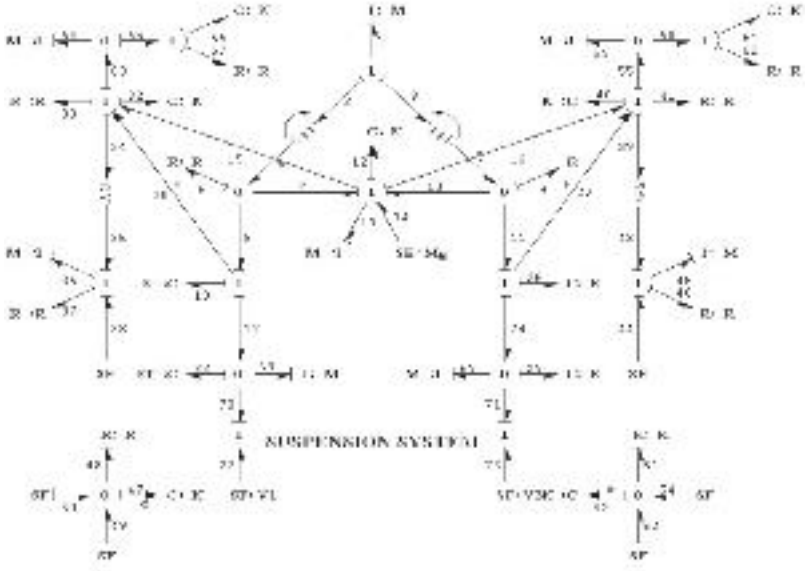

चित्र 8. वाहन के अर्ध हिस्से (सक्रिय) का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

paper 266.indd 5 10-11-2013 12:11:58

इस प्रकार से अर्ध/एक–चौथाई/पूर्ण वाहनों को सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली के साथ प्रतिरूपित किया जा सकता है।

परिणाम

अर्ध/एक चौथाई/पूर्ण वाहनों के प्रतिरूपों के साथ अभिभूत नियंत्रक और समानुपातिक इन्टिग्रल डेरिवेटिव के प्रयोग से विस्थापन (deflection) कम पाया गया। यह अनुकरण के प्रतिक्रियाओं

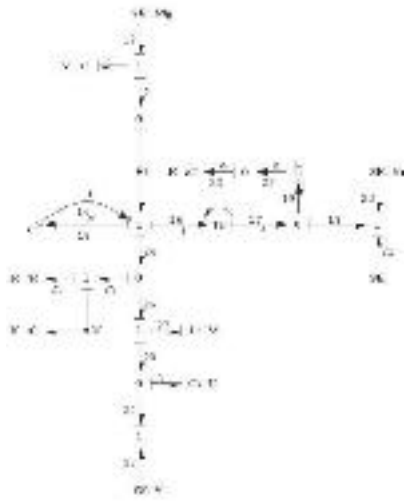

चित्र 9. पी आई डी नियंत्रक के साथ वाहन के एक चौथाई हिस्से का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

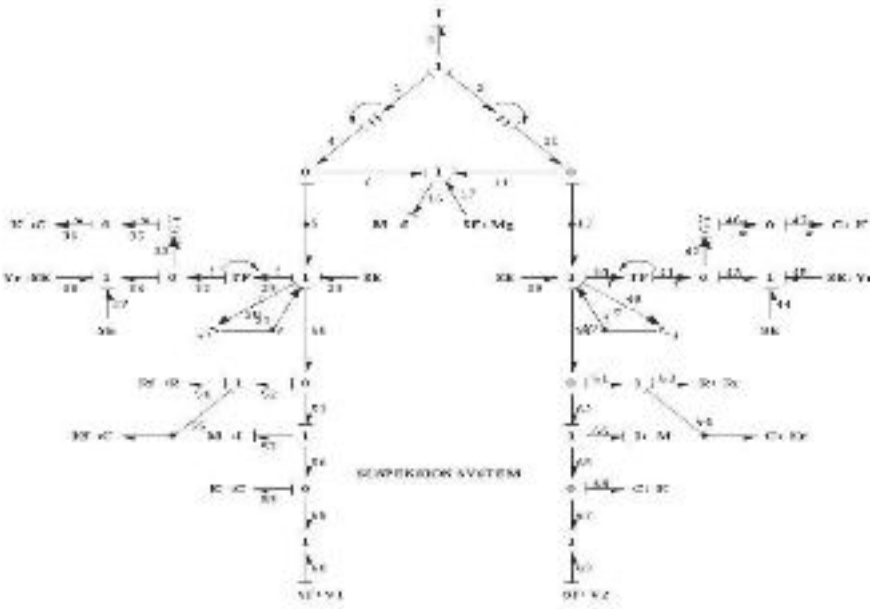

चित्र 10. पी आई डी नियंत्रक (निष्क्रिय) के साथ वाहन के आधे हिस्से का बॉण्डग्राफ प्रतिरूप।

paper 266.indd 6 10-11-2013 12:12:00

द्वारा प्रमाणित किया गया है। चित्रों एवं आकृतियों से यह स्पष्ट है कि अभिभूत नियंत्रकों और पी आई डी नियंत्रकों के सम्बन्ध में विस्थापन (deflection) कम हैं।

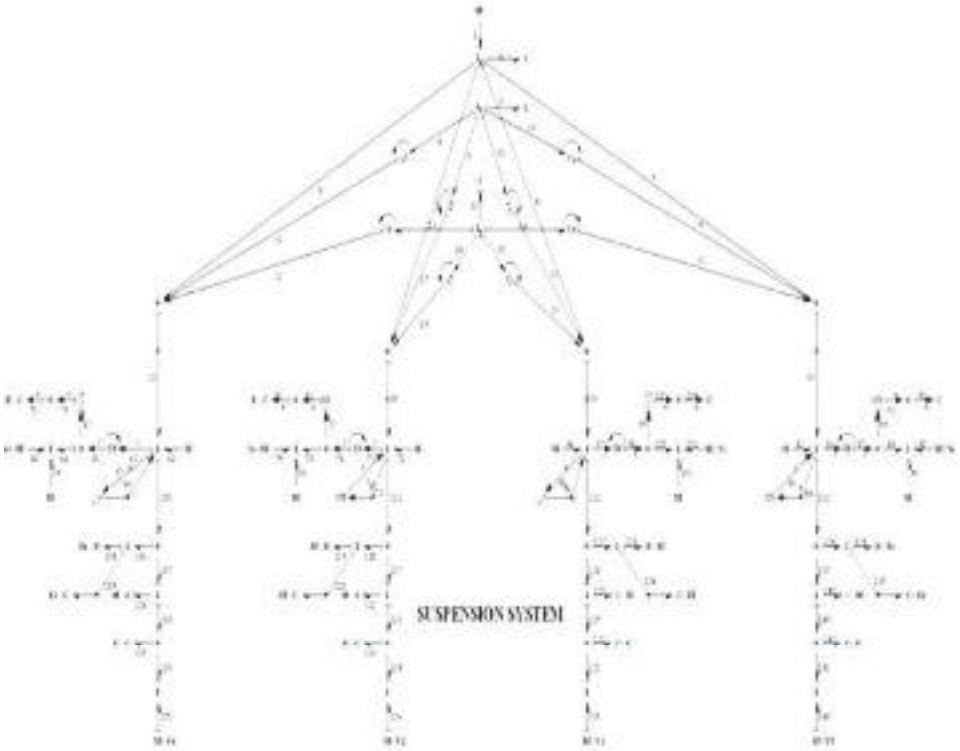

चित्र 11. पूर्ण वाहन का गॉन्डग्राफ प्रतिरूपण।

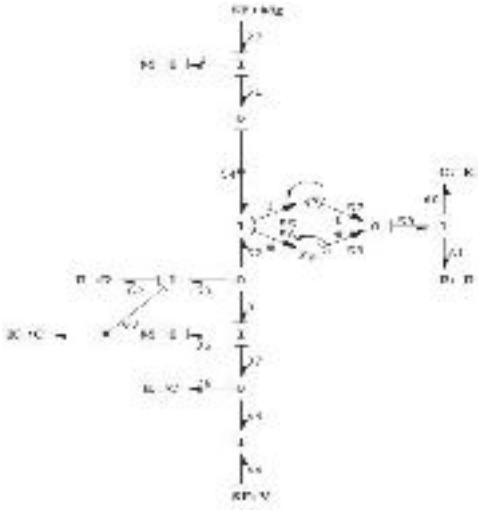

चित्र 12. वाहन के एक–चौथाई हिस्से का गॉन्डग्राफ प्रतिरूप।

paper 266.indd 7 10-11-2013 12:12:00

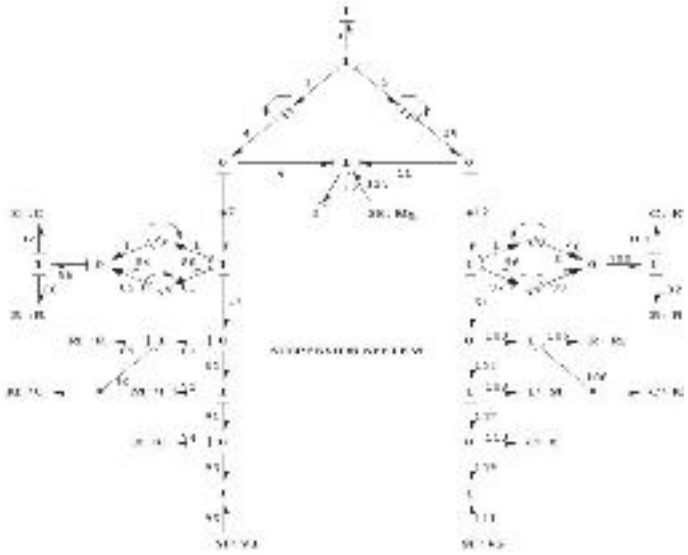

चित्र 13. वाहन के आधे हिस्से का बॉन्डग्राफ प्रतिरूप।

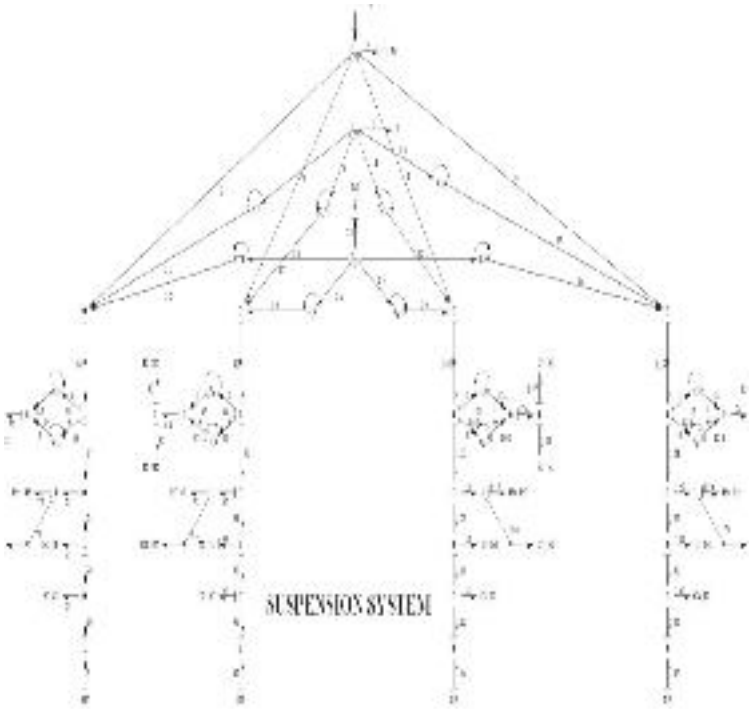

चित्र 14. पूर्ण वाहन का बॉन्ड ग्राफ प्रतिरूप।

paper 266.indd 8 10-11-2013 12:12:01

सारणी 3. पूर्ण वाहन के प्रतिरूप के लिए।

क्रमसं	यौगिक	मान	इकाई
1	ढांचे का भार (M_S)	250	Kg
2	पहिये का भार (M_{US})	50	Kg
3	ढांचे की दृढ़ता (K_S)	18.6	KN/m
4	पहिये की दृढ़ता (K_t)	19.6	KN/m
5	अवमंदन गुणांक (C_S)	1.0	KNs/m

क्रमसं	यौगिक	मान	इकाई
1	स्थापित भार (Ms)	1000	Kg
2	अगला अस्थापित भार (Mfu)	150	Kg
3	पिछला अस्थापित भार (Mru)	150	Kg
4	पिच इनर्सिया (Ip)	1600	Kg/m^2
5	अगला सस्पेंशन स्टीफनेस (Kfs)	36.294	KN/m
6	पिछला सस्पेंशन स्टीफनेस (Krs)	36.294	KN/m
7	अगला डम्पिंग (Cfs)	2500	Ns/m
8	पिछला डम्पिंग (Crs)	2500	Ns/m
9	अगला धूर और सी जी से दूरी (a)	1.4	M
10	पिछला धूर और सी जी से दूरी (b)	1.4	M
11	अगला टायर स्टीफनेस (Kft)	182.470	KN/m
12.	पिछला टायर स्टीफनेस (Krt)	182.470	KN/m

सारणी 4. नियंत्रक प्राचल।

क्रमसं	यौगिक	मान	इकाई
1	स्थापित भार (Ms)	1136	Kg
2	अगला अस्थापित भार (Mfu)	60	Kg
3	पिछला अस्थापित भार (Mru)	60	Kg
4	पिच इनर्सिया (Ip)	2400	Kg/m^2
5	रोल इनर्सिया (Ir)	400	Kg/m^2
6	अगला सस्पेंशन स्टीफनेस (Kfs)	36.294	KN/m
7	पिछला सस्पेंशन स्टीफनेस (Krs)	36.294	KN/m
8	अगला डम्पिंग (Cfs)	3924	Ns/m
9	पिछला डम्पिंग (Crs)	3924	Ns/m
10	अगला पहिया और सी जी से दूरी (a)	1.40	m
11	पिछला पहिया और सी जी से दूरी (b)	1.40	m
12	अगले ट्रैक की चौडाई (b)	0.531	m
13	पिछले ट्रैक की चौडाई (b)	0.531	m
14	अगले पहिये का स्टीफनेस (Kft)	182.470	KN/m
15	पिछले पहिये का स्टीफनेस (Kft)	182.470	KN/m

paper 266.indd 9 10-11-2013 12:12:02

क्रमसं	यौगिक	मान
1	समानुपातिक प्राप्तांक (Gp)	0.9
2	इंटीग्रल प्राप्तांक (Ip)	0.0225
3	डेरीवेटिव प्राप्तांक (Pd)	4.5
4	अभिभूत प्राप्तांक (μ)	2.5

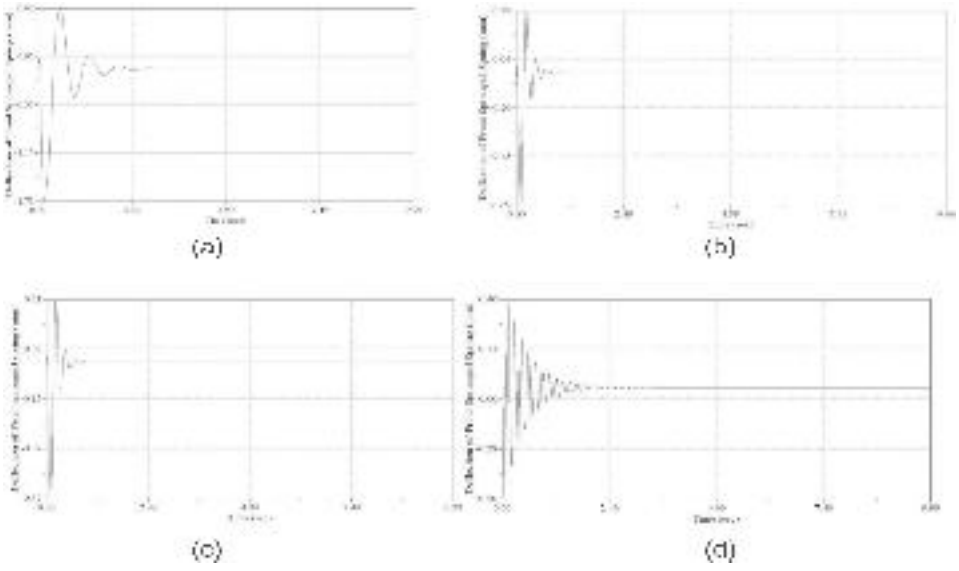

चित्र 16. 20 Km/hr **की गति पर अर्ध वाहन का विस्थापन रेखाचित्र।**

(a) नियंत्रक–रहित निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली।
(b) पी आई डी नियंत्रक के साथ निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली।
(c) अभिभूत नियंत्रक के साथ निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली।
(d) नियंत्रक रहित सक्रिय सस्पेंशन प्रणाली।

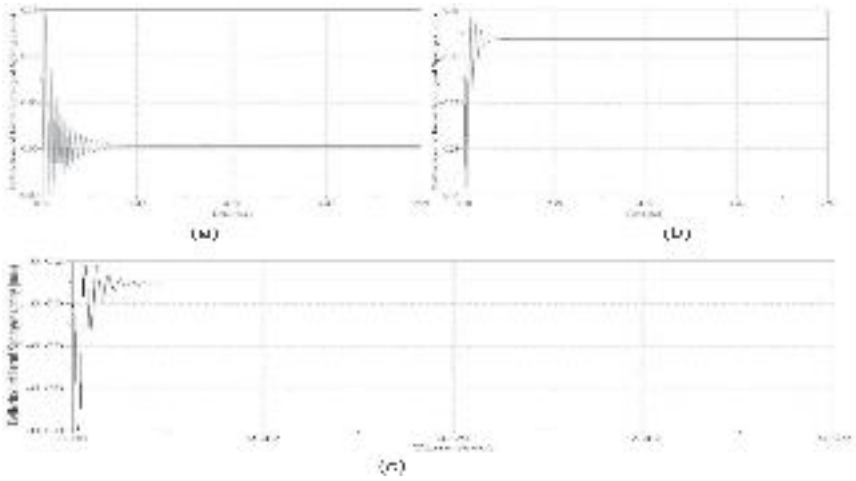

चित्र 16. 20 Km/hr के गति पर अर्ध वाहन का विस्थापन रेखाचित्र।

paper 266.indd 10 10-11-2013 12:12:02

(a) नियंत्रक–रहित निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली।

(b) पी आई डी नियंत्रक के साथ निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली।

(c) अभिभूत नियंत्रक के साथ निष्क्रिय सस्पेंशन प्रणाली।

संदर्भ

1. G. Corriga, A. Giua, G. Usai, "An H2 formulation for the designing of a passive vibration isolation system for cars," Vehicle System Dynamics, Vol. 26, pp. 381–393, 1996.
2. M.J. Crosby, D.C. Karnopp, "The active damper: a new concept in shock and vibration control," 43rd Shock and Vibration Bulletin, June 1973.
3. G. Corriga, S. Sanna, G. Usai, "An optimal tandem active-passive suspension for road vehicles with minimum power consumption," IEEE Trans. on Industrial Electronics, Vol. 38, No. 3, pp. 210–216, 1991.
4. A. Hac, "Suspension optimisation of a 2-DOF vehicle model using a stochastic optimal control technique," Journal of Sound and Vibration, Vol. 100, No. 3, pp. 343–357, 1985.
5. A.G. Thompson, "An active suspension with optimal linear state feedback," Vehicle System Dynamics, Vol. 5, pp. 187–203, 1976.
6. F Yu, J. W. Zhang, D. A. Crolla. A Study of a Kalman Filter Active Vehicle Suspension System Using Correlation of Front and Rear Wheel Road Inputs. In Proceedings of the Institution of Mechanical Engineers, Part D: Journal of Automobile Engineering, vol. 214, no. 5, pp. 493–502, 2000.
7. Mouleeswaran S. K. (2008) "Development of active suspension system for automobiles using PID controller," Proceedings of the World Congress on Engineering , London, U.K.
8. Pathak Pushparaj Mani et al. (2009) "Overwhelming Trajectory Control of Flexible Space Robot" 14th National Conference on Machines and Mechanisms (NaCoMM09), pp. 221-226
9. A.G. Thompson, "An active suspension with optimal linear state feedback," Vehicle System Dynamics, Vol. 5, pp. 187–203, 1976.
10. F Yu, J. W. Zhang, D. A. Crolla. A Study of a Kalman Filter Active Vehicle Suspension System Using Correlation of Front and Rear Wheel Road Inputs. In Proceedings of the Institution of Mechanical Engineers, Part D: Journal of Automobile Engineering, vol. 214, no. 5, pp. 493–502, 2000.
11. Mouleeswaran S. K. (2008) "Development of active suspension system for automobiles using PID controller," Proceedings of the World Congress on Engineering , London, U.K.

paper 266.indd Sec1:11 10-11-2013 12:12:03

चयन प्रकिया द्वारा मुजफ्फरनगरी भेड़ों के उत्पादन एवं जनन गुणो में आनुवंशिक सुधार

गोपाल दास

केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथुरा, उत्तर प्रदेश

सारांश

मुजफ्फरनगरी भेड़ देश में पायी जाने वाली भेड़ों की 42 नस्लों में सबसे अधिक ऊंचाई एवं शारीरिक भार वाली नस्ल है जो पश्चिम उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर एवं इसके समीपवर्ती जनपदों में मिलती है। यह एक मांस उत्पादक नस्ल है क्योंकि इसकी ऊन उत्पादक क्षमता व गुणवत्ता कम होने के कारण किसी भी प्रकार के गलीचा निर्माण के उपयुक्त नहीं है। इस नस्ल के विभिन्न उत्पादन एवं जनन गुणों पर चयन प्रकिया के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु 545 मेमनों के जन्म, 3, 6 व 12 माह पर शारीरिक भार, मेमनों व वयस्क भेड़ों के ऊन उत्पादन तथा मादा भेड़ों के जनन गुणों जैसे ग्याभिन होने का प्रतिशत, ब्यॉत प्रतिशत व जुड़वां मेमना पैदा होने का प्रतिशत आदि के ऑकड़े केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम से वर्ष 2009 से 2011 तक एकत्रित किये। आकड़े का सांख्यकीय विश्लेषण हार्वे (1990) द्वारा रचित संगणक सूत्र द्वारा किया। मेमनों के जन्म 3, 6 व 12 माह पर शारीरिक भार व मेमनों तथा वयस्क भेड़ों के वार्षिक उन उत्पादन के समग्र न्यूनतम वर्ग औसत क्रमशप्रतिशत 3.64±0.03, 15.32±0.16, 21.09±0.21 व 30.45±0.25 किग्रा तथा 504±07, 547±08 व 1175±13 ग्राम थे। परिणामों से ज्ञात हुआ है कि मेमनों के लिंग व जन्म वर्ष ने सभी आयु के शारीरिक भार व ऊन उत्पादन पर अति महत्वपूर्ण प्रभाव ($P<0.01$) प्रदर्शित किया। नर मेमनों ने मादा मेमनों की तुलना में सभी आयु पर अधिक भार व उन उत्पादन दर्शाया। विभिन्न वर्षों में उत्पादन गुणों की तुलना करने से ज्ञात हुआ कि वर्ष 2009 की तुलना में वर्ष 2011 में सभी गुणों में आशातीत वृद्वि हुई। उत्पादन गुणों की तरह जनन गुणों में भी वर्ष दर वर्ष आनुवंशिक सुधार देखने को मिला। 6 माह पर शारीरिक भार के आधार पर भेजें की चयन प्रकिया प्रभावी पायी गयी जोकि इस नस्ल के मांस उत्पादन, ऊन उत्पादन एवं जनन गुणों में आनुवंशिक सुधार के लिये उपयुक्त है।

प्रस्तावना

भेड़ पालन देश के आर्थिक रूप से कमजोर एवं साधन रहित लोगों के रोजी–रोटी का मुख्य साधन है। देश के शुष्क एवं पर्वतीय क्षेत्रों में भेड़ पालन की उपयोगिता तुलनात्मक रूप से अधिक होती है, क्योंकि इन क्षेत्रों में वर्षा की कमी व अनिश्चिता के कारण फसल उत्पादन सफल व्यवसाय नहीं है। हमारे देश में भेड़ों की 42 वर्गीकृत नस्लें पायी जाती हैं, जो भिन्न–भिन्न उपयोगिता वाली एवं अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों में फैली हुई हैं। खाद्य एवं कृषि संगठन (2010) के अनुसार भारत में भेड़ों की संख्या 74.5 मिलियन है जो देश को मांस, ऊन एवं खाल के रूप में प्रतिवर्ष लगभग 800 करोड़ की आय प्रदान करती हैं। भारत की भेड़ सम्पदा विश्व स्तर पर करीब 5.5 प्रतिशत है जो विश्व के कुल मांस उत्पादन में लगभग 3 प्रतिशत योगदान करती है।

भेड़ की प्रत्येक नस्ल मांस, ऊन या मांस व ऊन दोनों के उत्पादन की दृष्टि से पाली जाती है। देश में लगातार बढ़ रही मानव जनसंख्या की मांस की आवश्यता की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि भेड़ों के वर्तमान मांस उत्पादन में वृद्धि की जाये। इसी उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु सन् 1976 में केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम में मुजफ्फरनगरी भेड़ों पर अनुसंधान कार्य प्रारंभ

paper 281.indd 1 10-11-2013 12:20:13

किया गया जिसका मुख्य लक्ष्य इस नस्ल के शारीरिक भार में आनुवंशिक सुधार करना था। एक मांस उत्पादक नस्ल के लिए यह भी आवश्यक है कि भेड़ों के जनन गुणों जैसे ग्याभिन होने का प्रतिशत, ब्यांत का प्रतिशत तथा जुड़वा मेमना पैदा करने की दर में भी सुधार हो। इस शोध पत्र में मुजफ्फरनगरी नस्ल की भेड़ों में चयन प्रक्रिया द्वारा शारीरिक भार, ऊन उत्पादन एवं जनन गुणों में आनुवंशिक सुधार से संबन्धित विवेचना की गयी है ।

सामग्री एवं विधि

इस अध्ययन के लिए वर्ष 2009 से 2011 (तीन वर्ष) तक के दौरान केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम में पैदा हुए मुजफ्फरनगरी नस्ल के मेमनों के आँकड़े एकत्रित किये। यह आँकड़े संस्थान में चल रही अनुसंधान परियोजना ''मुजफ्फरनगरी भेड़ों का अधिक शारीरिक भार एवं ऊन उत्पादन के लिए आनुवंशिक उन्नयन'' से मेमनों के लिंग, जन्म वर्ष, जन्म भार, 3, 6 व 12 माह पर शारीरिक भार, मेमनों एवं वयस्क भेड़ों में ऊन उत्पादन तथा भेड़ों के प्रमुख जनन गुणों जैसे ग्याभिन भेड़ों का प्रतिशत, ब्यांत प्रतिशत व जुड़वा मेमने पैदा होने का प्रतिशत आदि से संबंधित थे। परियोजना में प्रजनन हेतु मेढ़ों का चयन उनके 6 माह के शारीरिक भार के आधार पर था, क्योंकि मांस उत्पादक नस्ल में यह एक महत्वपूर्ण गुण है। आंकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण हार्वे (1990) द्वारा रचित न्यूनतम वर्ग औसत विधि के संगणक सूत्र द्वारा किया जो निम्न है।

उत्पादन = औसत + लिंग का प्रभाव + जन्म वर्ष का प्रभाव + शेष त्रुटि।

परिणाम एवं विवेचना

मेमनों के विभिन्न आयु पर शारीरिक भार व ऊन उत्पादन के न्यूनतम वर्ग औसत मानक त्रुटि के साथ व उन पर लिंग व जन्म वर्ष के प्रभाव तथा भेड़ों के जनन गुणों के औसत तालिका 1, 2 व 3 में दर्शाये गये हैं।

शारीरिक भार

मेमनों के जन्म, 3, 6 व 12 माह के शारीरिक भार के समग्र न्यूनतम वर्ग औसत क्रमशः प्रतिशत 3.64±0.03, 15.32±0.16, 21.09±0.21 व 30.45±0.25 किग्रा थे। इन परिणामों से अधिक मुजफ्फरनगरी भेड़ों में सिन्हा एवं सिंह (1997) ने जन्म, 3 व 6 माह के शारीरिक भार तथा दास एवं सहयोगियों (2008) ने 3, 6 व 12 माह के शारीरिक भार प्रकाशित किये हैं। सभी शारीरिक भार पर लिंग व मेमनों के जन्म वर्ष का प्रभाव अति महत्वपूर्ण ($P<0.01$) पाया गया। दास एवं सहयोगियों (2012) ने एक अध्ययन में इन परिणामों के समान मुजफ्फरनगरी नस्ल में 3, 6 व 12 माह के शारीरिक भार पर लिंग के प्रभाव को अति महत्वपूर्ण पाया। नर व मादा मेमनों के शारीरिक भार की तुलना से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक उम्र पर नर मेमनों ने मादा मेमनों की तुलना में महत्वपूर्ण रूप से अधिक शारीरिक भार अर्जित किया जो सम्भवतप्रतिशत नर मेमनों में वृद्वि हारमोन की विभिन्नता के कारण था। नर मेमने मादा मेमनों से जन्म, 3, 6 व 12 माह पर क्रमश प्रतिशत 0.110 (3.92 प्रतिशत), 1.100 (7.49 प्रतिशत), 2.910 (14.82 प्रतिशत) व 5.810 किग्रा (21.10 प्रतिशत) अधिक भार वाले पाये गये जो सांख्यकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण थे।

मेमनों के शारीरिक भार का विभिन्न आयु व जन्म वर्षो में अध्ययन से ज्ञात हुआ कि वर्ष 2009 की तुलना में वर्ष 2011 में जन्मे मेमनों में सभी आयु पर आशातीत वृद्वि हुई जो परियोजना में प्रयोग किये भेड़ों की चयन प्रणाली की श्रेष्ठता व वर्ष दर वर्ष प्रवन्धन में सुधार का प्रतीक था। विभिन्न वर्षो में शारीरिक भार का निश्चित क्रम था जो वर्ष दर वर्ष बढ़ते हुए क्रम में पाया गया।

paper 281.indd 2 10-11-2013 12:20:13

ऊन उत्पादन

परियोजना में मेमनों एवं वयस्क भेड़ों की ऊन की कटाई 6 माह के अन्तराल पर की। प्रथम वार मेमनों में ऊन कल्पन 6 माह की उम्र पर किया तदोपरान्त प्रत्येक कल्पन 6 माह के अन्तराल पर किया। इस प्रकार प्रथम दो कल्पन मेमनों में 12 माह की उम्र तक किये। मेमनों के प्रथम, द्वितीय व वयस्क वार्षिक ऊन उत्पादन के समग्र न्यूनतम वर्ग औसत क्रमश प्रतिशत 504±07, 547±08 व 1175±13 ग्राम रहे। कुमार एवं सहयोगियों (2006) ने ग्रामीण क्षेत्रों से आँकड़े एकत्रित कर मुजफ्फरनगरी भेड़ों में वर्तमान परिणामों से कम (600–1000 ग्राम) वार्षिक उन उत्पादन प्रकाशित किया है जबकि सिन्हा एवं सिंह (1997) ने इस नस्ल की भेड़ों में इन परिणामों से अधिक मेमनों के प्रथम उन कल्पन में उन उत्पादन का अध्ययन किया है। शारीरिक भार की तरह, सभी ऊन उत्पादन पर लिंग व मेमनों के जन्म वर्ष ने अति महत्वपर्ण प्रभाव ($P<0.01$) प्रदर्शित किया। नर मेमनों ने मादा मेमनों की तुलना में 46, 80 व 322 ग्राम अधिक ऊन उत्पादित की जो सम्भवत प्रतिशत नर जानवरों में मादा जानवरों की तुलना में ऊन उत्पादन के लिये अधिक सतह क्षेत्र उपलब्ध था।

मेमनों एवं वयस्क भेड़ों के ऊन उत्पादन की वर्ष दर वर्ष तुलना से मालूम हुआ कि समय बढ़ने के साथ ऊन उत्पादन भी बढ़ा जो पुन प्रतिशत भेड़ों की श्रेष्ठ चयन प्रणाली, जानवरों में आनुवंशिक सुधार व चारागाह में पर्याप्त भोजन सामग्री का द्योतक है।

जनन गुण

मुजफ्फरनगरी भेड़ों के जनन गुणों के मूल्यांकन से ज्ञात हुआ कि इस नस्ल की भेड़ों में ग्याभिन होने का प्रतिशत 97.0 से 103.0 प्रतिशत उपलब्ध संख्या के आधार पर ब्यात प्रतिशत 85.8 से 91.8, ग्याभिन भेडों के आधार पर ब्यॉत प्रतिशत 91.8 से 92.5 तथा जुड़वा मेमना पैदा करने का प्रतिशत 10.9 से 11.8 रहा। कुमार एवं सहयोगियों (2006) ने ग्रामीण क्षेत्रों से आँकड़े एकत्रित कर मुजफ्फरनगरी भेड़ों में 60–95 प्रतिशत जनन दर प्रकाशित की है। जनन गुणों का विभिन्न वर्षो में तुलना करने से पता चला कि यह सभी गुण वर्ष दर वर्ष सुधार की ओर अग्रसित पाये गये जो जानवरों में आनुवंशिक सुधार, चयन प्रणाली की श्रेष्ठता तथा जानवरों को प्राप्त अनुकूल वातावरणीय स्थिति का प्रतीक है। मुजफ्फरनगरी एक बड़े आकार वाली भेड़ नस्ल होने के कारण जुड़वा मेमना पैदा करने की दर लघु व मध्यम आकार वाली भेड़ों से कम होती है, लेकिन भेड़ों का वैज्ञानिक प्रजनन कार्यक्रम के अनुसार प्रजनन कराने से जुड़वा मेमना पैदा करने की दर में आशातीत वृद्धि हुई है। यह ऑकड़े वर्तमान में 15 प्रतिशत तक हो गये हैं, जो कि शुरू में केवल 5 प्रतिशत थे, यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम पर चल रही इस परियोजना में देश में पहली बार मुजफ्फरनगरी एक भेड़ ने लगातार दो बार एक साथ तीन (ट्रिपलेट) मेमनों को जन्म दिया है, यह घटना इस नस्ल एवं देश के लिये एकमात्र एवं दुर्लभ उपलब्धि है। इन तीन मेमनों का 6 व 12 माह की उम्र पर शारीरिक भार क्रमशप्रतिशत 46.2 व 78.0 किग्रा था जो एकल मेमनों की तुलना में 25.1 (118.9 प्रतिशत) व 49.0 किग्रा (161.2 प्रतिशत) अतिरिक्त था। इस प्रकार परियोजना में दो व तीन मेमनों के उत्पादन से प्रति भेड़ मांस उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है।

paper 281.indd Sec1:3 10-11-2013 12:20:13

निष्कर्ष

- इस अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि मुजफ्फरनगरी भेड़ों के मेमनों में 0–3 माह का वृद्धिकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इस अवधि में मेमनों में कुल वृद्धि की 44 प्रतिशत वृद्वि इसी अवधि में हुई। अतप्रतिशत इस अवधि में उचित खान–पान, चिकित्सा एवं आवास सुनिश्चित करना आवश्यक है, ताकि भेड़ पालकों को अधिक से अधिक लाभ मिल सके।
- भेंड़ों की चयन प्रणाली ने सभी शारीरिक भार, ऊन उत्पादन एवं जनन गुणों में वाछनीय आनुवंशिक सुधार किया। शतप्रतिशत प्रयोग में ली जा रही भेड़ों की इस चयन प्रणाली को इस नस्ल के शारीरिक भार एवं ऊन उत्पादन में आनुवंशिक सुधार हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।
- मुजफ्फरनगरी नस्ल शरीर आकार में बड़ी होने के कारण इसमें जुड़वा मेमना पैदा करने की दर कम होती है। इस नस्ल के इस गुण में और सुधार की आवश्यकता है जो कि वैज्ञानिक विधि द्वारा तैयार उचित प्रजनन कार्यक्रम व इस गुण से संपन्न भेड़ों का प्रजनन में अधिक से अधिक प्रयोग करने से संभव है।

तालिका 1. मुजफ्फरनगरी मेमनों के विभिन्न आयु पर शारीरिक भार (किग्रा)।

	जन्म	3 माह	6 माह	12 माह
समग्र औसत	3.64±0.03 (545)	15.32±0.16 (523)	21.09±0.21 (370)	30.45±0.25 (289)
लिंग	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण
नर	3.71±0.04	15.78±0.21	22.54±0.30	33.35±0.37
मादा	3.57±0.05	14.68±0.23	19.63±0.30	27.54±0.33
जन्म वर्ष	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण	महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण
2009	3.57±0.05	15.15±0.31	20.09±0.37	28.73±0.47
2010	3.53±0.06	13.63±0.30	21.15±0.36	30.91±0.41
2011	3.72±0.04	16.92±0.21	21.93±0.38	31.71±0.44

अति महत्वपूर्ण ($P<0.01$), महत्वपूर्ण ($P<0.05$), कोष्ठक में ऑकड़ों की संख्या अंकित है।

तालिका 2. मेमनों एवं वयस्क भेड़ों का ऊन उत्पादन (ग्राम)।

	प्रथम कटपन	द्वितीय कटपन	वयस्क वार्षिक
समग्र औसत	507±07 (470)	547±08(321)	1175±13 (668)
लिंग	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण
नर	527±10	587±09	1341±24
मादा	481±10	507±12	1009±10
जन्म वर्ष	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण	अति महत्वपूर्ण
2009	451±14	436±11	1041±21
2010	481±11	541±11	1115±18
2011	480±10	584±17	1369±17

अति महत्वपूर्ण ($P<0.01$), महत्वपूर्ण ($P<0.05$), कोष्ठक में ऑकड़ों की संख्या अंकित है।

paper 281.indd Sec1:4 10-11-2013 12:20:13

तालिका 3. मुजफ्फरनगरी भेड़ों के जनन गुण।

	2009	2010	2011
ग्याभिन होने का प्रतिशत	98.1	97.0	103.0
ब्यांत प्रतिशत (उपलब्ध संख्या के आधार पर)	85.8	88.9	91.0
ब्यॉत प्रतिशत (ग्याभिन भेड़ों के आधार पर)	91.8	91.9	92.5
जुडवाँ मेंमनों की दर का प्रतिशत	11.3	10.9	11.8

संदर्भ

1. Dass, Gopal, Prasad, Hari, Mandal, A., Singh, M. K. and Singh, N. P. (2008). Growth characteristics of Muzaffarnagari sheep under semi intensive feeding management. Indian Journal of Anim. Sciences, 78: 1032-1033.
2. Dass, Gopal, Mandal, A., Rout, P. K. and Roy, R. (2012). Rearing practices, morphology characteristics and growth performance of Muzaffarnagari sheep in its home tract. Indian Journal of Small Ruminants, 18: 37-40.
3. Harvey W R. (1990). Users guide for LSMLMW PC-1 Version: mixed model least squares and maximum likelihood programme, IOWA State University, USA.
4. Kumar, Dinesh, Gurmej Singh and Anand Jain (2006). Characterization & Evaluation of Muzzafarnagari Sheep. Indian Journal of small Ruminants, 12: 48-55.
5. Sinha, N. K. and Singh, S. K. (1997). Genetic and phenotypic parameters of body weights, average daily gains and first shearing wool yield in Muzaffarnagari sheep. Small Ruminant Research, 26: 21-29.

paper 281.indd Sec1:5 10-11-2013 12:20:13

ओलिव रिडले समुद्री कछुए के सामूहिक नेस्टिंग के लिए उत्तरदायी कुछ भू–पर्यावरणीय घटकः गहीरमाथा अनुभव

गणेश पृष्टि
रक्षा भू–भाग अनुसंधान प्रयोगशाला, दिल्ली

सारांश

उड़ीसा के गहीरमाथा मुहाना की नासी बाधा पट्टी, 'ओलिव रिडले' एक लुप्तप्राय समुद्री कछुए, का सबसे बड़ा रुकेरी है। विवेचनात्मक महत्व के अनुकूल कारकों की पहचान एवं मूल्यांकन हेतु गहीरमाथा तटीय भू–आकृतियों का एक विस्तृत अध्ययन किया गया था। कुछ चयनित क्षेत्र वीक्षण के साथ उपग्रहीय छायाचित्र विश्लेषणों ने कुछ विशिष्ट भू–पर्यावरणीय मापदंडों एवं विशेषताओं की पहचान की जो नासी बाधा पट्टी में मौजूद थीं और सामूहिक नेस्टिंग के लिए अपेक्षित थीं। नासी क्षेत्र की सर्वप्रमुख विशेषता वनस्पति–रहित जमीन पर बालू का ताजा जमाव। यहाँ की स्थलाकृति अपेक्षाकृत गहरे पानी से घिरा होता है, साथ ही तीव्र ढाल के समुद्री तट वाले झागिल क्षेत्र के काफी नजदीक होता है जो कछुओं को सुरक्षित समुद्री यात्रा प्रदान करता है और रेंगते हुए असुरक्षित क्षेत्र में प्रवेश के खतरे को कम कर देता है। हालांकि उच्च सांद्रण वाले काले खनिज, मूलतः मध्यम दानेदार तलछट और उच्च ऊर्जा पर्यावरण नासी बाधा पट्टी की मुख्य खासियत हैं इसकी स्थल रूप आकारमिति (landform morphometry) यानी लंबाई–चौड़ाई का अनुपात, सतह क्षेत्र, समुद्र की तरफ का ढाल भी इस लुप्तप्राय जानवर के निवास में मुख्य भूमिका अदा करता है। वर्तमान गहीरमाथी रुकेरी लगातार हो रहे तूफानी प्रभाव एवं प्राकृतिक अपरदन के कारण नष्ट होने के कगार पर है। गहीरमाथा अध्ययन से प्राप्त हुए भू–पर्यावरणीय मापदंडों की पहचान के बाद नजदीक के तटीय स्थलाकृतियों की पहचान करके इनका सामूहिक निवास रुकेरी बनाया जा सकता है।

परिचय

उड़ीसा के गहीरमाथा तटीय क्षेत्र का 'नासी' बाधापट्टी एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ 'ओलिव रिड्ले' समुद्री कछुए की प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में सामूहिक नेस्टिंग की अनोखी घटना दिखाई देती है। सैकड़ों वर्षों से प्रत्येक वर्ष सर्दियों में यह कछुए सामूहिक रूप में एकत्रित हो जाते हैं और पूरे समुद्र तट को एक गतिशील समूह में परिवर्तित कर देते हैं। अंडमान द्वीप समूह एवं पूर्वोत्तर श्रीलंका के तटीय क्षेत्रों में इनके लिए चारे की उपलब्धता है। ये कछुए नेस्टिंग की घटना के कुछ हफ्ते पहले इन समुद्री शैवाल–समृद्ध भोजन क्षेत्र को छोड़कर गहीरमाथा के सुनसान खुले समुद्र के बीचोंबीच 2500 किमी का चक्कर लगाते हैं।

दुनिया भर में इनकी नेस्टिंग रुकेरी अल्पकालिक हैं। ये मानवीय गतिविधियों द्वारा नष्ट होने के पहले ही या तो समुद्र में विलीन हो जाते हैं या फिर प्रकृति नष्ट कर देती है। उनके संरक्षण की अनिवार्यता को देखते हुए यह आवश्यक है कि उनके लिए आदर्श कछुआ रुकेरी हेतु वांछनीय भू–पर्यावरणीय मापदंडों की पहचान की जाए। प्रस्तुत पत्र में इनके सामूहिक नेस्टिंग के लिए पहचाने गए नौ विशेष पारिस्थितिकी/भू–पर्यावरणीय मापदंडों का विवरण दिया जा रहा है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत पत्र में चर्चा किए गए गहीरमाथा मुहाना केन्द्रपाड़ा जिले, उत्तर उड़ीसा के महानदी समग्र डेल्टा के ब्राह्मणी एवं वैतरणी नदी की वितरक नदी माइपुरा और धामरा नदी के मुहाने पर स्थित है। गहीरमाथा मुहाना में मुख्य भूमि तट क्षेत्र के अलावा भी काफी महत्वपूर्ण भू आकृतियाँ स्थलाकृति मौजूद हैं, वे हैं–

क. धामरा नदी में कालीभंजा नाम का एक चैनल बार।

ख. दो तटीय क्षेत्र के पास के सैंडबारः मूसाचोटी एवं उड़ाबाली।

ग. तीन दूरस्थ क्षेत्रीय सैंडबारः तेनतूलिया (व्हीलर आईलैंड), बाबूबाली, एवं साकारबाली।

घ. नदी माइपुरा के अग्रभाग में लंबा स्पिट/एकाकुला स्पिट।

ड. सोहाना स्पिट (देवी नदी का मुहाना)।

च. उत्तरी स्पिट एवं दक्षिणी स्पिट (ऋषिकुल्या नदी का मुहाना)।

1989 के मानसूनी तूफान के बाद माइपुरा नदी में आई बाढ़ के कारण एकाकुला स्पिट के टूट जाने की वजह से नासी बाधा पट्टी का निर्माण हुआ। इस क्षेत्र में तरंगीय ऊर्जा स्तरों में तूफानी मॉनसून के साथ मध्यम लेकिन मौसमी परिवर्तन दिखायी देता है। नेस्टिंग अवधि का औसत सतही तापमान है 27 ^{o}C निम्न ज्वार काल में जल की अधिकतम गहराई 4 मीटर से कम होती है, केवल जल के भीतर के चैनलों की गहराई 10 मीटर तक भी चली जाती है।

पद्धतियाँ

गहीरमाथा स्थलाकृतियों के भू–पर्यावरणीय विशिष्टताओं के अध्ययन हेतु IRS बहु–वर्णक्रमीय उपग्रहीय छायाचित्रण पद्धति को अपनाया गया, जिसके द्वारा नेस्टिंग ऋतु के नमूने एकत्रित किए गए। इसके अलावा एक विस्तृत क्षेत्र वीक्षण कार्यक्रम भी चलाया गया जिसमें इन नेस्टिंग घटनाओं के अपेक्षित मापदंडों का मापन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में कछुआ नेस्टिंग के संदर्भ में गहीरमाथा के सभी 12 स्थलाकृतियों की जाँच की गई और इसके लिए आवश्यक भू–पर्यावरणीय विशेषताएँ एकत्रित की गईं।

इन छायाचित्रों को धरातल मापन संबंधी मानचित्रों से भू–संदर्भित किया गया और Cubic Convolution के प्रयोग से 25m X 25m पिक्सेल के छायाचित्र को 0.2 पिक्सेल RMSE के साथ पुनर्नमूनाकरण किया गया। तब प्रत्येक दृश्य से छायाचित्र विश्लेषण, जैसे कि वर्गीकरण, तट क्षेत्र अनुमानन, एवं एन डी वी आई (Normalised Differential Vegetation Index) विश्लेषण के लिए सबसेट एरिया ऑफ इंटेरेस्ट (375 वर्ग किमी) निकाला गया।

तटीय स्थलाकृतियों के मानचित्र के ऊपर बेथीमेट्रिक समोच्च रेखाएँ डाली गई हैं, जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है। प्रत्येक स्थलाकृति का औसत ढलान समुद्रतट अध्ययन के आधार पर निश्चित किया गया। जैसा कि सारणी 1 में दिया गया है।

झागिल क्षेत्र या तरंग–विच्छेदित क्षेत्र को मानचित्र में गहरे बिंदुओं से दिखाया गया है। रेत के संरचनात्मक गुण धर्मों, खासकर उसके आकार एवं खनिज वितरण के संदर्भ में मानचित्रण प्रत्येक स्थलाकृति में क्षेत्र कवरेज की प्रतिशतता को जाहिर करता है।

सारणी 1. नेस्टिंग ऋतु 1999 से 2000 के दौरान उच्चतम उच्च ज्वार के ऊपर नासी बाधापट्टी के खुले सतही क्षेत्र (डी ई एम विश्लेषण के परिणाम)।

नेस्टिंग साइट	मार्च–मई, 1999	मार्च–मई, 2000	मार्च–मई, 2001
नासी I	0.325 वर्ग किमी	0.486 वर्ग किमी	0.224 वर्ग किमी
नासी II	0.272 वर्ग किमी	0.145 वर्ग किमी	0.296 वर्ग किमी
उस ऋतु विशेष का उच्चतम उच्च ज्वार का स्तर**	3.53मी	3.57मी	3.56मी

- डीईएम के निर्माण के लिए इनपुटः विभिन्न ज्वार स्तर पर जनवरी से अप्रैल माह के दौरान एकत्रित किए गए। चार आई आर एस LISS III छायाचित्र और प्रत्येक बाधा पट्टी के प्रत्येक नेस्टिंग ऋतु के लगभग 1100 मापित उच्चता बिंदु आंकड़े। मापन बिंदु टोटल स्टेशन एवं डिफरेन्शियल जीपीएस के द्वारा है।
- •• **स्रोतः** भारतीय सर्वेक्षण के द्वारा प्रकाशित भारतीय ज्वार सारणी।

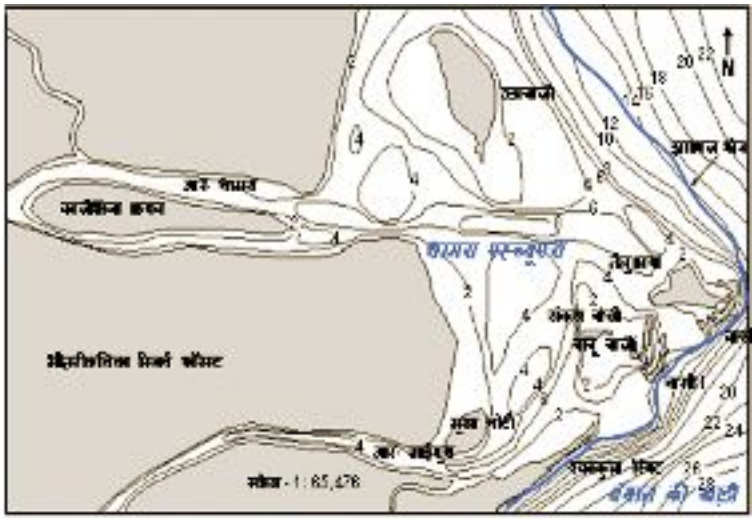

चित्र 1. गहीरमाथा तट का एक अवलोकन एवं तटीय जमाव वाले भू क्षेत्र का वातावरण (बेथीमीटरी समोच्च रेखाएँ मीटर में + झागल क्षेत्र का निर्धारण देखकर किया गया है)।

परिणाम एवं परिचर्चा

समुद्री कछुओं की सात प्रजातियों में से ओलिव रिड्ले एक है जो पर्मियन युग से पाया जाता है और विलुप्त होने के कागार पर है। भूमि की सतह पर उनकी नेस्टिंग ही उनके जीवन–चक्र का एक बहुत ही मुश्किल चरण है। प्राकृतिक आपदाओं एवं उपद्रवकारी जीवों द्वारा उनका विनाश एवं विघटन बड़ी ही चिंता का विषय है। रुकेरी भू–पर्यावरणीय परिवर्तन की त्वरित प्रतिक्रिया ही उनके निवास के लिए उचित माहौल के अध्ययन का कारण है।

(क) कछुआ रुकेरी की भू–पर्यावरणीय विशिष्टताएं

कछुए प्रसव–स्थलीय समुद्रतट के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं। गहीरमाथा में भी ये कछुए काफी चयनात्मक होते हैं और वर्तमान समय में उनकी रुचि नासी बाधा पट्टी तक ही सीमित है। तभी यह आवश्यकता उठती है एवं गहीरमाथा की अन्य स्थलाकृतियों की तुलना में नासी बाधा पट्टी की विशिष्टताओं को लेते हुए निवास तैयार करने के मापदंडों के अनुसार अनुकूलतम वातावरण तैयार

किया जाए। अध्ययनोपरांत निम्नलिखित भू–पर्यावरणीय मापदंड निर्धारित किए गए, जिससे हमें उनके प्राकृतिक व्यवहार को समझने में काफी मदद मिलेगी।

गहीरमाथा के बारह महत्वपूर्ण स्थलाकृतिक विशिष्टताओं को इन मापदंडों के लिए विश्लेषित किया गया और उनका प्रसव–स्थल बनाने हेतु अनुकूलतम पर्यावरण को परिभाषित किया गया।

- **आसपास की निचली स्थलाकृति** – स्थलाकृति गहरे पानी से घिरी हुई होनी चाहिए।
- **झागिल क्षेत्र के निकट** – स्थलाकृति के सामने समुद्र की ढलान में दरार
- **वनस्पति आवरण** – वनस्पति–रहित भू–भाग वांछनीय।
- **ताजा बालू का जमाव** – गतिशील जमाव का वातावरण
- **रेत की विशेषताएँ** – जो उच्च ऊर्जा को संकेतित करता है।
- **क्षेत्र विशेष में प्लेसर मिनरल की स्थिति** – तलछट में उष्मा प्रवाहकीय मिनरल की उपस्थिति। उष्मायन अवधि के दौरान घोंसला के लिए अतिरिक्त उष्मा की आपूर्ति।
- **स्थलाकृति ज्यामिति**– ऐसी स्थलाकृति जिसकी चौड़ाई की अपेक्षा लंबाई ज्यादा हो, उनके लिए वांछनीय क्षेत्र होता है ताकि सामूहिक नेस्टिंग के लिए उन्हें लंबी अवस्थिति या लंबा खुलाव मिल सके। नासीबाधापट्टी में सामूहिक नेस्टिंग के लिए प्रभावी सतहीय आवश्यक क्षेत्र 0.25 वर्ग किमी है।
- **मुख्य भूमि की समुद्र तट से निकटता**– समुद्र तट पर कृत्रिम रोशनी कछुए की सामूहिक नेस्टिंग की प्रमुख बाधा है और खासकर, जितना ही क्षेत्र विशेष समुद्र तट से दूर हो, उपद्रवकारियों से समस्या उतनी ही कम आएगी।
- समुद्र सतह का तापमान

प्रस्तुत अध्ययन में नासीबाधापट्टी की विशेषताओं को पहचानकर सामने रखा गया है जिसमें सामूहिक नेस्टिंग रुकेरी के लिए आवश्यक भू–पर्यावरणीय घटकों को ध्यान में रखा गया। कुछ दूरस्थ द्वीप, जैसे कि बाबूबाली एवं एकाकूला स्पिट में भी नासीबाधापट्टी जैसी अनुकूल परिस्थितियाँ मौजूद हैं, लेकिन कछुए उनका प्रयोग सामूहिक नेस्टिंग के लिए नहीं कर रहे। उन्हें सामूहिक नेस्टिंग हेतु भविष्य का संभावित क्षेत्र माना जा सकता है। अनुमानित अनुकूल वातावरण घटक (गहीरमाथा जाँच से प्राप्त जानकारी के अनुसार) की जानकारी, पास के डेल्टायिक जमाववाली विशेषताओं से परिपूर्ण स्थानों का अध्ययन करके प्राप्त की जा सकती है ताकि उन्हें पूर्ण रुकेरी में तब्दील किया जा सके। प्रस्तुत जाँच में, भू–पर्यावरणीय परिवर्तनशील कारकों के थीमेटिक स्तरों के भौगोलिक सूचना प्रणाली–आधारित नियम का प्रयोग नेस्टिंग के लिए अनुकूल स्थलाकृतियों की पहचान हेतु किया जा सकता है। जाँच ने यह साबित किया कि नासी रेत बाधापट्टी के अलावा कछुआ रुकेरी के लिए चार अनुकूलतम क्षेत्र हैं, जिनके नाम है–

- सोहाना स्पिट (देवी नदी का मुहाना)।
- एकाकुला स्पिट (गहीरमाथा)।
- स्पिट उत्तर (ऋषिकुल्या नदी का मुहाना)।
- स्पिट दक्षिण (ऋषिकुल्या नदी का मुहाना)।

(ख) स्थलाकृतियों में परिवर्तनशीलता के कारण नासी बाधापट्टी में नेस्टिंग स्थल का स्थानांतरण

वर्ष 1999 में, नासी I एवं नासी II दोनों में ही सामूहिक नेस्टिंग काफी सफल रही थी। उसके बाद के वर्षों में नासी II की अपेक्षा नासी I द्वीप में कछुए अधिक संख्या में आए। दिलचस्पी की बात है कि वर्ष 2001 में सामूहिक नेस्टिंग और अधिक बढ़ा और इसका स्थान एक बार फिर नासी II बना, नासी I का रेत बिल्कुल सूना पड़ा रहा। इस अनोखे परिवर्तन के मूल्यांकन के लिए दोनों सैंडबार में टोटल स्टेशन के द्वारा एकत्रित बिंदु आंकड़ो एवं चार नेस्टिंग ऋतुओं के उपग्रहीय छायाचित्रों का उपयोग करते हुए आंकिक ऊँचाई निदर्शों (डिजीटल एलीवेसन मॉडल) का प्रयोग किया गया। वर्ष 1999, 2000 एवं 2001 के नेस्टिंग ऋतुओं के लिए दोनों द्वीपों का डीईएम तैयार किया गया।

यद्यपि नेस्टिंग ऋतुओं के तीन वर्ष के उपग्रहीय छायाचित्र नासी सैंडबार में परिवर्तन का कुछ खुलासा नहीं करते, लेकिन उनके 3–डी मानचित्रण ने वास्तविक भू–पर्यावरण निवास को विश्लेषित किया है। इस अध्ययन से उच्चतम उच्च ज्वार एवं इसके प्रभावी पैटर्न के अनुसार नेस्टिंग क्षेत्र की पहचान की जा सकती है। डीईएम का करीबी निरीक्षण यह स्पष्ट रूप से बताता है कि कछुओं ने 1999 में दोनों सैंडबार एवं 2000 में नासी I सैंडबार एवं 2001 में नासी II सैंडबार को ही नेस्टिंग के लिए क्यों चुना (चित्र 2)। पहले वर्ष में दोनों ही सैंडबार लंबाई में थे और प्रभावित क्षेत्र बड़ा था। लेकिन वर्ष 2000 में तूफानी चक्रवात की वजह से नासी II सैंडबार का समतल रिज क्षेत्र छोटा हो गया था और उच्च ज्वार की स्थिति के दौरान यह खंडित भी हो गया था। चूंकि 1999–2000 में नासी I सैंडबार ने दंराती (sickle) का आकार ले लिया था, उच्च चक्रवात इसे अधिक प्रभावित नहीं कर पाया था और नेस्टिंग सतह अभी भी काफी बड़ा था। अतः इस समय नासी II सैंडबार की अपेक्षा नासी I कछुओं के लिए अधिक वांछनीय स्थान था। लेकिन वर्ष 2001 के नेस्टिंग ऋतु के पहले नासी II ने अपने पुराने घटकों को फिर से प्राप्त कर लिया और इसीलिए इस वर्ष इसने काफी संख्या में कछुओं को सामूहिक नेस्टिंग के लिए आकर्षित किया। साथ ही नासी पाश्चात्य रुख करने की वजह से स्थलाकृतियों में काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन सामने आए, जिससे कछुओं ने वहाँ आना बिल्कुल बंद कर दिया।

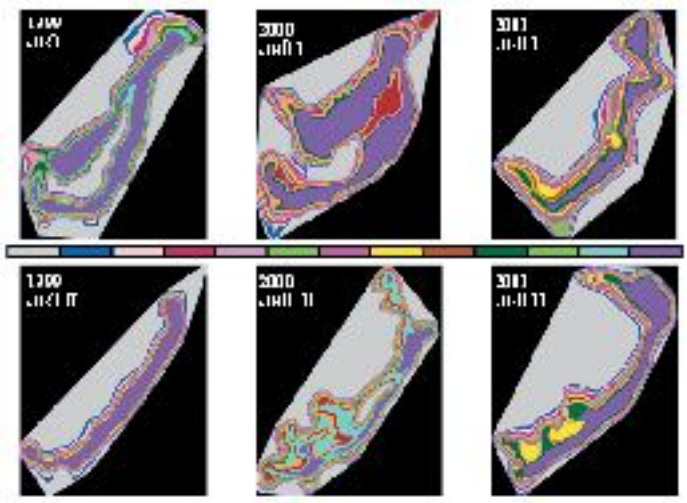

चित्र 2. नासी एवं नासी बाधापाट्टी के आंकण उच्चता निदर्श (डीईएम) जो उच्चतम उच्च ज्वार स्तर ऋतु में प्रभावी नेस्टिंग सतही क्षेत्र।

निष्कर्ष

आजकल, गहीरमाथा मुहाना की नासी बाधापट्टी ही एकमात्र तटीय क्षेत्र है जो सभी भू–पर्यावरणीय मापदंडों के बिल्कुल समान है। अक्सर आनेवाले चक्रवाती तूफान एवं गतिशील तटीय तरंग के प्रभाव से यह रुकेरी आजकल नष्ट होने के कगार पर है। इस समय आवश्यकता है पास के डेल्टा क्षेत्र में ही अनुकूलतम भू–पर्यावरणीय कारक वाले वैकल्पिक क्षेत्र तैयार करने की, जो कारक नासी रुकेरी में मौजूद हैं। पहचाने गए क्षेत्रों के संरक्षण के लिए उपयुक्त नीति बनायी जानी चाहिए ताकि लुप्तप्राय कछुओं को सामूहिक नेस्टिंग के लिए आकर्षित किया जा सके। प्रस्तुत अध्याय में 9 उपयुक्त कारकों का वर्णन किया गया है जबकि पास के कुछ क्षेत्र जहाँ 5–6 उपयुक्त घटक/कारक मौजूद हैं, को भी कछुए की नेस्टिंग के लिए तैयार किया जा सकता है जिसे अन्य उपद्रवकारियों से मुक्त रखा जा सकता है। इस अध्ययन ने यह भी बताया है कि स्थलाकृतियों में परिवर्तनशीलता ही कारण है कि नासी में भी नेस्टिंग क्षेत्र बार–बार बदलता रहा। अतः वर्तमान नष्ट होते रुकेरी को बचाने के लिए समान वातावरण के नए क्षेत्रों के पहचान अवश्य की जाए।

अंतरिक्ष उपयोग में रिसोर्ससैट–शृंखला के प्रतिबिंबन सिद्धांत की व्याख्या और सुदूर संवेदित अनुप्रयोगों आंकड़ों के आंकलन, संसाधन, और प्रस्तुतीकरण में कुशल भूमिका

विवेक शर्मा, नेहा गौड़, डी धर, तथा आर रामाकृष्णन
अंतरिक्ष उपयोग केंद्र, अहमदाबाद, गुजरात

प्रस्तावना

अंतरिक्ष उपयोग में उपग्रहों के द्वारा प्रेषित आंकड़ों के अभिग्रहण, प्रस्तुतिकरण, और शीघ्र वितरण पर हमेशा से जोर दिया जाता है। प्रयोक्ताओं की आवश्यकता पूर्ति और इन आंकड़ों के व्यापक इस्तेमाल हेतु विश्वस्तर पर कई प्रयोग होते रहे हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने सुदूर संवेदित अनुप्रयोगों के लिए आवश्यक आंकड़े उपलब्ध कराने के लिए सुदूर संवेदी उपग्रह प्रक्षेपित किए हैं। प्रस्तुत लेख में रिसोर्ससैट-1 और रिसोर्ससैट-2 के तीन कैमरे एलआईएसएस–3(LISS-3), एडब्ल्यूआईएफएस (AWiFS) और एलआईएसएस-4(LISS-4) के प्रतिबिंबन सिद्धांत, आंकड़ों के अभिग्रहण, प्रस्तुतिकरण की व्याख्या की गई है, इसके उपग्रह चित्रण, उपग्रह संसाधन, ऑनबोर्ड पैकैजिग, भूकेंद्री प्रक्षेपण, आंकड़ो के संग्रहण और आंकड़ो संसाधन के बारे में बताया गया है। तुलात्मक अध्ययन के साथ–साथ तकनीकी उन्नयन और आंकड़ा उत्पाद जनन शृखंला की विविधता और आंकड़ा अनुप्रयोगों पर प्रकाश डाला गया है।

रिसोर्ससैट विशेष

रिसोर्ससैट–1 (आरएस 1) और रिसोर्ससैट–2 (आरएस 2) भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के पृथ्वी के भू–संसाधन अथवा प्राकृतिक संसाधन संबंधी अनुप्रयोगों के लिए आवश्यक आंकड़े उपलब्ध कराने वाले रिसोर्ससैट शृंखला के सदस्य है। आरएस 1/आरएस 2 प्रमुखतः प्राकृतिक संसाधन संबंधी अनुप्रयोगों के लिए प्रतिबिंबित आंकड़े भूकेंद्री को प्रक्षेपित करता है। इसमें रात के समय आंकड़ा प्रेषित करने की क्षमता तो है, लेकिन रात में प्रतिबिंबिन संभव नहीं है क्योंकि यह सक्रिय संवेदक नहीं है, इसलिए ओबीएसएसआर (OBSSR ऑनबोर्ड ठोस–अवस्था रिकार्डिंग और डंप) में एलआईएसएस4 (LISS-4 पूर्ण 70 किमी कवरेज) स्वरूप का विशेष प्रयोग किया गया है। आरएस 1/आरएस 2 में तीन कैमरे हैं– एलआईएसएस 3/एलआईएसएस 4/एडब्ल्यूआईएफए। रिसोर्ससैट शृंखला के नीतभार पुश–ब्रूम तकनीक पर कार्य करते हैं, जिसमें एक निश्चित संख्या के डिटेक्टर एक क्रम में चित्रण करके ऑनबोर्ड इलेक्ट्रानिक के द्वारा पेकेज्ड रॉ आँकड़े ऑनबोर्ड मेमरी बफर में रख देते हैं! इसके बाद इन आंकड़ा को धरती पर स्थित भूकेंद्र पर प्रक्षेपित कर दिया जाता है। वास्तविक समय के आँकड़ा स्थानांतरण में भूकेंद्र पर स्थित एंटेना द्वारा उपग्रह के अपने अवलोकन/ट्रेसिंग परिधि में आने पर, भूकेंद्र स्थित आँकड़ा अधिग्रहण व्यवस्था से इन आंकड़ा को टेप्स पर अथवा रेडी–सिस्टम्स पर स्टोर किया जाता है। यदि उपग्रह भूकेंद्र पर स्थित एन्टेना के निरीक्षण परिधि में नहीं होता है तो उसके द्वारा लिए गए चित्रों को मेमरी OBSSR ओबीएसएसआर ऑन बोर्ड सोलिड स्टेट रिकोर्डर, में स्टोर करके रखा जाता है। बाद में इन आंकड़ा को भूकेन्द्र पर

paper 306.indd 1 10-11-2013 12:10:13

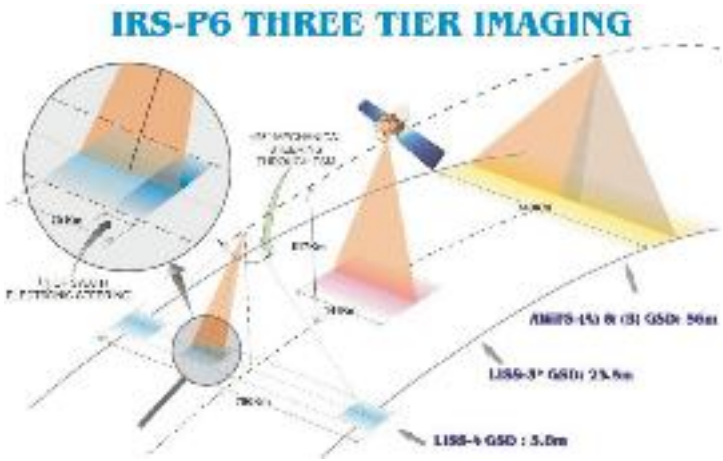

चित्र 1. हाई–रिज़ोल्यूशन (5.8 m) **और लो–रिज़ोल्यूशन वाइड स्वेथ एवं लेस रिपेटिवीटी** (340 km **और 5 दिन) मिशन के बारे में बताया गया है।**

प्रक्षेपित कर दिया जाता है। इसके दो फायदे हैं–(i) (एक तो जिस जगह के चित्र लेना हो, उस जगह यदि भूकेंद्र नहीं है, तो उन आंकड़ा को भूकेंद्र के परिधि में आने पर भेजा जा सकता है, (ii) L4FMX जैसे संवादकों के चित्रण और डेटा प्रक्षेपण में इसके प्रयोग उल्लेखनीय है। चित्र–1 में इन संवेदकों के तीन स्तर के हाई–रिज़ोल्यूशन (5.8 m) और लो–रिज़ोल्यूशन वाइड स्वेथ एवं लेस रिपेटिवीटी (340 km और 5 दिन) चित्रण के बारे में बताया गया है।

आंकड़ा प्रोसेसिंग के बारे में लेवल '0'/'1'

कम्प्यूटर हार्डवेयर प्रणालियों में अद्यतन तकनीक के आगमन के साथ अनेक परिवर्तन होते है जिनसे आंकड़ा संसाधन और अंकड़ों के साथ–साथ प्रस्तुतीकरण के सिद्धांत भी बदलते जाते है। जैसे आरएस2 में डीपीसीएम का प्रयोग, जोकि ऑनबोर्ड और ऑन–ग्राउंड प्रोसेसिंग में किया गया है। ऑनबोर्ड प्रोसेसिंग के बाद आंकड़ा बीडीएच (बेस डेटा हेन्डलिंग) इन्टरफेस के द्वारा एन्सिलेरी आंकड़ों के साथ पेक और रि–एरेन्ज होकर बिट्स के ऐनालोग सिग्नल के माध्यम से भूकेंद्र तक आते हैं। भूकेंद्र पर स्थित ग्राउंड सेगमेंट इन बिट्स को सीरिज इनपुट लेकर फ्रेम्स में परिवर्तित करता हैं। इसमें सबसे पहले फ्रेम डिटेक्शन, फ्रेम सेपरेशन, डिकम्प्रेशन और सेन्सर वाइज एचिवल होता है। इसके बाद प्रिप्रोसेसिंग प्रारंभ होती है, जिसमें एन्सिलरी आंकड़ों को अलग करके उनके द्वारा आंकड़ा वेलिडेशन और इवेल्यूशन होता है। आरएस 1/आरएस 2 के LISS3/ AW और LISS 4 के भिन्न आगे दिए गए तालिका में तुलना दिखाई गई हैं। आरएस 1/आरएस 2 में एडब्ल्यूआईएफएस के एक क्रमवीक्षित–रेखा में एलआईएसएस 3 के 3 क्रमवीक्षित–रेखा आती है। LISS-4 FMX (70 km) में डेटा रेट तीन बैंड का अधिक हो जाता है इसलिए 1 बैंड सही समय में और बाकी 2 बैंड SSR में आते हैं। एलआईएसएस 4 SMX में तीनो बैंड एक साथ एक क्रमवीक्षित–रेखा में पैक होकर आते हैं। आरएस 1 L3 कैमरे में 6000 पिक्सल डिटेक्टर हैं। हर एक पिक्सल 10 बिट तीव्रता की आंकड़ा वेल्यू र्दशाता है। इसके सभी 6000 डिटेक्टर्स प्रतिबिंबित करके एक क्रमवीक्षित–रेखा (scan-line) बनाते हैं। इसके बाद इस एक क्रमवीक्षित–रेखा पर पिक्सल (re-arrangement) करके DPCM सिद्धांत लगाया गया है, यहाँ प्रत्येक 4 पिक्सल की ग्रे तीव्रता को DPCM से (7 bit) का पिक्सल बनाया गया है।

paper 306.indd 2 10-11-2013 12:10:13

DP1 + DP2 + DP3 + DP4 + DP5 + DP6 + DP7 + DP8

(REF) (REF)

(P1-P3 + (P2-P4)+DP3+(P4-P6)+(P3-P5)+DP6+(P5-P7)+(P6-P8)

DPCM में 7 बिट बनाना के लिए DP1 और DP3 का अंतर निकालकर अंतर को -32 से 31) तक quantize करके एक फारवर्ड 'लूक अप टेबल' लगाते हैं और फिर इन बिट्स को पेकेज कर देते हैं। इस तरह REF पिक्सल प्रेषित की जाती है । साथ ही यह बात ध्यान में रखने लायक है कि पिक्सल की कुल bit संख्या भी कम हो गई है जैसे कि कुल bits पिक्सल = 7+7+7+10 = 28 जबकि वास्तविक बिट संख्यात्र 10+10+10+10=40 । लेवल 0 में आँकड़े आने पर बिट अनपेकिंग के साथ 'रिवर्स' लूक अप टेबल लगाकर वास्तविक पिक्सल (10bit) के नज़दीकी DN काउन्ट बनाया जाता है। इस प्रकार L4 में भी DPCM और एडब्ल्यूआईएफएस में MLG का प्रयोग किया गया है। आरएस 1 में गेन लगाकर बिट्स के संख्या को कम जाता है।

आरएस 1/आरएस 2 के नीतभार

Swath	एलआईएसएस 3/LISS-3 140 km	एलआईएसएस 4/LISS-4 70km/23km	एडब्ल्यूआईएफएस /AWiFS 370 km
Bands	4 B2 0.52-0.59 B3 0.62-0.68 B4 0.77-0.86 B5 1.55-1.70	3 B2 0.52-0.59 B3 0.62-0.68 B4 0.77-0.86	4 एलआईएसएस3 जैसे

आरएस 1/आरएस 2 के नीतभार/operational differences

	आरएस 1	आरएस 2	**Remarks**
Compression	-NA-	DPCM/MLG	DPCM for L3/L4 MLG for AWiFS
Encryption	-NA-	YES	कच्चे आंकड़ों के अभिग्रहण के लिए
Quantization	आरएस 17/10 bit	बेहतर quantization आरएस2 10/12bit	
mode	-NA-	70 kms FMX	आरएस1 में 23 कि.मी.
Gain/Offset	Gain आधारित	-NA-	इलेक्ट्रानिक स्वीचिंग आरएस1

आरएस 1/आरएस 2 उत्पाद निर्माण

आरएस 1/आरएस 2 प्रमुखतः भू–संसाधन संबंधी अनुप्रयोगों के लिए प्रतिबिंबित आंकड़े भूकेंद्री को प्रक्षेपित करता हैं। किसी भी प्रयोक्ता द्वारा चाहे गए उत्पाद को सर्वप्रथम एक कार्यादेश में विश्लेषित किया जाने के बाद "संसाधन और उत्पाद जनन शृंखला" की पूर्व–निर्धारित प्रक्रिया से उत्पाद बनाता है। इसमें प्रतिबिंबित आंकड़ों के साथ मेटा–आंकड़े (सह–आंकड़े) भी उपलब्ध होते हैं। इसके बाद इन्हें एक पूर्व–निश्चित उत्पाद फार्मेट में, जो कि पदक्रम आंकड़ा फार्मेट/geotiff है, आंतरिक फार्मेटिंग के बाद CD/DVD पर उपभोक्ता को दिया जाता है। सर्वप्रथम कार्यादेश से उपयुक्त पैरामीटर और कच्चे आंकड़ों के साथ radiometrically सही आंकड़े तैयार किए जाते हैं। उसके बाद gridgen ग्रिड और resampling होती है। तत्पश्चात उत्पादजनन प्रक्रिया आंतरिक

फार्मेटिंग के साथ पदक्रम आधारित/geotiff उत्पाद बनाती है। ये उत्पाद प्रयोकर्त्ता द्वारा दिए गए दिशानिर्देश पर आधारित है जैसे उत्पाद स्तर, विशेष उत्पाद इत्यादि। आरएस 1/आरएस 2 आंकड़ा संसाधन में परंपरागत संसाधन प्रक्रिया के साथ आईआरएस कोर पूर्व–प्रक्रिया इन्जिन आधारित प्रक्रिया का उपयोग किया गया है। जिससे आंकड़ा संसाधन के प्रक्रिया समयों में विशेष लाभ और अनुप्रयोगों के उपयोग के लिए उपभोक्ताओं को आंकड़े उत्पाद शीघ्र उपलब्ध होते हैं आईआरएस कोर पूर्व–प्रक्रिया इन्जिनः एक dynamically shareable लाइब्रेरी है और वस्तु–मूलक(object oriented) सिद्धांतों पर आधारित है, का प्रयोग किया गया है। इसका अंकन C/C++में किया गया है, यह आईआरएस चित्रित आंकड़े पूर्व–प्रक्रिया के लिए मूलभूत संरचना प्रदान करती है।

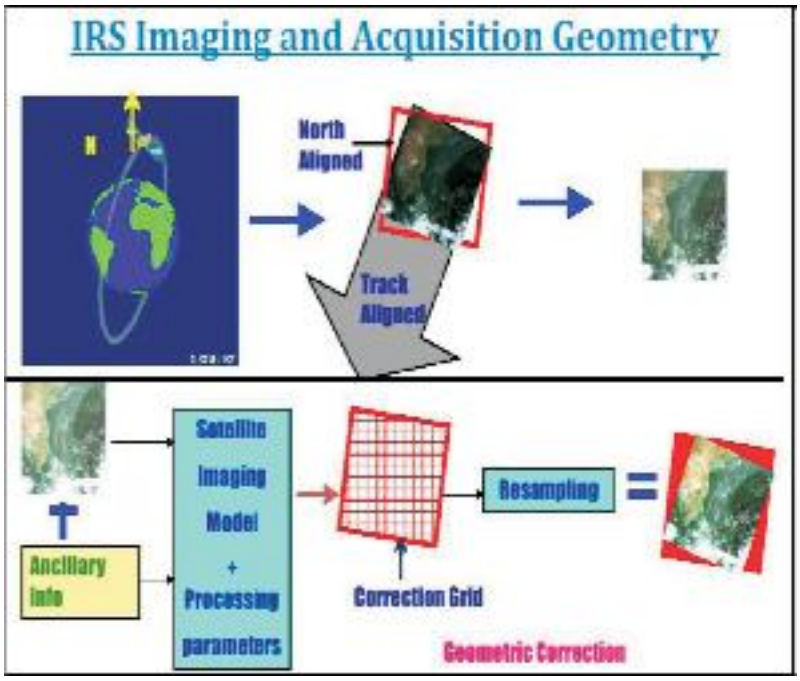

चित्र 2 + (सह–आंकड़े) =क भास्कर; भास्कर x reference = bias; **भास्कर+** bias + re-sampling = **उत्पाद तथा मेटा–आंकड़े।**

इसकी प्रमुख विशेषता है इसकी scalability तथा क्षमता जिससे यह जटिल–चित्र–संसाधन प्रक्रिया के लिए एक ठोस आधार प्रदान करती है, जिसकी आवश्यकता आईआरएस संवेदक के आंकड़ा उत्पाद जनन् व्यवस्थाओं के अनेक चरणों में पडती है। लाइब्रेरी मे चित्र–handling, रूपांतरण (transformations), पिरामिड बनाना, Elevation सहायता के लिए महत्वपूर्ण कक्षाएं है। आधुनिक कम्प्यूटर प्रणाली बहु–प्रोसेसर (Symmetric multi-processor) और बहु–कोर (Multi-core) क्षमता रखती है। इसके प्रयोग से आरएस 1/आरएस 2 के उत्पाद जनन हेतु बहु–कोर प्रोसेसर की क्षमताओ का बेहतर प्रयोग किया गया है। आईआरएस पूर्व–प्रक्रिया इन्जिन को थ्रेड सहायक बनाने हेतु पुर्न–अभियांत्रिकी के साथ केवल elevation manager को छोड़ कर लाइब्रेरी की हर कक्षा थ्रेड पुनःप्रवेशित है।

paper 306.indd 4 10-11-2013 12:10:14

चित्र 2 में उत्पाद जनन् माडल तथा resmapling को बताया गया है। आरएस 1/आरएस 2 के आंकड़ा संसाधन को प्रवाह–चित्र (चित्र–3) में दिखाया गया है। इसमें कार्यादेश से उपयुक्त पैरामीटर ले कर सर्वप्रथम संवेदक माडल बनाया जाता है। उसके बाद इसके reference-image को खोजा जाता है, reference मिलने पर geometric माडल से उसके accuracy bias निकाले जाते हैंए जिन्हें मॉडल सही resampling कर 2/3/4 बैंड के आंकड़े की प्रक्रिया करते है। हर एक scene के लिए माडल से क्रमवीक्षित–रेखा/पिक्सल (scan/pixel) के लिए ग्रिड बना के उत्पाद तथा मेटा–आंकड़े (सह–आंकड़े) उत्पाद बनाया जाता है।

पूर्व–पास प्रोग्रामिंग एवं चित्रण

उपग्रह के पूर्व नियत स्थान पर पुनरअवलोकन करने की क्षमता से ये सुनिश्चित किया जा सकता है कि पृथ्वी के किस भाग पर उपग्रह किस दिन आयेगा। इस तथ्य का लाभ पूर्व गणना से करके उसके द्वारा चित्रण के लिए प्रि–पास प्रोग्रामिंग अर्थात पूर्व–पास अनुशासन तालिका बनायी जाती है! प्राथमिकता के आधार पर और संवेदकों के swath के आधार पर पृथ्वी के चित्रण के प्लानिंग पहले से की जा सकती है। इसमें संवेदक जैसे एलआईएसएस4 को एक निश्चित tilt के साथ और LISS-3/AWiFS को उनके पाथ/रॉ के साथ प्रयोग चित्रण के लिए उपयोग में बताया गया है।

एक पूर्वानुमान के लिए सॉफ्टवेयर में एक सप्ताह या कभी–कभी एक माह का पूर्वानुमान का दिये गए आँकडा अधिग्रहण प्लान बनाकर रखा जाता है। आवश्यकता पडने पर पास के अंतिम 24 घंटों में भी उपग्रह द्वारा आंकडा अर्जन किया जा सकता है, इसलिए पर्याप्त जानकारी और उपग्रह पर ऑनबोर्ड प्रोसेसिंग और प्लान लोडिंग के आधार रखे जाते हैं। आँकड़ों के वितरण के लिए एनआरएससी जैसे केंद्र वेबसाइट पर आंकड़ों के उपलब्ध वेबपोर्टल के माध्यम से दिखते हैं। प्रयोक्ता ब्राउस सुविधा से इन आंकड़ा के बारे में और जानकारी प्राप्त कर आर्डर दे सकता है। चित्र–4 में इस पूरी चेन पर प्रकाश डाला गया है।

उत्पाद पदक्रम फार्मेट/geotiff और आंकड़ा व्यवस्था

यह एक श्रेणीबद्ध फार्मेट है जिसमें वैज्ञानिक आंकड़ों के एक या ज्यादा सेटस् को एक निश्चित प्रारूप में और निश्चित क्रम से दिखाया जाता है। इसके आंकड़ा सेट में चित्रित आंकड़े भी हो सकते हैं और सह–आंकड़े भी हो सकते हैं। एक पदक्रम आंकड़ा फाइल में प्रमुखतः एक समूह संरचना होती है जिसमें कई सारे समूह और आंकड़ा सेट हो सकते हैं। एक आंकड़ा सेट में बहुआयामी array हो सकते हैं, जिनके साथ कई विशेषण संबद्ध किए जा सकते हैं। पदक्रम में विश्लेषित शब्दों के साथ हम गुणांक भी जोड़ सकते हैं जो उसके बारे में विस्तृत जानकारी देता है, जैसे–उसके नाम अथवा उसके आंकड़ा सेट के परिमाप, आंकड़ा प्रकार, संपीडन, अर्थ इत्यादि। मूलतः चार स्तरों पर परिभाषित होने वाली श्रेणीबद्ध आंकड़ा व्यवस्था में समुचित लचीलापन देखा जा सकता है। सबसे उच्च स्तर पर बहुत सारे अनुप्रयोगिक घटक होते हैं जिनसे कोई भी प्रयोक्ता वैज्ञानिक आंकड़ों को देख सकता है, उसका विश्लेषण कर सकता है और एक फार्मेट से दूसरे फार्मेट में रूपांतरण कर सकता है। geotiff format अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य फारमेट है जिसमें संपीडन के साथ–साथ geometric tags के रूप में रखी जाती है। आरएस 1/आरएस 2 उत्पादों के तीन स्तर हैंः

प्रथम – साधारण उत्पाद जैसे–raw/rad उत्पाद (आंतरिक प्रयोगों के लिए)।।

द्वितीय – sensor wise geotiff/georef/rpc ya orthokit उत्पाद।

तृतीय – विशेष उत्पाद जैसे merge /mosaiced/orthokit उत्पाद।

paper 306.indd 5 10-11-2013 12:10:15

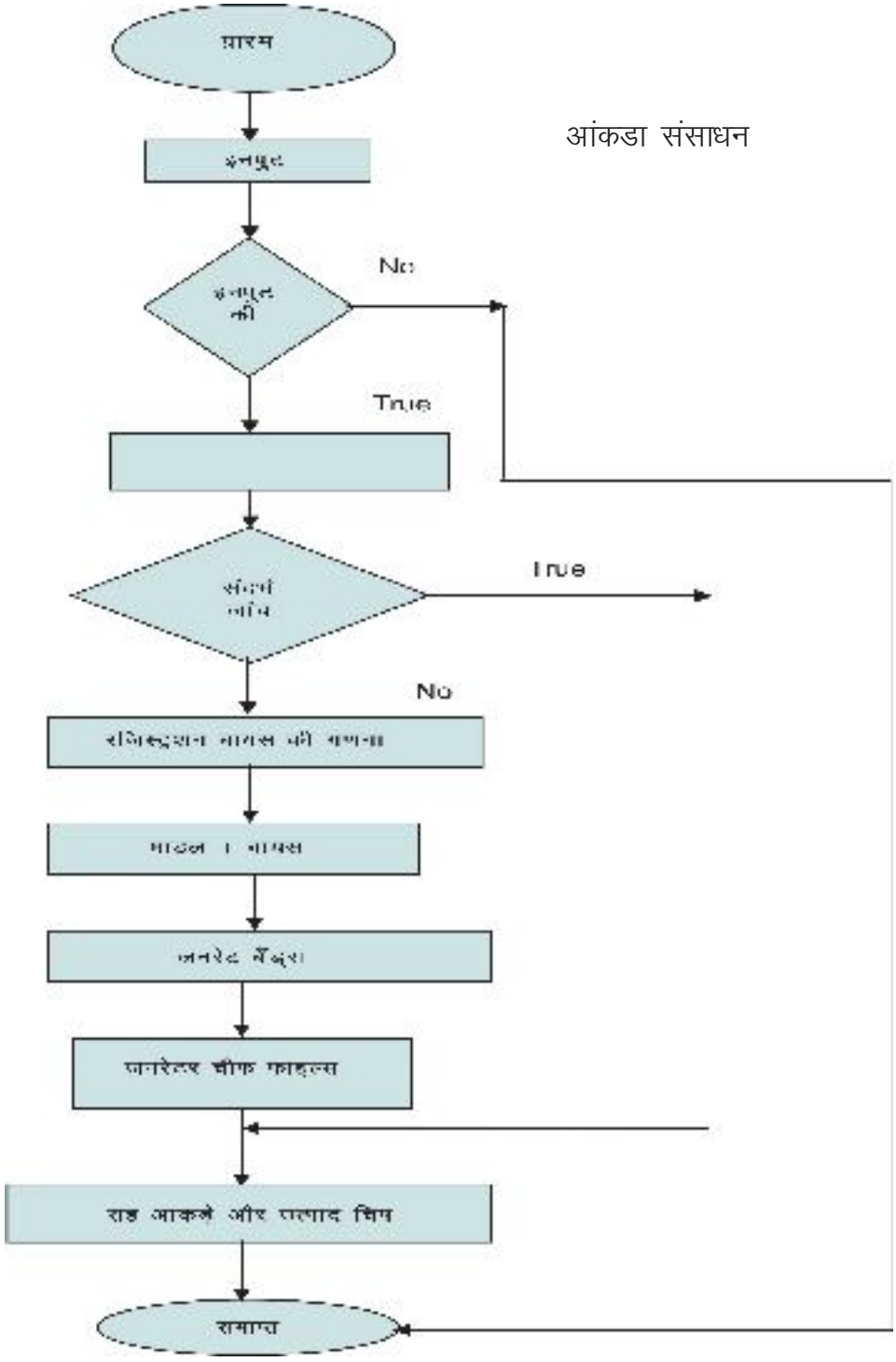

चित्र 3. आंकडा संसाधन।

paper 306.indd 6 10-11-2013 12:10:15

पदक्रम फार्मेट में पूर्वनिर्धारित प्रमुख समूह इस प्रकार हैं–उत्पाद का नाम–इसके विशेषणों में कई विस्तृत जानकारियाँ होती हैं जैसे–दिनांक / पथ / अक्षांश–देशांतर / अनुक्रम / संतृप्त पिक्सल / भूकेंद्र पंक्ति इत्यादि। क्रमवीक्षित रेखा विशेषण–समय; video आंकड़े–संवेदक के 1/3/4 बैंड के आंकड़े; निगम्य आंकड़े–कक्षीय गति, रोल / पिच / Yawइत्यादि; अमिनमन आंकड़े–अमिनमन आंकड़े; इन उत्पादों का प्रयोग वन अग्नि अध्ययन, शहर प्लानिंग, ग्लेशियर अध्ययन, भूगर्भ संसाधन, इत्यादि के लिए किया जाता है ।

निष्कर्ष

अद्यतन तकनीक के साथ बदलते हुए परिवेश में उपग्रहों के द्वारा प्रेषित आंकड़ो के संग्रहण, संवर्धन, और प्रयोग हेतु अनेक नवीन फार्मेट, नवीन डाटा प्रोसेसिंग तकनीक उपयोग में लाये जाते रहे हैं। अंतरिक्ष उपयोग के तेजी से बदलते परिदृश्य में उपग्रहों के साथ–साथ उनके द्वारा प्रेषित आंकड़ों के अभिग्रहण, प्रस्तुतिकरण, और वितरण के सिद्धांत भी बदलते रहे हैं। प्रयोक्ताओं की आवश्यकता पूर्ति और इन आंकड़ों के व्यापक इस्तेमाल हेतु इसके आंकड़ों से जनित उत्पादों में नवीनीकरण आवश्यक है। इसरो का प्रयोग इस बात की ओर इंगित करता है कि इसरो सुदूर संवेदन आंकड़ों के संसाधन, वितरण, और प्रयोग में अंतर्राष्ट्रीय स्तर के साथ साम्यता हेतु कटिबद्ध है। आरएस 1 / आरएस 2 पिछले लगभग 10 वर्षों से निरंतर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रेषित आंकड़ों के द्वारा इसरो का नाम रोशन कर रहे हैं।

संदर्भ

1. स्कोट, जे आर (ईडी) 1997 रिमोट सेन्सिंगरू द इमेज चेन एप्रोच. न्यूयोर्करू ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. विवेक शर्मा, देबज्योति धर, आर रामकृष्ण, सेन्सर मोडलिंग एण्ड इमेज रेक्टिफिकेशन ऑन–द–फ्लाय सैक / सिपा / डीपीएसजी / टीएन–34 / जुलाई 2008.
3. बी एन बशर्द, ई,लेज़ोवास्का एण्ड एच. लेवी प्रेस्टोरू ए सिस्टम फार ऑब्जेक्ट ऑरिएन्टेड पेरेलल प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर. प्रेक्टिस एण्ड एक्सपिरियन्स,(18;8):713.732, अगस्त 88.
4. आइ आर एस पी6 यूज़र हेन्ड बुक।
5. इमेज रेफरन्सिग एण्ड सीन कोम्पुटेशन फार इन्डियन रिमोट सेन्सिग स्पेसक्राफ्ट. टी. रविन्द्र बाबु, एसवी राव, एमएस जयश्री, एस रामबद्रन ।
6. लिनियर पुशब्रूम कैमरा, राजीव गुप्ता, आर.आई. हार्टली आईईईई ट्रान्ज़ेक्शन ऑन पैटर्न एनालिसिस एण्ड मशीन इन्टेलिजन्स वॉल्यूम 19 इशू 9, सितम्बर 1997.

paper 306.indd 7 10-11-2013 12:10:17

मौसम अनुसंधान हेतु इसरो द्वारा प्रक्षेपित उपग्रहों के आंकड़ा संसाधन की व्याख्या और सरल प्रस्तुतीकरण एवं सार्वजनिक अनुप्रयोगों में कुशल भूमिका

नेहा गौड़, विवेक शर्मा, शेख साज़िद मोहम्मद, निकुन्ज दर्जी, डी धर, तथा आर रामाकृष्णन
[illegible]

प्रस्तावना

मौसम एक शब्द है जिसका प्रभाव इस सृष्टि में उपस्थित सभी जीव–जंतुओं पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। प्राचीन काल से ही मानव, मौसम के बारे में अनुमान लगाने के अलग–अलग उपाय खोजता रहा है।

आधुनिक युग में मौसम की जानकारी सेटेलाइट द्वारा सुदूर संवेदित उत्पादों के माध्यम से की जाती है। मौसमविद, सेटेलाइट सुदूर संवेदन का उपयोग कर, वातावरण में मौजूद आर्द्रता, नमी, धूल, वाष्प के कण, बादल एवं तापमान का पता लगाते है। इन सभी आंकड़ों को एकत्रित कर विभिन्न उत्पाद बनते हैं जिनका उपयोग मौसमविद्, मौसम का अनुमान एवं पूर्वानुमान लगाने में करते हैं।

इस तकनीकी पत्र में इस संपूर्ण प्रोसेस का ब्यौरा दिया गया है। इसरो ने मौसम की जानकारी देने के लिए अभी तक कई सेटेलाइट प्रक्षेपित किए हैं। कल्पना–1 एवं इन्सैंट–3 ए उनमें से कुछ जीवित सेटेलाइट हैं जिनका प्रयोग भारतीय मौसम विभाग, मौसम का पूर्वानुमान लगाने के लिए करता है।

इस तकनीकी पत्र में इन दोनों सेटेलाइटों में मौजूद उपकरण उनकी कार्यप्रणाली, उनसे बनने वाले उत्पादों और उनके अनुप्रयोग की जानकारी दी गई है। प्रथम सेक्शन में कल्पना–1 एवं इन्सैट–3, के उपकरणों एवं इलेक्ट्रोमेग्नेटिक स्पेक्ट्रम, जिसमें वे काम करते हैं, की व्याख्या की गई है। कार्यप्रणाली द्वितीय सेक्शन में इन उपग्रहों से लिए गए चित्रों की प्रोसेसिंग का ब्यौरा दिया गया है। तृतीय सेक्शन में इन उपग्रहों उत्पाद के बारे मे जानकारी दी गई है। चतुर्थ में अनुप्रयोग उत्पादो का अनुप्रयोग बताया गया है। पंचम भाग मे भविष्य में मौसम अनुसंधान के लिये प्रक्षेपित होने वाले उपग्रहों का ब्यौरा दिया गया है।

कल्पना–1 एवं इन्सैट–3

कल्पना–1 एवं इंसैट 3ए, भू–स्थिर कक्षा में 36000 किमी की ऊँचाई पर क्रमशः 74°E एवं 93.5°E देशान्तर पर स्थापित हैं। ये दोनों ही उपग्रह आधे घंटे के अंतराल पर पृथ्वी की पूर्ण डिस्क के चित्र पृथ्वी पर भेजते हैं।

कल्पना–1 में मुख्य उपकरण वेरी हाई रिसोल्युशन रेडियोमीटर (वीएचआरआर), विजिबल, आई आर एवं वाटर वेपर चैनल में कार्य करता है। निम्निलिखित तालिका में इन चैनलों की रेंज बताई गई है।

paper 307.indd 1 10-11-2013 12:18:52

कल्पना 1. इंसैट–3 ए वी एच आर आर।

क्रं.स.	नीतभार	चैनल	स्पेक्ट्रम बैंडविथ µ m	विभेदन
1.		दृश्य	0-55—0-75	2 कि.मी. x 2 कि.मी.
2.	वी एच आर आर	अवरक्त	10-5—12-5	8 कि.मी. x 8 कि.मी.
3.		जल वाष्प	5-7—7-1	8 कि.मी. x 8 कि.मी.

कल्पना–1 में विजिबल चैनल का रेसोल्यूशन 2 किमी वाटर वेपर एवं आई आर का रेसोल्यूशन 8 कि.मी. होता है । वी एच आर आर उपकरण विस्क ब्रूम तकनीक पर काम करता है एवं स्कैन की मदद से पृथ्वी की पूरी डिस्क एवं कोल्ड स्पेस का चित्रण करता है ।

इंसैट–3ए में वीएचआरआर (1.1) एवं सीसीडी (1.2) उपकरण लगे होते हैं । इनके चैनल रेंज की तालिका जिसमें रेसोस्यूशन भी मौजूद है, निम्नलिखित है ।

निम्न चित्र मे कल्पना एवं इन्सेट–3ए के वी एच आर आर नीतभार की चित्रण प्रक्रिया बताई गई है।

तालिका 2 इंसैट 3. ए सीसीडी।

क्र.सं.	नीतभार	चैनल	स्पेक्ट्रम बैंडविथ µ m	विभेदन
1.	सीसीडी	लाल	0-62 —0-69	1 कि.मी. x 1.कि.मी.
2.		एनआईआर	0-77—0-86	
3.		एसडब्ल्यूआईआर	1-55—1-77	

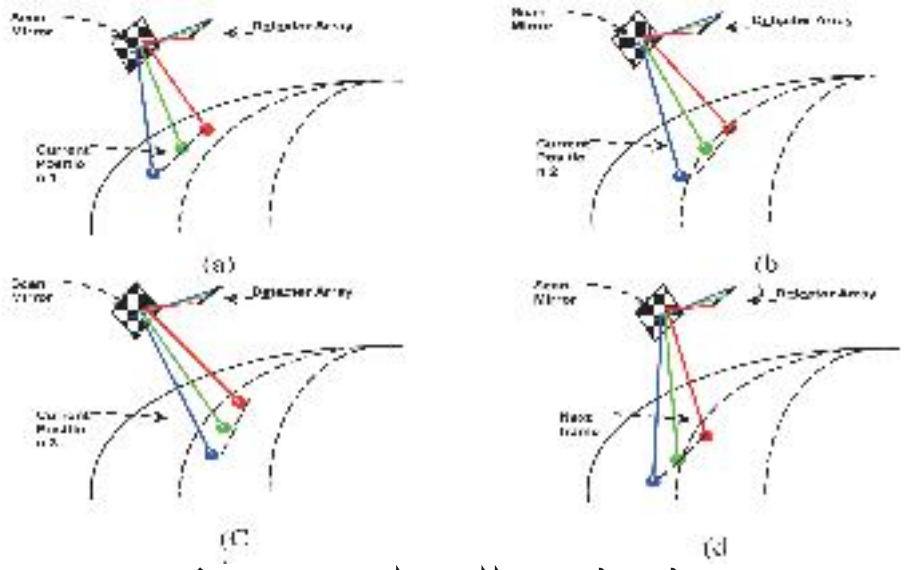

चित्र 1. कल्पना एवं इनसेन–3ए सेटेलाइट की चित्रण प्रक्रिया।

भू–स्थिर सेटेलाइट के द्वारा चित्रण स्केन मिरर तकनीक से किया जाता है। नीतभार मे डिटेक्टर श्रृंखला उत्तर–दक्षिण दिशा मे लगी होती है जो पृथ्वी का चित्र इसी दिशा मे लेती है। क्योंकि उपग्रह पृथ्वी से हमेशा स्थिर दिखता है, इसी कारण पृथ्वी व उपग्रह के बीच तुलनात्मक गति देकर पूरी डिस्क का चित्रण किया जाता है। स्केन मिरर पूर्व–पश्चिम दिशा में चित्रण करता

paper 307.indd 2 10-11-2013 12:18:52

हे इसे एक फ्रेम का नाम दिया जाता है एवं इस दिशा मे चित्रण को फास्ट स्केन कहा जाता है। हर एक फ्रेम के बाद मिरर को उत्तर–दक्षिण दिशा में नीचे किया जाता है इसे स्लो स्केन कहा जाता है। इस पूरी प्रक्रिया के बाद पृथ्वी की सम्पूर्ण डिस्क का चित्र प्राप्त होता है।

इंसैट चित्रों की प्रोसेसिंग

इंसैट आंकड़ा प्रक्रिया निकाय कच्चा (रॉ) आंकड़ा, क्रमबद्ध स्त्रोत से प्राप्त करता है। इनकी प्रक्रिया कर, यह निकाय अतिगुणीय डाटा प्रोडक्ट एवं विभिन्न परिणाम संबंधी भू–भौतिकीय उत्पाद बनाता है। मौसमविद् इन भू–भौतिकीय उत्पादों का उपयोग विभिन्न अनुप्रयोगों में करते हैं।

आईएमडी (भारतीय मौसम अनुसंधान, दिल्ली) में आई एम डी पी एस नामक मौसमीय उत्पाद प्रक्रिया निकाय की स्थापना की गई है, जो कल्पना–1 एवं इंसैट–3 ए के वर्तमानकालिक आंकड़ों की प्रक्रिया कर उत्पाद बनाता है, एवं उसे इन्टरनेट एवं दूरदर्शन पर प्रसारित करता है। इस भाग में इसी प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है।

निकाय का सिंहावलोकन

मौसमीय आंकड़ा प्रक्रिया निकाय निम्न निकायों से मिलकर बना है।

आर एफ निकाय : सेटेलाइट से आंकड़ा प्राप्त करने एवं उसे बिना किसी नुकसान के आंकड़ा स्वागत निकाय तक पहुँचाने का काम करता है।

आंकड़ा स्वागत एवं शीघ्रवृष्टि निकाय (डीआर निकाय) : यह निकाय प्राप्त किए आंकड़े का ऐतिहासिक अभिलेख करता है, उसे शीघ्र दर्शाता है, एवं कच्चे आंकड़े को मेटा आंकड़े के साथ डीपी निकाय को भेज देता है। कल्पना–1 एवं इंसैट–3 ए के आंकड़े को अलग–अलग चैनल पर भेज दिया जाता है

आंकड़ा प्रक्रिया निकाय : आंकड़ा प्रकिया निकाय कल्पना–1 एवं इंसैट–3 ए (वीएचआरआर एवं सीसीडी) के आंकड़े का रेडियोमेट्रिक एवं ज्यामितीय सुधार करता है। इस संशोधित आंकड़े से विभिन्न मौसमीय राशियाँ (पैरामीटर) उत्पादित होते हैं।

रेडियोमैट्रिक संशोधन में भू–एवं अंतरिक्ष से प्राप्त आंकड़ो का मानकीकरण किया जाता है। मानकीकरण से अंतरिक्ष में सेटेलाइट पर उपलब्ध उपकरण का कक्षा के तापीय–मेकेनिक वातावरण, रेडियेशन के प्रभाव एवं बढ़ती उम्र के कारण उपकरण की प्रतिक्रिया में परिवर्तन को मापा एवं सही किया जाता है।

ज्यामितीय संशोधन में रेडियोमेट्रिक संशोधित आंकड़े के हर एक पिक्सल पर सेटेलाइट के कक्षीय पैरामीटर का उपयोग कर रीसेम्पलिंग की जाती है। इससे हमे चित्रित आंकड़ो के साथ उनकी भौगोलिक सूचना जैसे हर एक पिक्सल का अक्षांश एवं देशान्तर मिल जाता है। यह सूचना बहुत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि इससे मौसमीय परिवर्तन (बादलों का विचरण चक्रवात, धूल के कण) किस क्षेत्र को प्रभावित कर सकते हैं, इस बात की जानकारी दी जाती है।

इंसैट चित्रों की प्रोसेसिंग का क्रम निम्नलिखित चित्र (2) में दर्शाया गया है।

इंसैट सेटेलाइट के उत्पाद

इंसैट सॉफ्टवेयर मौसम वैज्ञानिकों एवं आम उपयोगकर्ताओं की सुविधा के लिए विभिन्न उत्पाद अलग–अलग संचार माध्यमों के द्वारा उपलब्ध कराता है। यह उत्पाद एचडीएफ फॉरमेट में उपलब्ध कराए जाते हैं। इन उत्पादों की श्रेणियाँ निम्नलिखित हैं स्तर–0–कच्चा आंकड़ा, स्तर–1– संपूर्ण डिस्क, स्तर–2– खण्ड उत्पाद, स्तर– 3– भूभौतिकीय उत्पाद। मुख्य आंकडा उत्पादों का चित्र निम्नानुसार है (चित्र 3)

paper 307.indd 3 10-11-2013 12:18:53

चित्र 2. इंसैट चित्रों की प्रोसेसिंग।

इन बुनियादी उत्पादो के साथ ही कई भू–भौतिकीय उत्पाद भी बनाये जाते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख ओपरेशनल उत्पादो के चित्र 4 में बताये गये हैं।

ए ओ डी से हमें एयरोसोल के घनत्वा का पता लगता है। ओ एल आर से पृथ्वी पर गिरने वाली सूर्य की किरणों एवं बाहर जाने वाले किरणपात का लेखा–जोखा मिलता है। क्यू पी ई हमें पातन (बारिश) की मात्रा बताता है। यू टी एच से उपरी वातावरण की आर्द्रता का अनुमान लगाते है। सी एम वी से बादलों के वेग व दिशा का पता लगता है। और एस एस टी समुद्र की सतह का तापमान बताता है। एन डी वी आई से फसल की वृद्धि के बारे मे पता लगाते हैं।

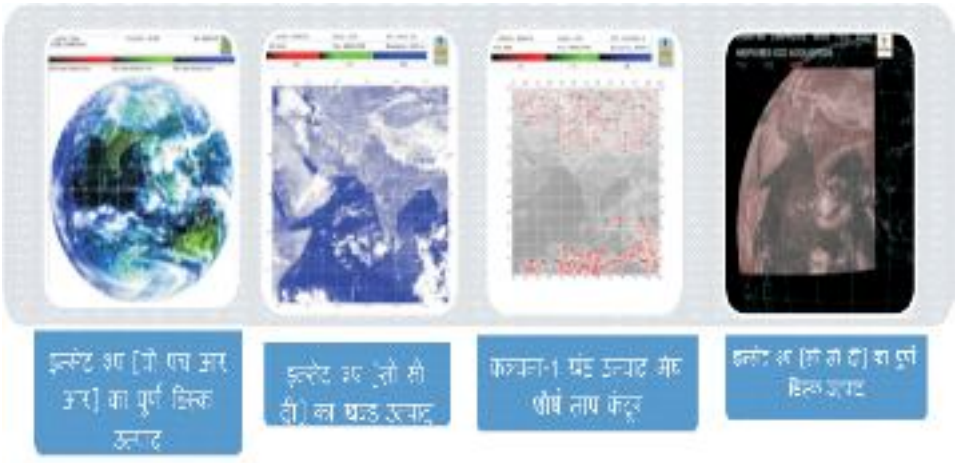

चित्र 3. मुख्य आकंडा उत्पादो का चित्र।

paper 307.indd 4 10-11-2013 12:18:53

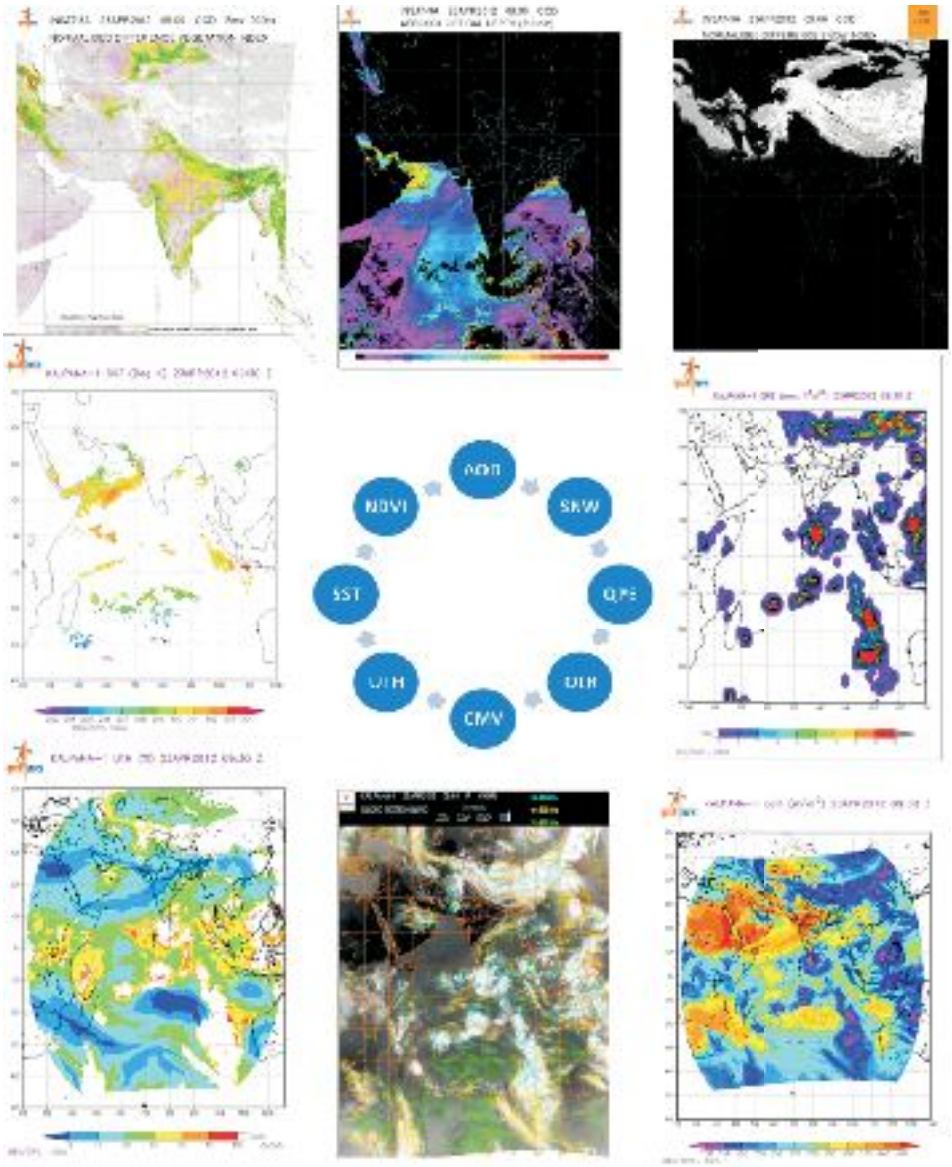

चित्र 4. मुख्य भूभौतिकीय उत्पादों के चित्र।

भविष्य–इंसैट–3–डी

कल्पना–1 ने अभी अभी दस वर्ष पूरे किये हैं। निकट भविष्य में प्रक्षेपित किया जाने वाला इन्सेट–3–डी नये युग का मौसमीय सेटेलाइट है। इसका उद्देश्य है–कल्पना–1 एवं इन्सेट–3ए के मुकाबले महत्वपूर्ण तकनीकी प्रगति करना। यह एक निवारक मिशन है जिसकी मदद से धरती और समुद्र की सतह पर होने वाले मौसमीय परिवर्तनो की लम्बरुपीय प्रोफाइल तापमान, आर्द्रता, व दाब के रूप मे बनाई जायेगी। इनका उपयोग मौसम की जानकारी एवं प्राकृतिक आपदाओ का शीघ्र पता लगाने एवं चेतावनी देने के लिये किया जायेगा।

यह 3–अक्षीय स्थिर, भू–स्थिर सेटेलाइट होगा, जिसमें इमेजर एवं साउन्डर नामक नीतभार लगे होगें। इमेजर मे विजिबल, मध्य–इन्फ्रारेड, वाटर वेपर, एवं तापीय इन्फ्रारेड बैंड के साथ स्थिर चेनल भी होगा जो इसकी उपयोगिता को नया आयाम देगा। साउन्डर मे 18 सैकन्ड चेनल इन्फ्रारेड बैन्ड के हैं एवं 1 विजिबल–बैन्ड चेनल है। इस उपग्रह में स्टार सेन्सर का उपयोग होगा जिससे ज्यामितिय करेक्शनन की शुद्धता और भी बढ जायेगी।

इन्सेट–3–डी में इमेज मोशन कम्पन्सेशन एवं मिरर मोशन कम्पन्सेशन तकनीक लगाई गई है, जिससे अलग–अलग समय पर लिए गये चित्रों को एक के ऊपर एक रजिस्टर किया जा सकेगा। यह तकनीक मौसमविदों के सॉफ्ट्वेयर की कुशलता और बढ़ा देगी। इससे बनने वाले उत्पाद स्वतः ही इन्टरनेट, टी वी, एवं मोबाइल पर भेजे जा सकेंगे। यह उपग्रह देश के मौसमीय परिवर्तन के आंकलन एवं आपदा प्रबन्धन के नये आयाम स्थापित करेगा।

संदर्भ

1. इनसेट – 3 डी पैरामीटर हेंड बुक।
2. इनसेट – 3ए / कल्पना–1 डिजाइन डोक्युमेंट।

paper 307.indd 6 10-11-2013 12:18:56

गैर विस्फोटक पदार्थों का नोदकों/प्रणोदकों के साथ सुसंगतता का परीक्षण

सी नेसामणि एवं सोमनाथ सोनी
गुणवत्ता आश्वासन निदेशालय, खडकी, पुणे, महाराष्ट्र

सारांश

किसी भी पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ सुसंगतता यह बताता है कि दोनों पदार्थों के मध्य किसी प्रकार की रासायनिक अभिक्रिया नहीं हो रही है। अतः किसी गैर–विस्फोटक पदार्थ को किसी प्रणोदक या विस्फोटक के साथ तभी सुसंगत माना जाएगा जब वह पदार्थ, विस्फोटक पदार्थ के साथ कुछ विशेष परिस्थितीयों, तापमान एवं आर्द्रता में साथ रखने पर कोई भी अभिक्रिया नहीं करता है। अन्यथा दोनों पदार्थों को एक दूसरे के साथ असंगत माना जाएगा। यदि विस्फोटक पदार्थ एवं गैर–विस्फोटक पदार्थ आपस में असंगत है तो विशेष परिस्थितियों में रासायनिक अभिक्रिया के वजह से धातुओं में जंग लगना या आक्साइड का जमाव होना, पदार्थों का विखंडित होना, अर्थात टूटना, विस्फोटकों का गुणवत्ता स्तर में गिरावट आना एवं अधिक संवेदनशील विस्फोटक यौगिकों का निर्माण, आदि होते हैं। कई बार असंगतता का प्रभाव तुरंत दिखाई देता है तथा कई बार असंगतता का दूरगामी प्रभाव पड़ता है। पदार्थों की संगतता का प्रभाव एवं समस्याओं के बारे में बताया गया हैं। पदार्थ की संगतता को प्रभावित करने वालें कारकों की चर्चा की गई हैं। संगत पदार्थों के गुण धर्मों को बताया गया हैं एवं नोदकों की संगतता निर्धारित करने हेतु लघुपात्र प्रयोग एवं रजत पात्र प्रयोग का वर्णन किया गया हैं। इनके अलावा कुछ पदार्थों की संगतता के परिणाम भी दिखाए गये हैं।

प्रस्तावना

किसी भी पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ सुसंगतता यह बताता है कि दोनों पदार्थों के मध्य किसी प्रकार की रासायनिक अभिक्रिया नहीं हो रही है। अतः किसी गैर विस्फोटक पदार्थ को किसी प्रणोदक या विस्फोटक के साथ तभी सुसंगत माना जाएगा जब वह पदार्थ विस्फोटक पदार्थ के साथ कुछ विशेष परिस्थितीयों, तापमान, एवं आर्द्रता में साथ रखने पर कोई भी अभिक्रिया नहीं करता है। अन्यथा दोनों पदार्थों को एक दूसरे के साथ असंगत माना जाएगा।

यदि विस्फोटक पदार्थ एवं गैर विस्फोटक पदार्थ आपस में असंगत है तो विशेष परिस्थितियों में रासायनिक अभिक्रिया के वजह से धातुओं में जंग लगना या आक्साइड का जमाव होना, पदार्थों का विखंडित होना, अर्थात टूटना, विस्फोटकों का गुणवत्ता स्तर में गिरावट आना एवं अधिक संवेदनशील विस्फोटक यौगिकों का निर्माण, आदि होते हैं। कई बार असंगतता का प्रभाव तुरंत दिखाई देता है तथा कई बार असंगतता का दूरगामी प्रभाव पड़ता है।

किसी भी अस्त्र–शस्त्र गोला–बारूद आदि जिसमें विस्फोटक एवं प्रणोदक/नोदक आदि के प्राकलन, डिजाईन, विकास, निर्माण एवं भंडारण आदि में पदार्थों के बीच असंगतता की समस्या

Paper 428 edited.indd 1 10-11-2013 12:08:13

आती है। जब हम किसी अविस्फोटक पदार्थ, जैसे धातु, रबर इत्यादि का विभिन्न विस्फोटकों के साथ संगतता का अध्ययन करते है, तब हम इन गोला–बारूद के भंडारण के दौरान संरक्षा के साथ–साथ विभिन्न खतरों का भी अध्ययन करते हैं जिसमें भंडारित शस्त्र/गोला–बारूद का आवांछित क्रियाशील होना, आदि भी शामिल हैं।

गोला बारूद के अनुसंधान, योजना/रूपरेखा एवं निर्माण में पदार्थों की असंगतता को गंभीरतापूर्वक लेना चाहिए। पदार्थों की किसी गंभीर असंगता की स्थिति में, दूरगामी महाविनाशकारी रूप भी देखना पड़ सकता हैं, जैसे गोला बारूद के भंडारण के दौरान एवं भंडारों का विस्फोट होना। अतः पदार्थों के चयन के समय विस्फोटकों के साथ उनका सुसंगतता का परीक्षण/जाँच के लिए उच्चस्तरीय मापदंड एवं विकसित एवं प्रमाणित परीक्षण विधियों का प्रयोग होना चाहिए ताकि लंबे समय में भी होने वाली असंगतता की पहचान हो सके।

पदार्थों की असंगतता का प्रभाव

पदार्थों की असंगतता का तुरंत एवं दूरगामी प्रभाव पड़ता हैं। कुछ प्रमुख प्रभावों को यहां दिखाया गया हैं।

विस्फोटकों का अतिसंवेदनशील होना

गोला बारूद में कुछ असंगत पदार्थों की वजह से इसमें निहित विस्फोटक पदार्थों की संवेदनशीलता बढ़ जाती हैं। जिसमें गोला बारूद का भंड़ारण, रखरखाव, एवं समय से पूर्व विस्फोट होने का खतरा बढ़ जाता हैं।

विस्फोटकों के भौतिक गुणों पर प्रभाव

कुछ विस्फोटक पदार्थों में अशुद्धियों की वजह से या फिर असंगत पदार्थों की उपस्थिति की वजह से उसके भौतिक गुण बदल जाते हैं। जैसे टी एन टी का अशुद्धियों के कारण द्रवित होना/या रिसना।

पदार्थों के गुणों में परिवर्तन

असंगत पदार्थों की वजह से पदार्थों के गुणों में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे प्रणोदकों/नोदकों द्वारा नाइट्रोग्लिसरिन का अवशोषण करना एवं प्लास्टिक के पात्रों के संपर्क में आने पर मुलायम एवं कमजोर होना।

विस्फोटक एवं धातुओं के मध्य रासायनिक अभिक्रिया

कुछ विस्फोटक पदार्थ, कुछ विशेष धातुओं के साथ असंगत होते हैं, एवं समय के साथ आपस में अभिक्रिया कर लेते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण गोला–बारूद में प्राथमिक विस्फोटक के कापर (तांबा) के साथ संपर्क होने पर कापर–एजाइड का निर्माण होना है।

अतः विस्फोटकों या अन्य पदार्थों, जो एक दूसरे के संपर्क में आते है, उनका आपस में संगतता बहुत महत्वपूर्ण होती है। किसी भी पदार्थ की संगतता का निर्धारण उसके अंतिम उपयोगिता से संबंधित होना चाहिए।

Paper 428 edited.indd 2 10-11-2013 12:08:13

तालिका 1. संगततामय विषय एवं समस्याओं की जानकारी।

क्र. सं.	विषय	समस्या
1.	अवयव – विस्फोटक या अविस्फोटक पदार्थ आपस में मिलाकर नया संकुल बनता है।	1. यौगिकों का आपस में रासायनिक अभिक्रिया 2. मिश्र यौगिकों का उष्मीय स्थाइत्व 3. मिश्र यौगिक का संवेदनशीलता का गुण
2.	बारूदी यौगिक जो साथ में भरण हेतू में उपयोग में आते है।	1. जंग लगने का संदेह 2. विस्फोटक के अपघटन में उत्प्रेरक जैसा प्रभाव 3. संवेदनशीलता एवं जंग के उत्पाद
3.	अविस्फोटक के साथ धातुओं का सम्पर्क	1. उष्मीय स्थायित्व पर प्रभाव 2. रासायनिक अभिक्रिया 3. अम्लता / क्षारियता 4. विस्फोटक के साथ अवक्षरण 5. आद्रता रखना / अन्य वाष्पीकरण गुण

संगतता को प्रभावित करने वाले कारक

किसी भी पदार्थ की संगतता को निम्नलिखित दो कारक विशेष रूप से प्रभावित करते हैं।

1) उष्मीय स्थाइत्व

2) रासायनिक अभिक्रिया

संगत पदार्थों के गुण–धर्म

आपस में संगत पदार्थ निम्नलिखित गुण–धर्मों को धारण करते हैं।

1) आपस में रासायनिक रूप से अक्रिय एवं स्थाई होते हैं।

2) ऐसे पदार्थ में निम्न जल स्तर होता है एवं वे प्रतिकूल आद्रक होते हैं।

3) उदासीन अभिक्रिया होती हैं।

4) ऐसे पदार्थों में निम्न वाष्पीकरण होता हैं एवं वाष्पीकारक पदार्थों का अभाव होता हैं।

5) ऐसे पदार्थो में घुलनशील यौगिकों का अभाव होता हैं।

6) ऐसे पदार्थो में अन्य यौगिकों को अवशोषण करने की प्रवृत्ति नहीं होती हैं।

7) ऐसे पदार्थो में स्थिर विद्युत आवेश (इलैक्ट्रोस्टैटिक चार्ज) धारण करने की प्रवृत्ति नहीं होती हैं।

8) ऐसे पदार्थ घर्षण–जन्य या अन्य भौतिक यंत्रवत गुणों के कारक नहीं होते हैं।

Paper 428 edited.indd 3 10-11-2013 12:08:13

नोदकों/प्रणोदकों की संगतता

यह परम आवश्यक होता है कि नोदकों के संपर्क में आने वाला पदार्थ, नोदकों के साथ संगत हो। नोदकों के साथ संगतता परीक्षण के लिए निम्नलिखित प्रयोग हैं:

1) लघु पात्र प्रयोग (Small vessel test)

2) रजत पात्र प्रयोग (Silver vessel test)

लघु पात्र प्रयोग

इस प्रयोग के लिए 2.0 ग्राम नोदक पदार्थ (जिसकी जाँच करनी है) को 5 प्रतिशत वजन के अविस्फोटक पदार्थ के साथ मिश्रित करते हैं तथा लघु पात्र प्रयोग के लिए 6 बार, 24 घंटे उचित तापमान में रखते हैं।

इसी प्रकार अविस्फोटक पदार्थ एवं नोदक/प्रणोदक पदार्थों के नमूनों (प्रतिदर्श) को भी अलग–अलग लघु पात्र प्रयोग हेतू रखते हैं ताकि तकनीकी कुशलता हेतू इनका प्रयोग कर सकें। नोदक/प्रणोदक के वजन में, अविस्फोटक पदार्थ के साथ रहने की वजह से 0.1 प्रतिशत से अधिक की कमी (हास) किसी भी 24 घंटे की अवधि में एवं 100° सें. तापमान पर नही होना चाहिए।

रजत पात्र प्रयोग

यह प्रयोग विधि साधारणतया प्रणोदकों/नोदकों के साथ 80° सें. पर की जाती है। इस प्रयोग हेतू प्रणोदकों/नोदकों को चूर्ण बनाकर, उष्मीय जाँच के माप स्तर तक लाते हैं इस हेतु प्रणोदकों को पीसकर छानते हैं।

पदार्थ के नमूनों को वजन से तैयार कर इसमें इसके वजन से 5 प्रतिशत प्रणोदक (लगभग 50 ग्राम) को मिला कर (जहाँ तक संभव हो चूर्ण नोदक), मिश्रण को अचालक डेवार पात्र में रखते है तथा चित्र 2 में दिखाये गये संयोजन के अनुसार स्थिर तापमान टब में 80° सें. पर रख देते हैं।

नमूनों से संबंधित समस्त प्रयोग दोहराकर करना चाहिए एवं प्रत्येक प्रयोग को नियंत्रण एवं कुशलता हेतू प्रणोदकों (अकेले) अलग भी करना चाहिए। प्रयोग के दौरान धुआँ निकलने का समय या 2° सें. तापमान में वृद्धि को दर्ज करें तथा संगतता के अनुमोदन हेतू आदर्श परिणाम को मानक मानें जो कि उपरोक्त बताये गये परिस्थितियों पर अकेले प्रणोदक / नोदक के परिणाम से कम न हो।

तालिका 2. कुछ प्रणोदकों एवं गैर–विस्फोटक पदार्थों की संगतता के परिणामों की जानकारी।

क्र.स.	मिश्रण/अविस्फोटक पदार्थ	प्रणोदक का प्रकार	टिप्पणी
1.	बेस प्लेट	एन जी बी 204	संगत
2.	रबर	एन जी बी 204	असंगत
3.	पेंट प्राइमर अग्नि प्रतिसंधि	एन जी बी 204	संगत
4.	चालक फर्श	एन जी बी 204	संगत
5.	पालिस्टर टेप	एन जी बी 204	संगत

Paper 428 edited.indd 4 10-11-2013 12:08:13

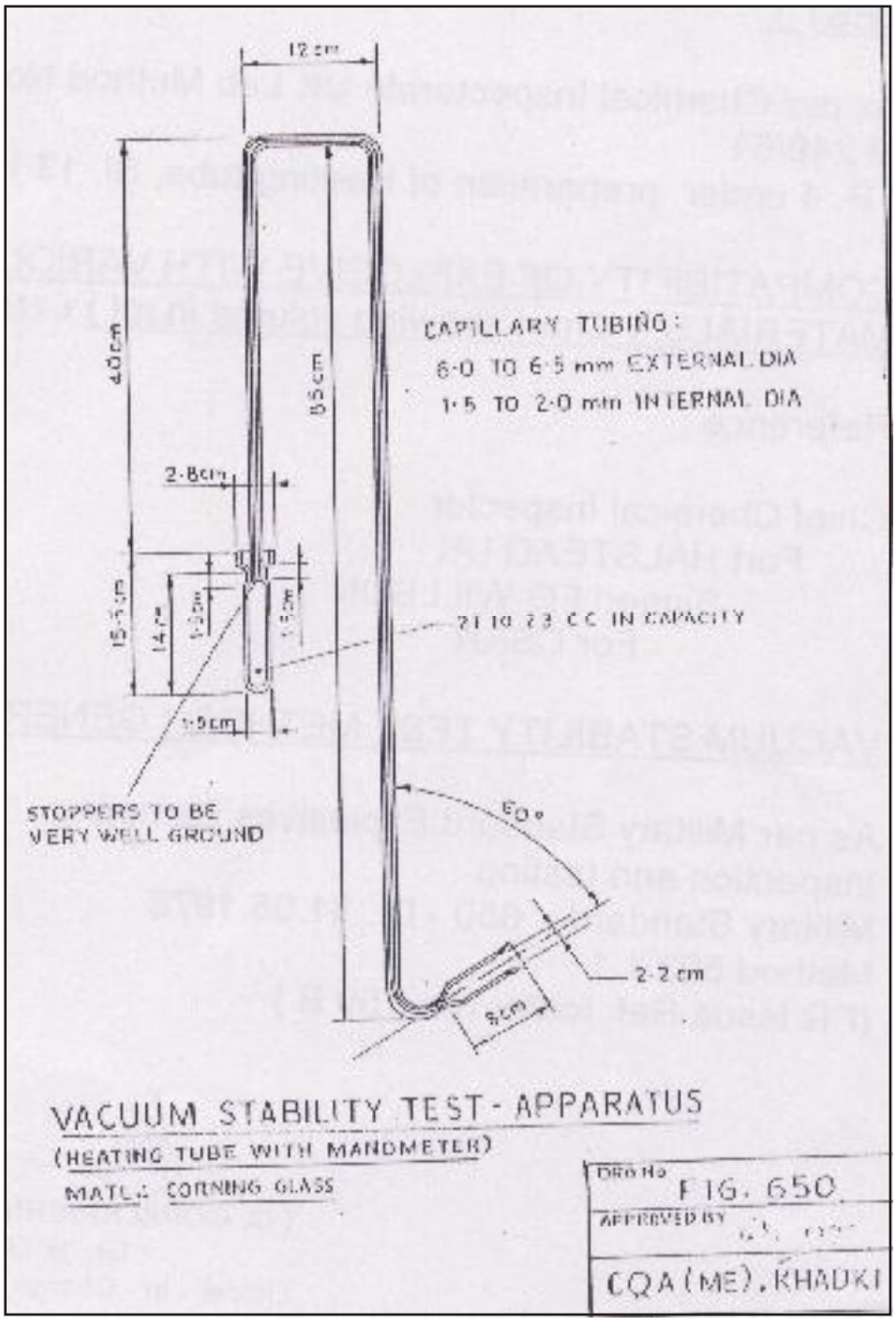

चित्र 1. लघु पात्र प्रयोग संयोजन।

Paper 428 edited.indd 5 10-11-2013 12:08:13

चित्र 2. रबड़ पात्र प्रयोग संयोजन।

संदर्भ

1. Conpendium of Compatibility of Non-Explosives with explosive published by CQA(ME), Aundh Road , Khadki, Pune-20

Paper 428 edited.indd 6 10-11-2013 12:08:14

अर्द्ध–चालक लेजर डायोड और उसके अनुप्रयोग

अभिषेक शर्मा
ठोसावस्था भौतिक प्रयोगशाला, दिल्ली

लेज़र का शाब्दिक अर्थ होता है प्रकाश के उद्दीप्त उत्सर्जन द्वारा प्रकाश का प्रवर्धन। लेज़र युक्ति का आविष्कार सन् 1960 ई. मे थियोडर मैमन ने रूबी क्रिस्टल को फ्लैश लैम्प द्वारा उत्तेजित करके किया था। अर्द्ध–चालक लेज़र की अवधारणा सर्वप्रथम बैसोव और जावन द्वारा दी गयी। सन् 1962 ई. मे राबर्ट एन हाल ने गैलियम आर्सेनाइड द्वारा 850 नैनोमीटर तरंगदैर्ध्य का लेज़र प्रकाश प्राप्त किया। प्रारम्भ में ये लेज़र केवल स्पंदित व्यवहार ही प्रदर्शित करते थे। सन् 1970 ई. मे एल्फरोव, हयाशी, और पैनिश ने हैट्रोजंक्शन द्वारा सतत् रूप से चलने वाले लेज़र का विकास किया।

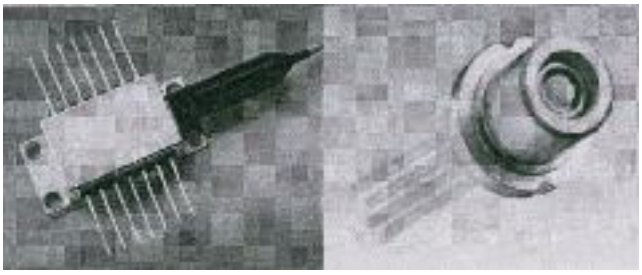

चित्र 1. अर्द्धचालक लेज़र।

लेजर प्रकाश प्राप्त करने के लिये प्रत्यक्ष बैण्ड गैप वाले अर्द्ध–चालक का प्रयोग करते है क्योकि इनमे रेडिएटिव पुनर्संयोजन की प्रायिकता अधिक होती है। अर्द्धचालक लेज़र में इलैक्ट्रॉन और होल के पुनर्संयोजन द्वारा फोटॉन का उत्सर्जन होता है। ये उत्सर्जित फोटॉन समान कला, समान तरंगदैर्घ्य, समान ऊर्जा तथा समान ध्रुवण प्रदर्शित करते हैं।

अन्य लेजर की अपेक्षा अर्द्ध–चालक लेजर आकार मे छोटे, तरंगदैर्घ्य परिवर्तनीय, सस्ते और कम ऊर्जा द्वारा संचालित किये जा सकते है। इन सभी विशेषताओं के कारण अर्द्ध–चालक लेजर का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अर्द्ध–चालक लेजर के कुछ प्रमुख अनुप्रयोग निम्न प्रकार है।

संचार : अर्द्ध–चालक लेजर का प्रमुख अनुप्रयोग दूरसंचार क्षेत्र में है। अर्द्ध–चालक लेजर के प्रयोग से लेजर प्रकाश को प्रकाशीय तन्तुओं (आप्टिकल फाइबर) के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक सैकड़ों किलोमीटर दूर भेजा जाता है। प्रकाशीय तन्तुओं के माध्यम से एक साथ लाखों संदेश प्रसारित किए जा सकते हैं जो कि परम्परागत दूरसंचार माध्यमों द्वारा सम्भव नहीं है। 20 वीं सदी के सबसे प्रभावशाली सामाजिक और तकनीकी विकास इण्टरनेट सेवा में लेजर द्वारा संचार का ही हाथ है।

चित्र 2. लेजर का दूरसंचार में उपयोग।

सूचना भण्डारण: अर्द्धचालक लेजर का उपयोग सूचनाओं के संचयन में किया जाता है। सी डी और डी वी डी में सूचनाओं और तथ्यों को एक उच्च ऊर्जा वाले लेजर के प्रयोग से प्रकाशिक झिल्ली पर लिखा जाता है। इन्हें पढ़ने के लिए एक निम्न ऊर्जा वाले लेजर का प्रयोग किया जाता है जिससे प्रकाशिक झिल्ली को कोई क्षति न हो। प्रकाश की छोटी तरंगदैर्ध्य वाली किरणों को अतिसूक्ष्म बिन्दु पर केन्द्रित किया जा सकता है, इसीलिये आजकल नीले लेजर के प्रयोग से सी डी और डी वी डी में सूचनाओं को लिखा जाता है, जिससे उनकी भण्डारण क्षमता कई गुना बढ़ जाती है।

चित्र 3. लेजर के प्रयोग से सूचना भण्डारण।

अविनाशकारी परीक्षण : अर्द्ध–चालक लेजर का प्रयोग आजकल पुलों, सड़कों, वायुयानों और प्रमुख इमारतों की भारवाहक क्षमता के मापन में किया जाता है। जब इन ढाँचों का निर्माण किया जाता है तो इनके भीतर प्रकाशीय तन्तुओं का एक जाल बना दिया जाता है। इन प्रकाशीय तन्तुओं में लेजर प्रकाश को भेजकर उसका अध्ययन किया जाता है। प्राप्त परिणामों से पता चलता है कि इन पुल सड़क, वायुयान या भवन को आगे प्रयोग में लाया जाना चाहिए अथवा इनमें सुधार की आवश्यकता है, जिससे जन और धन की हानि को रोका जा सकता है।

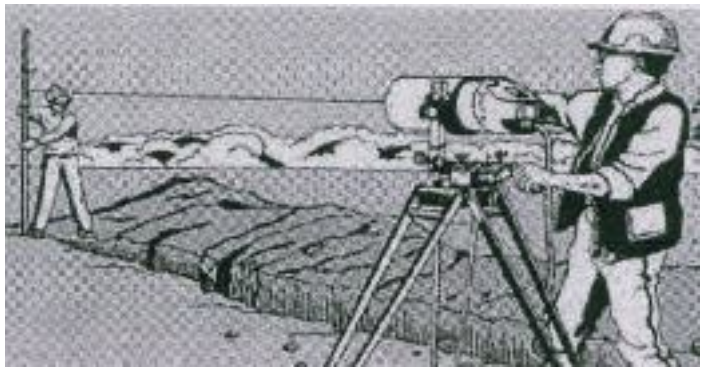

चित्र 4. लेजर का प्रयोग सैन्य क्षेत्र में।

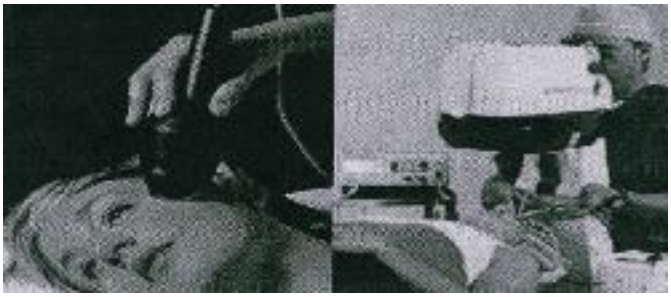

चित्र 5. लेजर का प्रयोग चिकित्सा क्षेत्र में।

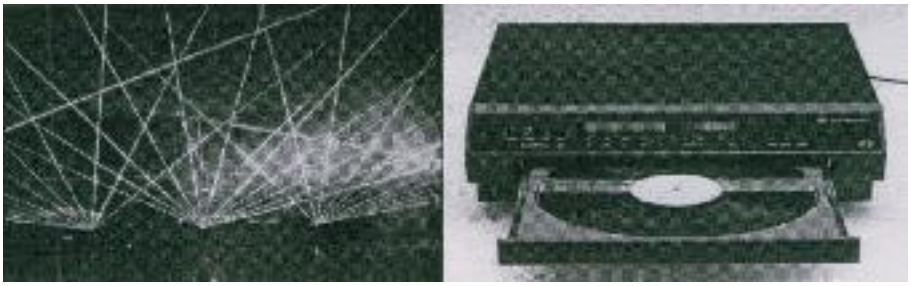

चित्र 6. लेजर का प्रयोग मनोरंजन और मुद्रण के लिये।

सैन्य अनुप्रयोग : युद्ध क्षेत्र में लेजर का प्रयोग बहुत पहले से लक्ष्य साधने के लिए संकेत देने के लिए किया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त अर्द्ध–चालक लेजर का प्रयोग मिसाइलों के मार्गदर्शन में, लक्ष्य की दूरी का पता लगाने में, और चकाचौंध उत्पन्न करने के लिए किया जाता है।

चिकित्सा क्षेत्र : अर्द्ध–चालक लेजर का प्रयोग आंखों की शल्य चिकित्सा में कार्निया के आकार को पुनर्व्यवस्थित करने के लिये किया जाता है। इसके अतिरिक्त लेजर का प्रयोग रूग्ण कोशिकाओं को नष्ट करने में, दन्त चिकित्सा में, त्वचा के सौन्दर्यीकरण, आदि के लिये भी किया जाता है।

अन्य उपयोग : इसके अतिरिक्त अर्द्ध–चालक लेजर का प्रयोग मुद्रण में, साज–सज्जा में, खिलौने में, संकेतक के रूप मे, सार्वजनिक उत्पाद कोड पढ़ने और विभिन्न क्षेत्रों में शोध के लिए सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

आज जब लेजर के आविष्कार को 60 वर्ष से अधिक हो चुके हैं, हम लेजर का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से कर रहे हैं। आने वाले समय में हमारी निर्भरता विज्ञान की इस देन पर इतनी अधिक हो जाएगी कि इसके बिना जीवन की कल्पना करना आसान नहीं होगा।

दिष्ट ऊर्जा शस्त्रः अत्याधुनिक युद्ध प्रणाली

अनुज वार्ष्णेय
लेजर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी केन्द्र, दिल्ली

परिचय

दिष्ट ऊर्जा शस्त्र की कल्पना आज से सौ सालों से भी पहले एच जी वेल्स ने सन् 1898 में "वॉर ऑफ द वर्ल्ड" नामक विज्ञान कथा में की थी, तब से लेकर कुछ वर्षो पहले तक ये दिष्ट ऊर्जा शस्त्र विभिन्न नामों जैसे किल रेज़, हीट रेज़ या डेथ रेज़ आदि नामों से सांइस फिक्सन या हॉलीवुड सिनेमाओं में प्रदर्शित किए जाते रहे है। परन्तु कुछ वर्षो पहले अमेरिकी वायुसेना द्वारा लेज़र–आधारित दिष्ट ऊर्जा शस्त्र का सफल परीक्षण करने के बाद एच. जी. वेल्स का दिष्ट ऊर्जा शस्त्र का सपना कल्पनाओं से निकलकर हकीकत बन गया है।

दिष्ट ऊर्जा शस्त्र क्या हैं व युद्ध प्रणाली के आधुनिकीकरण या सशक्तीकरण में किस प्रकार से सक्षम हैं? इसे जानने के लिए अब तक युद्ध में प्रयुक्त विभिन्न शस्त्र प्रणालियों पर एक चिन्तन अति आवश्यक है। प्राचीन काल से लेकर मुगलों के काल तक सभी युद्धों में तीर–तलवार या भालों, आदि का प्रमुख रूप से इस्तेमाल किया जाता था। इस प्रकार के युद्धों में विजय बहुत कुछ योद्धा के रणकौशल अर्थात उसके बाहुबल, सटीक निशाना, आदि पर निर्भर करती थी। परन्तु 20वीं सदी में आते–आते युद्ध प्रणाली का पूरी तरह मशीनीकरण हो गया। अब युद्ध में मशीनगन, तोप, तथा प्रक्षेपास्त्र आदि का इस्तेमाल किया जाने लगा है।

इसका प्रमुख कारण विभिन्न प्रौद्योगिकियों का विकास था, जिनमें वैमानिकी, प्रक्षेपास्त्र प्रणाली, इलैक्ट्रॉनिकी, रडार व संचार प्रौद्योगिकी, लेज़र व संसूचन तथा संगणक व सूचना, आदि कुछ प्रमुख प्रौद्योगिकियां हैं। (परिणामस्वरूप आज युद्ध में सफलता इन प्रौद्योगिकियों के विकास व आधुनिकीकरण पर निर्भर करने लगी है।)

वर्तमान में कई हजार किमी से भी अधिक मारक क्षमता वाली प्रक्षेपास्त्र प्रणाली विश्व के अनेकं देशों के पास उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में रक्षा प्रणाली को और अधिक सशक्त व सक्षम बनाने के लिए प्रक्षेपास्त्र प्रणाली के विरूद्ध अत्याधुनिक, उच्च गुणवत्ता युक्त व तीव्र प्रणाली की आवश्यकता है। दिष्ट ऊर्जा शस्त्र ऐसी ही अत्याधुनिक युद्ध प्रणाली के रूप में उभर कर सामने आये हैं। सैद्धांतिक रूप से दिष्ट ऊर्जा शस्त्र में ऊर्जा स्रोत से प्राप्त अत्यधिक ऊर्जा को सीधे ही सुदूर–स्थित लक्ष्य तक भेजकर उसे विध्वंस करने में किया जाता है। इसका जो सबसे बड़ा लाभ है वह है गति क्योंकि इसमें विभिन्न प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तंरगों, जैसे अवरक्त तरंगों, रेडियो तरंगों या सूक्ष्य तरंगों का प्रयोग किया जाता है। अतः इन्हें प्रकाश की गति से लक्ष्य तक भेजा जा सकता है। अर्थात इसका प्रयोग सुदूर से, तेजी से आते हुए प्रक्षेपास्त्र को उसकी उड़ान की शुरूआती अवस्था में ही विध्वंस करने में किया जा सकता है।

दिष्ट ऊर्जा शस्त्र में ऊर्जा स्रोत एक प्रमुख भाग होता है जिसके लिए अब तक इलैक्ट्रॉन अथवा न्यूटॉन पर आधरित कणिका पुंज, लेज़र उद्दीपित प्लाजा, उच्च–शक्ति माइक्रोवेव व लेज़र का इस्तेमाल

किया गया है। लेज़र में विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा प्रकाश का प्रवर्धन होता है परिणामस्वरूप एकवर्णीय उच्च कला सम्बद्ध एकदिशीय व उच्च तीक्ष्णता की लेज़र पुंज प्राप्त होती है जो कि दिष्ट ऊर्जा शस्त्र की एक मूलभूत आवश्यकता है। यही कारण है जिससे लेज़र दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए ऊर्जा स्त्रोत के रूप में सबसे अधिक प्रभावी सिद्ध हुए हैं। दिष्ट ऊर्जा शस्त्र में लेज़र स्त्रोत के अलावा लक्ष्य अवलोकन लेज़र पुंज दिशा निर्देशन व अनुकूली (एडेप्टिव) प्रकाशिकीय का भी प्रयोग किया जाता है। एडेप्टिव प्रकाशिकी उच्च शक्ति लेज़र पुंज को प्रभावित करने वाले वातावरणीय कारणों को निष्प्रभावित करने के काम आती है। दिष्ट ऊर्जा शस्त्रों का प्रयोग विभिन्न मंचों जैसे जल, थल, वायु या अन्तरिक्ष, कहीं से भी किया जा सकता है। बस उसमें लेज़र की तरंगदैर्घ्य व ऊर्जा क्षमता को ध यान में रखना पड़ता है।

दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए अब तक प्रमुख रूप से गैस गतिकीय लेज़र (GDL) हाइड्रोजन फ्लोराइड (HF) व ड्यूटीरियम फ्लोराइड (DF) तथा रासायनिक ऑक्सीजन आयोडीन लेज़र (COIL) का इस्तेमाल किया गया है। सन् 1970–80 के दौरान तापगतिकीय के सिद्धान्त पर आधारित मेगावॉट शक्ति की GDL लेज़र का विकास किया गया परन्तु उच्च तरंगदैर्घ्य (माइक्रोमीटर), जिसके कारण उच्च विचलन वृहद आकार तथा उच्च विशिष्ट भार के कारण इसे दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए अनुप्युक्त पाया गया। HF-DF एक रासायनिक लेज़र है। इसमें रासायनिक अभिक्रिया से प्राप्त ऊर्जा समष्टि प्रतिलोमन (Population Invertion) में सहायक होती है। HF लेज़र 2.7–3.1 माइक्रोमीटर तरंगदैर्घ्य की लेज़र प्रदान करता है। इस तरंगदैर्घ्य की विकिरण का उच्च वायुमण्डलीय अवशोषण होने के कारण HF लेज़र–आधारित दिष्ट ऊर्जा शस्त्र का प्रयोग अन्तरिक्ष में किया जा सकता है। जबकि DF लेज़र उच्च वायुमण्डलीय संचरण के कारण धरती आधारित दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए उपयुक्त हैं। अमेरिका की वायुसेना अनुसंधान प्रयोगशाला (AFRL) ने DF–आधारित मेगावॉट शक्ति को मध्य–अवरक्त रासायनिक लेज़र (MIRACL) का परीक्षण सन् 1997 में कर लिया था परन्तु अति विषाक्त गैसों के इस्तेमाल के कारण इसका प्रयोग सीमित है।

इसके छोटे रूप में 500 किलोवॉट शक्ति की योजनाबद्ध उच्च ऊर्जा लेज़र (THEL) का प्रयोग कत्यूस नामक रॉकेट को विध्वंस करने में किया था। अमेरिका की AFRL ने ही सन् 1978 में प्रथम रासायनिक ऑक्सीजन आयोडीन लेज़र (COIL) का विकास किया जो कि आयोडीन की विभिन्न ऊर्जा अवस्थाओं में संक्रमण के फलस्वरूप 1.315 माइक्रोमीटर तरंगदैर्घ्य की लेज़र उत्सर्जित करता है। इसमें सिंग्लेट ऑक्सीजन, जो कि ऑक्सीजन अणु की प्रथम उच्च ऊर्जा अवस्था है, आयोडीन अणु को पहले आयोडीन परमाणु में विघटित करने तथा उसके बाद आयोडीन परमाणु को पम्पित करके समिष्ट प्रतिलोमन में सहायक है। अन्य गैस लेज़रों की तुलना में COIL की निम्नतम तरंगदैर्घ्य व निम्न विशिष्ट भार उसे दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए सबसे अधिक उपयुक्त बनाते हैं। कुछ वर्ष पहले ही AFRL ने वायुयान स्थानापन्न लेज़र (ABL) नामक दिष्ट ऊर्जा शस्त्र का सफल परीक्षण किया है जिसमें COIL का ऊर्जा स्त्रोत के रूप में इस्तेमाल किया गया है। हालॉकि इस लेज़र की प्रचालन अवधि अधिक है, बावजूद इसके वर्तमान में दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए एक सफल लेज़र है। सतत् मेगावॉट शक्ति प्रदान करने वाला है इसीलिए विश्व के अनेकों देश 10 लेज़र की प्रचालन अवधि को कम करने व गुणवत्ता और अधिक बढ़ाने में लगे हुए हैं।

डायोड लेज़र की तकनीकी में विकास के साथ ठोसावस्था लेज़र में ऊष्मा क्षय से उत्पन्न अरैखिक विकृतियाँ अपेक्षाकृत कम हो गई है। साथ ही पदार्थ विज्ञान में होने वाले नित नए प्रयोगों ने उच्च शक्ति ठोसावस्था लेज़र के विकास को नए आयाम प्रदान किए हैं। फिलहाल के ही वर्षो में लारेन्स लीवरपूल नेशनल लैब नामक अमेरिकी संस्था ने 30 किलोवॉट शक्ति की ऊष्माधारित्र ठोसावस्था लेज़र

का विकास किया है तथा 100 किलोवॉट शक्ति की लेजर विकसित करने का उद्देश्य है। पिछले दशक में तन्तु (फाइबर) लेज़र से उत्पन्न लेज़र शक्ति में भी अद्भुत वृद्धि हुई है। साथ ही फाइबर में लेज़र माध्यम को पम्पित करने के तरीकों में परिवर्तन व बढ़ी हुई पम्प क्षमता, उच्च पुंज गुणवत्ता तथा अपेक्षाकृत छोटा आकार व भार आदि ने फाइबर लेज़र को दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए एक उपयुक्त ऊर्जा स्त्रोत बना दिया है। हालांकि तापीय प्रबंधन व अरैखिक गुणों के कारण, मेगावॉट शक्ति की अकेली फाइबर लेज़र बनाना अभी सम्भव नहीं है, परन्तु मध्यम शक्ति की कई फाइबर लेज़र पुंज को कला सम्बद्ध या असम्बद्ध तरीके से मिलाकर अति उच्च शक्ति की लेज़र पुंज प्राप्त की जा सकती है। इस विधि को वैज्ञानिक व प्रयोगात्मक तरीकों से छोटे स्तर पर सिद्ध किया जा चुका है परन्तु बड़े स्तर पर कई लेज़र पुंजों का वर्तमान में समायोजन एक जटिल प्रक्रिया है, जिस पर वर्तमान में विश्व की विभिन्न प्रयोगशालाओं में अनुसंधानात्मक कार्य चल भी रहा है।

बोइंग नामक अमेरिकी कम्पनी ने 100 किलोवॉट शक्ति की मुक्त इलॅक्ट्रॉन लेज़र की संरचना तैयार की है जिसमें उच्च ऊर्जीय इलैक्ट्रॉन पुंज के शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र में होकर प्रवाहित होने से उच्च तीक्ष्णता की लेज़र पुंज प्राप्त होती है। इस संरचना के सिद्ध होते ही मेगावाट शक्ति की लेज़र तैयार करने की योजना है। इस लेज़र की विशेषता है कि इसकी शक्ति व तंरगदैर्ध्य दोनों को अनुप्रयोग के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए आवश्यक लेज़र स्त्रोत की मूलभूत परिस्थितियों में से कम विशिष्ट भार व वातावरण अनुकूलता ऐसी दो परिस्थितियां बाकी हैं जिसके कारण आज भी वैज्ञानिक नए–नए लेज़र माध्यमों की खोज में लगे हुए हैं। इनमें से द्रव ऑक्सीजन एक ऐसे ही सम्भव उपाय के रूप में उभरा है जिसके बारे में अमेरिका की डारपा (DARPA) संस्था का मानना है कि यह लेज़र निम्नतर विशिष्ट भार व वातावरण अनुकूल होगी। इसके अलावा इसकी 1.58 माइक्रोमीटर तरंगदैर्ध्य लेज़र पदार्थ अन्योन्यक्रिया में भी अधिक प्रभावी होगी।

अभी फिलहाल के वर्षों में ही उच्च ऊर्जीय डायोड लेज़र पम्पित क्षारीय वाष्प लेज़र विकसित करने की दिशा में भी कार्य शुरू हुआ है। ये गैस प्रावस्था लेज़र उच्च शक्ति व पुंज गुणवत्ता प्रदान करने के कारण दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के लिए एक सफल प्रतियोगी माने जा रहे हैं।

दिष्ट ऊर्जा शस्त्र विकसित करने में लगे विभिन्न देशों में भारत भी शामिल है। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की विविध प्रयोगशालाओं में से एक लेजर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र में कुछ शक्ति लेजर स्रोत के रूप में GDL व COIL का विकास किया गया है तथा उनकी शक्ति में वृद्धि व गतिशील वाहन पर स्थापित करने का कार्य चल रहा है। दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के अन्य भागों, जैसे लक्ष्य अवलोकन, लेजर पुंज दिशा निर्देशन, व अनुकूली प्रकाशिकीय के क्षेत्र में भी काफी कार्य हो चुका है। कई तंतु लेजरों को समायोजित कर उच्च शक्ति लेजर स्रोत विकसित करने की दिशा में कार्य प्रगति पर है। केन्द्र में द्रव ऑक्सीजन लेजर पर भी शुरूआती प्रयास किए गए हैं। दिष्ट ऊर्जा शस्त्र एक अत्याधुनिक युद्ध प्रणाली है इसका विकास देश की रक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में सहायक है। दिष्ट ऊर्जा शस्त्र के क्षेत्र में किए गए भारतीय प्रयास विश्व के कुछ सम्पन्न देशों के समतुल्य है जो कि हम भारतीयों के लिए गर्व का विषय हैं।

संदर्भ

1. अरुणोदय, वार्षिकांक 8, पृ.सं. 17–23, 2007–08.
2. अखिल भारतीय संयुक्त राजभाषा वैज्ञानिक/तकनीकी संगोष्ठी–2011, पृ.सं 57–61, 2011
3. अखिल भारतीय संयुक्त राजभाषा वैज्ञानिक/तकनीकी संगोष्ठी–2012, पृ.सं 103–106, 2012

ईंधन, समय एवं श्रम की बचत हेतु उपयोगी उन्नत चूल्हे

मीना सनाढ्य, इन्द्रजीत माथुर, चितरंजन शर्मा, तथा सुनील इन्टोदिया
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

कृषक महिलाएं 60 प्रतिशत से भी अधिक कृषि का कार्य करती है, पशुपालन का लगभग 90 प्रतिशत कार्य महिलाओं द्वारा सम्पादित होता है। इसके अतिरिक्त दूरस्थ स्थानों से ईंधन व पेयजल प्रबंधन भी उनकी जिम्मेदारी है। एक शोध के अनुसार कृषक महिलाऐं औसतन 14 घंटे कृषि एवं संबंधित कार्यों पर खर्च करती हैं। इस तरह वे एक मानव मशीन बन कर रह गई हैं। आज भी कृषि एवं घरेलू कार्यों हेतु परम्परागत तरीके काम में लिये जा रहे हैं जिससे मानव समय व श्रम की हानि हो रही है। गांवों में आज भी अमुमन 90 प्रतिशत घरों में भोजन पकाने के लिए मिट्टी के चूल्हे काम में लिये जाते हैं जिनकी तापीय क्षमता बहुत कम होती है, जिससे भोजन पकाने में अधिक ईंधन व समय की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त परम्परागत चूल्हे से निकलने वाला धुआँ महिलाओं व बच्चों की आंखों व फेफडों को बहुत नुकसान पहुंचाता है व रसोई घर काला होता है सो अलग। इन सब बातों से बढ़कर ईंधन के लिये पेड़ काटने से सबसे अधिक नुकसान पर्यावरण को हो रहा है। महिलाऐं कृषि अवशेष व गोबर के कंड़े को चूल्हे जलाने के काम में लेती हैं जिससे खेत में इसे खाद के रूप में उपयोग में नहीं लाया जा सकता व इससे खेत (भूमि) की उर्वरता व पैदावार पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

महिलाऐं यदि घरेलू कार्यों में उन्नत प्रौद्योगिकी का समावेश करें तो श्रम व समय की काफी बचत की जा सकती हैं व बचे हुए समय का उपयोग सृजनात्मक तरीके से करके घर–परिवार की आमदनी बढ़ाने में सहयोगी हो सकती हैं। महिलाएं पर्यावरण सुरक्षा के साथ भूमि की उर्वरा शक्ति को भी बनाये रख सकती हैं। इसके लिए हमें (सरकारी, गैर सरकारी, अन्य संस्थाओं) कुछ प्रयास करने होगें जैसे कृषक महिलाओं को "उन्नत चूल्हे" के उपयोग के बारे में शिक्षित करना होगा। इसके उपयोग द्वारा महिलाऐं 30–40 प्रतिषत लकड़ी की बचत कर सकती हैं जिससे वृक्षों की कटाई में बचत के साथ–साथ हमें स्वच्छ पर्यावरण मिल सकेगा जिसकी आज बहुत अधिक जरूरत है।

उन्नत चूल्हा क्या है?

उन्नत चूल्हा परम्परागत चूल्हे का ही परिवर्तित रूप है इसमें दहन व उष्मा का सुचारू परिचालन होता है तथा उष्मा के विकिरण एवं संवहन से होने वाली हानि को कम किया जा सकता है। महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर के प्रौद्योगिकी एवं अभियांत्रिकी महाविद्यालय द्वारा स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार के चूल्हों का निर्माण किया गया है जिनमें राजस्थान राज्य के लिए उपयुक्त "उदयराज" दो बर्तन रखने वाला व एक बर्तन वाला चूल्हा "चेतक" प्रमुख है। इन चूल्हों को बनाने के लिए ईंट व सीमेंट की आवश्यकता होती है। ये चूल्हे काफी टिकाऊ होते हैं (कम से कम 5 वर्ष तक) व इनकी तापीय दक्षता 25 प्रतिशत तक होती है। वर्षा के पानी या अन्य कारणों का इन चूल्हों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन चूल्हों में भोजन को बहुत समय तक गर्म रखा जा सकता है अतः दाल, सब्जी को बार–बार गर्म नहीं करना पड़ता जिससे भोजन के पौष्टिक तत्व बने रहते हैं।

उन्नत चूल्हा कैसे बनायें?

इन चूल्हों को बनाने की तकनीक अत्यन्त आसान है, महिलाएं एक बार प्रशिक्षण प्राप्त कर आसानी से इसे बना सकती हैं। इसकी बनावट इस प्रकार की होती है कि चूल्हे में ईंधन को जलाने के लिए जितनी हवा (ऑक्सीजन) की जरूरत हो उतनी ही उसे मिले न कम न अधिक। यदि ईंधन को हवा कम मिली तो ईंधन अच्छी तरह नहीं जलेगा व धुंआ भी अधिक होगा व यदि ईंधन को हवा अधिक मिली तो ईंधन के जलने की गति तेज हो जायेगी व भोजन पकने में उष्मा का समुचित उपयोग नहीं हो पायेगा जिससे चूल्हे की दक्षता में कमी आयेगी। परम्परागत चूल्हों में मुख्यतया दो कमियां देखी गई हैं पहली चूल्हे का मुंह आगे से खुला होता है जिससे ईंधन ड़ालने पर आधी उष्मा बर्तन के बाहर व्यर्थ में बेकार होती है दूसरा, हवा का आवागमन सही नहीं हाने से ईंधन की खपत अधिक होती है। उन्नत चूल्हे में इन कमियों को दूर कर इनकी तापीय दक्षता को बढ़ाया गया है।

"चेतक" चूल्हा

इसकी तापीय दक्षता 21 प्रतिशत है। यह चूल्हा नवीनकरणीय उर्जा स्त्रोत् विभाग उदयपुर ने विकसित किया है एंव पंचायती राज विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर व नवीकरणीय उर्जा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत है। इस चूल्हे पर एक समय में एक वस्तु पकायी जा सकती है, इसकी बनावट इस प्रकार की होती है कि बर्तन को पूरी उष्मा मिलती है जिससे भोजन जल्दी पकता है। सीमेंट पाइप व चिमनी से धुंआ रसोई घर के बाहर निकलने से महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ता। चेतक चूल्हा बनाने के लिए ईंट–25 नग, सीमेंट–8 कि ग्रा, रेत –30 कि ग्रा, सी पाईप (3" व्यास, 10' ल) '1 सेट कावल, सुरंग (2" व्यास, 4' ल) 01 सेट की आवश्यकता होती है। कारीगर की मजदूरी यदि रू 200/– माने तो चूल्हे की कीमत लगभग रू 1000 आती है।

दो बर्तन वाला "उदयराज" चूल्हा

इस चूल्हे पर दो वस्तुऐं एक साथ पकायी जा सकती है। इस चूल्हे की तापीय दक्षता 26 प्रतिशत है। इस चूल्हे को नवीकरणीय उर्जा स्त्रोत विभाग, उदयपुर द्वारा विकसित किया गया एवं पंचायती राज विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर व नवीकरणीय उर्जा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत किया गया है। इस चूल्हे की विशेषता यह है कि इसमें ईंधन का उपयोग दो वस्तुऐं पकाने के लिए होता है, जिससे ईंधन की बचत के साथ–साथ श्रम व समय की भी बचत होती है। यदि आपको दाल/सब्जी व रोटी बनानी है तो चूल्हे के पहले मुख पर दाल पकने रखें व रोटी बनाने के लिए दूसरे मुख्य पर तवा/केलडी रखे। दाल जब दो–तीन बार अच्छी तरह उबल जाये तब उसे दूसरे बर्तन वाले मुख पर रखें व वहां से तवा हटा कर चूल्हे के पहले मुख पर रख दें। इससे आप पायेगें कि तवा गर्म हो चुका है उस तवे पर रोटी ड़ालने पर जल्दी सिक जायेगी व मंदी–मंदी आंच पर दाल/सब्जी भी पक जायेगी। इस प्रकार सीमित ईंधन में दो वस्तुऐं एक साथ पक जायेंगी। उदयराज (दो बर्तन वाला) चूल्हा बनाने के लिए ईंट 35 नग, सीमेंट 12 कि ग्रा, रेत 50 कि ग्रा, ए सी पाईप (3" व्यास, 10' लं) 1 सेट/कावल, सुरंग (2) व्यास, 8' ल) व कारीगर की मजदूरी रू 300 इस प्रकार उदयराज चूल्हा बनाने में लगभग 1300 रू खर्च होते हैं।

उन्नत चूल्हे से संबंधित महत्वपूर्ण बिन्दु

- उन्नत चूल्हा बनाते समय इस बात का ध्यान रखें कि जिस बर्तन में भोजन पकाना हो उसे चूल्हे के मुख पर रखें व देखें कि बर्तन का माप चूल्हे के मुख के अनुसार है या नहीं। न हो तो आवश्यकतानुसार बर्तन को घुमाकर चूल्हे के मुख को सही आकार दें। इस तरह से करने पर बर्तन चूल्हे पर ठीक से बैठ जायेगा, जिससे ईंधन की लपटें बाहर नहीं निकल पायेगी व अधिक से अधिक उष्मा बर्तन को मिलेगी, जिससे भोजन जल्दी पकेगा।

• चूल्हे को रसोईघर में बनायें यदि खुले में बनाना हो तो छप्पर जरूर बनायें व उसमें ऐसी व्यवस्था रखें जिससे धुआं चिमनी द्वारा बाहर निकलें।

• चूल्हे में कम लकड़ियां/कंड़े ड़ाल कर जलायें।

• भोजन पकाने के बाद चूल्हे में से राख को निकाल कर फिर ही चूल्हा जलायें।

• चूल्हा जलाने से पहले चूल्हे के मुख को तवे या किसी बर्तन से ढक दें अन्यथा चूल्हा जलाने पर कमरे में धुंआ फैलेगा, चिमनी के गर्म होने पर धुंआ स्वतः ही बाहर निकल जायेगा।

• यदि दो मुखवाले चूल्हे में से एक को ही काम में लेना हो तो चूल्हे के दूसरे मुख को (ऊपर से) किसी बर्तन (मिट्टी के ढक्कन) से ढ़क दें। चूल्हे को काम में लेने के बाद चूल्हे के मुंह को (ऊपर से) किसी ढक्कन से ढ़ंक दें इससे चूल्हा कई घंटों तक गर्म रहेगा व चूल्हे में राख के नीचे जलते अंगारे उपलब्ध रहेंगे जिसका उपयोग कर पुनः चूल्हा जलाया जा सकता है। यदि चूल्हे पर सब्जी/दूध/पानी आदि रख दिया जाये तो वह घंटों गर्म रहेगा व ईंधन की बचत होगी (खाना गर्म करने के लिए पुनः ईंधन नहीं जलाना पड़ेगा) इसके अतिरिक्त समय व श्रम की भी बचत होगी।

• यदि चूल्हे पर छोटे आकार के बर्तनों का उपयोग करना हो तो लोहे की घेरी को अंदर से छोटा कर काम में ले या पुरानी मटकी के मुह को इस प्रकार निकालें की वह टूटने न पाये अब इस घेरी को उलट कर चूल्हे पर रख कर छोटे बर्तन उपयोग में लिये जा सकते हैं। ध्यान रखे कि बर्तन को पैंदा घेरी के आकार से बड़ा हो वर्ना बर्तन चूल्हे के अंदर गिर जायेगा।

• उन्नत चूल्हे के समुचित उपयोग के लिए यह जरूरी है कि चिमनी में जमा धुंआ बराबर साफ हो। चिमनी को महीने में एक बार जरूर साफ करना चाहिये। साफ करने के लिए सबसे आसान तरीका है कि किसी लंबे डंड़े के एक सिरे पर मोटा कपड़ा बांध कर चिमनी के ऊपर से इस हिस्से को पाइप के अंदर ड़ालें व ऊपर–नीचे करें (चार–पांच बार या आवश्यकतानुसार) जिससे जमा हुआ धुंआ पाइप से चूल्हे के अंदर गिरेगा। दूसरा तरीका, कपड़े की पोटली में राख या मिट्टी बांध लें, फिर इस पोटली को डंड़े के एक सिरे पर बांध कर चिमनी के ऊपर वाले हिस्से से पाईप में उतारे व कई बार ऊपर'–नीचे करें। इससे पाईप के अंदर जमा धुंआ चूल्हे में गिरेगा व पाईप पूर्ण रूप से साफ हो जायेगा। चूल्हे के अंदर गिरे (धुएं) कचरे को किसी लंबी डंड़े वाले चम्मच से निकाल कर फेंक दें।

चिमनी से धुंआ बाहर निकलता हुआ

• वर्षा में पानी चूल्हे के अंदर न आये इसके लिए पाईप के ऊपर चिमनी (कावल) जरूर लगायें।

• यदि चूल्हे में दरार पड़ जाये या कहीं से टूट जाये तो तुरन्त मरम्मत करावें।

• उन्नत चूल्हों से संबंधित जनजाति महिलाओं के अनुभव।

प्रसार शिक्षा निदेशालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर द्वारा एकीकृत ग्राम विकास परियोजना (2005–2008)। जनजाति विकास विभाग के सहयोग से तीन जिलों–उदयपुर (10 गांव), डूंगरपुर (4 गांव) व बांसवाड़ा (4 गांव) में चलायी गई। इस योजना के मुख्य

अन्वेक्षक प्रो इन्द्रजीत माथुर के कुशल नेतृत्व में "समन्वित कृषि प्रणाली पद्धति" के आधार पर जनजाति परिवारों का सामाजिक–आर्थिक उत्थान किया गया। परियोजना का एक मुख्य उद्देश्य था कि जनजाति परिवारों की आय को दुगुना करना। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये फसल, पशुपालन, उद्यानिकी, गृह विज्ञान आदि विषयों से संबंधित नवीनतम तकनीकी को जनजाति परिवारों तक पहुंचाकर इसे ग्राह्य बनाया गया। परिणाम स्वरूप परियोजना की समाप्ति पर इन परिवारों की आय का आकलन करने पर पाया गया कि वाकई इनकी आय दुगुनी हो गई। इस परियोजना में जनजाति महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु कई नवोन्मेषी कार्य किये गये जैसे कुपोषण के बचाव हेतु पोषाहार वाटिका लगाना, सुरक्षित अनाज भंड़ारण के लिए वायुरोधक कोठी (धातु–2 क्विंटल आकार) का उपयोग, समय व श्रम की बचत के लिए उन्नत दरांती, मक्का, अनाज पीसन की चक्की में बाल बियरिंग आदि। इसके अतिरिक्त महिलाओं के लिए रसोई कार्य को सुगम बनाने के लिए "उन्नत चूल्हा निर्माण" पर अभियान भी आयोजित किये गये। इस अभियान द्वारा 868 उन्नत चूल्हे बनाये गये। महिलाओं ने इन चूल्हों को बहुत पसंद किया जिसके दो प्रमुख कारण हैं। पहला–चूल्हे आगे की ओर से बंद होने के कारण चूल्हे की अंदर जलती लकड़ी से आग लगने का भय नहीं रहता दूसरा चूल्हे में लकड़ी को जलाने के लिए फूंकनी से फूंक मारते समय आग की लपट से चेहरे पर झुलसन (झाल) नहीं आती है जिससे मुंह व आंख का तपिश से बचाव होता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं ने चूल्हे के अन्य लाभ बतलाते हुए कहा कि इस चूल्हे के उपयोग से ईंधन (लकड़ी) की बहुत बचत होती है। भोजन घंटों गर्म रहता है, चूल्हा दिखने में सुंदर लगता है। सीमेंट का बना होने से चूल्हे की सफाई आसानी से हो जाती है, मिट्टी से लिपना नहीं पड़ता व रसोईघर काला नहीं होता है। महिलाओं ने यह भी कहा कि सरकार को इस तरह के चूल्हे सभी गांवों में लगाने चाहिये जिससे महिलाओं को रसोई के कार्यों को करने में काफी राहत मिलेगी।

एकीकृत ग्राम विकास परियोजना के अन्तर्गत जनजाति परिवारों के बेरोजगार युवाओं के लिए "उन्नत चूल्हा निर्माण" पर प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा तीन दिवसीय संस्थागत प्रशिक्षण आयोजित किये गये जिसमें उदयपुर, बांसवाड़ा व डूंगरपुर जिले के 60 युवाओं को प्रशिक्षित किया गया। प्रशिक्षण उपरांत इन युवाओं ने गांव–गांव जाकर उन्नत चूल्हे बनाये, जिससे इन्हें प्रति चूल्हा रू 80/– प्राप्त हुए। युवाओं ने एक दिन में औसतन तीन चूल्हे बनायें। युवाओं को चुल्हे बनाने का काम बहुत पसंद आया उन्होंने सुझाव दिया गया कि प्रत्येक गांव के युवाओं को इस तरह के प्रशिक्षण दिये जाने चाहिये जिससे गांव में रहते हुए उन्हें रोजगार उपलब्ध हो सके।

हमारी अधिकांश आबादी आज भी गांवों में निवास करती है व भोजन पकाने के लिए पारम्परिक मिट्टी के चूल्हों का इस्तेमाल करती हैं, जिससे ईंधन की बर्बादी के साथ–साथ समय व श्रम की हानि व पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। पर्यावरण संरक्षण आज की महती आवश्यकता है इस बात को ध्यान में रखते हुए हमें पारम्परिक चूल्हों के परिष्कृत रूप उन्नत चूल्हों को काम में लेने के लिए विभिन्न प्रसार गतिविधियों (प्रदर्शन, प्रदर्शनी, कृषक महिला–वैज्ञानिक संवाद, रात्रि गोष्ठी आदि) के माध्यम से महिलाओं को प्रेरित करना चाहिये। यदि इस तरह सघन प्रयास किये जायें तो निश्चित ही हमारे देश में एक और क्रान्ति आयेगी जो पर्यावरणीय प्रेमी/मित्र होगी।

कृषक महिला सशक्तिकरण–दशा एवं दिशा

मीना सनाढ्य एवं पी के दशोरा
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान
आ पी एस सी, अजमेर, राजस्थान

कृषि की उत्पत्ति से लेकर आज तक कृषि एवं पशुपालन के क्षेत्र में किसान महिलाओं का योगदान अभूतपूर्व रहा है। कृषि व पशुपालन से संबंधित जानकारी, ज्ञान व कौशल को वे अनुभव द्वारा परंपरागत रूप से (पीढ़ी दर पीढ़ी) सीखती चली आ रही हैं। किसान महिलाएं औसतन 14–15 घंटे प्रतिदिन कृषि व इससे जुड़े कामों पर लगाती हैं, फिर भी गुणवत्ता व परिमाण, दोनों की दृष्टि से जो परिणाम मिलने चाहिए वे नहीं मिल पा रहे हैं। यदि इसके पीछे प्रमुख कारणों को देखें तो अनुसंधान के परिणामों व नवीनतम कृषि तकनीकी जानकारी उन तक नहीं पहुंच पा रही है।

कृषि संबंधित जानकारी महिलाओं तक पहुंचाने के लिए वैसे तो कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विभाग व अन्य गैर सरकारी संस्थाएं कार्यरत हैं। परन्तु जो कुछ भी प्रयास इस दिशा में किए जा रहे हैं वे समस्या की व्यापकता को देखते हुए बहुत क्षीण हैं, दूसरा, महिलाओं में अशिक्षा और अज्ञानता उन्हें पूर्णतया लाभान्वित होने से रोकते हैं। परिणामस्वरूप कृषि के क्षेत्र में विनियोजित मानव श्रम तथा मानव समय विशेषकर महिला श्रम व महिला समय की हानि तो हो ही रही है साथ ही कृषि और पशुपालन के क्षेत्र में हम वांछित परिणामों में भी कोसो दूर हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या व सीमित संसाधनों को देखते हुए आने वाले वर्ष 2030 में हमें 264 मिलियन टन खाद्यान्न की जरूरत होगी। उसके लिए यह बहुत जरूरी है कि महिलाओं का कृषि में सशक्तिकरण हो जिससे निकट भविष्य में सभी को खाद्यान्न मुहैय्या हो सके। महिलाओं के सर्व सशक्तिकरण का प्रथम चरण प्रौद्योगिकी सशक्तिकरण है व उससे जुड़ा है आर्थिक सशक्तिकरण।

कृषक महिलाओं का प्रौद्योगिकी सशक्तिकरण

कृषक महिलाएं कृषि, पशुपालन, उद्यानिकी एवं घर परिवार की देखरेख का कार्य प्रमुख रूप से करती हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन कार्यों को वैज्ञानिक तरीकों से करने का ज्ञान/कौशल उन्हें सिखाया जाये, जिससे उनके समय व श्रम की बचत हो। बचे हुए समय का उपयोग महिलाएं ज्ञानार्जन व नये हुनर सीखने में कर सकेंगी जो कि उत्पादक कार्य होगा। कृषक महिलाओं के लिए निम्नांकित रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण कार्यक्रम विभिन्न संस्थाओं जैसे– राजस्थान कौशल एवं आजीविका मिशन, राष्ट्रीय बागवानी मिशन, आतमा आदि द्वारा प्रायोजित किये जा रहे हैं जिनमें महिलाएं भाग लेकर कार्य विशेष में दक्षता हासिल कर आय अर्जन कर सकती हैं–

- पौधशाला प्रबंधन– सब्जी, फल एवं अलंकृत फूलों की पौध तैयार करना।
- फल–सब्जी उत्पादन एवं परिरक्षण– अचार, चटनी, मुरब्बा, शर्बत, जैम, जैली आदि बनाना।
- मौसमी सब्जियों को वैज्ञानिक तरीके से संरक्षित कर रखना– कद्दू, फूलगोभी, गाजर, मटर, आदि।
- डेयरी स्थापना एवं दुग्ध व दूध उत्पाद तैयार करना– दही, पनीर, मावा, खोआ, आदि।
- मत्स्य पालन– रंगीन मछली व अन्य मछली पालन

- खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्द्धन– मसाले, गरम मसाले, बेसन आदि तैयार करना। इसके अतिरिक्त विभिन्न खाद्यान्नों की ग्रेडिंग एवं पैकिंग करना।
- कशीदा एवं सुई कार्य।
- हस्त शिल्प एवं कृत्रिम आभूषण बनाना आदि।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास अभिकरण, नेहरू युवा केन्द्र, जिला उद्योग केन्द्र, महिला एवं बाल विकास विभाग, कृषि विभाग आदि द्वारा आयोजित प्रशिक्षणों में भाग लेकर नवीनतम कृषि एवं संबंधित विषयों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। राजस्थान राज्य के प्रत्येक जिले में कृषि विज्ञान केन्द्रों की स्थापना की गई है जो कि कृषक, कृषक महिलाओं एवं युवाओं के लिये नवीनतम कृषि आधारित ज्ञान के स्त्रोत हैं। इन केन्द्रों द्वारा समय–समय पर कृषक परिवारों के लिये प्रशिक्षण, प्रक्षेत्र दिवस, अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन एवं विभिन्न प्रसार गतिविधियां जैसे कृषि विज्ञान मेला, प्रदर्शनी, किसान दिवस, कृषक–वैज्ञानिक गोष्ठी, कृषक/कृषक महिला भ्रमण, प्रदर्शन आदि आयोजित किये जाते हैं। प्रायः देखा गया है कि इन गतिविधियों में कृषकों/युवाओं की भागीदारी अधिक होती है तथा महिलाओं की बहुत कम। महिलाओं को चाहिए कि गांव में या आस–पास होने वाली ऐसी गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लें। कृषि पशुपालन, उद्यानिकी एवं घर परिवार से संबंधित समस्याओं के समाधान के लिये महिलाएं कृषि विज्ञान केन्द्र से सम्पर्क कर परामर्श/जानकारी प्राप्त कर सकती है।

कृषक महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण

किसान महिलाएं चूंकि कृषि एवं पशुपालन जैसे कामों से सीधी जुड़ी हैं इसलिए जरूरी है कि इन क्षेत्रों में उनका तकनीकी ज्ञान व कौशल बढ़ाया जाये ताकि वे उसे व्यावहारिक रूप से काम में लेकर प्रति इकाई पैदावार में इजाफा करते हुए अपनी आमदनी बढ़ा सकें। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का एक पक्ष उनकी अर्थोपार्जन की क्षमता को बढ़ाना है ताकि उस क्षमता का उपयोग करते हुए वे ज्यादा से ज्यादा अर्थोपार्जन कर सकें और उपार्जित अर्थ को "स्व–विवेक" से खर्च करने के लिए स्वतंत्र हों।

हमारे देश में कृषि तकनीक की कमी नहीं है परन्तु फिर भी तकनीकी ग्राह्यता का स्तर बहुत ही कम (मात्र 15 से 20 प्रतिशत) है। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि महिलाओं को उन्नत कृषि तकनीकों से अवगत कराया जाये। किसान महिलाओं तक तकनीकी हस्तान्तरण के लिए जो योजना बनाई जाती है न सिर्फ उसमें बल्कि योजना के क्रियान्वन और मूल्यांकन में भी महिलाओं की सक्रिय भागीदारी होना बहुत जरूरी है। किसान महिलाओं के आर्थिक उत्थान के लिए बनायी जाने वाली योजनाओं में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- वर्तमान में कृषि क्षेत्र में आ रही समस्याओं का पता लगाना व उसमें बदलाव के लिए महिलाओं को प्रेरित करना।
- महिलाओं को संगठित कर "स्वयं सहायता समूह" बनाना व उसे किसी न किसी आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना।
- कृषि तकनीकी ग्राह्यता के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करना।

(अ) जरूरत के मुताबिक तकनीकी मार्गदर्शन मुहैय्या कराना।

(ब) कृषि आदानों, जैसे उर्वरक, बीज, कीट एवं व्याधिनाशी रसायनों आदि की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित करना।

(स) ऋण सुविधा के विभिन्न स्रोतों की जानकारी देना।

(द) कृषि से जुड़ी दूसरी संस्थाओं से संपर्क स्थापित करने में मदद करना।

(य) सिर्फ कृषि पर आधारित न रह कर विभिन्न "कृषि प्रणाली" को अपनाने के लिए प्रेरित करना जैसे कृषि + पशुपालन, कृषि + उद्यानिकी, कृषि + वानिकी आदि।

• कृषि के क्षेत्र में परंपरागत तरीकों को नवीन तकनीकों के साथ समाविष्ट करना, जिससे तकनीकी ग्राह्यता को बढ़ाया जा सके।

आर्थिक सशक्तिकरण शीघ्र से हो इसके लिए किसान महिलाओं को तकनीकी रूप से सशक्त करना बहुत जरूरी है। "प्रशिक्षण" तकनीकी सशक्तिकरण का सशक्त माध्यम है। प्रशिक्षण के माध्यम से सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर किए जा रहे प्रयत्न आमतौर पर वांछित परिणाम दे पाने में विफल रहते हैं। इसके प्रमुख कारण कुछ ऐसे हैं–

(1) किसान महिलाओं की अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए तकनीकी योग्यता में अभिवृद्धि न कर पाना।

(2) प्रशिक्षणों का गुणवत्ता की दृष्टि से संतोषप्रद न होना।

(3) प्रशिक्षण कार्यक्रमों का मूल्यांकन न होना।

(4) प्रशिक्षण के बाद आने वाली कठिनाइयों/शंकाओं का हल न कर पाना।

(5) प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षणार्थियों के स्वयं का विश्वास न होना।

किसान महिलाओं के लिए आयोजित किए जाने वाले प्रशिक्षण से संबंधित कुछ उपयोगी/व्यावहारिक सुझाव यहां दिए जा रहे हैं, जिन्हें अपनाकर प्रशिक्षणों की उपयोगिता को और भी बढ़ाया जा सकता है–

• प्रशिक्षण गांव स्तर पर आयोजित हों।

• क्षेत्र विशेष की जरूरत के मुताबिक ही प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तैयार किये जायें जिसमें विशेष तौर पर संतुलित आहार, बच्चों की देखभाल, अनाज का सुरक्षित भण्डारण, फल एवं सब्जी परिरक्षण, बीजोपचार, कीट–व्याधि और खरपतवारनाशी, कृषि उत्पाद प्रसंस्करण, संरक्षण, मूल्य संवर्द्धन, विपणन एवं पशुओं की देखभाल जैसे विषयों को सम्मिलित किया जाए।

• समय व श्रम की बचत करने वाले यंत्रों/उपकरणों को उपयोग में लेने का व्यावहारिक प्रशिक्षण।

• तकनीक क्षेत्र विशेष की संस्कृति के मुताबिक हो।

• प्रशिक्षण में स्थानीय भाषा का इस्तेमाल हो।

• प्रशिक्षण का आधार "करके सीखो" व "देखकर विश्वास करो" पर हो।

• प्रशिक्षण में अधिक से अधिक प्रदर्शन आयोजित किये जाएं।

कृषि आधारित उद्योग/व्यवसाय के बारे में जैसे–कच्चे माल, उत्पादन प्रक्रिया, मूल्य संवर्धन, विपणन, बाजार इत्यादि की पूर्ण जानकारी दें ताकि महिलाएं अपने स्वयं के व परिवार के अनुरूप वैकल्पिक उद्योग/व्यवसाय प्रारम्भ करके अर्थोपार्जन कर सके, इससे न सिर्फ पारिवारिक आमदनी बढ़ेगी वरन् परिवार के दूसरे सदस्यों के खाली समय का सदुपयोग भी हो सकेगा।

यदि हम सही तौर पर कृषक महिलाओं का सशक्तिकरण करना चाहते हैं तो सरकार, नीति निर्धारकों व प्रशासकों को इस बात पर ध्यान देना होगा कि परिवेश व आवश्यकता के अनुरूप प्रौद्योगिकी हस्तान्तरित की जाये। प्रायः देखा गया है कि "महिला का महिला के साथ संप्रेषण" ज्यादा प्रभावी होता है बनिस्पत की "पुरूष का महिला के साथ संप्रेषण"। खेद की बात यह है कि हमारे देष में इस महत्वपूर्ण बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप हमारे देश में 88,000 कृषि पर्यवेक्षकों में से मात्र 9,000 महिला पर्यवेक्षक कार्यरत हैं (विजन 2020 एन आर सी डब्ल्यू ए, भुवनेश्वर)। यदि हम त्वरित प्रौद्योगिकी हस्तान्तरित कर प्रौद्योगिकी ग्राह्यता बढ़ाना चाहते हैं तो हमें अधिक से अधिक प्रशिक्षित महिला पर्यवेक्षकों को महिला उत्थान के कार्यों से जोड़ना होगा तभी वास्तविक रूप से कृषक महिला सशक्तिकरण का स्वप्न साकार हो सकेगा।

प्राचीन भारत में विज्ञान का विकास एवं आदान–प्रदान

दीपक राठी एवं फूलदीप कुमार
रोहतक, हरियाणा
रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र, दिल्ली

प्राचीन भारत में विज्ञान और दर्शन, दोनों ही शास्त्र, विकसित अवस्था में थे। परम्परानुसार लोग सोचते है कि आरम्भिक विज्ञान की उत्पत्ति पश्चिम, विशेषकर ग्रीस, में हुई। इस गलत धारणा के कारण यहाँ भारतीय वैज्ञानिक विचारों का संक्षित अध्ययन आवश्यक हो गया है।

भारतीय विज्ञान के इतिहास का विषय अपेक्षाकृत नवीन है और इसका विस्तृत विवरण लिखना अभी शेष है। बहुत–सा संस्कृत साहित्य अब भी अनुपलब्ध है और बहुत से अभिलेखों की खोज बाकी है।[1] भारत की प्राचीनतम सिन्धु घाटी सभ्यता से विज्ञान के इतिहास–लेखन के लिए प्रचुर सामग्री मिली है, यथा–चाक, सूती वस्त्र, सिन्धु लिपि तथा दो पहिए वाली गाड़ी इत्यादि। चीन, मिस्र और मेसोपोटामिया की तरह भारत में भी तीसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व के आरम्भ तक विज्ञान का विकास हो चुका था। सिन्धु घाटी की खुदाई में प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि वहाँ के लोगों का नागरिक अभियांत्रिकी, विशेषतः स्नान–गृह एवं नालियों सम्बन्धी, ज्ञान अतुलनीय था। यद्यपि उस युग के स्वास्थ्य विषयक अधिनियम तो ज्ञात है किन्तु उनके वैज्ञानिक आधार के विषय में अधिक मालूम नहीं है।

ग्रीस की तरह प्राचीन भारत में ज्योतिष, गणित, भौतिकी तथा शरीर–विज्ञान विषयक परिकल्पनाएँ थीं, किन्तु आरम्भिक ग्रीक विचारों में रहस्यवाद एवं गणित एक–दूसरे में मिले हुए थे, और जादू, देवत्व तथा दैवी भविष्यवाणी सम्बन्धी विचार भारत की अपेक्षा वहाँ अधिक प्रचलित थे। अतएव आधुनिक यूरोपीय लेखकों का यह विचार उचित नहीं है कि ग्रीस ही शुद्ध विज्ञान का घर था। इसी प्रकार वैज्ञानिक विचारों को भारत की देन के सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकारों के वर्णन भी अतिरंजित हैं। अपनी–अपनी परम्पराएँ होते हुए भी भारत और ग्रीस दोनों ने दर्शन की भाँति विज्ञान के क्षेत्र में, एक–दूसरे को प्रभावित किया। वस्तुतः ग्रीकों से बहुत पहले, भारतीय प्रयोगसिद्ध और स्वतःसिद्ध सत्य को सीखने के लिए संवादात्मक पद्धति का उपयोग करने लगे थे। विवेक एवं सत्य, तर्क एवं रहस्य, दृश्य तथा अदृश्य की अभिन्नता को प्राचीन ग्रीस या आधुनिक पश्चिम की अपेक्षा, भारत में अधिक मान्यता मिली थी।

अन्य प्राचीन सभ्यताओं की तरह भारत में भी मानव जीवन में विज्ञान का व्यावहारिक उपयोग नाममात्र का ही था, और अठारहवीं शती तक विज्ञान और तकनीक के विकास की दिशा एक–दूसरे से पृथक् रही। 17 वीं सदी में फ्रांसिस वेकन (1561–1626) ने अपनी कृति नोवम औगनम द्वारा प्रकृति की प्रयोगात्मक व्याख्या हेतु नई पद्धति की संस्थापना की। नये विज्ञान की आधारभूमि गणित को समझने में वह असफल रहा, किन्तु दार्शनिक होने के नाते उसने पुराने सिद्धान्तों की त्रुटियों को प्रकट किया। उसका विश्वास था कि पूर्वाग्रह और साधारणीकरण के दोषों से मुक्त मस्तिष्क ज्ञान के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सकता है। व्यावहारिक विज्ञान में विशेष अभिरुचि न होने के कारण उसने प्रकृति सन्धान के नये तरीकों पर विशेष जोर दिया। उसके अनुसार, विज्ञान का उद्देश्य प्रकृति तथा अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में नये सिद्धान्त बनाना नहीं, अपितु मनुष्य की शक्ति और महानता का ठोस शिलान्यास है। इस प्रकार कला, औषधिशास्त्र, नौशास्त्र और सब प्रकार के उद्योगों को विज्ञान गति प्रदान करने वाला था।[2] प्रायः उसी युग में विश्लेषणात्मक रेखागणित के संस्थापक रेने देकार्त्त (1596–1650)

ने अनुभव की अपेक्षा निगमन पर आधारित नई पद्धति पर जोर दिया। उसने प्रत्येक वस्तु को संशय की दृष्टि से देखना शुरू किया और प्रयोगसिद्ध प्रमाण पर जोर दिया, जिससे आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धान की नींव पड़ी। देकार्त्त ने वैज्ञानिक निष्कर्षों के व्यावहारिक उपयोग पर भी बल दिया, फिर भी आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों को पूर्णता देने वाला प्रथम व्यक्ति, इतालवी ज्योतिषशास्त्री और प्रयोगवादी दार्शनिक गैलीलियो गेलिली (1564–1643 ई) था। वह बड़ा ही उत्साही और बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न लेखक एवं गणितज्ञ था। उसने भौतिकशास्त्र में यान्त्रिक विज्ञान की संस्थापना की। उसके इन वैज्ञानिक अनुसन्धानों से चर्च के लोग बड़े रुष्ट हुए, और सत्तर वर्ष की आयु में वह रोमन कैथोलिक अधिकारियों द्वारा दण्डित किया गया। गेलीलियो तथा अन्य इतालवी वैज्ञानिकों के कार्यों के आधार पर ही कहा जाता है कि आधुनिक कला की तरह आधुनिक विज्ञान का उद्‌भव भी इटली में ही हुआ।

प्राचीन भारत में प्राकृतिक तत्त्वों की व्याख्या में वैज्ञानिक जिज्ञासा और कारण–परिणाम के सम्बद्ध विश्लेषण दृष्टिगोचर होते हैं। औषधिशास्त्र, गणित, ज्योतिष एवं तकनीकशास्त्र के साथ भारतीय दर्शन के सम्बन्ध का अभी विशेष अध्ययन नहीं हुआ है। भारतीय विचारों में दार्शनिक प्रकृतिवाद या यथार्थवाद के तत्त्व निहित हैं, और इन्हीं से वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रादुर्भाव होता है। यद्यपि आधुनिक युग में इसका प्रस्फुटन भारत में इटली या यूरोप की तरह नहीं हुआ, फिर भी पदार्थ की बनावट के सम्बन्ध में मूर्त विचार, तत्वों के विकास तथा पृथ्वी के विभिन्न स्वरूपों के निर्माण में उनके संयोग विषयक विचार सर्वप्रथम भारतीयों ने ही दिये।[3] प्राचीन भारतीयों ने जमीन की माप की, वर्ष को विभाजित किया, अन्तरिक्ष का मानचित्र बनाया, सूर्य तथा अन्य ग्रहों की गति का पता लगाया, पदार्थ का विश्लेषण किया, और पशु, पक्षी, पौधों एवं बीजों का अध्ययन किया।[4]

पश्चिमी सभ्यता में विज्ञान के पृथक्–पृथक् अंगों को महत्त्व दिया गया, किन्तु भारतीय जगत में दार्शनिक दृष्टिकोण को अधिक प्रश्रय मिला, और यही कारण है कि सभी युगों में विश्वात्मा सम्बन्धी भारतीय विचारों में सभी विशिष्ट विज्ञानों का मूल निहित रहा, और इनका विश्वव्यापी रूप सदैव अक्षुण्ण बना रहा।[5]

अध्यात्म और धर्म की भाँति भारतीय वैज्ञानिक विचारों का आरम्भ भी ऋग्वेद से होता है। मूलतः काव्यात्मक होने के कारण वेदों में वैज्ञानिक जिज्ञासा की अपेक्षा तो नहीं की जा सकती, किन्तु इनमें सहज ज्ञान और तर्क विद्यमान हैं। विशेषतः दसवें मण्डल की कुछ ऋचाओं में प्राकृतिक विचार पाये जाते है; इनमें प्राकृतिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले देवता अपनी शक्तियों से कुछ ही भिन्न प्रतीत होते हैं। इन ऋचाओं में प्रकृति–पूजा की सामान्य अभिव्यक्ति हुई है; जिसमें मनुष्य, जिसे 'पशुओं का राजा' तथा 'प्रथम जानवर' दर्शाया गया है, विश्व की शक्तियों के प्रति आश्चर्य व्यक्त करता है। ऋग्वेद की निम्नलिखित ऋचा में सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी जिज्ञासा प्रकट की गई है और दार्शनिक शंका का वस्तुतः यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है–

नासदीसात्रो सदा सीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्भत्र–
म्भः किमासीद्‌गहनं गभीरम्।।

ऋचा कहती है कि आरम्भ में न तो मृत्यु थी, न अमरता; न दिन था, न रात। केवल आकारहीन शून्य था। तब कामना जागृत हुई जिससे मूल बीज और आत्मा का अंकुर उत्पन्न हुआ। किन्तु –

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना–
था को वेद यत आ बभूव।।[6]

इस ऋचा में एकतत्त्ववाद का मूल निहित है, और इसी में सृष्टि के सिद्धान्त भी मिलते हैं। किसी देवता विशेष का मूल तत्त्व नहीं कहा गया है। वस्तुतः सृष्टि की रचना के बाद देवताओं की कल्पना हुई। वैदिक ब्रह्म अपने आप में पूर्ण एवं शाश्वत था; इसके विपरीत ग्रीक सिद्धान्त के अनुसार मन एवं आत्मा के सम्बन्ध पूर्वसंस्थापित थे, और इनमें बाहरी व्यवधान आता था। भारतीयों के अनुसार विश्व–प्रपंच में शाश्वत व्यवस्था है जिसको कोई बाहरी नियम प्रभावित नहीं करता।

वैदिक सभ्यता प्रकृतिनिष्ठ और उपयोगितावादी थी; इसमें सृष्टि सम्बन्धी धार्मिक और देवशास्त्रीय परिकल्पनाएँ भी सम्मिलित थीं। वेदों में बहुत से वैज्ञानिक विचारों के संकेत मिलते हैं, जिनमें से कुछ प्राचीन ईरानी ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। बीमारियों, दवाओं और सितारों सम्बन्धी सूचना के अतिरिक्त विश्वविधान विषयक कुछ विचार वैदिक और ईरानी विवरणों में समान ही हैं। इस विश्व का शासन 'ऋत' से होता है। 'ऋत' का अर्थ स्वाभाविक और सत्य दोनों ही होता है। 'ऋत' के रक्षक वरुण है। यह प्रकृति का नियम है, जिसका अर्थ ऋतुचक्र और नक्षत्रों में दिखाई देता है। विश्व में मानव समाज, पशु समाज और इसी प्रकार की अनेक चीजों का सन्तुलन ऋत के माध्यम से ही हो रहा है। ग्रीक विचारों के अनुसार, यह विश्व सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता की एक सुनियोजित योजना थी, किन्तु वैदिक 'ऋतु' सन्तुलन बनाये रखने वाला तत्त्व है जो कई छोटी–छोटी इकाइयों को मिलाकर बने हुए संसार–चक्र का संचालन करता है। 'अवेस्ता' में इस तत्त्व को 'आशा' और अखामनीद ग्रन्थों में 'अर्त' कहा गया है। एक अखामनीद अभिलेख में 'अर्त्त ब्रेजमानिया' (ब्रह्म सम्बन्धी) का भी वर्णन आया है। ऋत का विचार इसलिए आवश्यक है कि यह केवल प्राकृतिक ही नहीं, वरन् नैतिक नियम भी है, और सम्पूर्ण नियतिवाद का प्रतिनिधित्व करता है– वैज्ञानिक नियतिवाद से यह भिन्न है क्योंकि सभी प्रत्यक्ष अनियमिताओं को केवल इसलिए अस्वीकार करता है कि वे अनियमित हैं। यह भौतिक नियमों की अपेक्षा आदर्श से अधिक सम्बद्ध है।[7] ब्रह्म का विचार वाक् शब्द से सम्बद्ध है, जो पवित्र कृत्यों को प्रभावशाली बनाता है और विश्व की गति को नियन्त्रित करता है। यथार्थ के पर्यवेक्षण एवं ग्रहण शक्ति पर आधारित वैदिक विज्ञान के दो मूल तत्त्व थे– ब्रह्म–शरीर–विज्ञान एवं ज्योतिष। इसके अतिरिक्त असंगत जादू–टोने वाला तत्त्व भी इनके साथ–साथ चल रहा था।

उत्तर–वैदिक काल में वैज्ञानिक विचार या प्रकृतिवाद का दर्शन अधिक स्पष्ट हुआ। पुजारियों तथा अन्य लोगों द्वारा भौतिक प्रभाव सम्बन्धी वस्तुएँ समाप्त करने के बावजूद ऐसे प्रमाण मिलते हैं जो भारतीय जगत में कभी–कभी इसके प्रभुत्व का संकेत देते हैं। वैदिक ऋचाओं का प्रमुख क्षीण हुआ। प्रेरणा का स्थान अनुसन्धान ने ग्रहण किया, और धर्म का दर्शन ने। यह बौद्धिक अभिरुचि और बहुमुखी विकास का युग था। ऋग्वेद में कल्पना और संशयवाद के बीज पहले ही विद्यमान थे। उपनिषदों ने जिज्ञासा की प्रवृत्ति को विकसित किया, और प्रकृतिवाद एवं वैज्ञानिक विचारों के उदाहरण उनमें स्पष्ट रूप से मिलते है। इसके परिणामस्वरूप काल्पनिक देवताओं की पूजा, स्वार्थ निहित धर्म और धार्मिक सिद्धान्त, इन्द्रियभूत अनुभूति से परे अनदेखे पदार्थों के विषय में अनुमानों आदि की स्पष्ट रूप से निन्दा की गई। उपनिषदिक विश्व ज्ञान में ब्रह्म को जगत से भिन्न नहीं माना गया। संसार अपनी गति से चलता है और प्राकृतिक पदार्थ मानव मूल्यों पर आधारित नहीं हैं। नैतिक नियम समाज में रहने वाले मनुष्यों द्वारा गढ़े गये हैं। सत्य का दर्शन स्वानुभूति का विषय है। लोकायत दर्शन या प्रकृतिवाद केवल एक शास्त्र है जो सदैव प्रत्यक्ष पर आधारित रहा है। प्राकृतिक पदार्थो का ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है। मूल तत्त्व चार हैं– पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। आकाश को ऐसा तत्त्व माना गया है जिसमें प्रकृति

ने अपना रूप ग्रहण किया और चारों तत्वों की उत्पत्ति भी इसी में हुई है। 'ब्रह्म से आकाश प्रकट हुआ, जिससे हम सुनते हैं; आकाश से वायु जिससे हम सुनते और अनुभव करते है, वायु से अग्नि जिससे हम सुनते, अनुभव करते, देखते है; और अग्नि से पानी जिससे हम सुनते, अनुभव करते, देखते, बोलते और सूंघते है।'[8] प्राचीन भारतीयों को यह ज्ञान था कि आवाज वायु से संचालित होती है न कि शून्य से। विचार पदार्थ का परिणाम है, और देवताओं के हस्तक्षेप के बिना ही प्रकृति अपना कार्य करती रहती है।

इस जगत के रहस्यमय सम्बन्धों का ज्ञान उपनिषदों से होता है। उनका मुख्य उद्देश्य इस संसार को वस्तुनिष्ट दृष्टि से देखना था। साधारण प्राकृतिक नियमों द्वारा पदार्थों की बहुलता और विभिन्नता का विवेचन करते समय वे कभी–कभी बाह्य और मूलभूत का भेद समझने में भटक गये हैं। किन्तु वे अटल भाग्य के सामने कभी नहीं झुके और उन्होंने प्रकृति के रहस्यों को बुद्धि के माध्यम से खोलने का प्रयत्न किया। आरम्भिक उपनिषदों में उद्दालक सम्भवतः काल्पनिक चरित्र है; उसका यथार्थवादी दृष्टिकोण के बिल्कुल विपरीत है। संसार के सम्बन्ध में उद्दालक के भूत जीववादी विचार वैदिक सृष्टि एवं देवोत्पत्ति सम्बन्धी परम्पराओं से भिन्न है, तथा भारतीय साहित्य के आजीविक, चार्वाक एवं लोकायत विचारों से पूर्ववर्ती है। भौतिकवादी मतों में सम्भवतः सर्वप्रथम आजीविक, चार्वाक एवं लोकायत ही होते हैं। इस युग में मनुष्य ने प्रभुता के सिद्धान्तों को अस्वीकार कर दिया और तर्कों की वैधता पर जोर दिया। भारतीयों ने प्राकृतिक दर्शन को विभिन्न मतों द्वारा प्रतिपादित किया। सांख्य योग, न्याय वैशेषिक और चार्वाक एवं उद्दालक के सिद्धान्त स्पष्टतः यथार्थवादी हैं।

चार्वाकों के अनुसार इस संसार से परे कुछ भी नहीं है, और जो प्रत्यक्ष है उसी का अस्तित्व है; जो दिखाई नहीं देता उसका कोई अस्तित्व नहीं। उनका सिद्धान्त पूर्णतः भौतिकवादी एकतत्त्ववाद है। चार्वाक मानते थे कि संसार चार प्रकार के प्रत्यक्ष तत्त्वों से ही निर्मित है, और इन तत्त्वों से केवल निर्जीव पदार्थ ही नहीं प्रत्युत् उद्भिज आदि सजीव सृष्टि भी हुई। उनका आचार–शास्त्र सुखवादी है। उनकी दृष्टि में गुण–दोष सामाजिक मान्यता मात्र है। इस मत की उत्पत्ति ऋग्वेद में पायी जाती है, परन्तु प्रमुख कृति 'बृहस्पति सूत्र' (प्रायः 600 ई पू) अब अप्राप्य है। स्थान–स्थान से सूत्रों को इकट्ठा करके प्राचीन भारत में भौतिकवादी स्वरूप तक पहुँचा जा सका है। भारतीय विचारों में इसका वही स्थान है जो ग्रीस में सोफियों और अणुवादियों का था। वास्तव में बौद्ध, जैन एवं आजीविकों का दर्शन अत्यन्त तर्कमूलक है। ईश्वर के प्रति उदासीन होने के कारण उन्हें बहुधा अनीश्वरवादी कहा जाता है। बौद्ध मत के अनुसार, निर्वाण की प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वयं अपने ऊपर निर्भर रहना चाहिए, दैवी मध्यस्थता पर नहीं। बौद्धमत वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रतिकूल नहीं है, और इसने भारत तथा अन्य देशों में वैज्ञानिक परिकल्पनाओं को बल दिया–'बुद्ध का उद्देश्य मुख्यतः दार्शनिक एवं नैतिक था, किन्तु उनके विचारों का स्वरूप वैज्ञानिक था।'[9]

जैन मत में भी प्रकृतिवादी तत्त्व मिलते हैं–यह लोक पदार्थ तथा अणु–तत्त्वों से बना है, और मनुष्य बिना किसी दैवी सहायता के अपने नैतिक जीवन का नियन्त्रण करता है। बुद्ध–पूर्व भारत के दार्शनिक मतों में सांख्य मत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका मूल उपनिषदों में है, और यह मुख्यतः तर्कमूलक अनीश्वरवादी और बौद्धिक है। सांख्य दर्शन का मुख्य उद्देश्य प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर प्रकृति के कार्य–कलापों की व्याख्या करना है। सांख्य मत अतिलौकिक धर्म के सिद्धान्तों के विपरीत रचना के स्थान पर विकास के सिद्धान्त को मानता है। प्रकृति और पुरुष के संयाग से सृष्टि होती है, न कि ईश्वर द्वारा। प्रकृति की क्रिया जब पुरुष के चैतन्य से निरूपित होती है, तभी सृष्टि होती है। रिचर्ड गार्व के अनुसार, इतिहास में पहली बार सांख्य दर्शन में मानव मस्तिष्क के स्वातन्त्रय का प्रदर्शन हुआ।[10] सांख्य ने योगमत के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। बुद्ध ने बचपन में सांख्य एवं योगदर्शन का अध्ययन किया था, ऐसा विवरण ललितविस्तर में मिलता है।[11] सांख्य दर्शन के प्रवर्त्तक आचार्य कपिल और योग के पतंजलि माने गये हैं। आत्मा, प्रकृति, ब्रह्माण्ड–मीमांसा तथा चरमोद्देश्य सम्बन्धी विचार

सांख्य और योगों दोनों मतों में एक समान हैं, किन्तु जहाँ योग दर्शन ईश्वर को मानता है और मोक्ष के लिए यौगिक अभ्यासों पर जोर देता है, वहाँ सांख्य ईश्वर को अस्वीकार करता है और शुद्ध दार्शनिक विचारों द्वारा प्राप्त सत्य से ही मोक्ष के लिए यौगिक अभ्यासों पर जोर देता है, वहीं सांख्य ईश्वर को अस्वीकार करता है और शुद्ध दार्शनिक विचारों द्वारा प्राप्त सत्य से ही मोक्ष–प्राप्ति मानता है। इस विषम प्रकृति का विकास सजातीय प्रकृति से ही हुआ है, और प्रकृति में ही इसका समाहार हो जाता है। वर्तमान संसार तो बीते युग तथा आने वाले भविष्य की एक कड़ी मात्र है।[12]

सांख्य योग दर्शन ने अपने विचारों को इस सृष्टि के विकास तक ही सीमित रखा, किन्तु न्याय–वैशेषिक के दर्शन ने वैज्ञानिक पद्धतियों–यान्त्रिकी, भौतिकी और रसायनशास्त्र–को भी स्पष्ट किया। न्याय–वैशेषिक ने गौतम एवं उलूक के मतों का समन्वय किया। दोनों ही स्वतन्त्र बुद्धि पर आधारित यथार्थवादी पद्धतियाँ हैं, और दोनों की अपने पूर्ववर्ती दृश्य प्रपंचवाद तथा आदर्शवाद का विरोध करती हैं। न्याय तर्क एवं ज्ञान मीमांसा पर जोर देता है, और वैशेषिक भौतिकशास्त्र एवं अध्यात्म पर। फिर भी आत्मा की प्रकृति तथा विश्व के अणुवादी सिद्धान्त सम्बन्धी विचार दोनों में समान है, और दोनों ही मोक्ष–प्राप्ति को चरमोद्देश्य मानते हैं। न्याय–वैशेषिक के अनुसार, वस्तुओं की विद्यमानता ही उनका प्रमुख गुण है। अणु एवं आत्मा, क्षेत्र एवं काल, केवल ध्वनि एवं प्रतीक मात्र हैं, और अनुभव से परे इनका कोई अर्थ नहीं। उन्होंने सांख्य के सृष्टिवाद को अस्वीकार कर दिया, किन्तु चार तत्त्वों का अणु सिद्धान्त वे मानते हैं। इस प्रकार आदर्शवादी विचारों का प्रभाव होते हुए भी भारतीय बौद्धिक जीवन में विज्ञान का प्रमुख महत्त्व रहा।

रोम एवं ग्रीस की अपेक्षा प्राचीन भारत में व्याकरण का अध्ययन अधिक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित ढंग से हुआ। वैयाकरण पाणिनी की पुस्तक 'अष्टाध्यायी' वैज्ञानिक ढंग से तैयार विश्व का प्रथम व्याकरण है। चार हजार सूत्रों की इस पुस्तक की रचना तिथि अभी तय नहीं हो पायी है, किन्तु निश्चित ही इसकी रचना पाँचवी शती ईसा पूर्व के पहले ही हुई होगी। पाणिनी से पहले भी व्याकरण सम्बन्धी विश्लेषणात्मक ग्रन्थ विद्यमान थे, क्योंकि स्वयं पाणिनि ने साठ से अधिक अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों का उल्लेख किया है। वर्णमाला के अक्षरों की ध्वनि को निश्चित किया गया, स्वरों को स्पर्श, अर्द्धस्वर और दंत्योष्ठ से अलग किया गया, तथा अक्षरों को कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य एवं ओष्ठ्य स्वरों में विभाजित किया गया। पाणिनि तथा अन्य वैयाकरणों, विशेषतः कात्यायन एवं पतंजलि, ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। दूसरी शती ईसा पूर्व के मध्य तक संस्कृत भाषा का रूप स्थित हो चुका था, जो शतियों तक अपरिवर्तित रूप से चलता रहा। ग्रीक व्याकरण तर्क एवं दर्शन पर आधारित वाक्य–प्रधान था, जबकि भारतीय व्याकरण का आधार प्रयोगसिद्ध भाषायी विश्लेषण था। पश्चिम के विद्वानों ने भारतीय प्रणाली से संस्कृत के अध्ययन की खोज करने के बाद ही तुलनात्मक भाषाशास्त्र की नींव डाली, जिससे भाषा की अध्ययन शैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्भव हो सके।

वस्तुतः विज्ञान प्रयोगों की एक सारणी है, जिसमें बाह्य सहायता आवश्यक होती है। सूक्ष्म एवं शुद्ध यन्त्रों एवं उपकरणों के अभाव में प्राचीन भारतीय विद्वान् पदार्थों का सावधानी से पर्यवेक्षण और विश्लेषण करते थे। वैज्ञानिक शोध का विश्लेषण करते हुए बी एन सील ने कहा है कि वस्तुबोध, पर्यवेक्षण प्रयोग, अवलोकन–दोष, निष्कर्ष और परिकल्पना की प्रणाली की शुद्ध परिभाषाएँ स्थापित की गयीं, और दृढ़ता से उनका पालन हुआ।[13] हिन्दू वैज्ञानिक शोध का स्वरूप ऋग्वेद से लेकर 14वीं शती के मध्य तक माधवाचार्य के 'षोडश दर्शन' (1331 ई), तथा गुणरत्न के तर्कशास्त्र पर 'रसरत्न समुच्चय' (1350 ई) आदि में देखने को मिलता है।

इस युग को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–आरम्भ से 800 ई पू तक वैदिक युग; दूसरा युग प्रायः तीसरी शती ईसवी तक चला जिसमें वेदांग, ज्योतिष, श्रुत, गुह्य एवं धर्मसूत्र, मनु एवं

याज्ञवल्क्य की स्मृतियाँ, गर्ग तथा जैन कृतियाँ आती हैं। तीसरा युग सिद्धान्तों का था जो इस्लाम के अभ्युदय तक चला; इस युग के प्रमुख विद्वान् आर्यभट्ट (जन्म 476 ई), वराहमिहिर (प्रायः 475–550 ई), और ब्रह्मगुप्त (जन्म 598 ई) हुए। चौथा युग भारतीय इतिहास का मध्ययुग है।

वैदिक ग्रन्थों के वैज्ञानिक महत्त्व के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। जीन फिलियोजा प्रभृति विद्वानों के अनुसार वेदों में ही सर्वप्रथम ज्योतिष और शरीर–विज्ञान सम्बन्धी वैज्ञानिक विचारों को सुसम्बद्ध ढंग से संकलित करने की चेष्टा की गयी।[14] इसके विपरीत मैकडॉनेल तथा उसके शिष्य कीथ का कहना है कि वेदों में नाममात्र ही ज्योतिष सम्बन्धी विचार मिलते हैं। फिर भी इतना निश्चित है कि वैदिक युग में भारतीयों को ज्योतिष का ज्ञान था, और ज्योतिषी अपने खेतिहर समाज को उपयोगी सूचनाएँ देता था। वेदज्य पण्डितों का यह भी कार्य था कि वह प्रत्येक प्रकार के कर्मकाण्ड सम्बन्धी क्रियाओं के लिए शुभ लग्न की घड़ी निश्चित करते थे। इसी प्रकार खेतिहर समाज से सम्बन्धित विशेष कार्यो (जैसे फसल कब बोई जायेगी और कब काटी जायेगी) का निश्चय समाज का मुखिया करता था। इसके अतिरिक्त ज्योतिष का वैदिक विचारधारा में प्रमुख स्थान था, क्योंकि उससे गतिमान विश्व चक्र के भविष्य का पता चलता था। इस चक्र का विनश्वर स्वरूप प्रजापति शब्द की सतत सृजनशीलता में निहित था। वही विश्वात्मक है जिसके बौद्धिक स्वरूप का वर्णन वेदों में पाया जाता है। प्रजापति की काल गणना में वर्ष इकाई माना जाता था और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि वेद के दस हजार आठ सौ छन्द प्रजापति के एक वर्ष के पलों के बराबर है।[15]

ऋग्वेद में सितारों की सूची, सूर्य की वार्षिक परिक्रमा के बारह राशि विभाग एवं वृत्त के तीन सौ साठ भाग दिये गये हैं। इस प्रकार तीन सौ साठ दिन का एक वर्ष बारह महीनों में विभाजित है। सूर्य का वार्षिक क्रम बारह भागों में बँटा है, जो बारह राशियों से मिलता है। 'वेदांग ज्योतिष' में वैदिक भारतीयों ने कर्क एवं मकर संक्रान्ति के सिद्धान्तों को निश्चित कर उन्हें अग्नि एवं इन्द्र और मित्र एवं वरुण के साथ सम्बद्ध किया। 'वेदांग ज्योतिष' पंचाग के सिद्धातों की छोटी पुस्तिका है, जिसकी रचना वैदिक युग के उतरार्द्ध में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य उत्सवों की तिथियों को निश्चित करना था, जिससे उन्हें ब्रह्माण्ड की गति के साथ सम्बद्ध किया जा सके। तत्कालीन खगोलीय विचारों की विस्तृत सूचना इसके अत्यन्त संक्षिप्त सिद्धान्तों में नहीं मिल सकती। पाँच वर्ष में 1830 दिन होते हैं, और एक वर्ष में 366, जो तीन ऋतुओं में समान रूप में विभक्त होते है; इसी आधार पर यह पंचांग बना। यह क्रम प्रायः 67 नक्षत्र महीनों के बराबर था और इसमें 62 चान्द्र महीने थे। वर्ष में बारह महीनों का परम्परागत क्रम बनाये रखने के लिए दो महीने–इकतीसवाँ और बासठवाँ– निकाल दिये गये। इस प्रकार चान्द्र और सौर वर्ष गणना–चक्र के आरम्भ और मध्य में मिल जाते थे। अशोक ने भी बौद्ध धर्म–यात्राओं में समय–गणना के लिए उपयोग किया था।

यजुर्वेद में 27 और यदि अभिजित् को भी जोड़ लिया जाये तो 28 नक्षत्रों का उल्लेख है। बहुत दिन तक ऐसा समझा जाता रहा है कि ये नक्षत्र चन्द्रमा के रास्ते में बड़े–बड़े प्रासादों की तरह खड़े हैं। यह भी कहा जाता था कि पाँच वर्ष में 62 महीने वाली चान्द्र गणना, जिसको युग कहते है, का प्रतिपादन भी सौर वर्ष से साम्य स्थापित करने के लिए किया गया। नक्षत्रों का प्रयोग सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों की गति समझने के लिए किया गया। वैदिक और परवर्ती पंचांग भी कभी पूर्णतः सौर या चान्द्र नहीं रहे, वरन् सदैव मिश्रित रहे, क्योंकि भारतीय ज्योतिषविदों ने सदैव ही खगोलीय तत्त्वों को अविभाज्य माना है।[16]

नक्षत्रों की यह सूची लगभग चीनी 'स्यू' अथवा सूर्य के समान है; इस कारण जे0 बी0 वियट और डि सौसर आदि पिछली शती के विद्वानों ने यह गलत धारणा बना ली कि भारत ने इसे चीन से ग्रहण किया है। परन्तु जब यह मान लिया गया है कि 'स्यू' की प्रथम सूची भारतीय नक्षत्रों की सूची

से बाद में पूरी हुई थी।[17] सम्भवतः चीन ने भारत से इसको ग्रहण किया। बौद्ध मत के साथ भारतीय विज्ञान भी चीन पहुँचा। हिन्दू ज्योतिष यन्त्रों का प्रचार चीन में हुआ, और चीन सरकार की ज्योतिष परिषद् में बहुत से हिन्दू ज्योतिषी भी सम्मिलित थे। किन्तु यजुर्वेद काल में भारत और चीन के सम्बन्धों का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, अतः ऐसा लगता है कि चीन में ज्योतिष का स्वतन्त्र विकास हुआ। चीनी विज्ञान के प्रसिद्ध समर्थक जे नीडहैम ने दबे शब्दों में यह सुझाव दिया है कि चन्द्रमा के रास्ते में आने वाले इन प्रासादों की चीनी और भारतीय कल्पना का स्रोत सम्भवतः बेबीलोनिया रहा है।[18] किन्तु यह मत स्वीकार करने योग्य नहीं है। मेसोपोटामिया में ज्योतिष का अध्ययन तो होता था, किन्तु इस प्रणाली के वहाँ विद्यमान होने के कोई चिन्ह उपलब्ध नहीं हैं। यदि ऐसा होता, तो वहाँ पर सितारों के उदय और अस्त होने के आधार पर सूर्य की स्थिति निश्चित करने की अपेक्षाकृत कम सही, जोडियाक प्रणाली के स्थान पर इसके अवशेष अवश्य मिलते। भारतीय नक्षत्र प्रणाली वैदिक यज्ञ यागादि से प्रभावित थी तथा यह ग्रीक और अलेक्जेन्ड्रियाई ज्योतिष से अप्रभावित रहकर भारत में ही विकसित नही हुई वरन् अन्य देशों में भी इसका प्रसार हुआ। सासानिक फारसी, अरबी और मिस्त्री लोगों ने चन्द्रमा की गति के दिनों की संख्या 28 मानी है। इसी आधार पर कल्पना यहाँ तक पहुँची कि चन्द्रमा के रास्ते में आने वाले ये प्रासाद भी 28 ही हैं। हरमेटिक ग्रीक ग्रन्थों में यह विचार अरबों से भी पूर्व पाया जाता है। प्राचीन ईरान अथवा अन्य किसी पश्चिमी देश के नक्षत्रों का कोई समानार्थक शब्द ही नहीं मिलता, इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि अरबों ने इसको भारतीय ज्योतिष से ही ग्रहण किया था।[19]

भारतीय महान् विश्वचक्र और विश्वयुग का सिद्धान्त ग्रीक या बेबीलोनिया के 'महावर्ष' सिद्धान्त से अधिक पुराना है। इस अवधि में सभी नक्षत्र अपनी परिक्रमा पूरी कर लेते हैं। इन सिद्धान्तों में आश्चर्यजनक गणनात्मक समानता पायी जाती है।[20] महायुग सम्बन्धी भारतीय विचार चन्द्र–सौर के पंचवर्षीय काल पर आधारित है, जिसमें चार युग सम्मिलित हैं। ये युग श्रेष्ठता तथा अवधि में समान माने गये। उनके कालक्रम का अनुपात इस प्रकार है–4,3,2,1 अन्तिम युग–कलियुग–महायुग का दसवाँ भाग है और इसकी अवधि 4,32,000 वर्ष है। यह गणना केवल नक्षत्रों और तारकीय चक्र पर ही आधारित नहीं थी, वरन् ऋग्वेद के 10,800 पदों में भी 4,32,000 उच्चारण हैं। क्लासिकल खगोल–शास्त्रियों की गणनानुसार महायुग 43,20,000 वर्षो का था, जिसका मुख्य तत्त्व 10,800 की गुणित 10,80,000 सौर वर्ष थे। वेरीसस के अनुसार, एक बेबीलोनियाई महावर्ष 4,32,000 वर्षो का था, जो 3,600 वर्षो के एक सौ बीस 'सरोई' में विभाजित थे।[21]

वेद तो समय और जलवायु के परिवर्तनों से अप्रभावित रहे परन्तु विज्ञान और खगोलशास्त्र के अन्य ग्रन्थों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। सभी जानते है कि उनमें से बहुत से ग्रन्थ नष्ट हो गये और जो पुराने भारतीय वैज्ञानिक ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं वे ईसा सन् से पुराने नहीं है। इस प्रकार एक हजार वर्षो का ऐसा समय बैठता है जिसमें खगोलशास्त्र की बहुत उन्नति हुई।

ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में भारत के सम्बन्ध ग्रीस, फारस और पश्चिमी एशिया के साथ स्थापित हो चुके थे। परिणामस्वरूप ग्रीक ज्योतिष से ओत–प्रोत 'सिद्धान्त' की रचना हुई। छठी शती ई में वराहमिहिर ने अपनी पुस्तक 'पंच सिद्धान्त' में सूर्य, पैतामह, रोमक, पौलिस एवं वशिष्ठ आदि पाँच ज्योतिष विधियों का सारांश प्रस्तुत किया। यद्यपि कुछ विद्वान इन सिद्धान्तों का स्वतन्त्र विकास होना मानते हैं, रोमक और पौलिस क्रमशः रोम एवं अलेक्जेन्ड्रिया से प्रभावित हो सकते हैं। पौलिस सिद्धान्त शुद्ध खगोलशास्त्रीय है, ज्योतिष नहीं; और यदि वह किसी ग्रीक कृति से प्रभावित रहा भी हो तो इसका ठीक निश्चय नहीं। अधिक सम्भव है कि रोमक ग्रीक सिद्धान्तों से प्रभावित रहा हो, किन्तु यह भी हो सकता है कि रोमक की रचना किसी ग्रीक ने की हो, जो भारत में बस गया हो, और भारतीय एवं अलेक्जेन्ड्रियाई दोनों पद्धतियों से परिचित रहा हो। समय के साथ ये पद्धतियाँ खरी नहीं उतरीं, और

एक के स्थान पर दूसरे सिद्धान्त का निरूपण होता रहा, जिसमें अब केवल 'सूर्य सिद्धान्त' बच रहा। इसे विद्यार्थियों की अपेक्षा विद्वानों की हस्तपुस्तिका भी कहा गया है। यद्यपि अपनी नक्षत्र पद्धति के द्वारा भारतीयों ने बहुत पहले ही सूर्य की स्थिति का सही ज्ञान प्राप्त कर लिया था, और यह भी पता लगा लिया था कि विषुव तथा अयनान्त बिन्दु निश्चल नहीं रहते, तथापि इस तथ्य का उद्‌घाटन उन्होंने वर्षो बाद सूर्य सिद्धान्त में किया। इसीलिए भारतीय खगोलशास्त्र को ग्रीक–देन नहीं माना जा सकता। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सूर्य सिद्धान्त और टॉलेमी की संख्याओं में कई विभिन्नताएँ है; अतएव इस पुस्तक पर यदि कुछ ग्रीक प्रभाव हुआ होगा तो वह टॉलेमी काल से पूर्व का होगा।

'सूर्य सिद्धान्त' के रचनाकाल में भारतीय ज्योतिषी आर्यभट्ट जीवित था। उसका जन्म 476 ई में हुआ, और उसने 23 वर्ष की अवस्था में अपनी प्रसिद्ध कृति 'आर्यभट्ट–तंत्र' को पूरा कर लिया था। चार भागों और 121 सूक्तों वाली इस ज्योतिष और गणित की संक्षिप्त किन्तु तथ्यपूर्ण सूत्रात्मक कृति में जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, उन्हें बहुत पहले ही पूर्णता प्राप्त हो चुकी होगी। मूल रूप में 'सूर्य सिद्धान्त' से सम्मत होते हुए भी 'आर्यभट्ट–तंत्र' में कुछ अपनी मान्यताएँ भी स्थिर की गयी हैं। ज्योतिष जगत को आर्यभट्ट की मुख्य देन थी– नया अन्तर्वृत्तीय सिद्धान्त, पृथ्वी की वृत्ताकृति, पृथ्वी की अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर परिक्रमा, ग्रहणों की सही व्याख्या, उनके सम्बन्ध में सही भविष्यवाणी करने की विधियाँ और वर्ष की सही अवधि। 'पृथ्वी की वृत्ताकृति' का सिद्धान्त अरबों के पास सुरक्षित रहा, और पियरे द एली के जिस मानचित्र (1410 ई) को कोलम्बस ने काम में लिया, उसमें इसी सिद्धान्त का उपयोग हुआ था। भारतीय वैज्ञानिकों में आर्यभट्ट सबसे अधिक मौलिक एवं मेधावी था। किन्तु उसकी कृतियों का कुछ अधिक प्रभाव देश या विदेश के विद्वत् जगत पर नहीं पड़ा। पृथ्वी की परिक्रमा सम्बन्धी आर्यभट्टीय सिद्धान्त का उल्लेख वाद की रचनाओं में नहीं हुआ। किन्तु 'सूर्य सिद्धान्त' ने भारत के पड़ोसी देशों को बहुत प्रभावित किया।

'पंच सिद्धान्त' का लेखक वराहमिहिर छठी शती में हुआ। अपनी पुस्तक 'वृहत् संहिता' में वह ग्रहों की गति तथा प्रत्येक के महत्त्व का वर्णन करता है। वह महान् विद्वान् और भाषा एवं छन्दों का ज्ञाता था। गणना ज्योतिष की अपनी दोनों पुस्तकों 'वृहत् जातक' और 'लघु जातक' में उसने होरा आदि कई ग्रीक ज्योतिष पदों का प्रयोग किया है। वराहमिहिर का कहना था कि यद्यपि यवन म्लेच्छ हैं और उनका खगोलशास्त्रीय ज्ञान भारतीयों से निम्न श्रेणी का है, किन्तु वे ऋषियों की तरह आदर के पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने ज्योतिष विज्ञान का अनुसंधान किया है। खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में ग्रीक उपलब्धियों के प्रति वराहमिहिर के विचार इतने ऊँचे नहीं हैं। सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए वह कहता है कि यूरोप प्रभावित पौलिस एवं रोमन सिद्धान्त सही हैं, किन्तु हिन्दुओं का सूर्य सिद्धान्त उससे कहीं अधिक शुद्ध है। वस्तुतः खगोलशास्त्र की शाखा के रूप में ज्योतिष के विकास का श्रेय ग्रीकों को ही मिलना चाहिए। यद्यपि भारतीय पण्डित समाज में ज्योतिष बड़ा लोकप्रिय विषय है, किन्तु ईसा सन् पूर्व वैदिक, बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में इसका कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख नहीं मिलता। ईसा सन् के ठीक पहले कुछ व्यक्तियों के नाम नक्षत्रों पर मिलते हैं, जैसे बृहस्पतिमित्र। किन्तु इसके बहुत बाद, ग्रीकों के प्रभाव से ग्रह–ज्योतिष भारत में लोकप्रिय हुआ।

भारतीय खगोलशास्त्र का क्लासिकल युग उज्जयिनी के ब्रह्मगुप्त (जन्म 598 ई) के साथ समाप्त हो जाता है। उसने 628 ई0 में 'ब्रह्म सिद्धान्त' लिखा, और 664 ई में 'खण्डखाद्यक'। उसने आर्यभट्ट के पृथ्वी के परिक्रमा सम्बन्धी सिद्धान्त को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि यदि पृथ्वी एक साँस (प्राण) में एक मिनट चलती है, तो इसका मार्ग क्या है और यदि यह घूमती है तो भारी चीजें गिरती क्यों नहीं? यद्यपि अलबेरूनी ब्रह्मगुप्त की उपर्युक्त आलोचना को अनुचित मानता है, किन्तु वह उसको भारतीय खगोलशास्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ की संज्ञा देता है। अपने पूर्ववर्ती आर्यभट्ट की तरह ब्रह्मगुप्त भी कुशल गणितज्ञ था।

खगोलशास्त्र के क्षेत्र में भारत की देन महत्त्वपूर्ण है–सौर पद्धति (जिसके अनुसार पृथ्वी तथा अन्य नक्षत्र सूर्य की परिक्रमा करते हैं) नक्षत्र, विषुवअयन तथा उनकी गति का निश्चय, चान्द्र–सौर वर्षो की स्थापना, सप्ताह के दिनों के नाम, निरन्तर पर्यवेक्षण पर आधारित नक्षत्रों की गति की गणना, वैज्ञानिक आधार पर खगोलीय पंचांग की रचना, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और दूसरे नक्षत्रों का वृत्ताकार स्वरूप, समान गति सिद्धान्त पर आधारित नक्षत्रों की दूरी, धुरी पर पृथ्वी की परिक्रमा, ग्रहों की परस्पर आकर्षण शक्ति और निरीक्षण स्थल का अक्षांश, तथा धूप–घड़ी की सहायता से समय का परिज्ञान।[22]

ब्रह्मगुप्त के पश्चात् लल्ला एवं भोज आदि कई प्रसिद्ध खगोलशास्त्री हुए। पर्याप्त समय तक भारतीय खगोलशास्त्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति देखने में नहीं आयी। किन्तु इस विषय की प्रख्यात पुस्तक 'सिद्धान्त शिरोमणि' की रचना भास्कराचार्य ने 1150 ई0 में की। इसके बाद भी कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ। 1205 ई0 में अपने पितामह के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए भास्कराचार्य के पौत्र चांगदेव ने एक विद्यालय की स्थापना की, किन्तु यह बहुत दिनों तक नहीं चल पाया। ऐसा लगता है कि भारतीय विद्वान् पूर्ववर्ती सिद्धान्तों की व्याख्या करने में ही अपनी शक्ति अधिक लगाते थे।

वर्जेस के अनुसार, खगोलशास्त्र के क्षेत्र में हिन्दुओं और ग्रीकों में बहुत कम आदान–प्रदान हुआ, क्योंकि इन दोनों के अंकों और परिणामों में कहीं भी पूर्ण साम्य नहीं है।[23] अलेक्जेंड्रियाई विज्ञान और ग्रीस के सम्पर्क में आने से पूर्व भी हिन्दुओं का खगोलशास्त्रीय ज्ञान हेलेनिक ज्योतिषियों से कम नहीं था। यह अस्वाभाविक लगता है कि भारत और पश्चिमी जगत में इतना निकट सम्पर्क होते हुए भी विचारों का आदान–प्रदान न हुआ हो। प्राचीन और स्वतन्त्र होते हुए भी भारत में खगोलशास्त्र की परम्परा अलेक्जेंड्रियाई विज्ञान से प्रभावित हुई। यहाँ कुछ शब्दों के उल्लेख उपयोगी होंगे, जो एक–दूसरे से ग्रहण किये गये, उदाहरणार्थ–यूरोपीय खगोलशास्त्र का 'ऑक्स' संस्कृत 'लिप्त' हो गया; इसी प्रकार 'डेकनोस' संस्कृत में 'द्विक्कोण', और 'त्रिगनौस' संस्कृत में 'त्रिकोण'।

अरब युग में गणित को खगोलशास्त्र से पृथक् करना व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव है, क्योंकि प्रायः सभी गणितज्ञ या तो खगोलशास्त्री थे, या ज्योतिषी, या दोनों ही। भारत में भी गणित और खगोलशास्त्र में निकट सम्बन्ध था, इसीलिए आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कर की खगोलशास्त्रीय रचनाओं में अंक एवं बीज–गणित के महत्त्वपूर्ण अंश मिलते हैं।

विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन भारत के महत्त्वपूर्ण योगदान को अब आधुनिक शोधों के द्वारा मान्यता मिल रही है। प्राचीन भारतीय और ग्रीक दोनों ही गणित में रुचि रखते थे, और उन लोगों ने महत्त्वपूर्ण अनुसंधान भी किये, किन्तु उनके दृष्टिकोण भिन्न थे।[24] ग्रीकों का अधिक ध्यान रेखागणित की ओर था; अंक एवं बीजगणित तथा खगोलशास्त्र गौण थे; वे किसी वस्तु के विस्तार में लम्बाई को प्रधानता देते थे, संख्या को नहीं; और दूसरी और भारतीयों का गणित संख्या पर आधारित था। अमूर्त संख्याओं के विषय में उनके विचार स्पष्ट थे, जिनसे वे बीजगणित को विकसित करने एवं ग्रीकों से अधिक जटिल गणना करने में समर्थ को सके।

ग्रीक रेखागणित की मुख्य विशेषता प्रबल तर्क एवं सम्बद्ध विवेचन है, तो भारतीय गणित में विचारों की स्पष्टता, अमूर्तता, प्रतीकात्मकता और मौलिकता पायी जाती है।[25] ग्रीस की तरह भारत में विज्ञान और दर्शन एक–दूसरे से सम्बद्ध थे। उदाहरणार्थ रेखागणित में विशेष अभिरुचि होने के कारण ग्रीकों ने इस विश्व में समरूपता देखी, जबकि भारतीय हिन्दू और बौद्ध दर्शन के 'शून्य–सिद्धान्त' से भारतीय गणितज्ञों को प्रतीकों की उपयोगिता और शक्ति का संकेत मिला। शून्यवाद के अनुसार यह जगत न तो सत्य है न मिथ्या, न दोनों ही और दोनों से विहीन भी नहीं। इस आध्यात्मिक विचार को विज्ञान में आकार, रूप और प्रतीक देना, मानव विचार और प्रगति के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जायेगी। वस्तुतः यह शून्य ही समस्त वैज्ञानिक गणना का आधार था। शून्य का सिद्धान्त

केवल गणितीय और वैज्ञानिक अनुसंधान ही नहीं है, वरन् यह भारतीय विचार की सभी शाखाओं, विशेषतः भौतिक दर्शन एवं ब्रह्मवाद, में निहित है। शून्य दो विरोधी प्रवृत्तियों के बीच का संक्रमण स्थान है। प्रत्यक्ष से परे होते हुए भी यह प्रत्यक्षमूलक सामग्री का आधार भी है। यह एक साथ ही सब कुछ है, और कुछ भी नहीं है। मूलतः यह ब्रह्म या निर्वाण का प्रतीक है। तीसरी शती ईसा पूर्व में प्रख्यात गणितज्ञ भास्कर ने निर्वाण सिद्धान्त पर एक पुस्तक लिखी। शून्य शब्द वैदिक साहित्य में भी आया है, और 'अभाव', 'तुच्छ', 'असम्पूर्ण' और 'ऊना' के अर्थ में संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग हुआ है। बहुत से प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने शून्य को दो समान और विरोधी तत्त्वों का योग कहा है।[26]

बहुत समय तक यूरोप वाले शून्य और दशमलव पद्धति का उद्गम अरब से मानते रहे, किन्तु अब निर्विवाद रूप से यह स्वीकृत हो गया है कि ये पद्धतियाँ भारत से अरबों द्वारा यूरोप ले जाई गई।[27] 830 से सर्वप्रथम अरब देश में दायीं ओर से बायीं ओर अरबी लिपि में लिखे हुए अंक प्राप्त हुए। दायीं और से गिनने पर प्रत्येक अंक अपनी इकाई, दहाई, सैकड़ा और हजार की स्थिति का द्योतक होता था। जिस स्थान पर अंक नहीं होता था, वहाँ एक बिन्दु लगा दिया जाता था, जो वर्तमान शून्यांक का पूर्वरूप था।

शून्य और अनन्तता के गणितीय परिणाम का ग्रीकों को अस्पष्ट अनुभव था। जब भारतीय पद्धति का आविष्कार नहीं हुआ था, सारे प्राचीन राष्ट्र संख्या के लिए चिह्नों का प्रयोग करते थे। शून्य का प्रयोग न करने से उनका काम सीमित और बड़े परिश्रम का होता था। इसके विपरीत पद्धति में बड़ी से बड़ी संख्या आसानी से लिखी जा सकती थी। संख्याओं के लिए पृथक् चिन्हों के स्थान पर भारतीय गणितज्ञों ने स्थानीय मान को अधिक महत्त्व दिया, जिससे कि असीमित संख्याओं की अभिव्यक्ति में आसानी हुई। इस भारतीय पद्धति से गणित के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई और बाद में शुद्ध विज्ञानों के क्षेत्र में भी। यदि यूरोपीय विज्ञान रोमन संख्याओं से ही बोझिल रहता, तो पश्चिम के बहुत से आविष्कार सम्भव नहीं होते। विश्व को इस नये सिद्धान्त के अनुसन्धानकर्ता का नाम आज ज्ञात नहीं, किन्तु निश्चय ही बुद्ध के पश्चात् जन्मा वह भारत का महान् पुत्र था। अपने विश्लेषणात्मक मस्तिष्क के द्वारा उसे यह महान् उपलब्धि मिली और जितनी प्रतिष्ठा उसे प्राप्त हुई उससे कहीं अधिक का वह अधिकारी है।[28] वह अज्ञात विद्वान् निःसन्देह प्रशंसा का पात्र है। अब प्रश्न यह है कि गणित के क्षेत्र में विकसित परम्परा के बिना क्या यह सम्भव था कि ऐसे मौलिक अनुसन्धान हों और उनका प्रसार अन्य देशों में भी हो? यद्यपि उस परम्परा के प्रमाण छुटपुट रूप में ही मिलते है, उनसे गणितीय ज्ञान का स्वरूप हो जाता है।

कुछ विद्वानों ने शून्य और स्थानीय मान सिद्धान्त की उत्पत्ति की तिथि दूसरी शती ईसा पूर्व मानी है, क्योंकि उस युग की कृति 'पिंगल–छन्दः–सूत्र' में शून्य का उल्लेख हुआ है। अब यह सर्वत्र स्वीकृत कर लिया गया है कि शून्य और स्थानीय मान सिद्धान्त भारत में 5वीं शती में प्रचलित था और सीरियाई तथा हिन्द चीनी लोगों को इसकी जानकारी छठी शती ईसवी के अन्त तक हुई। अंकों की पुरानी पद्धति का प्रयोग तो यूरोप में 14वीं शती तक होता रहा, इसके विपरीत भारत में अंकगणित की कोई ऐसी रचना प्राप्त नहीं है जो पुरानी पद्धति पर आधरित हो। चौथी शती ईसवी की कही जाने वाली 'बक्शाली पांडुलिपि' में नई पद्धति का प्रयोग हुआ है। इस पुस्तक में कई ऐसी गणितीय समस्याओं का समाधान दिया गया है, जिनके विषय में अन्य कृतियाँ मौन हैं।[29] इस ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चित नहीं है, और जब तक इसकी तिथि निश्चित नहीं हो जाती, तब तक शून्य के आविष्कार की तिथि–समस्या ही बनी रहेगी। फिर भी 499 ई में जब आर्यभट्ट ने 'आर्यभट्ट–तन्त्र' की रचना की, तो वर्तमान प्रणाली से वर्गमूल और घनमूल निकाला। उसने अवश्य ही नौ संख्या और शून्य वाली दशमलव पद्धति का उपयोग किया होगा, या नौ गोलियों वाले इस यन्त्र का, जिसमें शून्य की जगह रिक्त स्थान होता है।[30]

जीन फिलियोजा का विश्वास है कि भारतीयों ने शून्य को या तो बेबीलोनियन अधिकारियों से लिया, या ईसा की आरम्भिक शतियों में उन्होंने इसका पुनराविष्कार किया। फिलियोजा इस प्रश्न को नहीं उठाता कि भारत से शून्य का प्रचार मध्ययुगीन एशिया में हुआ, और अरबों द्वारा यह यूरोप पहुँचा।[31] प्रायः 1600 ई पू के बेबीलोनियन टिकरों में प्राप्त षाष्ठिक सिद्धान्त में स्थानीय मान का प्रयोग हुआ, यद्यपि इसका प्रयोग हिसाब–किताब में नहीं हुआ। किन्तु भारत ही प्रथम देश है जिसने स्थानीय मान के साथ पूर्ण दशमलव पद्धति का प्रयोग किया। यह अनुमान का विषय है कि शून्य की आकृति की प्रेरणा कहाँ से मिली, क्योंकि शून्य की आकृति में भी क्षेत्रीय भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

सम्भवतः 12वीं शती में अरबों ने भारतीयों से यह पद्धति सीखी। इतालवी व्यापारी लिओनार्डो ऑफ पीसा ने, जिसे फिवोनाची भी कहा जाता है, अपनी पुस्तक 'लिवर अब्वाची' 1202 ई में प्रकाशित की। यूरोप में आधुनिक गणित की नींव डालने वाले इस विद्वान् की शिक्षा–दीक्षा बारबेरी में हुई थी; वहीं उसने अरबी अंक भी सीखे, जिन्हें वह सभी गणना–पद्धतियों में सर्वश्रेष्ठ मानता था।

बीजगणित के क्षेत्र में भी भारतीयों की देन महत्त्वपूर्ण है। अब यह सर्वत्र स्वीकृत कर लिया गया है कि अरब बीजगणित के अनुसन्धानकर्त्ता नहीं, वरन् संवाहक थे। भारतीयों ने ही सर्वप्रथम नकारात्मक मात्राओं का पता लगाया था। उन्होंने इन मात्राओं को धन और ऋण कहकर इनका भेद स्पष्ट किया। अज्ञात सम्बन्धी विज्ञान होने के कारण बीजगणित में प्रतीकों का समावेश किये बिना प्रगति नहीं हो सकती थी।

भारतीय अमूर्त का चिन्तन करते रहे हैं, अतः उन्होंने वर्णमाला के अक्षरों के माध्यम से अज्ञात के प्रतीकों और गणितीय अंकों द्वारा सही गणना के नियम बनाये। जब एक बार प्रतीक स्थिर कर लिये गये, तो प्रगति तेजी से हुई। उदाहरणार्थ, पाँचवी शताब्दी में आर्यभट्ट बड़ी–बड़ी संख्याओं को शब्दांशों द्वारा व्यक्त करने में सफल हुआ, क्योंकि भारतीय ध्वनि–शास्त्रियों ने पन्द्रह स्वरों, पच्चीस व्यंजनों और आठ अन्य अक्षरों के लिए ध्वन्यात्मक वर्णमाला तैयार कर ली थी। भारतीयों ने वर्गमूल और घनमूल निकालने का ठोस तरीका ढूँढ़ लिया था। वे शक्ति–सूचक अक्षरों का प्रयोग करते थे और बीजगणित के समीकरणों का हल निकालते थे।[32]

रेखागणितीय ज्ञान पर अधिक बल देने के कारण और उचित चिह्नों के अभाव में ग्रीकों को अनिर्धारित समीकरणों के हल में विशेष सफलता नहीं मिली। द्विघात समीकरण का शुद्ध हल सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त (598–660 ई) ने निकाला। नवीं शती में महावीर ने उसके कार्य को आगे बढ़ाया। 12वीं शताब्दी में भास्कर ने क्रमचय एवं संचय के नियम बनाये, और 'भिन्न' का आविष्कार किया। अरबों और बाद में यूरोपियनों ने बीजगणित के क्षेत्र में बड़ी प्रगति की, किन्तु 18वीं शताब्दी के अन्त तक की यह उन्नति भारतीय पद्धति के अनुसार ही थी, और आज भी बीजगणित के चिन्ह मूलतः भारतीय ही है। हैकेल के अनुसार, बीजगणित का आविष्कार भारतीयों ने ही किया था, और आधुनिक युग के अंक एवं बीजगणित मूलतः भारतीय है।[33]

सम्भव है, प्रथम ग्रीक बीजगणितज्ञ और यूरोप में इस शास्त्र के जनक–डायोफैन्टस (तीसरी शती) ने भारत से प्रेरणा ग्रहण की हो। यद्यपि इसके निश्चित प्रमाण नहीं मिलते, तथापि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसकी पुस्तक 'अरिथमेटिका' की रचना अचानक ही हुई जो अपने विषय की सभी पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न थी। शुद्ध ग्रीक रेखागणित से भी यह भिन्न थी।[34] कहा जाता है कि डायोफैन्टस के बिना ग्रीस में बीजगणित का अस्तित्व ही नहीं होता। उसने बीजगणितीय समीकरणों को बीजगणित के ही चिन्हों में व्यक्त किया, और उसकी विधि विशुद्ध विश्लेषणात्मक रेखागणितीय पद्धतियों से पूर्णतः भिन्न है। विभिन्न बीजगणितीय चिन्हों की खोज के अतिरिक्त उसने संख्याओं के नये मान निर्धारित किये, और कई प्रकार के निर्धारित तथा अनिर्धारित समीकरणों के हल निकाले। उसकी पद्धति भारतीय बीजगणित के अत्यन्त निकट है।

स्ट्रू इक ने लिखा है कि प्रथम श्रेणी के अनिर्धारित समीकरणों का प्रथम सामान्य हल ब्रह्मगुप्त में पाया जाता है। अतः रैखिक अनिर्धारित समीकरणों को डायोफैन्टाइन समीकरण कहना सही नहीं है। यही नहीं जहाँ डायोफैन्टस अब भी भिन्नात्मक समीकरण स्वीकार करता है, वहाँ हिन्दू गणितज्ञ पूर्णांक हल पर अधिक जोर देते थे। समीकरणों के नकारात्मक मूलों को स्वीकार करने में वे डायोफैन्टस से भी आगे निकल गये थे।[35] यह तथ्य है कि कतिपय दार्शनिक और धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों, जैसे–मानीवाद, नवप्लेटोवाद, ज्ञेयवाद में भारतीय सिद्धान्तों से स्पष्ट समानता दिखाई देती है। अतः डायोफैन्टस की कृतियों में भारतीय प्रेरणा का होना असंदिग्ध है।[36]

यद्यपि भारतीयों ने बीजगणित और अंकगणित के क्षेत्र में बहुत उन्नति की, उनका गणितीय अध्ययन रेखागणित से आरम्भ हुआ, जिसमें उनकी योग्यता बहुत सामान्य थी। रेखागणितीय ज्ञान का आरम्भ वैदिक युग से हुआ, जिसके प्राचीनतम उदाहरण शुल्व–सूत्रों (वैदिक कल्प–सूत्रों) में पाये जाते हैं। यह प्रायोगिक स्वयंसिद्ध रेखागणित धार्मिक जीवन के क्रिया–कलापों से सम्बद्ध था।

वैदिक वेदियाँ और हवनकुण्ड रेखागणितीय सिद्धान्तों के अनुसार बनाये जाते थे। शुल्व–सूत्रों में वर्गों एवं आयतों की रचना, विकर्ण का भुजाओं से सम्बन्ध, एकाकार आयत तथा वर्ग, एकाकार वृत्त एवं वर्ग, आयतों का वर्गो में तथा वर्गों का आयतों में संपरिवर्तन, तथा दो वर्गों के योग या अन्तर के बराबर वर्गों की रचना सम्बन्धी रेखागणितीय नियम प्राप्त होते हैं।[37] इनके द्वारा पाइथागोरियन प्रमेय के इस पूर्व ज्ञान का आभास मिलता है कि समकोण त्रिभुज की दोनों भुजाओं के वर्ग, कर्ण के वर्ग के बराबर होते हैं। इन सूत्रों में इकाई के भित्रों के सूचक सम्भावित अंकों के रोचक उदाहरण मिलते हैं। सभी भिन्न इकाई के भिन्न होते हैं और पाँच दशमलव अंकों तक सही फल उनसे ज्ञात किया जा सकता है। वैदिक भारतीयों को त्रिकोण, समानान्तर चतुर्भुज, आयत और आयताकार समान्तर फलक की माप के नियम ज्ञात थे। कुछ समय बाद उन्हें वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात का ज्ञान भी हो गया था। वृत्त, शंकु, गोलाकृति और पिरामिड की माप का भी उन्होंने अध्ययन किया था।

यह विचित्र बात है कि ये रेखागणितीय रचनाएँ बाद की हिन्दू पुस्तकों में नहीं मिलतीं; सम्भवतः इनके लेखकों ने शुल्वसूत्रों के गणितीय निष्कर्षों की पूर्ण अवहेलना की। यदि परम्परा का रक्षण होता और मिस्र तथा मेसोपोटामिया की तरह इस शास्त्र का विकास होता तो भारतीय रेखागणित का इतिहास कुछ और ही होता। जैन धर्मावलम्बियों ने गणितीय अध्ययन को प्रोत्साहित किया, और उनकी धार्मिक पुस्तकों में पाई का मान पाया जाता है।

रेखागणित में भारतीयों की उपलब्धियाँ ग्रीकों की अपेक्षा कम रहीं। भारतीयों का ध्यान केवल माप पर ही केन्द्रित रहा; उन्होंने परिभाषाओं, अभिधारणाओं, स्वतःसिद्ध सिद्धान्तों और तार्किक विश्लेषणों की प्रायः उपेक्षा की। किन्तु अलेक्जेंड्रिया के हीरो नामक ग्रीक गणितज्ञ का ईसा पूर्व की प्रथम शती में शुल्वसूत्र से प्रभावित होना असम्भव नहीं है। यह भी सम्भव है कि भारतीय गणितशास्त्री ब्रह्मगुप्त हीरो की कृति से परिचित रहा हो। आनुमानिक और सही क्षेत्रफल में भेद बताते हुए उसने हीरों के सिद्धान्त का अनुसरण किया है। ब्रह्मगुप्त और बाद में महावीर ने चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालने में हीरो के सिद्धान्त का उल्लेखनीय विस्तार किया। रेखागणित में ग्रीकों में हीरो के सिद्धान्त का उल्लेखनीय विस्तार किया। रेखागणित में ग्रीकों की वरिष्ठता होते हुए भी पाई का वर्तमान आनुमानिक मूल्य निकालने वाला व्यक्ति आर्यभट्ट ही था। ग्रीक पाई को बराबर मानते थे, जबकि भारतीय गणितज्ञों ने इसको भिन्न में 3.1416 तक फैलाया। बाद में गणितशास्त्रियों ने इस मान में नौ दशमलव अंकों तक और सुधार किया जो ग्रीकों की गणना की अपेक्षा अधिक सही है। यूरोप में पेरवैक (1423–61 ई) से पहले पाई का सही मान ज्ञात नहीं था।

त्रिकोणमिति के क्षेत्र में भी बहुत काम हुआ, और भारतीयों को कुछ ऐसे सूत्र ज्ञात थे जिनसे ग्रीक अपरिचित थे। वराहमिहिर के 'पंचसिद्धान्त' में तत्समक त्रिज्या की अंकन पद्धति ज्या, ज्या ज्या2वाई–(ज्या2वाई) [(1–ज्या(90 डिग्री–2वाई), और चौबीस ज्या की एक तालिका के निश्चित चिह्न पाये जाते हैं। ग्रीक लोग वृत्त के व्यास और जीवा के अनुपात का हिसाब लगाते थे। टॉलेमो द्वारा एक सौ बीस के व्यास की जीवा की पहचान हुई। अर्द्धजीवा और एक सौ बीस के ब्यास को लेकर भारतीयों ने सीधी ज्या सारणी तैयार कर ली। प्रत्येक भारतीय ज्योतिष ग्रन्थ में एक ज्या सारणी होती है, जिसमें त्रिज्यामिति का स्पष्ट प्रयोग लक्षित होता है। 'सूर्य सिद्धान्त' (प्रायः 400 ई) में उल्लिखित सारणी सम्बन्धी निम्न सूत्र न ग्रीकों को ज्ञात था, न अरबों को।[8]

ज्या (एन1) –ज्या एन –जया एन –ज्या (एन–1) संस्कृत ज्या अथवा जीवा का, जिसकी निष्पत्ति अर्द्ध–ज्या अथवा अर्द्ध–जीव से हुई हैं, पहला रूपान्तर 'जीव' और फिर अरबी में 'जैव' हुआ, और यही अन्त में मध्ययुगीन लैटिन में 'साइनस' बन गया।

प्राचीन ग्रीकों और भारतीयों में प्राकृतिक दर्शन की कोई मौलिक पद्धति दिखाई नहीं देती, यद्यपि उनके ग्रन्थों में बहुत से चमत्कारपूर्ण विचार व्यक्त किये गये हैं। हिन्दू भौतिकशास्त्रियों ने प्रकृति, पदार्थ और शक्ति सम्बन्धी परिकल्पनाओं को विकसित करने के लिए कुछ व्यापक और समन्वयात्मक प्रयत्न अवश्य किये, यद्यपि उनका सम्बन्ध धर्म और दर्शन तक ही सीमित रहा। ग्रीकों की तरह भारतीय विज्ञान की सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि उनका दृष्टिकोण भौतिक एवं दार्शनिक अधिक था और यान्त्रिक कम; किन्तु ये प्रयत्न निष्फल नहीं गये। भारतीयों द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक दर्शन के मुख्यतः तीन सिद्धान्त हैं – (1) न्यायवैशेषिक जो प्रधानतः यान्त्रिक, भौतिक और रासायनिक मान्यताओं के विश्लेषण से सम्बद्ध है; (2) सांख्य योग जो सृष्टि के विकास तक ही सीमित है; और (3) वेदान्त एवं अन्य दर्शन जो सीधे भौतिक विज्ञान के विकास पर भी किंचित प्रकाश डालते हैं। बुद्ध के समय में अथवा इससे भी पहले विश्व को तत्त्वों में विभाजित माना जाता था और बहुत से दार्शनिकों का विश्वास था कि आकाश के अतिरिक्त अन्य तत्त्व परमाण्विक हैं। मुख्यतः न्याय–वैशेषिक दर्शन में परमाण्विक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इस दर्शन के अनुसार, 'एक परमाणु की स्थिति अन्तरिक्ष में बिन्दु के समान है, जिसकी कोई लम्बाई–चौड़ाई नहीं।' उन्होंने पदार्थों के सामान्य गुणों का भी विश्लेषण किया, यथा प्रत्यास्थता, संसंजन, अभेद्यता, श्यानता, तरलता, सरन्ध्रता, इत्यादि। उनकी मान्यता थी कि परमाणु असंश्लिष्ट अवस्था में नहीं रह सकता और वे पदार्थ की अनन्त विभाजनशीलता में भी विश्वास नहीं करते थे। जैन परमाणु को शाश्वत और लघुतम अन्तिमांश मानते थे। उमास्वाति ने 50 ई में द्वयणुक की संरचना में परमाणुओं के पारस्परिक आकर्षण और विकर्षण का विश्लेषण किया।

सांख्य दर्शन में शक्ति के सिद्धान्त से सम्बद्ध सृष्टि के विकास की वैज्ञानिक आधार पर व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। कुछ अंशों में इस सिद्धान्त में डार्विन के विचारों का पूर्वाभास मिलता है। यद्यपि इनमें आध्यात्मिक भाषा का प्रयोग हुआ है तथापि वर्तमान विकास सम्बन्धी वैज्ञानिक शब्दावली से उसका तारतम्य बैठाना कठिन है। शब्द, प्रकाश और ऊष्मा के वृतों के मूल में परमाण्विक और आण्विक गति का आधार प्रायः सभी दर्शनों में ग्रहण किया गया है। गति की परिभाषा प्रायः वही रही जो आज है, अर्थात् कण का स्थिति परिवर्तन केवल अणु और द्वयणुक की गति पर ही विचार नहीं किया गया, अपितु अणुओं की आभ्यान्तर सूक्ष्म गति का भी विवे चन किया गया। पदार्थ और शक्ति दोनों ही को अविनाशी माना गया। यद्यपि उनकी स्थिति सतत मानी गई, सहस्थिति के कारण उनमें परिवर्तन होता रहता है, तो निरन्तर चलता है। न्यूटन से बहुत पूर्व ब्रह्मगुप्त ने कहा कि 'सभी पदार्थ प्राकृतिक नियमानुसार जमीन पर आ गिरते हैं, क्योंकि चीजों को आकर्षित करना और टिकाना पृथ्वी का धर्म है, परन्तु गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त पूर्णतः प्रतिपादित नहीं किया गया।

खनिज एवं धातु विद्या में भी भारत ने बहुत प्रगति की। भारी मात्रा में सोना, चाँदी और तांबे का प्रयोग सिन्धु घाटी में ईसा पूर्व की तीसरी शती में ही आरम्भ हो गया था। वैदिक युग में भी तांबे, जस्ते और पीतल के घरेलू बर्तन, शस्त्र, और पूजा की मूर्तियों का बहुत प्रचलन था। पतंजलि ने अपने लोहशास्त्र[38] (दूसरी शती ईसा पूर्व) में धातुविद्या और रासायनिक पद्धतियों का विशद् वर्णन किया है, मुख्यतः धातुक्षार, मिश्रधातु, सम्मिश्रण, निष्कर्षण तथा धातु–शोधन आदि का। सोना और प्लाटिनम को गलाने के लिए रासायनिक द्रव की खोज का श्रेय भी उसी को है। प्रायः चौथी शती ईसा पूर्व के लौह–निर्मित शस्त्र उत्खनन में पाये गये हैं। बोधगया मन्दिर में प्राप्त लोहे के शिकंजे और धातु मल इस बात का संकेत देते हैं कि तीसरी शती ईसा पूर्व में यहाँ के लोग लौह–निर्माण पद्धति से परिचित थे। 4–5वीं शती की दिल्ली की प्रसिद्ध लाट धातु विद्या के चमत्कार का उदाहरण है; साढ़े छः टन भारी इस लाट की ऊँचाई चौबीस फुट है, और इसके निचले भाग का व्यास 16.4 इंच है। पिछले पन्द्रह सौ वर्षों से धूप और वर्षा में निरन्तर खड़े रहने पर भी इसमें जंग या किसी अन्य प्रकार की विकृति के चिन्ह नहीं पाये जाते।

पेरिप्लस में लिखा है कि ईसा की पहली शताब्दी में भारतीय लोहा और इस्पात का निर्यात अफ्रीका और इथियोपिया में होता था। भारतीय धातु विद्याविद् कच्चे लोहे से धातु निकालने और उससे तरह–तरह की चीजें ढालने की योग्यता के लिए प्रसिद्ध थे। रोमन, मिस्त्री और अरब उनका बहुत आदर करते थे। दमिश्क की प्रसिद्ध तलवारें बनाने में जो इस्पात प्रयुक्त होता था, उसकी निर्माण विधि में वे निष्णात थे।[39] यद्यपि धातु वैज्ञानिक सम्यक् परीक्षण के बिना यूरेशिया में सर्वत्र उपलब्ध दमिश्क की तलवारों के विषय में कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता, किन्तु मध्यकालीन लम्बी तलवारों के धातु विशेषज्ञ एडुअर्ड सेलीन का मत है कि तरह–तरह के इस्पात और लोहे की पतली छड़ों के नमन और फैगोटन द्वारा मेरोविजियन तलवारें बनाने की आश्चर्यजनक कुशलता की प्रेरणा भारतीय वूट्ज इस्पात से प्राप्त हुई थी, जो मणिभीकरण द्वारा समान परिणाम प्राप्त करता था।[40]

फारस के लोग भारतीय तलवारों को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। उनके मुहावरे 'जवाबी हिन्दी' का अर्थ होता है–भारतीय उत्तर अर्थात् भारतीय इस्पात से बनी तलवार से वार। धातु–विद्या प्राचीन भारत में बहुत विकसित हो चुकी थी, इसका एक प्रमाण यह भी है कि भारतीय उद्गम के जिप्सी बहुत अच्छे कारीगर होते हैं, और यह भी सम्भव है कि उन्हीं लोगों ने इस कला को यूरोप पहुँचाया हो। इस्पात का निर्माण प्राचीन भारत में होता था और लगभग पाँचवीं शती में चीन को निर्यात किया जाता था। अल किण्डी ने अपने 9वीं शती के लेखों में यह प्रमाणित किया है कि अरब भी भारत से इस्पात मँगवाते थे।[41]

विज्ञान सम्बन्धी अन्य विषयों में प्रगति हुई, यथा वनस्पति–विज्ञान, तरूचिकित्सा–विज्ञान और जीव–विज्ञान। यद्यपि भारत में रसायनशास्त्र को विज्ञान की शाखा मानकर अध्ययन के प्रयत्न नहीं किये गये, किन्तु जो कुछ प्रगति यहाँ हुई उसका प्रभाव अरब और चीन पर पड़े बिना न रहा। आरम्भ में इसका प्रयोग केवल कीमियागिरी अर्थात् लघु सोने में बदलने के प्रयास में ही किया गया। परन्तु शीघ्र ही यह विद्या औषधिशास्त्र, धातु–विज्ञान और औद्योगिक कलाओं से सम्बद्ध हो गई। भारतीयों के रासायनिक ज्ञान का प्राचीनतम उदाहरण सिन्धुघाटी–कालीन चित्रित भांडों पर मिलता है। आगे चलकर रसायन–विद्या तन्त्रशास्त्र का भी अंग बन गई। जल्दी औपचारिक आराम पहुँचाने वाली जड़ी–बूटियों को पवित्र माना गया। यथा सोम अमरत्व प्रदान करने वाला पौधा माना गया। ऋग्वेद में भी इस देवों को अमरता और रोगी मनुष्यों को स्वास्थ्य प्रदान करने वाला अमृत कहा गया है। हिन्दू रसायनशास्त्र सोमरस से आरम्भ होकर तान्त्रिक युग में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।[42] 'रस रत्नाकर' का रचयिता नागार्जुन भारतीय रसायन–शस्त्रियों में अग्रगण्य है।[43] कहा जाता है कि उसने धातु– विज्ञान पर भी कोई ग्रन्थ लिखा था। उत्तर–वैदिक काल में भी भारतीय रसायनज्ञ औषधियाँ बनाया करते थे। छठी शताब्दी तक उन्होंने बहुत से क्षार, तेजाब और धात्वीय क्षार बना लिये थे, जिनका बाह्य एवं आन्तरिक

प्रयोग होता था। 'रसरत्न समुच्चय' में निस्तापन, क्षरण, उर्ध्वपातन, वाष्पीकरण और यौगिकीकरण का वर्णन हुआ है। औषधियाँ दो प्रकार की होती थीं – (1) आयु, स्वास्थ्य एवं बलवर्धक, तथा (2) रोगों को दूर करने वाली।

तकनीक में भी विश्व सभ्यता को भारत की देन महत्त्वपूर्ण है। चरखे का आविष्कार भारत में हुआ; वस्त्र–निर्माण में कम लागत का साधन होने के अतिरिक्त शक्ति प्रत्यावर्तन के लिए पट्टे के प्रयोग के प्रथम उदाहरणों में यह एक है। रकाब भी ईसा पूर्व दूसरी शती भारत का आविष्कार है। भारतीय नालीक जिससे छोटे तीर और लोहे की गोलियाँ दागी जाती थीं, उस यूरोपियन हवाई बन्दूक का जनक माना जा सकता है, जिसका आविष्कार 16वीं शती में हुआ।

सबसे प्रमुख बात तो यह है कि यान्त्रिक शक्ति के विषय में भारत ने यूरोप निवासियों को सतत गति का विचार दिया। इस विचार का उद्‌गम भास्कर से हुआ, जो अरबों के द्वारा यूरोप पहुँचा। वहाँ के यान्त्रिकों ने इसे साधारण रूप में ग्रहण ही नहीं किया, अपितु पाश्चात्य वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को भी बहुत प्रभावित किया।[44] भारतीयों का सतत गति में विश्वास पदार्थों की भ्रमण एवं स्वतः परिवर्तनशील प्रकृति में निहित है।

प्राचीन भारतीय जीवन और शरीर–रक्षा पर बहुत ध्यान देते थे। इसके फलस्वरूप औषधि–विज्ञान और शल्य–चिकित्सा का विकास सिन्धुघाटी युग में ही यहाँ हो गया था। भारतीय औषधि–विज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं, और इसका व्यापक अध्ययन एवं प्रयोग अब तक होता आ रहा है।[45] यद्यपि पुरानी पद्धति समझकर कुछ लोग इसे नहीं अपनाते, किन्तु दूसरे लोग इसको सम्पूर्ण औषधिशास्त्र मानकर इसका पक्ष साधन करते हैं। पूर्ण विकसित भारतीय औषधिशास्त्र ने असाधारण उन्नति करके अपनी बुद्धिसंगतता और वैज्ञानिकता का परिचय दिया, जिसकी अन्य सभ्यताएँ समानता नहीं कर सकती थीं। सच बात तो यह है कि प्राचीन भारत के प्राकृतिक विज्ञान में औषधिशास्त्र ही सबसे बढ़ा–चढ़ा था। सांख्य और वैशेषिक दर्शनों में वर्णित भौतिकी से इनका निकटतम सम्बन्ध था और सम्भवतः यह न्यायसूत्रों के अनुमान खण्ड पर आधारित था।[46]

सिन्धु सभ्यता के नगर–निर्माण, सफाई–व्यवस्था और स्वास्थ्य प्रबन्धों की कुशलता को देखकर भारतीय औषधिशास्त्र के आरम्भ का अनुमान लगाया जा सकता है। वैदिक ऋचाओं, मुख्यतः अथर्ववेद में व्रण चिकित्सा के लिए रोग के पिशाचों, यन्त्र–तन्त्र के साथ–साथ लेपादि कला का भी वर्णन है।[47] इन ऋचाओं में रोगों और जड़ी–बूटियों के औषधीय गुणों के साथ ही शरीर–विज्ञान, गर्भ–विज्ञान और स्वास्थ्य–विज्ञान के सन्दर्भ भी पाये जाते हैं। यूरोप तथा बहुत से अन्य देशों में 15वीं अथवा 16वीं शती तक बीमारियों को ईश्वरीय दण्ड माना जाता था, और औषधियों का प्रयोग न करके पादरियों से इलाज करवाया जाता था। वैदिक भारतीय बाह्य लक्षणों से रोगों का वर्गीकरण करते थे, यथा पीड़ा, कृशता एवं ज्वर आदि। वे रोग के विकृतिजनन कारणों का सन्धान बहुत कम करते थे। यद्यपि रोगों और पिशाचों में कोई विशेष भेद नहीं माना गया है, और निदान को भी पूर्ण निदान नहीं माना जा सकता, परन्तु वैदिक औषधिशास्त्र में तर्कसंगत अनुभव–जन्य प्रयोगों के संकेत मिलते हैं। इस प्रकार जादू–टोने और प्रत्यक्ष ज्ञान का सम्मिश्रण हो गया था, किन्तु वैदिक भारतीयों ने मानव–शरीर और इसके निर्माण के विषय में गहन अध्ययन किया था, जैसा कि वैदिक संस्कृत में शरीर–विज्ञान शब्दावली से प्रमाणित होता है।

बौद्ध–काल के आरम्भ में औषधिशास्त्र की अभूतपूर्व प्रगति हुई। बुद्ध का समकालीन जीवक कई आश्चर्यजनक चिकित्साओं का ज्ञाता था, विशेषतः बाल–रोगों का। भारतीय राजाओं ने मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय खोले और चिकित्सक नियुक्त किये। बौद्धों के सूत्र–ग्रन्थों में औषधिशास्त्र सम्बन्धी कई बातें मिलती हैं और ईसा पूर्व की शताब्दियों में पतंजलि वैद्यक तथा उसके विकास का उल्लेख करते हैं। सातवी शती के प्रसिद्ध नालन्दा विश्वविद्यालय में दर्शन और औषधिशास्त्र के दस

हजार विद्यार्थी थे। वेदों के प्रमुख सिद्धान्त ही क्लासिकल भारतीय औषधिशास्त्र का आधार है। ईसा सन् की आरम्भिक शताब्दियों में औषधिशास्त्र के ग्रन्थों का मुख्य स्रोत 'आयुर्वेद' था, किन्तु इस युग की कुछ ही पुस्तकें शेष बची हैं।[48]

औषधिशास्त्र के चार प्रमुख विद्वान् – चरक (प्रथम–द्वितीय शती), सुश्रुत (छठी शती पूर्व से चौथी शती ईसवी), वाग्भट्ट (प्रायः 600 ई) और आत्रेय (छठी शती ईसा पूर्व) है। इनकी तिथियाँ विवादास्पद हैं। इस युग की रचनाएँ विशेषतः संहिताएँ, किसी की व्यक्तिगत रचना न होकर संकलित कृतियाँ है। जार्ज सारटान, रूडॉल्फ हॉरनेल द्वारा प्रस्तावित सुश्रुत और आत्रेय का समय छठी शती ईसा पूर्व स्वीकार करते हैं।[49] कुछ प्रमाणों का विश्लेषण करते हुए फिलियोजा 'सुश्रुत संहिता' को ईसा सन् के पूर्व की रचना मानते हैं, और उनके अनुसार 'चरक संहिता' ईसा सन् के कुछ ही पूर्व की रचना हो सकती है।[50] वाग्भट्ट की रचनाएँ, जिनमें 'अष्टांगहृदय संहिता' सर्वप्रसिद्ध है, उत्तर–क्लासिकल युग की कृतियाँ हैं।

वैद्य आत्रेय काशी (वाराणसी) के तत्कालीन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करते थे, और उनके समकालीन सुश्रुत तक्षशिला में शल्य चिकित्सक थे। चरक अग्निवेश के व्याख्याता तथा सम्पादक माने जाते थे, और कुषाण सम्राट् कनिष्क के राजवैद्य थे। इसीलिए फिलियोजा का कहना है कि चरक के पश्चात् की प्रसिद्ध औषधीय–पद्धति बुद्ध के समकालीन आत्रेय की देन है। सुश्रुत ने पीयूषपाणि धन्वन्तरि के अवतार माने जाने वाले काशिराज दिवादास के सिद्धान्तों को आगे बढ़ाया। 'चरक संहिता' की तरह 'सुश्रुत संहिता' भी प्राचीन परम्पराओं और स्रोतों पर आधारित है। ये संहिताएँ गद्य और विभिन्न छन्दों में बद्ध पद्य में लिखी गई हैं। ये पूर्ण विकसित पद्धति विषयक रचनाएँ हैं, तथा कुछ अंशों में हिप्पोक्रेटिज एवं गेलन की कृतियों के समान हैं, और अन्य अंशों में इनसे बढ़कर हैं।[51] चरक और सुश्रुत संहिता के साथ ही भारतीय औषधि एवं शल्य चिकित्सा का रचनात्मक युग समाप्त होता है। बाद के औषधिशास्त्रवेत्ताओं ने या तो इन्हीं की, या इन्हीं का परिवर्द्धन किया। संहिताओं पर आधारित पुस्तकों में 'योगशतक' और 'अमृतहृदय' मुख्य हैं। 'योगशतक' अपने समय की बड़ी लोकप्रिय पुस्तक थी, और इसका अनुवाद कई एशियाई भाषाओं में हुआ था। श्रीलंका में आज तक यह प्रयुक्त होती है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार सम्भवतः यह बौद्ध नागार्जुन की रचना है। 'अमृतहृदय' चार भागों में विभाजित औषधिशास्त्र की वृहत् पुस्तक है, जिसका केवल तिब्बती अनुवाद उपलब्ध है। भारतीय औषधिशास्त्र का वैदिक एवं बौद्ध युग में बहुत विकास हुआ, किन्तु मध्यकाल में इस विज्ञान का स्वरूप स्थिर–सा हो गया।

प्रत्यक्ष निरीक्षण पर आधारित होते हुए भी 'आयुर्वेद–के सिद्धान्त अनुभवजन्य नहीं हैं। इसके पंचभूत तथा औषधि सम्बन्धी विचारों पर सांख्य–दर्शन की छाप स्पष्ट है। चेतना का पीठ मानवशरीर भी इन्हीं तत्त्वों से निर्मित है। इनमें से दो–आकाश एवं पृथ्वी–जो आंगिक विवरों और सुदृढ़ ऊतकों के प्रतीक हैं, जड़ हैं; और शेष तीन–वायु, अग्नि एवं जल–सक्रिय तत्त्व हैं। वायु, श्वास के रूप में नाभि के नीचे स्थित हैं, पित्त नाभि एवं हृदय के बीच में और कफ या श्लेष्मा हृदय के ऊपर अवस्थित है। इन्हीं तीनों तत्त्वों में से किसी एक में दोष उत्पत्र होने से मनुष्य रोगी हो जाता है, और इसी कारण इसे त्रिधातु या त्रिदोष कहा गया है। इन तीनों तत्त्वों का अनुपात ठीक होने से मनुष्य स्वस्थ रहता है, और इसी अनुपात में गड़बड़ी होने का परिणाम धातुवैषम्य है।[52]

नासा चिकित्सा का स्वरूप विकसित था और रोगों का विभाजन तीन प्रकार से किया गया था– मुख्य कायिक तत्त्वों के आधार पर, शारीरिक स्थिति के अनुसार, और प्रमुख लक्षणों के आधार पर। सुश्रुत ने लक्षण–परीक्षण पर अधिक ध्यान दिया।

इस युग में शरीर–विज्ञान का अध्ययन भी हुआ। वैदिक ऋचाओं में हृदय, फेफड़े, उदर, अन्तड़ियों और गुर्दों के ही उल्लेख नहीं मिलते, प्रत्युत ऊर्जा और रस जैसे काल्पनिक तत्त्वों का भी

वर्णन आया है। भारतीय शरीर–विज्ञान के विकास में विभिन्न मतों के अनुसार मानव शरीर सम्बन्धी सामग्री इकट्ठी की गई। इन मतों में चरक और सुश्रुत के मत प्रमुख हैं। अपनी संहिताओं में उन्होंने शरीर–विज्ञान के अतिरक्त गर्भ–विज्ञान और ऊतक–विज्ञान का अध्ययन भी दिया है। शरीर में कुल माँसपेशियों की संख्या 513 है, जबकि प्राचीन हिन्दुओं के अनुसार 500 शाखाओं में 400, धड़ में 66 हँसली की हड्डी के ऊपरी हिस्सों में 34 उन्हें स्नायुओं, जोड़ों, लसीकाओं, तन्त्रिका जाल, प्रावरणी, वसा, ऊतक, वाहिकामय और पाचन नली की श्लेषमल कला का भी ज्ञान था। हिन्दू शरीर–विज्ञान में मानव शरीर के हिस्सों की कुछ काल्पनिक संख्याएँ भी दी गई हैं, जैसे 360 हड्डियाँ, 800 स्नायुएँ, 300 शिराएँ, 500 माँसपेशियाँ और सात चर्म परतें इत्यादि। यहाँ उल्लेखनीय है कि गिनती में हिन्दुओं ने प्रत्येक हड्डी, दाँत, नाखून, कार्टिलेज और हड्डियों के प्रमुख भागों को जिन्हें 'प्रोद्वर्ध' कहते हैं, लिया। यद्यपि उनके शरीर–विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान में कुछ मूल अशुद्धियाँ थी, उस युग के लिए उनका ज्ञान आश्चर्यजनक रूप से सही था। गर्भ की बनावट और विकास अनुमान का विषय होने के कारण सर्वत्र विवादास्पद रहा। पश्चिमी विद्वान् दिनोंदिन, जन्मपूर्व प्रभावों के प्रश्न को अधिक महत्त्व दे रहे हैं, इसका गहन अध्ययन हिन्दू चिकित्सों ने किया था। उन्होंने गर्भवती स्त्रियों की देखभाल के लिए विस्तृत नियम बनाये–सुखद वातावरण, उत्तेजनात्मक स्थिति से बचाव और अच्छी मात्रा में सुपाच्य भोजन इत्यादि।

वैदिक पर 'रस' प्राचीन ग्रीक औषधिशास्त्रियों के 'ह्यूमर्स' के ही समान है। शरीर–विज्ञान की प्रक्रियाओं का प्रकृति से साम्य स्थापित किया गया था। यथा पित्त शरीर में ऐसे ही काम करता है जैसे अग्नि पानी पर। जीवन का मुख्य संचालक प्राण है जो वायु का ही स्वरूप है। वैदिक शरीर–विज्ञान के अनुसार अन्तर्वाहिनी नलिकाओं द्वारा श्वास चलता रहता है। इन श्वासों के विभिन्न नाम दिये गये थे, और यही वैदिक विचार भारतीय औषधि– विज्ञान का मूल था; फिर भी त्रिदोष के सिद्धान्त का उल्लेख वैदिक संहिता में नहीं हुआ है। श्वास–प्रक्रिया सारे शरीर को परिचालित करती है। प्राचीन भारतीय वायवी सिद्धान्त से परिचित थे, जिससे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ संचालित होती है।[53] यद्यपि यह सिद्धान्त बाद में स्वीकृत हुआ और इसकी व्याख्या भी अनन्तर ही हुई, किन्तु मूल तत्त्व वैदिक ग्रन्थों में तकनीकी नामों के साथ–साथ मिलते हैं। ईसा पूर्व के 1000 से 500 वर्षो के बीच लिखे गये साहित्य में पित्त की प्रज्वलित प्रकृति और जलीय तत्त्व की प्रतिनिधि पीयूषिका ग्रन्थि के उल्लेख मिलते हैं। अतः भारतीय औषधिशास्त्र के तीन मूल तत्त्व माने गये– श्वास, पित्त और पीयूषिका ग्रन्थि। कुछ विद्वानों के अनुसार, भारतीय औषधिशास्त्र का अध्ययन अपूर्ण है,[54] जबकि इसके सिद्धान्त ग्रीकों से अधिक प्राचीन और अधिक सुदृढ़ थे। फिलियोजा के अनुसार, 'शरीर के विभिन्न भागों में श्वास संचालन का सिद्धान्त प्राचीन काल में प्रचलित था, किन्तु अन्यत्र कहीं इसके इतने सुसम्बद्ध तकनीकी विवरण नहीं मिलते।'[35]

प्राचीन ग्रीक और भारतीय प्रणालियों में आश्चर्यजनक समानताएँ पायी जाती है, और इसी कारण बहुत से पश्चिमी विद्वान् भारतीय प्रणाली को ग्रीक प्रभावित मानते हैं। अन्योन्य प्रभाव को बिल्कुल अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु यह भी स्मरणीय है कि जहाँ भारतीयों ने खगोलशास्त्र के क्षेत्र में ग्रीकों की देन को स्वीकार किया है, वहाँ वे औषधिशास्त्र सम्बन्धी विदेशी प्रभाव का उल्लेख नहीं करते। विलियम जोन्स के मतानुसार, भारतीय औषधिशास्त्र के ग्रन्थों में विदेशी उत्पत्ति का एक भी तकनीकी शब्द नहीं है। इसके विपरीत हिप्पोक्रेटिक सिद्धान्त तथा प्राग्ज्ञान का महत्त्व, चिकित्सकों को सुझाव, दवाओं की अपेक्षा भोजन और संयम का महत्त्व, चार देहद्रवों का सिद्धान्त और उनके स्पर्श तरंग तथा आहार–विहार पर ऋतुओं के प्रभाव का विचार; दैनिक, तृतीयक एवं चतुर्थक ज्वर और कई अन्य ऐसे विचार हैं जिन्हें पूर्ववर्ती भारतीय विचारों के अत्यन्त निकट होने के कारण, संयोगमात्र नहीं कहा जा सकता।56 औषधिशास्त्र के आविष्कारक हिप्पोक्रेटीज (प्रायः 460 ई पू), जिसने इस विज्ञान को अन्धविश्वासों से पृथक् किया, अदरक, काली मिर्च और दालचीनी जैसी भारतीय दवाओं से परिचित था।

जब हिप्पोक्रेटीज ग्रीक औषधिशास्त्र की शुरुआत कर रहा था, तब भारतीय औषधिविज्ञान और शल्प चिकित्सा की पद्धति पूर्ण विकसित हो चुकी थी। हिप्पोक्रेटीज की कृति 'आन ब्रेथ्स' में प्रकृतिजन्य रोगों का उल्लेख वैदिक और आत्रेय के ग्रन्थों की तरह ही हुआ है। इनमें साम्य होते हुए भी कुछ भिन्नताएँ अवश्य हैं। उदाहरणार्थ–'आन ब्रेथ्स' में महामारियों का कारण श्वास द्वारा शरीर में प्रविष्ट धब्बों को माना गया है। किन्तु भारतीय ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख नहीं है। यदि ग्रीस ने भारत से कुछ ग्रहण किया तो वह देन विचारों के रूप में समग्र ग्रीक औषधि जगत को थी, न कि केवल ब्रेथ्स पर।[57] ग्रीक और भारतीय परम्पराओं की समानताओं की व्याख्या करते हुए सारटॉन परस्पर प्रभावाओं की सम्भावना स्वीकार करता है किन्तु साथ ही समान अनुभवों पर आधारित दोनों पद्धतियों की स्वतन्त्र विचारधारा को भी असम्भव नहीं मानता।[58]

भारतीय रोगविज्ञान और प्लेटो के सिद्धान्त में भी ऐसी समानताएँ हैं। टीमियस की पुस्तक में भी यह सिद्धान्त त्रिदोष के समान ही है, और इनमें भी उन्हीं तीनों तत्त्वों–वायु, अग्नि और जल–का विवेचन है। प्लेटो का वक्तव्य अत्यन्त अविकसित है, तत्त्वों के असन्तुलन से रोगों का तीन वर्गो में विभाजन भारती क्लासिकल सिद्धान्त से बहुत मिलता है। टीमियस के सिद्धान्त विभिन्न ग्रीक ग्रन्थों में बिखरे मिलते है, किन्तु किसी भी ग्रीक ग्रन्थ में यह विभाजन प्लेटो की तरह नहीं हुआ है। इसके विपरीत केवल भारतीय रोग–विज्ञान से प्लेटों के विचारों में साम्य पाया जाता है।[59] प्लेटों का श्लेष्मा–सिद्धान्त भारतीय चिकित्साविदों के श्लेष्मा के समान ही है। प्लेटों के पित्त सम्बन्धी विचार– इनका गर्म और जलीय स्वभाव, वेदों में वर्णित पित्त की आग्नेय प्रकृति से मिलता है। पित्त–दोष से उत्पन्न रक्त–रोग सम्बंधीं विचार प्लेटो और आयुर्वेद में समान ही है प्लेटो द्वारा उल्लिखित सावधिक (पारो) बुखारों से अथर्ववेद के लेखक परिचित थे, यद्यपि इनके कारणों की व्याख्या उपर्युक्त ग्रन्थों में अलग–अलग ढंग से की गई है।

प्लेटो का भारतीय दार्शनिक विचारों से प्रभावित होना इस पक्ष को और भी प्रबल कर देता है, और प्लेटों के पूर्ववर्ती होने के कारण भारतीय विचारों पर ग्रीक प्रभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। यद्यपि प्लेटो अपने ग्रन्थों में प्रयुक्त स्रोतों का उल्लेख नहीं करता, उसके सिद्धान्त तत्कालीन ग्रीक विचारों की अपेक्षा भारतीयों के अधिक निकट हैं।

ग्रीकों की रचनाओं से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उन्हें भारतीय औषधिशास्त्र की जानकरी थी। सिकन्दर की भारतीय चढ़ाई का वर्णन करते हुए एरियन कहता है कि भारतीय सर्पदंश का इलाज जानते थे किन्तु ग्रीक नहीं। परिणामस्वरूप सिकन्दर ने अपनी और अपने साथियों की देखभाल के लिए कुछ भारतीय चिकित्सकों को भी नियुक्त किया था। दूसरे ग्रीक नियरकोस ने भी विषविज्ञान में भारतीय चिकित्सकों की कुशलता स्वीकार की है। यह निश्चित है कि सिकन्दर के समय में भारतीय औषधिशास्त्रवेत्ता और शल्य–चिकित्सक ग्रीकों से अधिक कुशल माने जाते थे, और इस तथ्य को स्वयं ग्रीक भी स्वीकार करते हैं।[60] मेगस्थनीज का उद्धरण देते हुए स्ट्राबो कहता है कि भारतीय चिकित्सकों में एक वर्ग ऐसा है जो भोजन विधान और अन्दरूनी दवाओं पर निर्भर करता है, जो चिकित्सा का अधिक शक्तिशाली तरीका है।[61]

भारतीय औषधिशास्त्र का ज्ञान पर्याप्त होते हुए भी कई दृष्टियों से अपूर्ण था। भारतीयों को सुषुम्ना के महत्त्व और तन्त्रिका पद्धति का ज्ञान तो था, किन्तु वे उसे अच्छी तरह नहीं समझते थे। यद्यपि वे हृदय की गतिविधियों को समझते थे, किन्तु उसकी बनावट के सम्बन्ध में उनके विचार विकसित नहीं थे। अरस्तू की तरह भारतीय चिकित्साविदों को भी यह गलत धारणा थी कि हृदय ही बुद्धि और चेतना का अंग है, यद्यपि कुछ विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं, क्योंकि संस्कृत में मन और हृदय दोनों शब्दों की भिन्न–भिन्न प्रकार से व्युत्पत्ति की गई है। फिर भी भारतीय यह जानते थे कि अशुद्ध रक्त हृदय

में आता है, वह उसे यकृत में भेजता है, जहाँ से शुद्ध होकर यह पुनः हृदय में आ जाता है। उनका विश्वास था कि सभी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की गति हृदय से ही आरम्भ होती है और वहीं उसका पर्यवसान होता है। बाद में इस गलत धारणा का निराकरण हुआ। ग्रीक वैज्ञानिक गैलेन (द्वितीय शती) की तरह भारतीय तान्त्रिक और योगी मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी का महत्त्व समझते थे। वस्तुतः 'शिव संहिता' में स्नायु प्रक्रिया का वर्णन औषधिशास्त्र के ग्रन्थों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह दिया गया है। भारतीय वैज्ञानिकों को इन्द्रिय परिज्ञान की तो अच्छी जानकारी थी, किन्तु उनका मस्तिष्क सम्बन्धी ज्ञान सीमित था। वे पाचन–क्रिया एवं तत्सम्बन्धी रसों को भलीभाँति जानते थे, और उन्होंने इसका विस्तृत वर्णन भी किया है।

रोगों का निदान लक्षणों और प्रभावी तत्त्वों के आधार पर किया जाता था। निदान की विधियाँ अत्यन्त विकसित थीं, और सुश्रुत ने 1120 रोगों को प्राकृतिक एवं अतिप्राकृतिक रूप में विभाजित किया है। उसने हृदय, फेफड़ों एवं गर्भाशय की धड़कन और अवरुद्धता की शिक्षा दी, और नाड़ी परीक्षा पर जोर दिया।[62] उसने मच्छरों से होने वाले मलेरिया बुखार का सुगम्य वर्णन किया है। निदान में मूत्र परीक्षा की विधि भी प्रचलित थी। नाड़ी परीक्षा बहुत ध्यान से की जाती थी और हिन्दू औषधिशास्त्रियों ने, पश्चिम में सर्वप्रथम नाड़ी परीक्षा के प्रवर्तक कॉस के प्रायागोरस से बहुत पहले ही, नाड़ी की पहचान में असाधारण दक्षता प्राप्त कर ली थी।

स्वास्थ्य सम्बन्धी विकार मुख्यतः शारीरिक सिद्धान्तों पर आधारित थे, किन्तु उनकी चिकित्सा निरीक्षण पर उचित आहार और संयम का विधान बड़े यत्नपूर्वक और विस्तार से बनाया गया था, औषधियाँ तो इनकी सहायकमात्र थीं। आहार, स्नान, एनिमा, वामक, अभिश्वसन, गरारा, इंजेक्शन और जीकों एवं प्यालों से रक्त निकालने की प्रक्रियाएँ ज्ञात थीं। गैरीसन आदि कुछ विद्वानों ने धन्वतरि की पुस्तक का उद्धरण देते हुए कहा है कि हिन्दओं को टीका लगाने का ज्ञान प्रायः 550 ई0 में ही चुका था, जबकि यूरोप में इसकी जानकारी 18वीं शती तक नहीं थी।[63] भारतीयों को मधुमेह के लक्षण, प्यास, श्वास विकृति, अवसाद आदि ज्ञात थे।

भारतीय शल्य चिकित्सा भी बहुत उन्नत थी। महाभारत में कई बार शल्य चिकित्सकों का युद्ध में जाने का उल्लेख आता है। किन्तु दूसरी शती तक शरीर के आन्तरिक अवयवों की जानकारी के लिए चीर–फाड़ के तरीके ठीक नहीं थे। इस कारण तत्कालीन अन्य सभ्यताओं की तरह, प्राचीन भारतीयों को मानक शरीर सम्बन्धी ज्ञान अविकसित ही रहा। पुरोहितों के प्रभाव ने इसे अधिक भ्रामक बना दिया और 'शरीर रचना सम्बन्धी विचार उलझे हुए और आश्चर्यजनक थे।[64] भारतीय शल्य चिकित्सकों ने शरीर रचना सम्बन्धी ज्ञान की कमी मर्म के विचार से पूरी की। चोट की गम्भीरता के आधार पर ये 107 मर्मस्थल पांच भागों– स्नायु, रक्त–वाहिका, माँसपेशी, अस्थि एवं जोड़–में विभाजित थे।

भारत में तीसरी शती ईसा पूर्व में भी चिकित्सालय थे, और मानव एवं पशु चिकित्सालयों की लोकप्रियता की पुष्टि अशोक के अभिलेखों से होती है। भारतीय शल्य चिकित्सक मृत गर्भ को निकालने मे निपुण थे, और उन्हें शरीर से बाह्य तत्त्वों को पृथक् करने तथा विभिन्न शोथों की चिकित्सा में कुशलता प्राप्त थी। उनकी मोतियाबिन्द की शल्य चिकित्सा की ख्याति दूर–दूर तक थी, और उसे हटाने का तरीका तो आज तक प्रचलित है। हड्डियों को काटने और बैठाने की कला तथा प्लास्टिक सर्जरी में वे निष्णात थे। वे टूटी हुई तथा खिसकी हुई हड्डियों को बाँस की खपच्चियों की सहायता से बाँधकर ठीक करते थे, बाद में यही तरीका ब्रिटिश सेना में भी अपनाया गया।[65] भारतीय शल्य–चिकित्सक नाक, कान और होठों को ठीक करना जानते थे और उन्हीं से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैन्य चिकित्सकों ने नासानुसन्धान सीखा था।

सुश्रुत एक शल्य प्रक्रिया का वर्णन करता है जिसका विकसित स्वरूप 19वीं शती में लेकेन्ची ने हाइड्रोटामी के नाम से प्रस्तुत किया। सुश्रुत ने कई प्रकार की शल्य क्रियाओं का वर्णन किया है, यथा–हर्निया, मोतियाबिन्द, लिथोटामी, सिजैरियन आदि। वह छुरी, लेन्सेट, आरी कैंची, सुइयाँ, हुक, प्रोब्स, डिटेक्टर्स, फोरसेप्स, सिरिजेंस आदि 121 औजारों के नाम देता है, जो आज भी प्रचलित है। इन्हें बहुत सावधानी से तैयार किया जाता था। घाव को जलाना विषरहित शल्य–क्रिया का सबसे पुराना तरीका है। तीन प्रकार की शल्य प्रक्रियाएँ थीं– औजारों द्वारा, तेजाब द्वारा और अग्निकर्म। किन्तु भारतीय इन हिंसक तरीकों की अपेक्षा प्रकृति की सहायता में अधिक विश्वास करते थे।

अति प्राचीनकाल में भी बेहोशी की दवा का प्रयोग शल्य–क्रिया में किया जाता था।[66] इसके लिए बेलाडोना और भंग आदि औषधियाँ काम में लायी जाती थीं। शल्य–प्रक्रिया में रक्त नलिकाओं को बाँधने की क्रिया हिन्दुओं को नहीं मालूम थी। अंग–विच्छेद करते समय वे लोग दहन या अग्निकर्म, गर्म तेल या दवाब से रक्तस्राव रोक देते थे।

भारतीयों ने अन्तड़ियों के घावों को बाँधने की एक विशेष प्रक्रिया का आविष्कार किया था। सामान्य सिलाई से अन्तड़ियाँ सिकुड़ जाती थीं, इसलिए वे घाव वाले हिस्से को जोड़कर उसे बड़ी चीटियों से कटवाते थे; बाद में इन चीटियों को काट कर हटा देते थे, किन्तु उसके डंक चिमटे की तरह लगे रह जाते थे वे जो शरीर में मिल जाते थे। अरबों ने यह तरीका सीखा, और वे ही इसे पश्चिम ले गये। यह पद्धति, विशेषकर सोमाली तट पर आज तक जीवित है।[67]

भारतीय शल्य–चिकित्सा की शिक्षा देने में विशेष पटु थे। बिना बेहोशी के शल्य–कार्य बड़ी तेजी और अच्छी तरह से करने का मूल्य समझकर उन्होंने विद्यार्थियों को पौधों पर प्रयोग कराना शुरू किया। कुमुदिनी की खोखली नालों या बड़े पत्तें की नसों की सहायता से शिक्षा दी जाती थी। इसी प्रकार मृत पशुओं की रक्त नलिकाओं को छेद कर उनके विषय में विद्यार्थी जानकारी ग्रहण करते थे। अण्डकोष या किसी खोखले वस्तु के आपरेशन के लिए चमड़े के थैले में पानी भरकर प्रयोग किया जाता था। रक्त–स्राव सम्बन्धी शिक्षा के लिए तुरन्त मरे जानवर या मनुष्यों के मृत शरीर काम में लाये जाते थे। मानव शरीर के लचीले नमूनों पर विद्यार्थी पट्टी आदि बाँधना सीखते थे। प्रायोगिक शल्य–विज्ञान प्रक्रियाओं के क्षेत्र में इस प्रकार विद्यार्थियों में शिक्षित करने में भारतीय अग्रगण्य थे।[68]

शारीरिक स्वास्थ्य और औषधिविज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों की उपलब्धियों को देखते हुए इस देश की अध्यात्म एवं परलोकवादी स्थिति भ्रामक प्रतीत होती है। किन्तु हिन्दुओं का जीवन के प्रति सदैव यही दृष्टिकोण रहा, और इसी कारण उन्हें प्रकृति के सिद्धान्तों और औषधिशास्त्र के क्षेत्र में सफलता मिली। उन्होंने विश्व की केवल अणुओं का समूह या उद्देश्यहीन गतिविधियों का भूलभुलैया नहीं समझा, वरन् इसको कार्य और कारण के एक संगत परिणाम के रूप में देखा, और मनुष्य भी उसी का एक अंशमात्र है। हिन्दुओं की दृष्टि में दर्शन, विज्ञान और धर्म, ज्ञान के अविभाज्य अंग है। यथार्थ ज्ञान के इसी विश्वास से प्रेरित होकर उन्होंने औषधिविज्ञान का अध्ययन किया। क्लासिकल ग्रीस में भी प्राकृतिक विधियों के प्रति ऐसी ही धारणा थी, वहाँ भी मनुष्य समग्र प्रकृति का एक अंश ही माना जाता था, और ग्रीक औषधिशास्त्र भी इसी से प्रेरित हुआ। हिप्पोक्रेटीज की कितनी ही तथाकथित रचनाओं में यह दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। प्राकृति दर्शन ने औषधिशास्त्र को प्रभावित किया। आगे चलकर कुछ प्रतिक्रियाओं के कारण औषधिशास्त्र प्रत्यक्षमूलक कला बनकर रह गया।[69]

इस सृष्टि में केवल मनुष्य एवं पशु ही नहीं, प्रत्युत् पौधे भी जीवनी–शक्ति के अंग है, और सब एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इस विचार को भारतीय दृष्टिकोण ने दिशा दी, जिससे भेषजगुण विज्ञान प्रभावित हुआ। पौधों की गतिशीलता से जो शक्ति तत्त्व मिलता है, वह मनुष्य एवं पशुओं के शरीर में सहज ही शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। बहुधा वनस्पतिशास्त्र एवं भेषजगुण विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय

वैज्ञानिकों के पारम्परिक शोधों पर पश्चिमी विद्वान् भी आश्चर्य प्रकट करते हैं।[70] भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बसु (1850–1937) ने पौधों की जीवनी शक्ति और उनके जैविक परिवर्तनों का प्रदर्शन कलकत्ता और दार्जीलिंग की प्रयोगशालाओं में पश्चिमी यन्त्रों के सहारे किया था। उन्होंने पौधों पर हवा, नींद, भोजन, दवा आदि के प्रभाव का प्रदर्शन भी किया और पौधों एवं पशुओं की प्रतिक्रियाओं के बीच पूर्ण सामंजस्य स्थापित किया।[71]

भारतीय भेषजगुण विज्ञान मुख्यतः वनस्पति एवं जड़ी–बूटियों से बनने वाली औषधियों के वर्णन से बहुत समृद्ध था, और इसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत था। सुश्रुत ने 760 औषधीय पौधों के नाम दिये हैं, जिनमें से अधिकांश का उल्लेख पश्चिमी पुस्तक 'मेटेरिया मेडिका' में हुआ है। विष के साथ सर्पदंश तथा पशुओं के काटने की दवाओं पर विशेष जोर दिया जाता था। 1890 में पाई गई वावर पांडुलिपि में लहसुन के गुणों का वर्णन है, और अब यह स्वीकृत हो गया है कि उसमें अमाशयी घावों को रोकने के गुण विद्यमान है। अजवायन और भंग के पौधों के निद्रापक प्रभाव लोगों को ज्ञात थे। इसी प्रकार नवजात शिशु को जुलाब देने के लिए शहद काम में लाया जाता था। अत्यन्त प्राचीन काल से पारे का प्रयोग आन्तरिक बीमारियों के लिए किया जाता था। हिमालय की तराई में उगने वाले सर्पगन्धा पौधे की पत्तियों से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण औषधि बनती थी, जो प्राचीन काल से प्रशान्तक की तरह प्रयुक्त होती थी। इसके अत्यन्त क्रियाशील तत्त्व 'रेसेरपोन' का प्रयोग आधुनिक औषधिविज्ञानवेत्ता अतिरिक्त दाब तथा मानसिक रोगों में करते हैं। ईसबगोल और त्रिफला का प्रयोग भी आधुनिक औषधियों में होता है। भारतीय तरकारियों और दाल में डाली जाने वाली हल्दी एण्टीसेप्टिक होती है। एक्टुएरिसय और माइरेप्सस प्रभृति परवर्ती ग्रीक लेखकों को, अन्य भारतीय औषधियों की तरह त्रिफला की जानकारी सम्भवतः अरबों द्वारा हुई थी। एक्टुएरियस का 'त्रिपल' या 'त्रिफेरा पामा' नाम एवं तत्त्व में भारतीयों का त्रिफला ही था, और इसके उपयोग का विधान भी 'भारत के जैसा' कहा गया है।[72]

भारतीय चिकित्सक पौधों का प्रयोग केवल खाने वाली दवाओं के लिए ही नहीं, प्रत्युत अवलेह, आधान, चूर्ण, मलहम, एनिमा तथा नस्य के रूप में भी करते थे, जिसका विधान पश्चिमी चिकित्सकों ने नहीं दिया है। भारतीय चिकित्सक विभिन्न औषधीय पौधों को उगाते, इकट्ठा करते और उनके सम्मिश्रण तैयार करते थे। वे इतने से ही सन्तुष्ट नहीं थे, वरन् पौधों पर ऋतुओं के प्रभाव का अध्ययन भी करते थे।

स्वास्थ्य एवं आहार पर भारतीय बहुत ध्यान देते थे। उन्होंने विभिन्न बीमारियों पर जलवायु के प्रभावों का अध्ययन किया और जलीय विज्ञान का भी परीक्षण किया। औषधिशास्त्र की पुस्तकों में खाने के पहले और बाद में गर्म या ठण्डे पानी से मुँह धोने का विधान है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए तेल का उपयोग मालिश के रूप में, कान में तथा तलवों में नियमित कार्य था। स्नान के पहले तेल–मालिश शक्तिवर्द्धक माना जाता था। विभिन्न बीमारियों में यह स्वस्थ व्यक्ति के लिए भी उचित पथ्य निर्धारित था– साधारणतया आदमी को आधा पेट भोजन और एक चौथाई पानी से भरना चाहिए, तथा शेष खाली छोड़ देना चाहिए।[73] दाँतों की सफाई का विशेष विधान था, और शारीरिक तथा मानसिक अस्वस्थता के लिए मालिश को अनुकूल उपचार माना जाता था। लोगों का विश्वास था कि अच्छे स्वास्थ्य और लम्बी आयु के लिए नियमित निद्रा, प्रातः जागरण और उषापान करना चाहिए। बहुत से भारतीय आज भी इन नियमों का पालन करते हैं।

प्राचीन भारतीय औषधीय पद्धति का अब भारत में वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है, और बहुत–सी प्राचीन औषधियों को आधुनिक दवाओं के साथ स्थान मिल रहा है। प्राचीन काल में वैद्य समाज का आदरणीय सदस्य था, और उससे व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत क्षेत्र में ईमानदारी की अपेक्षा की जाती थी। गैरीसन के अनुसार, चिकित्सा के रूप में सम्मोहन का प्रयोग भारत में ही प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता

है, क्योंकि यहाँ लोग रोगी को मन्दिर में ले जाते थे, और मन्त्रों द्वारा उसका उपचार करते थे। इस पद्धति को इंग्लैण्ड ले जाने वाले ब्राएड, एसडाइल और इलियटसन ने निश्चय ही भारत से प्रेरणा ग्रहण की थी। सम्मोहन का प्रयोग भारत में कुछ बीमारियों में किया जाता था, क्योंकि भारतीय चिकित्सक शारीरिक एवं मानसिक दोनों पक्षों पर ध्यान देते थे। महाभारत में रोगों का विभाजन दो श्रेणियों में हुआ है– शारीरिक और मानसिक, ये दोनों परस्पर सम्बद्ध थे।[74]

पशु भी मनुष्यों की तरह इसी सृष्टि के अंग माने गये हैं। अतएव उनके स्वास्थ्य की रक्षा के लिए प्राचीन भारत में पशु चिकित्सालय और चिकित्सक थे। उत्तर–क्लासिकल युग के बहुत से ग्रन्थों, तथा 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' आदि में पशुओं की औषधियों का विवरण मिलता है। मेगस्थनीज ने जिन औषधियों का वर्णन किया है, उन्हें बाद में पालकाप्यमुनि के 'हस्त्यायुर्वेद' में समाविष्ट कर लिया। शालिहोत्र अश्व प्रजनन विद्या का ज्ञाता था, और जदुदत्त ने गायों की चिकित्सा का विस्तृत वर्णन अपने 'अश्व वैद्यक' में दिया है।

शल्य–क्रिया के औजारों, खगोलशास्त्रीय यन्त्रों तथा अन्य वैज्ञानिक उपकरणों में भारतीयों की तकनीकी योग्यता परिलक्षित होती है। भारतीय साहित्य–ऋग्वेद, महाकाव्य, पुराण, मेघदूत, राजतरंगिणी आदि– में विभिन्न यन्त्रों के वर्णन भरे पड़े हैं। प्राचीन भारतीय व्यावहारिक विज्ञान के विकास के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु भोज कृत 'समरांगण सूत्रधार' में भारतीय तकनीक शास्त्र का संक्षिप्त विवरण आया है जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में इस क्षेत्र में उनकी अच्छी पैठ थी।

पुनर्जागरण के युग में जब पश्चिम में विज्ञान की आशातीत प्रगति हुई, समाज का स्वरूप बदला तो भारत में विज्ञान का ह्रास होने लगा। सूचनाओं के अभाव में इस ह्रास के कारणों के विषय में कुछ कहना कठिन है। वैज्ञानिक परम्पराओं की निरन्तरता और वृद्धि होते हुए भी मध्ययुगीन चीन में भी इसका ह्रास हुआ। आश्चर्य यो यह है कि भौतिक एवं मूर्त क्षेत्रों में अच्छी प्रगति होते हुए भी चीन का औषधि–विज्ञान प्रायः इस शती तक निश्चल बना रहा, यद्यपि शरीर–विज्ञान एवं नृमापी नाप–जोख के क्षेत्र में चीनियों का ज्ञान असाधारण था।

भारतीय विज्ञान के ह्रास का एक सम्भव कारण रसायन और जन्तर–मन्तर की ओर झुकाव भी हो सकता है। किन्तु मुख्य कारण तो यह था कि इस युग के शिक्षा जगत में मानसिक अवरोध आ गया था; धर्मनिरपेक्ष विश्वविद्यालीय शिक्षा की परम्परा समाप्त हो गई थी। भारतीय विज्ञान की रचनात्मक प्रतिभा में कमी आने पर भी मध्य एशिया तथा इण्डोनेशिया आदि क्षेत्रों में इसका प्रभाव बना रहा।

सन्दर्भ

1. भारतीय विज्ञान के इतिहास के अध्ययन एवं संकलन हेतु इतिहासज्ञों, वैज्ञानिकों एवं भावशास्त्रियों के प्रयत्न निरन्तर हो रहे हैं।
2. एफ एस टेलर, साइंस : पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, 98.
3. राधाकृष्णन् (सं), हिस्ट्री ऑफ फिलॉसॉफी : ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न 1, 470.
4. एस राधाकृष्णन्, इण्डियन फिलॉसॉफी, 1, 29.
5. हाइमैन, फैक्ट्स ऑफ इण्डियन थॉट, 37.
6. ऋग्वेद, X. 129.
7. रेने तैतों (सं0), एंशेंट एण्ड मिडिवल साइंस, 134–135 में फिलियोजा।

8. तैत्तरीय उपनिषद् II, 1ए 3 बहुत से उपनिषदों और भौतिकवादियों के अनुसार यह विश्व पंचतत्त्वों से बना है किन्तु छान्दोग्य उपनिषद् (VI, 4) जैसे ग्रन्थ इसे तीन–अग्नि, जल एवं पृथ्वी– का ही संयोजन मानते है और कभी–कभी वायु जोड़कर चार तत्त्व भी मानते हैं। इन पंच–तत्त्वों में भगवद्गीता (VII, 4) तीन और जोड़ती है–बुद्धि, अहंकार एवं मनस।
9. सार्टन, इन्ट्रीडक्शन टू द हिस्ट्री, ऑफ साइंस, 1, 69.
10. आर गार्व, फिलॉसॉफी ऑफ ऐन्शिएंट इण्डिया, 30.
11. एम के रामचन्द्रराव, डेवलपमेंट ऑफ साइकोलॉजिकल थॉट, 32–33.
12. प्रभावानन्द, द स्पिरिचुअल हेरिटेज ऑफ इण्डिया, 215–16.
13. बी एन सील, द पॉजिटिव साइंसेज ऑफ द ऐन्शिएंट हिन्दूज। ए बी कीथ का आरोप है कि सील ने प्राचीन ग्रन्थों में बहुत से नए विचार पढ़ या ढूँढ लिये हैं पर कोसाम्बी आदि विद्वानों ने कीथ को पूर्वाग्रह से ग्रस्त बताया है। कुछ भी हो इतना अवश्य है कि सील की रचना अनैतिहासिक है, उसमें मुख्यतः तर्क एवं दार्शनिक अनुमानों का वर्णन है और इसका शीर्षक अस्पष्ट है।
14. कई भारतीय विद्वान् ऋग्वेद की तिथि लगभग 3,000 ई पू निर्धारित करते हैं और इसी के आधार पर भारतीय की प्राचीनता भी बढ़ती है। सत्य तो यह है कि निश्चित कालक्रम के अभाव में हिन्दू विज्ञान की प्राचीनता सम्बन्धी वाद–विवाद अत्यन्त कठिन हो जाता है।
15. तैतों (सं0), उपर्युक्त, 137 में फिलियोजा।
16. वही, 136.
17. मेत्रो एवं क्रूजे (सं), द इवॉल्यूशन ऑफ साइंस, 92 में फिलियोजा। नक्षत्रों एवं भारतीय खगोलशास्त्र पर विस्तृत विवेचना के लिए देखिए पी बी काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, 5, भाग 1, 405–512.
18. देखिए नेचर, CLXVIII (14 जुलाई 1951), 64; और साइंस एण्ड सिविलाइजेशन इन चाइना, 3, 173–77.
19. मेत्रें एवं क्रजे (सं0) उपर्युक्त, 91–93 में फिलियाजा।
20. विस्तृत विवेचना के लिए देखिए, वही 94–96.
21. कोपरनिक्स से लगभग दो हजार वर्ष और हिप्पारकस से शतियों पहले ऐतरेय ब्राह्मण ज्योतिष में, भारतीय अभिरुचि प्रदर्शित करता है, यथा, 'सूर्य न कभी डूबता है न उगता है।'
22. राधाकृष्णन् (सं.), उपर्युक्त, 1, 448–49 में ऐ एन सिंह।
23. वी के सरकार, हिन्दू अचीवमेंट्स इन एक्जैक्ट साइंस, 30 में उद्धृत।
24. अकादमी के द्वार पर ग्रीक में लिखा था, "गणित में योग्यता की आवश्यकता है' और प्लेटो का कथन था कि –'ईश्वर सदैव रेखागणित का अध्ययन करता है।'
25. राधाकृष्ण् (सं0), उपर्युक्त, 431 में ए एन सिंह।
26. हाइमान, उपर्युक्त, 24 एवं 95–104. यह सकारात्मक या नकारात्मक शून्य ही नहीं वरन् नगण्य को जोड़ने वाला और सबका तथा किसी का नहीं उत्पत्ति–स्थान है। जीरो से सब संख्याएं बनती हैं किन्तु केवल इसके मूल्य की कोई सीमा नहीं है। यह शून्य है, सभी एकाकी आकार एवं संख्याओं का मुख्य एवं अन्तिम भण्डार।
27. हिन्दू इसे शून्य कहते हैं, अरबों ने इसे अस–सिफ या सिफ के रूप में अपनाया। बाद में यह 'जेफिरम', 'जीफर', 'स्यूरो' और अन्ततः 'जीरो' बना। अंग्रेजी का 'सिफर' और फ्रेंच का 'शिफ्र' मूल

अरबी शब्द 'अस–सिफ' से ही निकले हैं।

28. ए एल बाशम, द वण्डर दैट वाज इण्डिया, 496.

29. फिलियोजा का मत है कि इसकी रचना दसवीं–शती से पहले नहीं हुई होगी। तैतों (सं0), उपर्युक्त, 423 में फिलियोजा। भोजपत्रों पर लिखी हुई बक्शाली की पांडुलिपि के सत्तर पत्रे 1881 में मिले थे।

30. राधाकृष्णन् (सं.), उपर्युक्त, 1, 433 में ए एन सिंह। वस्तुतः आर्यभट्ट–तन्त्र गणित के क्षेत्र में भारतीय उपलब्धियों का उल्लेखनीय उदाहरण है। प्रख्यात भारतीय विद्वान् सिंह के अनुसार तो आज के हाईस्कूलों में पढ़ाया जाने वाला गणित आर्यभट्ट–तन्त्र में निहित है।

31. मेत्रो एवं कूजे (सं0), उपर्युक्त, 104 में फिलियोजा।

32. गणित के विशेषज्ञ हैकेल के अनुसार, महान् फ्रांसीसी ज्योतिषविद् लागरैंग (18वीं शती) के पहले संख्याओं के सिद्धान्त सम्बन्धी यह सिद्धान्त अत्यन्त सूक्ष्म उपलब्धि है। ए0 ए0 मैकडनिल, इण्डियाज पास्ट, 192.

33. एफ कबोरी, ए हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स, 97.

34. यदि उसकी रचनाएँ ग्रीक में नहीं लिखी होती तो कोई उसे किसी ग्रीक मस्तिष्क की रचना नहीं मानता। वही, 60।

35. जे स्ट्रू इक, ए कनसाइज हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स, 85–86. अभिनिर्धरित समीकरण : $ax+by = c$ (a,b,c integers)

36. पश्चिमी गणितीय विचारों के स्रोत डायोफैन्ट्स की कृतियों से तुलना करने के बाद ही भारतीय बीजगणित के विकसित स्वरूप का अनुभव हो सकता है। थॉमस हीथ के अनुसार, यूरोपीय लोग हिन्दुओं के बीजगणित के प्रतीक चिन्हों से पहले ही परिचित थे। विलियम कहता है कि चीनी भारतीय गणित से परिचित थे और चीन–भारत के बौद्धिक सम्बन्ध समाप्त होने के बहुत दिन बाद तक चीन में भारतीय गणित का अध्ययन होता था। सरकार, उपर्युक्त, 14 में उद्धृत।

37. कजोरी, उपर्युक्त, 86.

38. राधाकृष्णन् (सं0), उपर्युक्त, 1, 437–39 में ए एन सिंह।

38. लोहे का प्रयोग भारत में 1000 ई पू से पहले ही आरम्भ हो गया था। ऋग्वेद में 'अयस्' कभी ताँबे, कभी पीतल, तो कभी लोहे के लिए प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद तथा यजुर्वेद में 'श्याम् अयस्' का अर्थ लोहे के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। साहित्यिक प्रमाणों की पुष्टि पुरातत्त्व भी करता है। नोह, अतरंजीखेड़ा तथा अन्य स्थानों पर लोहा, चित्रित धूसर भांडों के साथ मिला है। नीह में तो इससे भी पूर्व लोहे के प्रयोग के प्रमाण मिले हैं।

39. राधाकृष्णन् (सं0), उपर्युक्त, 1, 465 में डे।

40. एल हाइट जूनियर, अमेरिकन हिस्टाफरिकल रिव्यू, अप्रैल 1960, 516 उद्धृत।

41. जे नीडहैम, साइंस एण्ड सिविलाइजेशन इन चाइना, 4, 282.

42. पी रे (सं), हिस्ट्री ऑफ केमिस्ट्री इन एंशेट एण्ड मिडिवल इण्डिया, 114–115.

43. इस नागार्जुन को कई बार लोग भ्रमवश बौद्ध–दर्शन के माध्यमिक मत एवं महायान बौद्ध सम्प्रदाय का संस्थापक नागार्जुन मान लेते हैं।

44. ह्वाइट जूनियर, उपर्युक्त, अप्रैल 1960, 522–26। ह्वाइट के अनुसार, नीडहैम का यह सुझाव कि

इस विचार का आरम्भ जलघड़ियों के सहज निरीक्षण से हुआ, किसी प्रमाण पर आधारित नहीं है। अनन्त गति का विचार चीन में कभी नहीं दिखाई देता और न ही इसका कोई प्रमाण मिलता है कि ऐसी घड़ियों की जानकारी भारत पहुँची हो जहाँ से वस्तुतः यह सिद्धान्त निकला।

45. भारत में आयुर्वेद पद्धति का विस्तार हुआ है। कई नये आयुर्वेद महाविद्यालय खुल गये हैं, जिनमें रोगों की पहचान और उनके उपचार का तरीका तो परम्परागत है, किन्तु मूल–विश्लेषण एवं शल्यक्रिया आधुनिक ढंग से की जाती है। आयुर्वेद पद्धति के प्रचलित होने के कई व्यावहारिक कारण हैं, यथा, पश्चिमी पद्धति के अनुसार प्रशिक्षित डाक्टरों की कमी, आयुर्वेदिक औषधियों का अपेक्षाकृत सस्ता होना। ऐसा अनुमान है कि परम्परागत इलाज, आहार एवं उपचार विधियों के अध्ययन से औषधि–जगत समृद्ध होगा क्योंकि आधुनिक चिकित्साविज्ञान में कई भारतीय दवाओं के प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक हो रहे हैं।

46. एस दासगुप्त, ए हिस्ट्री ऑफ फिलॉसॉफी, 11, 273। प्राचीन भारतीय औषधिविज्ञान के इतिहास पर सर्वोत्तम पुस्तक फिलियोजा की है, जो 1949 में मूलतः फ्रेंच में छपी थी। देखिए, फिलियोजा, द क्लासिकल डाक्ट्रिन ऑफ इण्डियन मेडिसिन।

47. कोढ़ का उपचार है गहरे रंग के पौधे के साथ अथर्ववेद के सूक्त का पाठ, 1, 23.

48. 'आयुर्वेद' का शाब्दिक अर्थ जीवन का विज्ञान या दीर्घ जीवन का ज्ञान है। अपने संशोधित एवं किंचित परिवर्तित रूप में ये पुस्तकें अभी भी प्रामाणिक हैं।

49. सार्टन, उपर्युक्त, 1,77.

50. फिलियोजा, उपर्युक्त, 11–25.

51. ए एल बाशम, उपर्युक्त, 499.

52. भारतीय औषधिशास्त्र विषयक अनुमान के लिए देखिए, एस दासगुप्त, उपर्युक्त, 2, अध्याय 13.

53. मेन्ग्रो एवं क्रूजे (सं), उपर्युक्त, 96 में फिलियोजा।

54. पी कुटुम्बैया, एंशेंट इण्डियन मेडिसिन, 34.

55. वह हवाओं और प्लेटो टीमियस पर भारतीय सिद्धान्तों एवं हिप्पोक्रेटिक शोध–प्रबन्धों की उल्लेखनीय समानताओं की ओर संकेत करता है। वे समानताएँ भारतीय प्रभाव इंगित करती हैं।

56. जौली ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन मेडिसिन' में भारतीय एवं ग्रीक पद्धतियों की समानताओं की सूची दी है।

57. फिलियोजा, उपर्युक्त, 226. डया, 178.

58. सार्टन, ए हिस्ट्री साइन्स, 1, 373.

59. फिलियोजा, उपर्युक्त, 232.

60. एफ एच गैरिसन, ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द हिस्ट्री ऑफ मेडिसिन, 72.

61. जी एन बैनर्जी, हेलेजिज्म इन एंशेंट इण्डिया, 178.

62. यूरोप में श्रवण निदान आर टी एच लेनेक (1781–1826) की देन है।

63. टीके लगाने की प्रथा सबसे पहले 1721 में इंग्लैण्ड में आरम्भ हुई और एडवर्ड जेनर ने सर्वप्रथम यह खोज की कि चेचक को टीके से रोका जा सकता है।

64. कॉलडर, मेडिसिन एण्ड मैन, 49.

65. गैरिसन, उपर्युक्त, 72.

66. पश्चिमी औषधिशास्त्र को निश्चेतक देने वाले सर जेम्स यंग सिम्पसन (1811–1870) हैं।
67. तैतों (सं), उपर्युक्त, 157 में फिलियोजा।
68. गैरिसन, उपर्युक्त, 72.
69. टी ग्राम्प्रे, ग्रीक थिंकर्स, 1, 285–286.
70. हाइमान, उपर्युक्त, 39.
71. जे आर मैक्डॉनल्ड, द अवेकनिंग आफ इण्डिया, 303–04। भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैमजे मैकडॉनल्ड (1924 एवं 1929–35) ने कलकत्ता में प्रो0 जगदीशचन्द्र बसु की प्रयोगशाला में 'पौधे की मौत' की प्रक्रिया देखी थी– उस अनुभव के वर्णन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है– कलकत्ता में आखिरी दिन मैंने प्रो जे सी बोस की प्रेसीडेंसी कालेज स्थित प्रयोगशाला में व्यतीत किया, धातुओं के जहर पर मैने उनका एक भाषण इंग्लैण्ड में सुना था और मैं भूला नहीं था कि अपने प्रभावशाली भाषण के अन्त में उन्होंने भारतीयों के प्राचीन विज्ञान के विषय में कहा था और हमें इस आशा के साथ छोड़ा था कि नई जागृति से भारतीय बौद्धिक वर्ग नई वैज्ञानिक खोजों को जन्म देगा। उस दिन कलकत्ता में हमने, रॉयल इंस्टीट्यूट के अधूरे काम को पूरा किया और यह देखा कि किस प्रकार प्रकाश की लौ से पौधे सिकुड़ते हैं, कांपते हैं और अन्त में मरते हैं।
72. जे एफ रॉयल, ऐन्टीक्विटी ऑफ हिन्दू मेडिसिन, 36.
73. आहार सम्बन्धी इतने कठोर नियमों के होते हुए भी, आधुनिक सम्पन्न भारतीय अवश्य ही विश्व के सबसे अधिक खाने वालों में से होंगे।
74. शान्तिपर्व, XVI, 7.9, एस एन मिश्र, एंग्लो–इण्डियन स्टडीज, 335.

भारत में आपदा प्रबन्धन

ललिता कुमार
ओम शिक्षण महाविद्यालय, गोहाना, सोनीपत, हरियाणा

प्रागैतिहासिक काल से ही मानव अपने अस्तित्व एवं विकार को बनाये रखने के लिए प्रकृति से संघर्ष कर रहा है। वर्तमान समय में मानव ने सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी के क्षेत्र में उच्चतम प्रगति कर ली हैं परन्तु आज भी आपदाओं पर नियंत्रण नहीं कर सका है। प्रकृति एवं पर्यावरण अपनी कीमत पर विकास को सदैव चुनौती देते रहे हैं। वही प्रौद्योगिक एवं औद्योगिक विकास ने मानवजनित आपदाओं के लिए नये द्वारा जरूर खोल दिए है जो दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। प्रतिवर्ष विश्व भर में कई प्रकार की आपदाओं से जन–धन की व्यापक हानि होती है एवं विकास भी प्रभावित होता है।

भारतवर्ष के परिप्रेक्ष्य में भारतीय उपमहाद्वीप विश्व के सर्वाधिक आपदा प्रभावित क्षेत्रों में आता है जहां 54% भू–भाग भूकम्प से, 8% भू–भाग चक्रवाती तूफान से, चालीस लाख हेक्टेयर भू–भाग बाढ़ से प्रभावित है। आज विकसित, विकासशील एवं अविकसित सभी देश आपदाओं की विनाशलीला से प्रभावित हैं।

भूकम्प और अस्थिर भू–भाग में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। हिमालय पर्वत भारत का सबसे अधिक अस्थिर भाग है, जिनमें समय–समय पर कम्पन होती है। कम्पन के कारण स्थल में गतियां उत्पन्न होती हैं, इन्हीं गतियों के कारण प्रघातों का महत्व है। इन प्रघातों के कारण चट्टानों के बड़े भाग पिछले वर्षों में कई किलोमीटर आगे बढ़े है। अनुमानतः पिछले 10 से 15 हजार वर्षों के बीच हिमालय दक्षिण की ओर कई किलोमीटर खिसके हैं, जिसके प्रमाण लोहित घाटी (अरूणाचल प्रदेश), जलपाईगुडी (प. बंगाल), धरणबाजार (द.पू. नेपाल), देहरादून (उत्तराखण्ड) और होशियारपुर (पंजाब) में मिलते हैं जहां की उपआधुनिक या अवसादी शैलों पर पुरानी चट्टानें जमी पायी जाती हैं। सामान्यतः 100 वर्षों में लगभग 10 किलोमीटर की। अतः पिछले 2 करोड़ वर्षों में यह गति लगभग 200 किलोमीटर रही होगी। लघु हिमालय को वृहत हिमालय से अलग करने वाले प्रघात तो बहुत सक्रिय हैं।

भारत के भूकम्प संभावित मानचित्र के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि भूकम्पों के केन्द्र चार मुख्य भागों तक ही सीमित हैं, जो अधिकतम भूकम्प वाले क्षेत्रों को प्रदर्शित करते हैं यथाः

1. हिन्दकुश प्रदेश, जहां भूकम्प न केवल सबसे अधिक आते है, वरन् अधिक गहराई (200 से 300 कि.मी.) तक उत्पन्न होते हैं।
2. कुमायूं और पश्चिमी नेपाल पर धरचूल क्षेत्र, जहां भूकम्पों के केन्द्र रेखीय आकार में उतर–उतर पूर्व से दक्षिण–दक्षिण–पश्चिम दिशा में फैले हैं।
3. पूर्वी भूटान–कामेंग सीमावर्ती क्षेत्र, जहां भूकम्प क्षेत्र उत्तर–दक्षिण दिशा में रेखीय मेखला के रूप में स्थित है।
4. उत्तरी–पूर्वी असम तथा अरुणाचल, त्रिपुरा और नागालैंड का निकटवर्ती क्षेत्र अराकनयोमा तक फैला है।

पश्चिम की ओर किर्थर और सुलेमान पर्वत सिन्धु नदी की कांप मिट्टी के विशाल जमावों द्वारा एक–दूसरे से सक्रिय भ्रंशों के कारण अलग हो गए हैं। इन भ्रंशों के सहारे पूर्वी भू–भाग उत्तर की ओर खिसका है। इसका अर्थ है कि पाकिस्तानी चाप के सम्बन्ध में भारतीय भू–खण्ड उत्तर की ओर खिसक रहा है तथा कश्मीर हिमालय को खदेड़ रहा है। भारत में भूकम्पों के सम्बन्ध में निम्न तथ्य उल्लेखित हैः–

1. हिमालय करोड़ों वर्ष पूर्व टैथिस महासागर में जमे अवसादों के कारण बना है। इसका अन्तिम रूप से समाप्त होना तथा उनमें मोड़ पड़ने का कार्य क्रिटैशिय युग से आरम्भ होकर इयोसीन युग तक चला। मध्य टर्सरी युग में इसका विकास चरम सीमा पर था।
2. यद्यपि हिमालय भान्त प्रतीत होता है किन्तु इसकी पाद–श्रेणियों में अभी तक भ्रंशोत्पादन तथा वितोलन होता रहा है। अतः इन श्रेणियों के अस्थिर होने के कारण अत्याधिक भूकम्प इसी मेखला में आते हैं।
3. हिमालय के चाप के सहारे भूकम्प के केन्द्र कुछ क्षेत्रों में अधिक पाये जाते हैं। हिमालय की दक्षिण सीमा के निकट अधिक भूकम्प आते हैं। हिमालय के भूकम्प विशेषतः छिछले (50 कि.मी. से कम) गहरे होते हैं। अधिकांश भूकम्प पश्चिम से पूर्व चलते हैं जिसका कारण अभी तक ज्ञात नहीं हैं।

भूकम्प के क्षेत्र

हिमालय प्रदेश

यह उत्तरी भूकम्प क्षेत्र है जो पूर्व से पश्चिम दिशा में फैला हुआ है। यह भाग रवेदार अवसादी शैलों से निर्मित है। यह क्षेत्र सबसे अधिक अस्थिर है क्योंकि अभी तक हिमालय पूर्णतः सन्तुलन प्राप्त नहीं कर पाया है और इसकी ऊंचाई अभी तक बढ़ रही है। अतः इस भाग में भारत के सबसे अधिक विध्वंसकारी भूकम्प उत्पन्न होते हैं। 1828 का कश्मीर भूकम्प, 1905 का कांगड़ा भूकम्प, 1950 असम, 1970 ब्लूचिस्तान और 1975 हिमालय प्रदेश का भूकम्प आदि इसके उदाहरण हैं।

गंगा सिन्धु प्रदेश

यह प्रदेश प्रायद्वीप की कठोर भूमि के सामने उस अग्रिम समुन्द्र का रूप है जिससे हिमालय की उत्पति हुई हैं। यह क्षेत्र अस्थिर भू–भाग के निकट है इसलिए इस क्षेत्र में भी भूकम्प उठते रहते हैं। 1803 का दिल्ली भूकम्प, 1950 और 1960 का असम भूकम्प, तथा 1966 का उत्तर प्रदेश भूकम्प इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

प्रायद्वीप भूकम्प

यह दक्षिणी प्रायद्वीपीय भाग काफी स्थिर भू–भाग माना जाता था जो अतीत काल से होने वाली भू–क्रान्तियों से भी अविचल था किन्तु यह भू–भाग भी भूकम्प संभावित होता जा रहा हैं।

भारत के भूकम्पों का प्रादेशिक वितरण निम्न प्रकार हैः–

1. उत्तरी–पश्चिमी भारत (नेपाल–सिक्किम, तिब्बत): 31
2. उत्तरी–पश्चिमी भारत (चित्राल–कश्मीर): 21
3. प्रायद्वीपीय भारतः 2

अतः यह कहा जा सकता है कि भारत के अधिकांशतः गहरे भूकम्पों की उत्पति गंगा के मैदान के निकटवर्ती अस्थिर भू–भाग में ही हुई है। वैज्ञानिकों के अनुसार देश के उत्तर में 3,500 कि.मी. लम्बी और 500 कि.मी. चौड़ी पट्टी में अधिकांश एवं सबसे हानिकारक भूकम्प अनुभव किये जाते हैं।

भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से कश्मीर से लेकर असम तक की हिमालय पर्वत श्रृंखला, सिन्धु–गंगा के मैदान और कच्छ, तथा सौराष्ट्र क्षेत्र, भारत के सर्वाधिक अस्थिर भू–भाग है जहां बहुधा विनाशकारी भूकम्प आते रहे है, किन्तु आपेक्षतः कम संख्या में।

1962 में भूकम्प वैज्ञानिकों, भूगर्भशास्त्रियों एवं इंजीनियरों की एक समिति ने भारत को भूकम्पों की दृष्टि से छः क्षेत्रों में बांटा था। भूकम्पों के क्षेत्र बद्ध मानचित्र में:

क्षेत्र एकः क्षेत्र एक में हल्के भूकम्प, जो कि कुछ ही लोगों द्वारा अनुभव किये जाते हैं। अथवा न भी अनुभव किये जा सकते हैं। इसमें कोई हानि नहीं होती या आपेक्षतः कम हानि होती है।

क्षेत्र दोः क्षेत्र दो के भूकम्प सबके द्वारा अनुभव किये जा सकते हैं। धरती में कम्पन व गड़गड़ाहट की आवाज सुनाई पड़ती है, सभी सामान हिलने लग जाता है।

क्षेत्र तीनः में भूकम्प अधिक तेज होते हैं। इसमें पुरानी इमारतों में नयी इमारतों की अपेक्षा अधिक हानि होती है।

क्षेत्र चारः में नयी, अच्छी बनी इमारतें तक क्षतिग्रस्त हो जाती हैं, कुओं के पानी में परिवर्तन हो जाता है।

क्षेत्र पांचः में बहुत हानि से लेकर सर्वहानि होती है। इमारतें नीचे गिर जाती है और नींव धराशायी हो जाती है। भूमि में दरारे पड़ जाती हैं; भूस्खलन हो जाता है।

क्षेत्र छः भंयकर भूकम्पों से प्रभावित क्षेत्र है। इस क्षेत्र में इतने भीषण भूकम्प आते है कि गगनचुम्बी अट्टालिकाएं, धूल–धूसरित हो जाती हैं, पर्वत डगमगाने लगते है; नदियों के मार्ग में परिवर्तन आ जाता है। तुर्की, ईरान तथा असम में आये भूकम्पों को इसी श्रेणी में रखा जाता है।

ज्वालामुखी

यद्यपि आधुनिक काल में भारत में जागृत ज्वालामुखी नहीं पाये जाते, किन्तु भारतीय भूगर्भ विज्ञान के कई कालों से यहां ज्वालामुखी के उद्‌गार होते रहे हैं। सबसे पहले भारत में दक्षिणी पठार पर आक्रियन युग के धारवाड़ काल में ज्वालामुखी का उद्‌गार 1 अरब वर्ष पूर्व हुआ। इसका मुख्य केन्द्र बिहार में डालना श्रेणी था। दूसरा उद्‌गार तमिलनाडु के कड्डप्पा जिले में तथा मध्यप्रदेश के ग्वालियर में हुआ। दोनों ही उद्‌गारों के फलस्वरूप भूगर्भ से निस्सृत लावा की मवाद निकटवर्ती क्षेत्रों में फैल गया। ग्वालियर में बेला और चौरा के निकट गहरे भूरे रंग का बेसाल्ट लावा जमा पाया जाता है। तीसरा उद्‌गार विंध्यन काल में हुआ। इसका मुख्य केन्द्र जोधपुर के निकट मालानी था। यहां लावा का जमाव 42,000 वर्ग कि.मी. के लगभग हुआ।

प्रारम्भिक जीव युग में ज्वालामुखी के उद्‌गार अधिकतर कुमायूं हिमालय में हुए जिनके मुख्य केन्द्र नैनीताल जिले के भुवाली–भीमताल क्षेत्र थे। ऊपरी कार्वन युग में कश्मीर में ज्वालामुखी के उद्‌गार विशेषतः पीर–पंजाल और लद्दाख श्रेणी में हुए। इसके बाद मध्य युग में लगभग करोड़ वर्ष पूर्व ज्वालामुखी के उद्‌गार राजमहल की पहाड़ियों में हुए। यहां लावा का जमाव 3,220 मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं। इसी समय असम के अबोट पहाड़ियों में लावा के उद्‌गार हुए। उसके बाद तृतीयक युग में भी भीषण लावा के उद्‌गार हुए। विशेषतः यह उद्‌गार भारत में दक्षिण के पठार पर हुए और लावा का जमाव 2,130 मीटर से लगभग 3,040 मीटर तक माना जाता है।

वर्तमान युग में जागृत ज्वालामुखियों का भारत में अभाव है। सबसे नवीन उद्‌गार 1803 में बैरेन द्वीप का है जो बंगाल की खाड़ी में स्थित है। इसमें 10–10 मिनट के अन्तर पर काफी घनी काली गैसें निकलीं।

ज्वालामुखी क्षेत्र

1. बिहार में पूर्व–पश्चिम का क्षेत्र।
2. कड्डप्पा, बीजापुर और ग्वालियर क्षेत्र।
3. जोधपुर–किराना पहाड़ियों का क्षेत्र।

4. नैनीताल, भुवाली, भीमताल, सतलुज घाटी क्षेत्र।
5. असम, बिहार क्षेत्र।

गर्म जल के स्रोतों का सम्बन्ध ज्वालामुखी क्रिया से होता है, अतः गर्म जल के स्रोत अधिकांशत उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां प्राचीनकाल में कभी ज्वालामुखी सक्रिय रहे हों।

सरकार द्वारा चिह्नित आपदाएं

1. जल एवं पर्यावरण सम्बन्धी जैसेः बाढ़, चक्रवात, हरीकेन, सूखा, बादल फटना, बर्फ की चोटी टूटना, सुनामी, हेलस्टार्म।
2. भूगर्भ सम्बन्धी जैसेः पर्वत धंसना, भूकम्प, बांध टूटना, खान में आग लगना।
3. रासायनिक, ओद्यौगिक एवं न्यूक्लियर सम्बन्धी जैसे, गैस का रिसाव, रासायनिक विस्फोट, फैक्ट्री में आग लगना चेर्नोबिल जैसी परमाणु दुर्घटना आदि।
4. दुर्घटना सम्बन्धी जैसेः वन में आग लगना, इमारत का गिरना, बम विस्फोट।
5. जैविक सम्बन्धी– जैविक महामारी, कीट आक्रमण, फूडप्वायजनिंग।
6. महामारी सम्बन्धी–प्लेग, हैजा, चेचक, आदि।

पर्यावरण संरक्षण आज विश्व के सम्मुख एक ज्वलंत समस्या है। पिछले कुछ दशकों में तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण, दोहन और भौतिक संसाधनों के अंधाधुंध उपभोग ने जीवन एवं सृष्टि को समाप्त करने के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है जिससे समय–समय पर सम्पूर्ण विश्व को प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकम्प, ज्वालामुखी, चक्रवाती तूफान, बाढ़, पहाड़ टूटना जैसी आपदाओं का सामना करना पड़ता है। इन प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के लिए तरह–तरह के आपदा प्रबन्धन किए जाते हैं। आपदा प्रबन्धन का मुख्य लक्ष्य, प्राकृतिक व ओद्यौगिक आपदा से होने वाली जन–धन की हानि को तथा उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ा को कम करना है। आज वर्ल्ड बैंक से भी इस दिशा में ठोस व महत्वपूर्ण आपदा प्रबन्धन में बहुत सहायता ली जा रही हैं।

उपर्युक्त के आलोक में संयुक्त राष्ट्र संघ की आमसभा ने प्रस्ताव पारित कर 1990–2000 को ''अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण दशक'' घोषित कर आपदा न्यूनीकरण की दिशा में पूरे विश्व का ध्यान आकृष्ट कर आपदा प्रबन्धन को राष्ट्र के साथ ही आमजन का सहयोग भी जोड़ा और इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। भारतवर्ष में संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव निर्देश में कृषि एवम् सहकारिता मन्त्रालय के अन्तर्गत आने वाले आपदा प्रबन्धन विभाग द्वारा केंद्रीय क्षेत्र की योजनागत स्कीमों के अन्तर्गत प्राकृतिक प्रबन्धन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, जिसमें मानव संसाधन विकास, जागरूकता, समुदाय सहभागिता, सेमिनार कार्यशाला प्रयोजित करना शमिल था।

याकाहोमा, जापान में मई 1994 में आयोजित ''वर्ल्ड कान्फ्रेंस ऑफ नेचुरल डिजास्टर्स'' प्राकृतिक आपदा प्रबन्धन के शुरूआती चरण में मील का पत्थर कहा जा सकता है। इसके बाद ही पूरे विश्व में प्राकृतिक आपदा के प्रभाव को कम करने के बारे में सरकारी एवम् गैर–सरकारी संगठनों को आपदा प्रबन्धन के बारे में ठोस कार्य योजना तैयार करने में मदद मिली। फरवरी 2004 में नई दिल्ली में आयोजित ''वर्ल्ड कान्फ्रेन्स ऑन नेचुरल डिजास्टर मैनेजमेन्ट'' जिनमें सातों महाद्वीपों के सैकड़ों प्रतिनिधियों ने भाग लिया, भारतवर्ष में आपदा प्रबन्धन पर अब तक का सबसे बड़ा आयोजन कहा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ, एशिया आपदा न्यूनीकरण केन्द्र, एशिया आपदा नियन्त्रण केन्द्र आदि द्वारा प्रतिपादित आपदा नियन्त्रण एवं तैयारी मसविदा में स्पष्ट है कि आपदा का पूर्वअनुमान अभी भी अस्पष्ट है, लेकिन प्रभावी आपदा प्रबन्धन से इसके प्रभाव को कम किया जा सकता हैं। प्रभावी आपदा प्रबन्ध

ही सफलता का आधार है। स्वयंसेवी संगठन, मेडिकल एसोसिएशन, रेडक्रॉस सोसायटी, एन.सी.सी., इन्स्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स आदि इसमें प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं। आपदा प्रबन्धन को व्यापक रूप में निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता है :

1. आपदा–पूर्व प्रबन्धन।
2. आपदा के समय प्रबन्धन।
3. आपदा के बाद प्रबन्धन।

आपदा–पूर्व प्रबन्धन

आपदा के बारे में अभी तक भी कोई पूर्वानुमान शत–प्रतिशत सही नहीं रहा है। हालांकि इसकी तैयारी एवं प्रबन्धन योजनाबद्ध तरीके से किया जा सकता है। आपदा से पूर्व प्रबन्धन को तैयारी योजना के आधार पर निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता हैः

(i) **सजगता की संस्कृति** : समाज में इस तरह की संस्कृति का विकास करना जिसमें आपदा तैयारी एवम् योजना से सभी परिचित हों, इसके लिए आपदा प्रबन्धन का पाठ जोड़कर पूरे समाज को आपदा प्रबन्धन हेतु तैयार किया जा सकता है।

(ii) **क्षमता निर्माण** : आपदा प्रबन्धन के प्रति आम जनता की क्षमता निर्माण करने हेतु प्रशिक्षण किट, किताबें, सीडी आदि उपलब्ध करायी जाएं। जैसे कि इस नियन्त्रण हेतु समाज में प्रयास किये गये। प्रशिक्षण कैम्प, गोष्ठी, कार्यशाला का आयोजन किया जाए।

(iii) **जागरूकता** : जागरूकता आपदा प्रबन्धन में सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है। आम जन आपदा प्रबन्धन के बारे में जागरूक होगा तभी जनसहभागिता होगी और बिना जनसहभागिता की सफलता संदिग्ध है। इसके लिए आपदा प्रबन्धो से सम्बन्धित कार्यक्रम एवम् विषय इलैक्ट्रॉनिक एवं प्रिन्ट मीडिया प्रचारित एवं प्रसारित किये जाएं।

आपदा के समय प्रबन्धन

आपदा कुछ सेकण्डों, मिनटों या घण्टों की होती है। आपदा के समय उचित, त्वरित प्रबन्धन यदि समय रहते किए जाएं तो निश्चित ही इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। आपदा के समय प्रबन्धन को तीन निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है।

(i) **त्वरित कार्यवाही** : आपदा पूर्व सूचना केन्द्र से यदि कोई सूचना मिलती हैं तो त्वरित कार्यवाही करते हुए जनसंचार माध्यम के उपयोग से सूचनाएं तत्काल प्रसारित की जानी चाहिए। इस समय सेकन्डों का मान भी घन्टों से तथा जन–धन हानि से जोड़ा जा सकता है।

(ii) **संरक्षा संस्कृति** : जापान, ताईवान में भूकम्पों से अमेरिका, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड आदि के समुन्द्री किनारे पर तूफान बांग्लादेश, जाम्बिया, भारत के कुछ क्षेत्रों में बाढ़ से सामना करते–करते स्थानीय निवासियों में संरक्षा, सुरक्षा की संस्कृति का विकास हो जाता है वे आपदा के समय बचाव के उपायों से भली–भांति परिचित होने से बचाव एवं तात्कालिक राहत के प्रति सजग रहते हैं जिससे जान–माल की व्यापक क्षति के प्रभाव को रोकने के उपाय प्रभावी सिद्ध होते हैं।

(iii) **सूचना** : आपदा पूर्व सूचना केन्द्र की भूमिका इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। पुनः आपदा की तीव्रता, भयावहता, प्रभावित क्षेत्र, प्रभावी प्रबन्धन हेतु आवश्यक चिकित्सा सुविधाएं, यंत्र उपकरण, राहत बचाव कर्मी की उपलब्धता संबंधी सूचना उपयुक्त माध्यम से निवासियों तक पहुंचनी चाहिए। इलैक्ट्रानिक मीडिया यथा रेडियो, दूरदर्शन आदि इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

आपदा के बाद प्रबन्धन

भूकम्प, चक्रवाती बाढ़, पहाड़ धंसना, बर्फ का खिसकन आदि जैसी आपदाएं भले ही कुछ क्षणों की होती है, पर कहर टूटने के बाद इसके प्रभाव से प्रभावितों को राहत, बचाव सामग्री एवम् तत्कालिक नियन्त्रण राहत एवं उपचार पूरे आपदा प्रबन्धन की नींव है। आपदा के बाद प्रबन्धन को भी प्रमुख तीन भागों में बांटा जा सकता हैं।

(i) **राहत कार्यः** सूचना के आधार पर प्रभावित क्षेत्र में आवश्यक उपकरण, इंजीनियर, राहत सामग्री, चिकित्सक एवं उपकरण, आदि कुछ स्तर पर पहुंचाने चाहिए एवं उपलब्ध सुविधाएं अधिकतम् मात्रा में पहुंचनी चाहिए। एन.जी.ओ., अर्ध–सरकारी संस्थाओं से भी सहयोग लेना चाहिए।

(ii) **रिकवरीः** आपदा पश्चात् नीति एवं क्रियान्वयन तात्कालिक रूप से होना चाहिए, जिसमें आवश्यक दिशा–निर्देश, प्रोत्साहन, सहयोग के साथ–साथ मीडिया को जोड़कर पुनः स्थापित करने में सहयोग देना चाहिए।

(iii) **सापेक्ष परिवर्तनः** यह एक मनोवैज्ञानिक, परन्तु सामाजिक एवं आर्थिक आधार कार्यवृत है। आपदा के पश्चात मानव उसकी भयावहता, विस्मयकारी प्रभाव से आपा खो बैठता है। आपदा के पश्चात् सैकड़ों प्रभावित नागरिकों को मनोवैज्ञानिक रूप से समाज की मुख्य धारा में कई महीनों बाद ही लाया जा सकता हैं। इस प्रकार आपदा प्रभावित नागरिकों में मनोवैज्ञानिक ढंग से सापेक्ष परिवर्तन करना चाहिए।

आपदा प्रबन्धन कानून

आपदा प्रबन्धन कानून देश में किसी बड़ी आपदा की स्थिति में ''राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन योजना'' के कार्यन्वयन हेतु समुचित संस्थागत तन्त्र उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने ''आपदा प्रबन्धन विधेयक, 2005'' संसद में प्रस्तुत किया। 28 नवम्बर 2005 को पारित इस बिल के अन्तर्गत निम्नाकिंत प्रावधान है।

1. आपदा प्रबन्धन के लिए ''राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण'' (National Disaster Management Authority; NDMA) का गठन।
2. ''राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया कोष'' (National Disaster Response Fund, NDRF) की स्थापना।
3. ''राष्ट्रीय आपदा भामन कोश'' (National Disaster Mitigation Fund, NDMF) का गठन।

NDMA के उपाध्यक्ष एन सी विज के अनुसार कुल 10 हजार कर्मचारियों के 8 बटालियनों का गठन किया जायेगा जिसमें राष्ट्रीय आपदा के प्रबन्धन के लिए बटालियनों में ''उत्तर प्रदेश बल'' का स्टेशन ''नोएडा'' में होगा।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ एवं विश्वस्तर पर आपदा के न्यूनीकरण हेतु चल रहे प्रयासों में भारतवर्ष में भी सरकारी एवं गैर–सरकारी स्तर पर कार्ययोजना प्रारम्भ हो गयी है, जिसके परिणाम आगे आने वाले वर्षों में दिखाई देगें। ''कुशल प्रबन्धन लाख कमियों को छिपा लेता है।'' अर्थात संसाधन की कमी, उपलब्धता आदि कई प्रमुख आधार कुशल प्रबन्धन से नजर आते है। हमें समय रहते ही जागृत हो जाना चाहिए। ताकि हम विकास की बजाय विनाश की राह पर न बढ़ चलें। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सतत् विकास में पर्यावरण की रक्षा, संरक्षण के साथ–साथ आपदा प्रबन्धन को विकास के साथ जोड़कर चलें तभी हम सुरक्षित विकसित भविष्य की परिकल्पना की योजना बना सकते है और भारतवर्ष जैसे विकासशील देश में आपदा प्रबन्धन की कुशलता भी उसकी सफलता का आधार सिद्ध होगी।

संदर्भ

1. त्रिपाठी, डॉ. दुर्गेश, 'पर्यावरण आपदा प्रबन्धन एवं मीडिया' सनराईज पब्लिकेशन्स, दिल्लीः 2008, पृ0 134–139.
2. भार्मा, डॉ दीप्ति, कुमार महेन्द्र, 'पर्यावरण एवं संविकास' अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्लीः 2009, पृ0 143–152.
3. राव, हनुमंत, सुबाराव श्रीनिवास, ''आपदा प्रबन्धन'' सीरीयल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008.
4. सी. सिन्हा, प्रभास, ''आपदा प्रबन्ध प्रक्रिया (कानून, प्रक्रिया एवं विधि), एस,बी, एस पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्लीः 2006.
5. Goel, S.L. 'Disaster Management Text and case Studies', Deep and Deep Publications, New Delhi, 2007.
6. Sharma, K. Vindo, 'Disasaster Management' National Centre for Disaster Management, Indian Institute of Public Administration, New Delhi, 2010.

बायोजेनेटिक उत्पाद और खाद्य सुरक्षा

वन्दना त्यागी
नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लांट जेनेटिक रिर्सोस, दिल्ली

खाद्य सुरक्षा की सफलता खाद्यान्न उत्पादन, खाद्यान्न खरीद; खाद्य भंडार तथा वितरण पर निर्भर करती है। खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए biogenetic उत्पाद विकल्प के रूप में एक सफल प्रयास है। प्रौद्योगिकी और नवीनतम तकनीक हमेशा से परिवर्तन के प्रमुख चालक रहे है। सर्वविदित है कि गेहूँ और चावल के जीन छोटे करने के साथ किस तरह भारत ने हरित क्रांति के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा की दिशा में सफल प्रयास किया।

आज हम ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं, जहां अनिश्चितता और मौसम की अति का सामना करना पड़ता है। Biogenetic उत्पाद आज देश की जरूरत है, जब हमारे सामने यह चुनौती है कि बढ़ती आय के साथ, बढ़ रही जनसंख्या का पेट कैसे भरा जाए, जबकि भूमि और जल संसाधन सीमित हैं। आज खाद्य पदार्थो के उपभोग में भी लगातार विविधता आ रही हे।

यद्यपि अभी भी मुख्य खाद्यान्नों की प्रधानता बनी हुई है तदापि खाद्यान्न उत्पादकता में आज तकनीक की भूमिका बहुत अहम होती जा रही है। अध्ययन यह दर्शाता है कि खाद्यान्न उत्पादकता में वृद्धि कम से कम एक तिहाई उत्पाद, तकनीक के नये–नये शोध और नवाचार द्वारा आ रही है। इसके पीछे एकमात्र लक्ष्य यह रहता है कि खाद्यान्न का उत्पादन इस स्तर तक कर लिया जाए ताकि किसी भी अवस्था में इसकी कमी न होने पाए। जैव प्रौद्योगिकी सालों से हमारे बीच हे ओर इसका उपयोग लगभग सभी खाद्य उत्पादों में वर्षों से होता आ रहा हैं, आज इस तकनीक का उपयोग खाद्यान्न उत्पादन में और भी बेहतर तरीके से किया जा रहा है। इसके जुड़ते हुए अध्यायों में नई शाखा nanotechnology है, जो सूक्ष्म से सूक्ष्मतर को उजागर करती है और कृषि, चिकित्सा ओर खाद्य उत्पादन में इसका इस्तेमाल व अध्ययन अलग–अलग स्तर पर किया जा रहा है। 2010–2011 में खाद्यान्नों का उत्पदन 24 करोड़ 16 लाख टन के शिखर तक पहुँच गया। गेहूँ के साथ–साथ दलहनों, तिलहनो ओर कपास के उत्पादन में भी कीर्तिमान स्थापित किए गए।

वैश्वीकरण के इस युग में केवल परपरागत फसलों को उगाकर ही हम समृद्ध नहीं हो सकते बल्कि बदलती माँग व कीमतों के अनुरूप फसल, प्रतिरूप में परिर्वतन बहुत आवश्यक है। जिससे कि उत्पादक और उपभोक्ता दोनों ही इसका भरपूर लाभ उठाने के लिए प्रेरित हो और विकास पथ पर अग्रसर हो।

Genetically modified विवक जो कि genetic engineering की तकनीक के इस्तेमाल से बनाए जाते हैं, आज अपनी पहचान बना चुके हैं। तीस हजार विभिन्न उत्पाद आज अमेरीका के बाजार में उपलब्ध हैं। इनका मकसद कुछ नये खरपतवाररोधी, अधिक पोषण क्षमता ओर अधिक टिकाऊ पौधे व खाद्य उत्पाद हासिल करना है। इस प्रक्रिया में चयनित खास लीन की पहचान कुछ इच्छित गुणों व विशेषताओं के लिए की जाती है ओर एक प्रकार के पौधे से दूसरे में प्रत्यारोपित की जाती है। इसका

उपयोग, खाद्य उत्पाद की परपंरागत प्रजातियों के मुकाबले अधिक पोषक तत्व वाले खाद्य उत्पाद उपलब्ध कराने के लिए किया जा रहा हैं। हांलिक भारत में यह खाद्य उत्पाद अभी इतने प्रचलित नहीं है परन्तु निकट भविष्य में इनके संभावित उपयोग को नकारा नहीं जा सकता विश्वस्तर पर जनसंख्या बढ़ने के साथ, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में महतवपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

परंपरागत खाद्य उत्पादों में लोहा ओर अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों को दैनिक उपयोग के अनाजों में मिलाकर बाजार में के रूप में उपलब्ध कराया जा रहा है जिसे कि ने नाम से जाना जाता है। द्वारा खाद्य उत्पादों के गुणों में वृद्धि की जा रही है ओर इनके उपयोग से शुख ओर कुपोषण को दूर किया जा सकता है। खाद्य सुरक्षा को मजबूत करने के लिए परपरांगत विधियों और नयी तकनीक में सामंजस्य करते हुए बढ़ती माँग के अनुरूप पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने में आज हमारे सामने मौजूद हैं।

हाल ही में Bhabha Atomic Research Center ने एक तकनीक विकसित की है जो कि लीची की भंडार और अपयोग होने तक कि अवधि यानि को एक महीने तक बढ़ा सकती है। जैसा कि विदित है कि लीची का फल बहुत ही जल्द बिगड़ जाता है तथा तोड़ने के साथ ही उसका फल भूरे रंग का हो जाता है। Radiation Technology द्वारा लीची को भंडार और उपयोग तक की अवधि को बढ़ाने के साथ–साथ उसका गुलाबी रंग भी महीनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है, साथ ही साथ सूक्ष्म जीवाणुओं को भी इसी विधि द्वारा इसकी गुणवता में भी भंडारण के समय कोई प्रतिकूल असर नहीं होगा और बाजार में ज्यादा आपूर्ति हो सकेगी। Shelf life बढ़ाने के साथ, ही अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में इसकी माँग कई गुणा बढ़ जाएगी। इस तकनीक को छोटे पैमाने से लेकर औद्योगिक पैमाने तक उपयोग कर सकते हैं और मामूली प्रशिक्षण द्वारा यह तकनीक उपयोग में लाई जा सकती हैं। खाद्य सुरक्षा ओर खाद्य safety के सभी पहलू को ध्यान में रखकर ही यह तकनीक विकसित की गई है। खाद्य उत्पादन के साथ–साथ खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का महत्व कृषि तथा बागवानी उत्पादों के मूल्यवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऑस्मोटिक निर्जलीकरण विधि द्वारा विभिन्न फलों जैसे आम, अन्नानास, केला, पपीता, चीकू, अमरूद आदि के टुकड़ों को शुष्कित उत्पाद के रूप में परिरक्षित करना एक आधुनिक तकनीक है। इस विधि में पहले फलों को प्रायः चीनी के गाढ़े घोल में एक निश्चित अवधि तक डुबोया जाता है जिसके कारण फलों के अन्छर मौजूद पानी की मात्रा ऑस्माटिक प्रकिया द्वारा बाहर निकलती है और फलों के टुकड़े आंशिक रूप से सूख जाते हैं। इस प्रकिया में जहाँ खटास व कुछ तत्व बाहर आते है, तो दूसरी ओर कुछ मात्रा में चीनी, फलों में प्रवेश कर जाती है। परिणाम स्वरूप फलों के अन्दर गुणात्मक परिवर्तन होता है। इस प्रक्रिया द्वारा परिरक्षित करने से फलों की गंणवता, सुवास रंग सरंचना तथा संरक्षित उत्पाद की मात्रा बढ़ती है, साथ ही भण्डारण के दौरान सूक्ष्म जीवाणुओं से सुरक्षित रहने में भी मदद होती है। ऐसे फल जिनमें काफी रेशे हों, इस प्रकार के उत्पाद बनाने के लिए उपयुक्त नही होते हैं।

आधुनिक तकनीकों का उपयोग उत्पादन में ज्यादा से ज्यादा बढ़ोतरी, खर्चीले निवेश में कमी, प्रतिकूल परिस्थितियाँ सहने के गुणों युक्त उत्पाद बनाने, निष्पादन हेतु पैदावार क्षमता बढ़ाने, खाद्यान्ना उपलब्धता में वृद्धि करने में किया जा रहा है व साथ ही साथ यह उत्पाद बढ़े हुए पौषटिक मूल्य के साथ आज हमारे उपयोग के लिए उपलब्ध हैं।

ध्वनि प्रदूषण–धीमी गति का मृत्युदूत

दीपक राठी एवं फूलदीप कुमार
रोहतक, हरियाणा
रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र, दिल्ली

हमारे पंडितों तथा दार्शनिकों ने आवाज को नाद ग्रह की संज्ञा दी है। पूरा संसार नाद के अधीन है। प्राचीन काल में जब लोगों के पास भाषा नहीं थी तब भी शोक व आनन्द की अभिव्यक्ति ध्वनि के द्वारा होती थी। प्राचीन मानव शिकारोपरान्त अपने मन के हर्ष को ध्वनि के रूप में ही निसृत कर उसको अभिव्यक्त करता था। शोक होने पर या रोने पर यह कोई भी जान सकता है कि अमुक दुःखित है। बच्चा रोकर ही अपने कष्ट या आवश्यकता की अभिव्यक्ति करता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ध्वनि मनुष्य की भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। ध्वनि से संवदेनशील अभिव्यक्ति का माध्यम संसार में और कोई नहीं। केवल मानव ही नहीं जीव जन्तु भी ध्वनि के माध्यम से अपनी आवश्यकता की अभिव्यक्ति करते हैं। मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों में कान व आँख अत्यन्त मुख्य इसलिए माने गए हैं क्योंकि मनुष्य इन्हीं दो संवेदनशील ज्ञानेन्द्रियों द्वारा दृश्य व श्रव्य के माध्यम से समुचित ज्ञान लाभ करता है। कलाओं के ज्ञान व शिक्षण में इन दो ज्ञानेन्द्रियों का महत्व सबसे अधिक है। वास्तुकला, शिल्पकला और मुख्य रूप से चित्रकला में रंगों का संयोजन व सही प्रयोग उस कला के ज्ञाता आँख से ही करते हैं। श्रव्यकला के अन्तर्गत संगीत आता है जो कान के द्वारा ही परखा जाता है।

किसी कारखाने की मशीनों द्वारा खरखराहट या रेलवे प्लेटफार्म का हल्ला–गुल्ला अथवा शहर के किसी भीड़–भाड़ क्षेत्र का शोरगुल भी ध्वनि ही कहलाएगा परन्तु इस प्रकार की ध्वनियाँ हमारे लिए कोलाहल या रव की श्रेणी में गिनी जाएँगी। अंग्रेजी भाषा में इसी को नॉइज (Noise) के नाम द्वारा जाना जाता है। भौतिक विज्ञान भी संगीत सम्बन्धित ध्वनि को मूलतः दो भागों में विभाजित करता है।

1. म्युजिकल साउण्ड संगीत ध्वनि।
2. नॉइज (Noise) यानी कोलाहल, शोरगुल या रव।

दोनों प्रकार में ध्वनियों को अलग–अलग समझने के लिए कोई निश्चित प्रकार की विभाजन रेखा या सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि म्युजिकल ध्वनियाँ कानों को सुहाती हैं और रव या कोलाहल मानव कानों को अच्छा नहीं लगता। यह भी सर्वविदित है कि कानों द्वारा सुने गए ध्वनि संदेशों का अर्थ निष्कर्ष, पूर्ण रूप से मानसिक प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। किसी एक प्रकार की ध्वनि, किसी को अच्छी लगती है परन्तु वहीं ध्वनि दूसरे व्यक्ति को इतनी अच्छी नहीं लगती है। यदि हम तारता के आधार पर विश्लेषण करें यानि पूर्ण रूप से भौतिक विज्ञान के आधार द्वारा मनन करें तो परिणाम (Results) कुछ और ही प्राप्त होंगे। प्रयोग व अनुभव द्वारा स्थापित किया जा चुका है कि म्यूजिकल साउण्ड यानि सुस्वर ध्वनि की तारता (कम्पन संख्या प्रति सैकण्ड) दूसरी ध्वनि यानि रव वाली ध्वनियों की तुलना में कहीं अधिक होती है।

इस संसार में वैसे तो ध्वनियाँ कई प्रकार की हैं पर हमें देखना होगा कि ध्वनि प्रदूषण किस प्रकार की ध्वनियों से होता है और कौन सी ध्वनियाँ मानव कल्याणकारी हैं। प्राचीन काल में स्रोतों व ऋचाओं का पाठ एक नियम के अन्तर्गत होता था उसमें स्वरों का संयोजन निश्चित था। शब्दों के उच्चारण पर विशेष ध्यान रखा जाता था। शब्दों तथा स्वरों का कर्षापकर्षण निर्देशित थे। उसमें किसी का परिवर्तन अभिप्रेत नहीं था। यहाँ तक कि गायकों की संख्या निश्चित थी। यहीं कारण था कि उसका अच्छा प्रभाव शरीर व मस्तिष्क पर देखा जा सकता था। वर्तमान शास्त्रीय संगीत में भी राग की मंद्र व तार सीमा निश्चित है। अगर गायक या वादक इन नियमों का पालन करें तो परिवेश निश्चित ही कर्णप्रिय व सर्वजन के हितकर होगा। प्राचीन काल में वृंदगान में गायक–गायिकाओं व वादकों की संख्या निश्चित थी, शायद इसलिए कि गान पूर्णतया सन्तुलित हो। आज वृंदगान में कोई नियम नहीं है, रागदारी संगीत में किसी बात का विशेषकर तारता, सुस्वरता इत्यादि का कोई बंधन नहीं है। यही कारण है कि इस प्रकार के संगीत का प्रदर्शन मन व मस्तिष्क के विकारों का शमन करने के बजाय बढ़ाने में सहायक होते हैं।

ध्वनि का वैज्ञानिक परिचय

किसी वस्तु के कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है। जब हम कोई भी ध्वनि निकालते हैं तो अपने वाक् तन्तुओं को कंपित करते हैं। इसके अतिरिक्त हम किसी भी वस्तु में कंपन करके ध्वनि उत्पन्न कर सकते हैं। ध्वनि तरंगों के संचरण के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। ध्वनि तरंगें अपनी उत्पत्ति के केन्द्र से चारों दिशाओं में हवा से होकर गोलीय रूप में चलती हैं। निर्वात में ध्वनि तरंगे नहीं चल सकतीं। चन्द्रमा पर वायुमण्डल न होने के कारण ध्वनि संचरण नहीं हो सकता। चन्द्रमा पर अन्तरिक्ष यात्री आपस में एक दूसरे से बातचीत नहीं कर सकते जैसा धरती पर करते हैं वहाँ वे रेडियों तरंगों के माध्यम से ही बातचीत कर सकते हैं।

ध्वनि वायु–तरल, ठोस सभी माध्यमों में चलती है। ध्वनि की चाल माध्यम के घनत्व, ताप और प्रत्यास्थता जैसे गुणों पर निर्भर करती है। वायु में ध्वनि की चाल 0.33 कि. मी. प्रति सैकण्ड है। गर्म वायु में ध्वनि और तेज चलती है। वायु (गैसों) की तुलना में ध्वनि तरल पदार्थों में अधिक तेज चलती है और इससे भी अधिक यह ठोस–पदार्थों में चलती है।

ध्वनि की आवृति मापने की इकाई

ध्वनि की आवृति मापने की इकाई हर्टज है। आवृति के आधार पर ध्वनि को निम्नलिखित तीन भागों में बांटा गया है–

1. श्रव्य– मनुष्य के कान 20 हट्र्ज से 20000 हर्टज तक सुन सकते हैं, इसे मनुष्य का श्रव्य परास कहते हैं।
2. पराश्रव्य– श्रव्य परास से अधिक आवृति की तरंगों को पराश्रव्य तरंगें कहते हैं।
3. अवश्रव्य– श्रव्य परास से कम आवृत्ति की तरंगों को अवश्रव्य तरंगें कहते हैं।

ध्वनि की तीव्रता मापन की ईकाई

ध्वनि की तीव्रता मापन की इकाई डेसिबल है यदि ध्वनि अधिक तीव्र हुई तो कर्णप्रिय नहीं होती और हम उसे शोर कहते हैं। अधिकांश सभ्य राष्ट्रों में शोर की अधिकतम सीमा 75–85 डेसिबल निर्धारित की गई है। सामान्य बातचीत से उत्पन ध्वनि की तीव्रता 55 से 60 डेसिबल होती है।

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण की परिभाषा व उसका वर्गीकरण तो करना कठिन है। क्योंकि जहाँ एक ध्वनि किसी व्यक्ति विशेष के लिए प्रदूषित समझी जाती हो वही ध्वनि किसी दूसरे व्यक्ति विशेष के लिए

आनन्ददायक सिद्ध हो जाती है। जैसे शास्त्रीय संगीत का श्रवण उसके जानकार व्यक्तियों को आनन्द दे सकता है पर उससे असम्बन्धित व्यक्ति उसका नाम सुनते ही वहाँ से पलायन कर जाते हैं। वर्तमान समय के फिल्म संगीत नवयुवक व युवतियों के हृदय में प्राणसंचार कर देती है। यह भी आवश्यक नहीं कि कर्णप्रिय ध्वनि सर्वदा अच्छी लगे व एक ही गीत बार–बार सुनने के बाद भी ऊबना हो। इन सबका सम्बन्ध मनुष्य की वासनाओं की तृप्ति से है। मानव मन व मस्तिष्क एक सीमा तक तृप्ति चाहता है। जब तृप्ति की सीमा पार हो जाती है तब चाहे वह कितनी भी अच्छा संगीत क्यों न हो उस पर से रूचि हट सी जाती है तथा संगीत को सुनने से ऊब व खीज पैदा होती है। तब यही कर्णप्रिय ध्वनि प्रदूषित ध्वनि में बदल जाती है। अच्छे गरिष्ठ व स्वादिष्ट व्यंजन भूख लगने तक अच्छे लगते हैं, इसके पश्चात् वे कितने भी स्वादिष्ट क्यों न हों खाना तो दूर देखने की भी इच्छा नहीं होती।

कहने का तात्पर्य यह है कि यह व्यक्तिविशेष, उसके सामाजिक संस्कार–पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसके रहन–सहन तथा उसकी मानसिकता पर निर्भर करेगा कि वह किस प्रकार की ध्वनि को प्रदूषण के अन्तर्गत मानता है तथा किस प्रकार की ध्वनि को कर्णप्रिय। पर यह तो निश्चित है कि कोलाहल चिल्लाहट, कारखानों की आवाज, रास्तों में वाहनों की अनावश्यक ध्वनियाँ इत्यादि किसी भी मनुष्य को रास नहीं आ सकतीं। अपने दैनिक जीवन में अगर कोई किसी के साथ ऊंची आवाज में बात करें तो आस–पास के लोग सकते में आ जाते हैं, रास्ता चलने वाला कुछ देर के लिए सहमकर रूक जाता है। कोई छोटा बच्चा जोर–जोर से चिल्लाकर रो रहा हो तो उसे अधिक देर तक सुना जा सकता है, परन्तु बाजार और भीड़ भाड़ वाले जगहों के कोलाहल में कुछ देर रहने के बाद शान्त जगह की तलाश रहती है–ये सारे उदाहरण ध्वनि प्रदूषण के अन्तर्गत लिए जा सकते हैं। यहाँ तक कि किसी गायन में स्वर से संवेदनशील श्रोता विचलित हो जाते हैं–यह भी एक प्रकार का ध्वनि प्रदूषण है, क्योंकि ये सारे अस्वाभाविक ध्वनियाँ है जिसके श्रवण से शरीर पर हानिकारक परिणाम होते हैं अर्थात् हम यह कह सकते हैं कि जिस ध्वनि के श्रवण से मन, मस्तिष्क व शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है प्रदूषित ध्वनि कही जा सकती है। जरूरत से ज्यादा तारता व तीव्रता वाली आवाज आनन्द न देकर अशान्ति पैदा करती है और अगर यह क्रम कुछ दिन तक चलता रहा तो मस्तिष्क में विकार पैदा होना सहज बात है।

गायन भी ऊँचे स्वरों में होता है और चिल्लाना भी ऊँचे स्वरों में। पर दोनों में मूलभूत अंतर यह होता है कि गायन में तारता तो रहती है पर तीव्रता आनुपातिक रूप से कम होती है जिस पर गायन का अधिकार रहता है। एक सधा हुआ गायक ऊँचे से ऊँचे स्वरों को धीरे से इस प्रकार गाता है कि सुनने में कर्णप्रिय लगता है। यही कारण है कि किसी नौसिखिए का गायन कर्णप्रिय न होकर कर्णकटु होता है क्योंकि उसके गाने में तीव्रता या कर्कशता की मात्रा अधिक होती है। चिल्लाने में तीव्रता अधिकतम होता है। कान फोड़ने वाली ध्वनि का दूसरा लक्षण है–अत्यन्त अल्प समय अंतरालों में उसकी तारता तथा तीव्रता में परिवर्तन होना।

वैज्ञानिक आधार

कान ध्वनि सुनता है–उस ध्वनि का स्नायुओं द्वारा विद्युत तंरग में बदल दिया जाता है। तरंगों का मस्तिष्क में पहुँचने पर रासायनिक परिवर्तन होता है। उसके पश्चात् उस आवाज का विश्लेषण होता है कि आवाज मधुर है, कि कोलाहल है या ये किसकी आवाज है, इत्यादि। अन्त में यह आवाज रसायन के रूप में रिकार्ड कर लिया जाता है।

मनुष्य का कान एक समय में एक ही ध्वनि सुनने में सक्षम है। अगर आप दो रेडियो पर एक ही स्टेशन लगाकर दोनों को कान के दोनों तरफ रखकर सुने तो आप देखेंगे कि आप एक समय में एक ही रेडियों की ध्वनि सुन पाएंगे, उस समय के लिए दूसरा रेडियो बंद है ऐसा आपको आभास होगा।

यह प्रयोग यह दर्शाता है कि मानव एक समय में एक ही आवाज सुन सकता है। अब जब बहुत सारे आवाज उसके कान के पर्दे को झंकृत करेंगे तो मस्तिष्क अपनी क्षमतानुसार उनका विश्लेषण करने की कोशिश तो करेगा पर कुछ ही समय बाद वह थक जाएगा तथा उन ध्वनियों को सुनना पसन्द नहीं करेगा–यही ध्वनि प्रदूषण है। यह ठीक वैसा ही है जैसे चलचित्र में बहुत जल्द दृश्यों का परिवर्तन तथा प्रकाश का उतार–चढ़ाव होता है वह आंख के लिए प्रदूषण है–यही कारण है कि चलचित्र के देखने से आँखें थक जाती हैं तथा सिर वेदना होने लगती है।

यह देखा गया है कि हवाई अड्डों, रेलवें स्टेशनों, कारखानों, बाजारों, या उन जगहों जहाँ भारी वाहन हर समय आते–जाते रहते हैं के आस–पास रहने वाले लोग विभिन्न मस्तिष्क विकारों जैसे चिड़चिड़ापन, नींद न आना, चिंताग्रस्त होना, किसी विषय पर मनोयोग से काम न कर पाना, बधिरता आदि से ग्रसित होते हैं। कालंतर में ऐसे लोग रक्तचाप, मधुमेह, धड़कन व दिल की अन्य बीमारियों के शिकार हो जाते हैं जिसका मुख्य कारण एड्रीनल नामक अंतःस्रावी ग्रन्थियों से एड्रीनैलिन तथा नॉरड्रीनैलिक का अधिक मात्रा में निसृत होना है। ध्वनि प्रदूषण कुछ ही मिनटों में मनुष्य को मानसिक थकान की ओर ले जाता है और मानसिक थकान के बाद मनुष्य किसी काम का नहीं रह जाता क्योंकि शारीरिक सभी प्रक्रियाएं मस्तिष्क द्वारा ही संचालित होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वनि प्रदूषण वायू प्रदूषण से अधिक घातक है। सन् 1975 में राय ने कहा कि अनिश्चित ध्वनि जो मानवीय सुविधा, स्वास्थ्य एवं गतिशीलता में व्यवधान उत्पन्न करती है उसे ध्वनि प्रदूषण की संज्ञा प्रदान की जाती है। साइमन ने स्पष्ट किया कि अनुपयोगी ध्वनि ही ध्वनि प्रदूषण है। वास्तव में ध्वनि की तीव्रता–स्तर पर मानव की समस्त क्रियाओं में उत्पन्न व्यवधान की दशा को ध्वनि प्रदूषण कहा जा सकता है।

ध्वनि प्रदूषण के स्त्रोत

ध्वनि प्रदूषण मानव एवं प्राकृतिक जन्य दोनों स्रोतों से उत्पन्न होता है। प्राकृतिक घटनायें जैसेकि ज्वालामुखी का तीव्र विस्फोट, मेघ गर्जन, तीव्र पवन प्रवाह, जल वृष्टि, जल प्रपात, भू–स्खलन आदि द्वारा ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है। इसी प्रकार मानव की अन्याय क्रियायें ध्वनि प्रदूषण को उत्पन्न करती हैं। फलस्वरूप ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों को निम्नंकित दो वर्गो में विभाजित किया जाता है:

1. प्रकृतिजन्य ध्वनि प्रदूषण–स्रोत।
2. मानवजन्य प्रदूषण स्रोत।

1. प्रकृतिजन्य ध्वनि प्रदूषण

अन्य प्राकृतिक घटनायें भयंकर शोर उत्पन्न करती हैं। जब ज्वालामुखी का तीव्र विस्फोट होता है तब तीव्र आवाज बहुत दूर तक सुनाई पड़ती है। कभी–कभी इसकी तीव्र आवाज 400 कि0 मी0 से अधिक दूर तक पहुँच जाती है। ज्वालामुखी के निकट का क्षेत्र घन्टों तीव्र ध्वनियों से गुंजायमान रहता है। फलस्वरूप वहाँ के निवासियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मेघगर्जन भी ध्वनि प्रदूषण करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। मेघों में धनात्मक विद्युत आवेश तथा ऋणात्मक विद्युत आवेश केन्द्रों की स्थापना होती है। आँधी, तूफान आदि समय–समय पर आते रहते हैं। तीव्रगति से चलने वाली आँधी भयंकर शोर उत्पन्न करती है। वास्तव में वायुदाब प्रवणता के कारण पवन–प्रवाह होता है। इसके भयानक शोर से ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है। वर्षा भी ध्वनि प्रदूषण में योगदान देती है। वर्षा के समय उत्पन्न अन्यान्य आवाजों से असहनीय ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है।

जलप्रपात में ऊँचाई से गिरने वाला जल काफी दूर तक आवाज उत्पन्न करता है। वर्णित उपर्युक्त प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त अन्याय कारण हैं जिनसे लघु–स्तर पर ध्वनि प्रदूषण का उद्भव होता है। पक्षियों का कलरव, श्रृंगालों की आवाज, कुत्तों का भौंकना, बिल्लियों का रोना आदि अनेक करण हैं जिनसे लघु–स्तर पर ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है।

2. मानवजन्य ध्वनि प्रदूषण–स्रोत

वर्तमान भौतिक युग में मानव की आवश्यकतायें बहुत अधिक हो गई हैं। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह अन्यान्य क्रियाओं को करता है। अनेक क्रियायें अधिक ध्वनि उत्पन्न करने वाली होती हैं। इनमें ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है।

औद्योगीकरण की प्रवृत्ति तीव्रगति से बढ़ रही है। अनेक छोटे–बड़े उद्योगों की स्थापना हो रही है। कल–कारखानों में चलने वाली दैत्याकार मशीनों की रातदिन गड़गड़ाहट से ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है। औद्योगिक क्षेत्रों में शोर की मात्रा 90 डेसीबल (dB) तक पहुँच जाती है। यह व्यक्ति को बहरा बनाने में सक्षम है। नगरी क्षेत्र इससे अत्यधिक प्रभावित है। मुम्बई में 85 dB, दिल्ली में 89 dB, कोलकाता में 87 dB, चेन्नई में 89 dB, कानपुर में 120 dB आदि ध्वनि का मापन किया गया है जो सामान्य (75 dB) से बहुत अधिक है।

देश के सभी औद्योगिक क्षेत्रों की स्थिति यही है। रेलगाड़ियाँ तथा मोटर वाहन भी ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। कोलकाता मुम्बई, दिल्ली आदि महानगरों में वाहनों के द्वारा अत्यधिक ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न किया जाता है। वायुयान, मिसाइल आदि से 90 डेसीबल से अधिक ध्वनि उत्पन्न होती है। विलासितापूर्ण साधनों–रेडियो, टेलीविजन, वीडियो आदि से ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है। मनुष्य विलासिता की वस्तुओं का अधिक से अधिक प्रयोग कर रहा है। फलस्वरूप ध्वनि प्रदूषण निरन्तर बढ़ रहा है।

सामाजिक–सांस्कृतिक कार्यों में लाउडस्पीकर का प्रयोग ध्वनि प्रदूषण को जन्म देता है। मन्दिरों–मस्जिदों एवं गुरुद्वारों, पूजोत्सव, विवाहादि संस्कारों के समय में लाउडस्पीकर अथवा तीव्र ध्वनि विस्तारक यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि प्रदूषण की वृद्धि करने में ये कारक सक्षम हैं। सोक्लीन के एक अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि हमारे देश में ध्वनि प्रदूषण के मुख्य स्रोत शायद हमारे धार्मिक–सामाजिक समारोह हैं। ऐसा ही रूप हम लोगों द्वारा उन्हें प्रदान किया गया है। चुनाव प्रचार के समय ध्वनि विस्तारक यन्त्रों से जोर–शोर से प्रचार किया जाता था। ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता था। परन्तु चुनाव आयोग के अध्यक्ष श्री टी एन शेषन द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। फलस्वरूप यह माध्यम बहुत कुछ नियन्त्रित है।

ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक–सामाजिक एवं आर्थिक मेलों, साप्ताहिक बाजारों आदि में अत्यधिक शोर उत्पन्न होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण के ये महत्वपूर्ण कारण है। मनुष्य विचार नहीं करता है उसकी अनेक सामाजिक क्रियायें ध्वनि प्रदूषण को उत्पन्न करती हैं जो स्वयं उसके लिए तथा उसके निकट के अन्य व्यक्तियों के लिए भी हानिकारक है। प्रारम्भ में ध्वनि प्रदूषण पर ध्यान नहीं दिया गया था। 1972 ई में सयुंक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में कहा गया था कि असहनीय ध्वनि भी प्रदूषण का एक रूप है। तभी से ध्वनि प्रदूषण पर लोगों का ध्यान केन्द्रित हुआ।

ध्वनि–स्तर पर मापन

ध्वनि की इकाई, प्रभाव आदि का अध्ययन करने वाले विज्ञान को ध्वनि विज्ञान अथवा श्रवण विज्ञान की संज्ञा प्रदान की जाती है। ध्वनि की मापन इकाई डेसीबल dB है। इसके द्वारा ध्वनि की तीव्रता का मापन किया जाता है। ध्वनि दाब की मापन इकाई वेटेड साउण्ड प्रेशर अथवा भारित ध्वनि दाब है। इसे dB (A) के रूप में व्यक्त किया जाता है। ध्वनि को निम्नांकित स्तरों में विभाजित किया जाता है।

ध्वनि के विभिन्न स्तर

ध्वनि स्तर	ध्वनि के मान
अत्यधिक कष्टपूर्ण	>120
कष्टपूर्ण	100 – 120

अधिक ध्वनि	75 – 100
सामान्य ध्वनि	50 – 75
शान्त	30 – 50
अत्यधिक शान्त	15 – 30
केवल सुनाई देने योग्य	< 15
कष्टहीन ध्वनि	
ग्रामीण क्षेत्र	25 – 35
उपनगरीय क्षेत्र	30 – 40
नगरीय आवासीय क्षेत्र	35 – 40
नगरीय, आवासीय तथा व्यवसायिक क्षेत्र	40 – 50
नगरीय क्षेत्र	45 – 50
औद्योगिक क्षेत्र	50 – 60

स्रोत विज्ञान प्रगति जून 2002, पृष्ठ 29.

ध्वनि उत्पादक स्रोत तथा उसके मान को भी निर्धारित किया गया है। इसे निम्नांकित रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

ध्वनि मान	ध्वनि स्रोत
190	ज्वालामुखी विस्फोट।
180	रॉकेट इंजन।
170	……
160	……
150	जेट प्लेन का उतरना।
140	……
130	असहनीय शोर।
120	जेट इंजन की आवाज।
110	फैक्टरी का बॉयलर।
100	स्वचालित वाहनों की भीड़ से उत्पन्न ध्वनि शेर की दहाड़।
90	जोर से चिल्लाना।
80	ट्रक आदि की आवाज।
70	टेलीविजन।
60	सामान्य बातचीत के समय की ध्वनि।
50	टाइपराइटर।
40	शान्त कार्यालय / कमरे की ध्वनि।
30	फुसफुसाहट।

20	अतिशान्त स्थान की ध्वनि।
10	पत्तियों की खड़खड़ाहट।
0	देहरी/द्वारा में प्रवेश करने की ध्वनि।

भारत में ध्वनि प्रदूषण प्रतिरूप

भारत में प्राकृतिक बनावट, जलवायविक दशायें, संसाधन–उपलब्धता, जनसंख्या आदि का समान वितरण नहीं है। फलस्वरूप नगरीकरण, औद्योगीकरण, यातायात–जाल आदि में विषमता विद्यमान है। यही कारण है कि ध्वनि प्रदूषण में क्षेत्रीय भिन्नता द्रष्टव्य है। ग्रामीण क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण दर कम तथा नगरीय क्षेत्रों में अधिक है। महानगरों तथा औद्योगिक नगरों में यह दर सामान्य (70 dB) से अधिक, नगरों एवं उपनगरों में 30 से 50 dB तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 25 से 30 dB है।

भारतीय मानक संस्थान द्वारा ध्वनि प्रदूषण का स्तर निर्धारित किया गया है। बाह्य तथा आन्तरिक क्षेत्रों की कष्टरहित ध्वनि के मान का निर्धारण इस संस्थान द्वारा किया गया है।

सारणी 3. भारतीय मानक संस्थान द्वारा निर्धारित ध्वनि–स्तर।

आवासीय क्षेत्र		भवन एवं कक्ष	
क्षेत्र	ध्वनि स्तर	क्षेत्र	ध्वनि स्तर
ग्रामीण	25–35	रेडियो टेलीविजन	25–30
उपनगरीय	30–40	संगीत कक्ष	30–35
नगरीय (आवासीय)	35–40	कक्ष कार्यालय	35–40
नगरीय (आवासीय तथा व्यापारिक)	40–50	कोर्ट–पुस्तकालय	40–45
नगरीय	45–50	कार्यालय बैंक तथा स्टोर	45–50
औद्योगिक क्षेत्र	0 –60	रेस्टोरेन्ट	50–50

स्रोत : आई एस आई प्रकाशन यू डी सी 535 : 83 : 7144 1969

सारणी 4. भारत के महानगरों के विभिन्न क्षेत्रों में ध्वनि–प्रदूषण–स्तर।

महानगर	औद्योगिक क्षेत्र		व्यापारिक क्षेत्र		आवासीय क्षेत्र		शान्त क्षेत्र	
	दिन	रात	दिन	रात	दिन	रात	दिन	रात
1. बैंगलूरु	78	53	76	57	67	60	67	–
2. मुम्बई	76	65	75	66	70	62	66	52
3. कोलकाता	78	57	82	75	79	65	79	65
4. चेन्नई	71	66	78	71	66	48	63	49
स्वीकृत मानक स्तर	**75**	**70**	**65**	**55**	**55**	**45**	**50**	**40**

स्रोत : डाउन टू अर्थ 1998, पृ 60

ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभाव

विश्व में बढ़ते शोर के प्रभाव को चार वर्गों में बांटा जा सकता है। 1. सामान्य प्रभाव 2. श्रवण स्तर का प्रभाव 3. मनोवैज्ञानिक प्रभाव 4. शारीरिक प्रभाव

1. सामान्य प्रभाव

शोर प्रदूषण के सामान्य प्रतिकूल प्रभावों में चिड़चिड़ापन, अनिद्रा तथा इससे सम्बन्धी अन्य प्रभाव तथा बोलने में आने वाले व्यवधान तथा सम्बन्धित समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है। विभिन्न परीक्षणों से पता चलता है कि 80 डेसिबल शोर के बीच कुछ समय रहने से सिर दर्द होने लगता है। शोर से मस्तिष्क में तनाव की उत्पति होती है तथा निरन्तर तनावग्रस्त रहने पर उच्च रक्त–चाप तथा हृदय रोगों की उत्पत्ति होती है।

2. श्रवण स्तर पर प्रभाव

उच्च शोर सामान्य ध्वनि के श्रवण तथा वार्तालाप की प्रक्रिया को बाधित करता है। श्रवण शक्ति कमजोर होती है तथा कभी–कभी ध्वनि इतनी उच्च होती है कि बहरापन भी आ जाता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण गर्भवती महिलाओं का गर्भस्थ शिशु जन्म से ही बहरा हो सकता है। 90 डेसिबल से अधिक शोर श्रवण शक्ति पर घातक प्रभाव डालता है। भारत में 10 प्रतिशत शहरी लोग तथा 7 प्रतिशत ग्रामीण लोग श्रवण विकारों से ग्रसित है।

3. मनोवैज्ञानिक प्रभाव

शोर मनुष्य के आचरण एवं मानसिक दशाओं पर बहुत जटिल तथा बहुमुखी प्रभाव डालता है। दैनिक जीवन में अवांछित शोर सामाजिक तनाव, खीझ, झंझलाहट, चिड़चिड़ापन, मानसिक अस्थिरता, कुण्ठा, थकान तथा पागलपन इत्यादि दोषों का कारण माना जाता है। ध्वनि प्रदूषण से मस्तिष्क की रक्त वाहनियाँ फैल जाती है, जिससे तीव्र सिर दर्द रहने लगता है। दीर्घ अवधि तक ध्वनि प्रदूषण में रहने के कारण लोगों में न्यूरोटिक मेण्टल डिसॉर्डर हो जाता है। शोर के वातावरण में जन्म लेने वाले शिशुओं के स्नायु तन्त्रों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

4. शारीरिक प्रभाव

शोर प्रदूषण का प्रभाव मानव को शारीरिक कार्यक्षमता पर भी पड़ता है, इससे प्रभावित लोगों में घबराहट, हृदय रोग, रक्तचाप, दुष्चिन्ता, उद्वेग तथा चिड़चिड़ापन एवं अन्य सम्बन्धित घातक बीमारियाँ हो जाती है। शोर–शराबे के कारण 60 प्रतिशत बच्चे पढ़ाई में ध्यान नहीं दे पाते तथा 40 प्रतिशत बहरेपन के शिकार हो जाते हैं। शोर से मस्तिष्क में तनाव उत्पन्न होता है एवं ये तनाव निरन्तर रहने पर उच्च रक्त चाप तथ हृदय रोगों को जन्म देता है। 50 डेसिबल शोर त्वचा को नष्ट करने लगता है तथा 180 से 200 डेसिबल शोर में रहने पर व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है। 120 डेसिबल से अधिक शोर गर्भस्थ शिशु को नेत्रहीन बना सकता है। अचानक विस्फोट सुनने पर या अधिक शोर के वातावरण में गर्भवती महिला का गर्भ गिर भी सकता है। भारत के प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के ध्वनि प्रदूषण के कई उदाहरण मिलते हैं। हनुमान जी की गर्जना इतनी तीव्र थी कि लंका में राक्षसियों के गर्भ तक गिर गये थे–

चलत महायुनि गर्जेसि भारी।
गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी।।

शोर एक धीमें विष की भाँति मानव शरीर को प्रभावित करता है ध्वनि प्रदूषण से शरीर में विभिन्न रोगों से लड़ने की शक्ति भी कम हो जाती है।

शोर प्रदूषण का नियन्त्रण

हमारे जीवन में शोर प्रदूषण इस सीमा तक व्याप्त हो जाता है कि उसे पूर्ण रूप से दूर कर पाना कठिन कार्य होगा, किन्तु प्रभावी नियन्त्रण लगाकर उसकी तीव्रता को कम किया जा सकता है। इसके लिए कुछ साधारण उपाय, कुछ तकनीकों में परिवर्तन तथा कुछ सामान्य व्यवहार में परिवर्तन किया जाना आवश्यक है।

1. ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव व्यक्ति तथा समाज पर पड़ता है। फलस्वरूप समाज के प्रत्येक सदस्य में नैतिक बोध की भावना का संचार होना आवश्यक है। राज्यों, केन्द्र सरकार तथा स्वयंसेवी संस्थाओं को सहयोग देकर इस प्रदूषण को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

2. वैज्ञानिकों को ऐसे यन्त्रों का विकास करना चाहिए जो मशीनों से निकलने वाली ध्वनियों को या तो समाप्त कर दें अथवा कम कर दें। इस दिशा में अनेक ध्वनिरोधी यंत्रों का आविष्कार किया जा चुका है परन्तु वे पर्याप्त नहीं हैं।

3. नगरीय क्षेत्रों में निर्माण किए जाने वाले भवनों में ध्वनिरोधक कक्षों का निर्माण कर ध्वनि प्रदूषण से सुरक्षा की जा सकती है।

4. हरे पौधे ध्वनि के प्रभाव को कम कर देते हैं। रोबिनेट ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि अधिक तीव्रता की ध्वनि तरंगों को हरे पौधे कम कर देते हैं। फलस्वरूप वृहत्–स्तर पर हरे पौधों को लगाकर ध्वनि प्रदूषण कम किया जा सकता है।

5. वृक्षारोपण के माध्यम से परिवहन साधनों से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को कम किया जा सकता है। सड़कों के दोनों और काफी चौड़ाई में पौधों को लगाया जाय तो पौधे तीव्र ध्वनि को कम करने के साथ–साथ ध्वनि को ऊपर वायुमण्डल में उठा देते हैं।

6. औद्योगिक इकाइयां अथवा कल–कारखानों से अत्यधिक ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है। अनेक अध्ययनों में स्पष्ट किया गया है कि औद्योगिक क्षेत्रों में ध्वनि स्तर 90 डेसीबल से अधिक होता है। नागरिकों को इस प्रदूषण से सुरक्षित रखने के लिए औद्योगिक इकाइयों को आवासीय क्षेत्र से दूर स्थापित करना आवश्यक है।

7. बिगड़ी हुई अथवा खराब मोटर गाड़ियों, तीव्र ध्वनि उत्पन्न करने वाले हार्न पर परिवहन विभाग द्वारा प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। साथ–ही–साथ बाईपास मार्ग द्वारा वाहनों को मुख्य नगर से दूर जाने की व्यवस्था सरकार द्वारा करना आवश्यक है।

8. वर्तमान समय में अनेक अनावश्यक क्रियायें संस्कृति का अभिन्न अंग बन चुकी हैं। उत्सवों, त्यौहारों तथा अन्याय अवसरों पर तीव्र ध्वनि विस्तारक यन्त्र, आतिशबाजी, पटाखों आदि का प्रयोग किया जाता है। इसे प्रत्येक नागरिक को संस्कृति से पृथक समझना तथा इनसे उत्पन्न हानियों पर विचार आवश्यक है।

9. प्रेक्षागृहों, नृत्यशालाओं, छविगृहों, सामुदायिक सभागारों, मन्दिर–मस्जिद एवं गिरजाघरों तथा सामाजिक–आर्थिक प्रतिष्ठानों में लगने वाले तीव्र ध्वनि विस्तारक यंत्रों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।

10. ध्वनि प्रदूषण से व्यक्ति को स्वयं को सुरक्षित रखना चाहिए। कर्णप्लग, कान का दस्ताना, ध्वनि हेलमेट आदि का प्रयोग तीव्र ध्वनि वाले क्षेत्रों में करना नितान्त आवश्यक है।

11. वाहनों में प्रायः घटिया किस्म का ईंधन प्रयोग किया जाता है। इससे अनावश्यक ध्वनि उत्पन्न होती है। फलस्वरूप वाहनों में घटिया किस्म के ईंधन का प्रयोग न किया जाए।

12. रेल का हॉर्न एवं ईंजन की आवाज भी नियन्त्रित होनी चाहिए। बैलास्ट विहीन रेल पथों का निर्माण करना आवश्यक है।

13. जेट यानों के शोर को कम करने के लिए टर्बोजेट ईंजनों के निर्गम पर शोर अवशोषक का प्रयोग किया जाता है।

14. विभिन्न देशों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जाने चाहिए। सरकार को जल तथा वायु प्रदूषण के समान शोर प्रदूषण नियन्त्रण के लिए भी उपयुक्त विधान बनाने तथा जन चेतना जगाने के प्रयास करने चाहिए। इस दिशा में भारतीय मोटर वाहन अधिनियम 1988 महत्वपूर्ण है। यह 1 जुलाई, 1989 को प्रभावी हुआ।

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त मन्त्र तथा संगीत भी इसके दुष्परिणाम को कम करते हैं। ज्यूरिख के डॉ हंस जेनों ने ध्वनि तरंगें किस प्रकार पदार्थ को परिवर्तित करती हैं का अध्ययन किया है। इसे 'सिमेटिक्स' कहते हैं। उन्होंने इस बात की खोज की है कि ओम जैसे मन्त्रों का बार–बार जप करने से किस प्रकार व्यक्ति का तनाव शिथिल होता है तथा वह विश्रान्ति एवं आनन्द की अनुभूति करता है। शान्तिकुन्ज हरिद्वार के 'ब्रह्मवर्षस' नामक शोध संस्थान में गायत्री मन्त्र की शक्ति के अनेक परीक्षण किये गये हैं। संगीत भी ध्वनि के घातक प्रभावों को मिटाता है। संगीत की ध्वनि में लय और तालमेल होता है, जिससे हमें आनन्द की अनुभूति होती है।

ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम के लिए जन–जागृति लाना सबसे आवश्यक है। समाज को यह पढ़ाना व समझाना होगा कि इस प्रदूषण में आने वाली पीढ़ी किसी काम की न रहेगी। दुख का विषय यह है कि हमारे सरकार द्वारा आकाशवाणी व विशेषकर दूरदर्शन पर जितनी सजगता वायु प्रदूषण के लिए दिखाई जाती है उतनी ध्वनि प्रदूषण के लिए नहीं। जबकि वर्तमान समय में ध्वनि प्रदूषण की ओर अधिक ध्यान देने को आवश्यकता है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क के रोगों से है। अतः आकाशवाणी तथा दूरदर्शन जैसे महत्त्वपूर्ण तथा सशक्त संचार माध्यमों द्वारा समय–समय पर ध्वनि प्रदूषण पर विचारगोष्ठी एवं वर्कशाप आयोजित करना चाहिए। चूँकि ध्वनि प्रदूषण से शहरी जनता अधिक प्रभावित है अतः इसके रोकथाम का प्रशिक्षण शहरी स्तर तक करने से ही अच्छे परिणाम सामने आएँगे। सरकार द्वारा अवांछित ध्वनियों पर रोक लगानी चाहिए। लोगों को प्रशिक्षित कर इन बातों को लागू करना चाहिए। अगर इसके परिणाम अच्छे न हों तो संविधान बनाकर उन नियमों का कड़ाई से पालन करवाना प्रशासन का कर्तव्य है।

भारत में प्रदूषण समस्या के निवारण में कार्यरत विभिन्न संस्थान

भारत में अनेकों अनुसंधान केन्द्र एवं संस्थान प्रदूषण समस्याओं का अध्ययन कर रहे हैं और नियन्त्रण के उपायों का पता लगा रहे हैं। उनमें से कुछ मुख्य संस्थान निम्नलिखित हैं:

1. राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिक शोध संस्थान, नागपुर।
2. केन्द्रीय और राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड क्रमशः दिल्ली और राज्यों में।
3. औद्योगिक विषाक्तता अनुसन्धान केन्द्र, लखनऊ।
4. केन्द्रीय श्रमिक संस्थान, मुंबई।
5. स्वास्थ्य मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
6. भाभा परमाणु शोध केन्द्र–ट्राम्बे।

भारत में ध्वनि प्रदूषण नियन्त्रण के विविध प्रावधान

1. भारतीय दण्ड संहिता

1. धारा 268 – यह धारा बताती है कि लोक उपताप क्या है। उपताप वास्तव में ऐसे दुष्टता पूर्ण कार्यो को कहते हैं जिससे किसी को असुविधा हो, शान्तिभंग हो, क्रोध आये, चोट लगे या खतरा हो। उप का अर्थ है –छोटा या कम, ताप का अर्थ है – गरम यानि क्रोध अर्थात् वे कार्य जिससे थोड़ा क्रोध आये। अतः उपताप में ध्वनि प्रदूषण के अलावा भी बहुत से कृत्य शामिल हैं।

2. धारा 290 – इसमें उपताप के लिए दण्ड की सीमा निर्धारित की गई है परन्तु यह कठोर नहीं है। इस धारा के अनुसार कष्टप्रद ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले को 200 रुपये का दण्ड दिया जा सकता है। ध्वनि प्रदूषण स्वास्थ्य और संस्कृति के लिए अत्यन्त हानिकारक है फलस्वरूप अधिक कठोर कानून की आवश्यकता है। भारतीय मानक संस्थान के द्वारा निर्धारित अधिकतम ध्वनि की सीमा 80 डेसीबल से अधिक ध्वनि उत्पन्न करने वाले यन्त्रों, मोटर वाहनों आदि के उत्पादन पर कानून द्वारा प्रतिबन्ध लगाना नितान्त आवश्यक है।

3. धारा 291– इसमें मनाही के बावजूद उपताप जारी रखने पर दण्ड की सीमा का निर्धारण है।

4. वाहन अधिनियम 1988– गाड़ी के हार्न और ध्वनिशामक का सही हालत में न होना और बी0 आई0 एस0 के मानकों से अधिक ध्वनि करना अपत्तिजनक और दण्डनीय अपराध है।

5. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986– ध्वनि प्रदूषण पर सरकार को नियन्त्रण की शक्ति प्रदान की गई है तथा ध्वनि प्रदूषण एक दण्डनीय अपराध बनाया गया है। पर्यावरण संरक्षण कानून के अनुच्छेद 6 (2.6) के अन्तर्गत शोर के नियन्त्रण हेतु नियम बनाये गए हैं। इस कानून के अनुसार शोर मचाना एक जुर्म है। तभी तो वाहनों को बिना साइलैन्सर के चलाने से पुलित चालान कर सकती है।

भारत में दीपावली बड़े हर्ष के साथ मनाई जाती है। दीपावली प्रकाश का त्यौहार है। इस दिन सभी लोग आतिशबाजी का आनन्द लेते हैं। दुर्घटनाओं के अलावा इस दिन विभिन्न पटाखों की आवाज पर्यावरण (सरंक्षण) (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1999 द्वारा घोषित मानक स्तर 125 डेसीबल से अधिक होती है।

दीपावली के दिन होने वाला ध्वनि प्रदूषण चिन्ता का विषय है। शोधकर्ताओं द्वारा किए गए अध्ययन से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि प्रदूषण का स्तर अधिक है। पटाखे बनाने वाली कम्पनियों को कम आवाज करने वाले पटाखे बनाने के निर्देश दिए गए हैं और पटाखों से होने वाले ध्वनि प्रदूषण का स्तर उन पर अंकित करने की सलाह दी गई है।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली की रिपोर्ट के अनुसार अधिकतर पटाखे मानक स्तर से अधिक शोर करते हैं। ध्वनि प्रदूषण की जाँच और पटाखे बनाने वाली कम्पनियों को निर्देश देने के अलावा आवश्यक है कि लोगों को ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभाव से अवगत कराया जाय। इस सम्बन्ध में रेडियो, टेलीविजन और अखबारों द्वारा दी गई जानकारी महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

1998 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार केन्द्र सरकार राज्य सरकारों और केन्द्रशासित प्रदेशों को पर्यावरण (सरंक्षण) अधिनियम, 1986 के अनुसार निर्देश दिए गए हैं कि–

1. 125 डेसीबल से अधिक शोर वाले पटाखे बनाने वाली कम्पनी को बन्द कर दिया जाए।
2. आतिशबाजी की अनुमति सायं 6 बजे से रात 10 बजे के बीच हो।
3. शान्त क्षेत्रों में आतिशबाजी बिल्कुल न हो। 'शान्त क्षेत्र अस्पताल, शिक्षण संस्थान, न्यायालय, धार्मिक स्थल व अन्य घोषित क्षेत्र और उसके आसपास 100 मीटर का क्षेत्र है।'

4. शिक्षण संस्थानों के प्राचार्य और अध्यापक विद्यार्थियों को पटाखों और ध्वनि के हानिकारक प्रभावों से अवगत कराएँ।

इतना ही नहीं, विभिन्न न्यायालयों में भी ध्वनि प्रदूषण के बारे में फैसले हुए हैं। चर्च ऑफ गाड इन इंडिया बनाम बी के के आर मैजेस्टिक कालोनी वेलफेयर एसोसिएशन (2000) वाद में उच्चतम न्यायालय ने धार्मिक स्थलों पर ध्वनि प्रदूषण यन्त्रों के प्रयोग पर कतिपय प्रतिबन्ध लगाते हुए निर्देश जारी किए हैं। न्यायाधीश एम बी शाह तथा न्यायाधीश एम एन फुकन की खंडपीठ ने निर्णय देते हुए उद्घोषित किया कि "कोई भी धर्म यह नहीं कहता कि ईश्वर की प्रार्थना अन्य व्यक्तियों की शान्ति भंग करके की जाये अथवा प्रार्थना में लाउडस्पीकरों, एम्पलीफायरों या ढोल, नगाड़ों का प्रयोग किया जाए। धर्म के नाम पर ध्वनि प्रदूषण की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि किसी धर्म में ऐसी परिपाटी है तो भी उसका प्रयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का हनन न हो। न्यायालय ने अपने निर्णय में ध्वनि प्रदूषण विनिमय और नियन्त्रण नियम 2000 का उल्लेख करते हुए ध्वनि प्रदूषण सम्बन्धित नियमों को सम्मिलित किया है। उच्चतम न्यायालय ने माना कि सभ्य समाज में किसी भी व्यक्ति को कोई भी निरपेक्ष अधिकार नहीं दिया जा सकता। कोई भी व्यक्ति दूसरे के अधिकार का उल्लंघन कर अपने अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता। दोनों के मध्य संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। देशकाल और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह एक सामयिक एवं सार्थक निर्णय है। इससे ध्वनि प्रदूषण के निराकरण में मदद मिलेगी।

ध्वनि प्रदूषण पर वैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं

मानव शरीर पर ध्वनि प्रदूषण से होने वाले कुप्रभावों के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के अध्ययन भी रोचक है। डॉ बिप्रश के अनुसार "ध्वनि प्रदूषण के रूप में शोर आदमी को असमय ही वृद्ध बना देता है। प्रायः रात्रि क्लबों में जाने वाले व्यक्तियों की श्रवणशक्ति क्षीण हो जाती है। ऐसे क्षेत्रों में विद्यार्थियों में चिड़चिड़ापन, सिरदर्द अध्ययन–विमुखता तथा स्मृति–क्षीणता की आम शिकायतें होती हैं।"

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो एन जोन्स ने 225 लाख से अधिक शिशुओं के परीक्षण के बाद स्पष्ट किया कि शान्त वातावरण में रहने वाली महिलाओं की तुलना में शोरगुल में रहने वाली महिलाओं के शिशुओं में जन्मजात विकृतियाँ अधिक होती हैं। भारत में वैदिक, पुराण, महाभारत रामायण आदि कालों में शान्त वातावरण को ज्ञान प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त माना गया है।

श्रवण विज्ञानी राबर्ट ब्राउन ने लन्दन के हवाई अड्डे के सम्बन्ध में ध्वनि प्रदूषण का अध्ययन करके पाया कि हवाई अड्डे के आस–पास रहने वालों में मानसिक बीमारियों के लक्षण अन्य क्षेत्रों के मुकाबले में ज्यादा होते हैं। मानव निर्मित सुपरसोनिक विमानों की ध्वनि लगभग 100 से 150 डेसीबल तक होती है, जो निश्चित ही हानिकारक है। एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक के अनुसार, पेरिस में मानसिक तनाव के 70 प्रतिशत मामलों का कारण हवाई अड्डों का शोर था।

अखिल भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान और केन्द्र सरकार के पर्यावरण विभाग ने हाल ही में ध्वनि प्रदूषण पर सर्वेक्षण किया है। दिल्ली वासियों से जब ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव के बारे में पूछा गया तो 87 प्रतिशत व्यक्तियों ने उत्तर दिया कि शोर ने उन्हें दुखी कर रखा है। 90 प्रतिशत व्यक्ति वाहनों की गड़गड़ाहट से परेशान थे। शोर से सम्बन्धित एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार गाँवो की अपेक्षा दिल्ली में शोर से होने वाले बहरेपन के मामले ज्यादा पाए गए हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि ध्वनि शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से व्यक्ति को प्रभावित करती है, रक्तचाप तथा हृदयगति को बढ़ाती है, जिसके परिणामस्वरूप तनाव, आलस्य, डर आदि पैदा होते हैं।

डगलस स्थित अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन की वाक् शाखा के निदेशक डॉ ग्लोरिग का मानना है कि सम्पूर्ण पृथ्वी शोर से ग्रसित है और इसका प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। विकसित देशों में बहरापन बढ़ने का मुख्य कारण शोर है और इसका प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

मनोविज्ञानवेत्ता और श्रवणविज्ञानी डॉ सूर्यकान्त मिश्र ने औद्योगिक क्षेत्रों, रेलवे कालोनियों एवं शोर–शराबे वाले क्षेत्रों के पाँच से दस वर्ष की आयु समूह के छात्रों का विविध प्रकार से निरीक्षण किया एवं यह निष्कर्ष निकाला कि ध्वनि विस्तारक यन्त्रों पर रिकार्डिंग के शोर तथा रेलगाड़ी की गड़गड़ाहट के कारण 60 प्रतिशत छात्र अपनी कक्षा में ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते हैं।

मुम्बई के वैज्ञानिक डॉ वाई टी ओकेका के अनुसार "शोर अत्यधिक शारीरिक, मानसिक और अव्यावहारिक गड़बड़ी पैदा करता है। 88 डेसीबल से अधिक का शोर व्यक्ति को बहरा बना सकता है। उन्होंने ध्वनि प्रदूषण के कारण मानसिक अस्थिरता तथा उच्च रक्तचाप जैसे रोग भी कई रोगियों में देखे।

न्यूयार्क के माउंट सिताई अस्पताल के डॉ सेमुअन रोनजन के अनुसार शोर आदमी में मानसिक तनाव उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप मनुष्य उतेजना, उच्च रक्तचाप और हृदय रोग से ग्रसित हो जाता है।

सूडान की एक जनजाति मबान है। यह जाति अत्यन्त ही शान्त वातावरण में रहती है। ये लोग किसी भी प्रकार के रक्तचाप व हृदय बीमारी से ग्रसित नहीं होते हैं। जब से ये अधिक शोरवाले क्षेत्रों में आवास करने लगे हैं तब से इनमें कई रोग उत्पन्न होने लगे हैं। यह प्रमाण इस बात को सिद्ध करता है कि अधिक शोर मनुष्य में कई बीमारियाँ उत्पन्न करता है।

जर्मनी के प्रोफेसर जार्ज शिमटे ने शोर को धीमी गति वाले मृत्युदूत की संज्ञा देते हुए कहा है कि असामयिक मौतों के 50 प्रतिशत मामलों में शोर की भूमिका होती है। नोबेल पुरस्कार विजेता राबर्ट कोचीन ने सन् 1910 में ध्वनि प्रदूषण के खतरनाक पहलुओं की तरफ मानव जाति का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा था कि,"एक दिन आयेगा, जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बड़े शत्रु के रूप में शोर से संघर्ष करना पड़ेगा।" अब वह दिन बिल्कुल नजदीक आ गया है।

जीवन शैली को रंगीन बनाते आधुनिक सुख–साधनों के कारण प्रकृति के बेरंग होने से पृथ्वी पर मानव जाति के अस्तित्व को खतरा हो गया है। बढ़ते शोर के परिणाम बड़े ही गुपचुप तरीके से घातक होते जा रहे हैं। जर्मन वैज्ञानिक राबर्ट कोच के शब्दों में 'यदि इसी गति से शोर बढ़ता रहा तो एक दिन शोर के खिलाफ भी कालरा, चेचक या प्लेग सरीखी लड़ाई लड़नी होगी। प्रख्यात अमरीकी वैज्ञानिक डॉ एडवर्ड सीह्यु के अनुसार शोर दीर्घकाल तक बने रहने वाले गम्भीर मानसिक रोग उपजाता है और कई मामलों में हिंसा को भी।

प्रदूषण का प्रकार चाहे जो भी हो उसके प्रभाव मानव व्यवहार पर सदैव नकारात्मक तथा घातक ही होते हैं। बलुम 1967 व एजरिन 1958 ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि तीव्र शोरगुल व्यक्ति में प्रतिबल उत्पन्न करता है। ग्लास एवं सिंगर 1972 के अनुसार अधिक शोरगुल वाले वातावरण में लगातार रहने पर व्यक्ति को सुनने की क्षमता प्रभावित होती है। कोहन ने अपने विस्तृत अध्ययनों में पाया कि कोलाहल से व्यक्ति के अवधान में क्षति होती है।

ग्रीन के अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि शोरगुल वाले वातावरण में व्यक्ति में आक्रामकता की प्रवृति बढ़ जाती है। जब व्यक्ति के आसपास के वातावरण में शोरगुल की मात्रा अधिक होती है तो थोड़ा सा भी उत्तेजित होने पर वह आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है। प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि अत्यधिक शोरगुल व्यक्ति में अतिरिक्त उद्वेलन उत्पन्न करता है जिससे क्रोध उत्पन्न होता है तथा यह क्रोध ही आक्रामकता में परिवर्तित हो जाता है।

शोरगुल व्यक्ति के कार्य–निष्पादन में बाधा पहुँचाता है। पेज ने 1977 में अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि रक्तचाप, पक्षाघात और मानसिक रोगों का घटनाक्रम उन लोगों में अपेक्षाकृत अधिक होता है जो अनियन्त्रित व अप्रत्याशित शोरगुल वाले क्षेत्रों में रहते है। वातावरण में शोरगुल अधिक होने पर व्यक्ति अपने आस–पास की परिस्थितियों में सरलता से समायोजन नहीं कर सकता। जैसे–जैसे कोलाहल की तीव्रता बढ़ती जाती है, व्यक्ति का समायोजन बिगड़ता जाता है। 1975 के मैथ्यूज के अध्ययन के अनुसार शोरगुल वाले वातावरण में व्यक्ति के परोपकारी व्यवहार में कमी आ जाती है अर्थात् दूसरों की सहायता करने को तत्पर नहीं होता।

पर्यावरण मानव के व्यवहार पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता है। पर्यावरण में व्याप्त प्रदूषण इस प्रभाव को नकारात्मक बना देता है। ध्वनि प्रदूषण आक्रामक व्यवहार का प्रमुख निर्धारक माना जाता है। वेबस्टर के शब्दों में पर्यावरण प्राणी के जीवन को हर प्रकार से प्रभावित करता है।

औद्योगीकरण व नगरीकरण के साथ–साथ सुख–सुविधाओं के अनेक साधन हमारे पर्यावरण में कोलाहल के प्रमुख कारण है। इसके परिणामस्वरूप मानव की श्रवण शक्ति प्रभावित हो रही है, जीवन में शान्ति भंग हो रही है, तनाव में वृद्धि हो रही है तथा तनाव में यह वृद्धि मानव के व्यवहार को आक्रामक बना रही है।

निःसन्देह हम मशीनी युग से वापस नहीं लौट सकते क्योंकि मशीनें (घरेलू उपकरण, वाहन आदि) हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गई हैं, किन्तु मानवता और मानव मूल्यों की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। विज्ञान और प्रकृति के बीच सन्तुलन बनाने की आवश्यकता है।

विडम्बना यह है कि हम और हमारा समाज किसी खतरे के दुष्परिणाम सामने न आने तक उस विषय को गम्भीरता से नहीं लेते। ध्वनि प्रदूषण के साथ भी ऐसा हो रहा है। ध्वनि प्रदूषण एक मीठा व धीमा जहर है। इसके पहले कि इस मीठे और धीमे जहर के लाइलाज लक्षण हमारी पीढ़ी पर लक्षित हों, हमें इसका निवारण करना चाहिए।

संदर्भ

1. डॉ आर के गुर्जर एव डॉ बी सी जाट, पर्यावरण भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर (2001).
2. डॉ जगदीश सिंह पर्यावरण एवं संविकास, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली (2001).
3. श्री आर सी चाँदना, पर्यावरण शिक्षा की रूपरेखा, कल्याणी पब्लिशर्स (2000).
4. डॉ गायत्रो प्रसाद एवं डॉ राजेश नौटियाल, पर्यावरण अध्ययन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद (2006).
5. श्री अमित कुमार, पर्यावरण अध्ययन, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली (2006).
6. श्री दुर्गश त्रिपाठी, पर्यावरण आपदा प्रबन्धन एवम् मीडिया सनराइज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008.
7. श्री जी पी सती, पर्यावरण और प्रदूषण, प्वांटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000.
8. डॉ दीप्ति शर्मा एवं डॉ महेन्द्र कुमार, पर्यावरण एवं संविकास अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009.
9. डॉ वन्दना द्विवेदी, लेख पर्यावरण प्रदूषण और आक्रामकता एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन, नई सहस्त्राब्दी का पर्यावरण चिन्तन, चुनौतियाँ और समाधान – सम्पादक डॉ वीरन्द्र सिंह यादव, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010.

विस्फोटक सुरक्षा–एक अवलोकन

आर के खांडेकर
गुणवत्ता आश्वासन निदेशालय, (सै वि), खड़की, पुणे, महाराष्ट्र

प्रस्तावना

नाइट्रिक एस्टर वर्ग उर्जस्वी पदार्थ, जैसे एन जी, एन सी, पी ई टी एन, आदि एकाधार, द्वि–आधार, त्रि–आधार नोदक एवं नोदक संघटन में इस्तेमाल किए जाते हैं। सैन्य तथा असैन्य क्षेत्रों में यहीं पारंपारिक नोदक उपयोग में लाए जाते हैं। असैन्य विस्फोटकों में नायट्रोग्लिसरीन, पी ई टी एन, कॉर्ड के रूप में इस्तेमाल करते हैं। एन जी युक्त संघटन अत्यंत संवेदनशील होने के कारण उनके उत्पादन, प्रक्रमण, यातायात, भंडारण, हस्तांतरण एवं परीक्षण में अत्याधिक सावधानी बरतनी पड़ती हैं। अनुसंधान कार्य द्वारा एन जी की जगह आर डी एक्स एवं एच एम एक्स जैसे उच्च ऊर्जस्वी पदार्थों का उपयोग सेल्युलोज अँसिटेट बंधक के साथ करने से संघटन की संवेदन क्षमता घटाने में उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। ऐसे कम संवेदनशील विस्फोटकों का उत्पादन, प्रक्रमण, यातायात, भंडारण, हस्तांतरण एवं परीक्षण आदि में सुरक्षा हेतु आसानी साबित हुई हैं। कम संवेदनशील विस्फोटको में आर डी एक्स एवं एच एम एक्स जैसे उच्च उर्जस्वी पदार्थों का उपयोग करते समय सुरक्षा के तहत जो सावधानी बरतना जरूरी है, प्रस्तुत लेख में उनका विचार किया गया हैं।

पारंपारिक विस्फोटक वर्गीकरण निम्न प्रकार से है–

(अ) यांत्रिकी विस्फोटक,

(ब) अणु विस्फोटक

(स) रासायनिक विस्फोटक। रासायनिक विस्फोटक दो प्रकार से जाने जाते हैं जैसे,

(अ) उच्च ऊर्जा विस्फोटक

(ब) मंद ऊर्जा विस्फोटक

उच्च ऊर्जा विस्फोटको में प्रारंभिक विस्फोटक जैसे LA, LS, MX आदि एवं डिटोनेटर के रूप में तथा सेकंडरी विस्फोटक जैसे RDX, HMX, TNT, CE PETN, NC, NG आदि शामिल हैं। सभी पारंपारिक नोदक मंद–विस्फोटक श्रेणी में संमिलित किए गये हैं। इनका उपयोग तोप नोदकों में (GUNAMMN), लघुशस्त्र नोदकों में या घन रॉकेट नोदकों में प्रायः किया जाता हैं। नोदक संघटन ज्वलन पश्चात अपनी स्थिर ऊर्जा गतीज ऊर्जा में परावर्तित कर उच्च वायु दबाव निर्माण कर प्राक्षेप्य को निर्धारित लक्ष्य पर फेंकने का कार्य करता हैं।

संवेदनशीलता परीक्षा पद्धति

उच्च ऊर्जा विस्फोटकों के उत्पादन पश्चात उनका निर्धारित संघटन बनाने से पूर्व संवेदन परीक्षा पद्धति से सुरक्षा जाँच करनी पड़ती हैं ।

(अ) आघात संवेदनशीलता परीक्षा पद्धति

ज्युलियस पीटर उपकरण द्वारा ऊर्जस्वी पदार्थ की संवेदनशीलता नापी जाती हैं। इसमें 20 mg विस्फोटक नमूना लेकर पूर्व–निर्धारित उँचाई पर से 2 kg वजन का उस पर आघात किया जाता हैं।

उँचाई और आघात वजन बदलकर कब विस्फोट हुआ और कब नहीं हुआ, इसका टेबल बनाकर पचास प्रतिशत विस्फोट उँचाई तय करके विस्फोटक असंवेदनशील अंक ज्ञात किया जाता हैं। इसे F of I (फिगर ऑफ इन्सेंटिविटी), असंवेदनक्षमता दर्शक आकड़ा के नाम से जाना जाता हैं।

(ब) घर्षण संवेदनशीलता परीक्षा पद्धति

नमुना विस्फोटक 10 mg मात्रा में लेकर उसे पोर्सेलिन प्लेट पर रखा जाता हैं। उपकरणिय भार विस्थापित करके घर्षण द्वारा विस्फोट किया जाता हैं। 36 kg वजन से शुरू करके निर्धारित कम से कम वजन जहाँ पाँच बार सलग विस्फोट नहीं हुआ, वह वजन जाना जाता हैं। विस्फोट होने का तथा नहीं होने का वजन, अंक विस्फोटक की घर्षण संवेदनशीलता निर्देशित करता हैं ।

आगवर्ग चिन्ह का प्रयोजन (Fire Hazard Symbols)

विस्फोटक हस्तान्तरण, भंडारण, एवं यातायात समय भंडारणकक्ष के संमुख आग वर्ग चिन्ह बड़े निर्धारित धातु बोर्ड पर लगाना सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक माना गया हैं। (1200 mm X 1200 mm) आगवर्ग चिन्ह आकृति परिशिष्ठ में देखें –

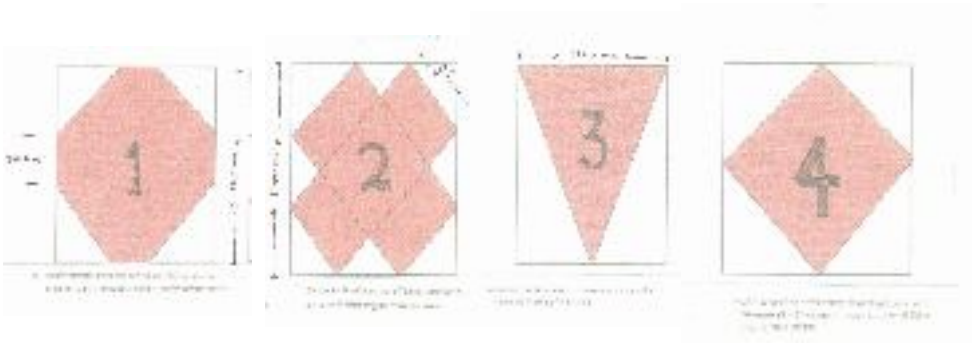

सुसंगतता विस्फोटक वर्ग (Explosive Compatibility Groups)

विस्फोटक पहचान, सुरक्षित रखरखाव, एवं सुरक्षित यातायात हेतु विस्फोटकों को 13 सुसंगतता विस्फोटक वर्गों में विभाजित किया गया हैं ।

A,B,C,D,E,F,G,H,J,K,L,N & S वर्गों में बाँटा गया हैं। विस्फोटक वर्गानुरूप अगर उन्हें भंडारित किया जाए तो सुरक्षित हैं किंतु यह वास्तव में संभव नही हैं, इसीलिए विस्फोटक भंडारण सुसंगतता वर्गानुरूप किया जाता हैं। गोला–बारूद और विस्फोटक साथ–साथ नहीं रखें जाते हैं। असंवेदनशील डिटोनेटिंग विस्फोटक सुसंगतता वर्ग N हैं एवं उसका संकट वर्ग 1.6 है। इन्हें आसानी से भंडारित कर सकते हैं।

अपशिष्ट निपटान

विस्फोटक उत्पादन पश्चात जब रासायनिक परीक्षा में अस्वीकृत किया जाता या परीक्षण पश्चात बचा हुआ पदार्थ का निपटान सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया हैं। रासायनिक विघटन प्रक्रिया में तापमान आधार मानकर भस्मिकरण प्रक्रिया महत्वपूर्ण मानी गयी हैं। अन्य प्रतिवेदित सुरक्षित निपटान विधि निम्न प्रकार के हैं– ज्वलन, भूमिगाड़न, समुद्र–पानी निवेश, रासायनिक निपटान, भस्मिकरण, जल–अपघटन, जैव निपटान, आदि।

एक विस्फोटक पदार्थ का दूसरे विस्फोटक एवं अविस्फोटक पदार्थ के साथ सुसंगतता परीक्षण (Compatibility Test)

रासायनिक विस्फोटक पदार्थ जब भी दूसरे विस्फोटक एवं अविस्फोटक पदार्थ के साथ आता है तो उनकी आपसी संगतता जानना जरूरी है। नोदकों के लिए लघुपात्र परीक्षा पद्धति (Small Vessel Test) तथा ऊर्जस्वी पदार्थों के लिए निर्वात स्थैर्य परीक्षा पद्धति (Vacuum Stability Test) के जरिये कमरे से अधिक निर्धारित तापमान के उपकरण में नमुना निर्धारित समयोपरांत रखकर पदार्थ के शुरू के वजन में पाई गयी घट (जो निष्कासित वायु के बराबर) जानकर सुसंगतता या असंगतता निर्धारित की जाती हैं ।

विस्फोटक संकट वर्ग (HAZARD DIVISION)

इन्हें छः वर्गों में बाँटा गया हैं। जिन्हें तालिका 1. में दिखाया गया है।

संकट वर्ग	संकट प्रकार	प्रमुख संकट
Hazard Div	**Hazard Type**	**Major Hazard**
1.1	एकत्रित विस्फोट	विस्फोट,उच्च गती प्राक्षेप्य निर्मिती, इमारत ध्वंस
1.2	प्राक्षेपि संकट	ज्वलन पश्चात विस्फोट
1.3	आग का खतरा	विस्फोट पश्चात आग लगना
1.4	खास खतरा नहीं	अधिकांश आग भी नहीं
1.5	असंवेदनशील किंतु	आग एवं विस्फोट संभव
1.6	अत्यंत असंवेदनशील	एकत्रित विस्फोट का खतरा नहीं

निष्कर्ष

पारंपरिक विस्फोटक अपनी अपनी विस्फोटन क्षमता में प्रबल हैं किंतु उनकी संवेदनशीलता के कारण सुरक्षा विषयक जांच जरूरी हैं। उच्च ऊर्जा पदार्थ अनुसंधान द्वारा लोवा (LOVA) जैसे तोप नोदक का उत्पादन सिद्ध हुआ है जिसमें संवेदनशील एनर्जी की जगह RDX जैसे ऊर्जस्वी घटक पदार्थ सेल्युलोज ऐसीटेट बंधक के कारण नोदक संघटन असंवेदनशील बनाना आसान हुआ हैं। इससे प्रत्यक्ष उत्पादन–विभाग एवं भंडारण की दूरी कम हो सकी तथा प्रत्यक्ष युद्ध क्षेत्र में अधिकाधिक आयुध ले जाना संभव हुआ हैं।

टी ए टी बी, फॉक्स–12, एल एल एम–105, टी इ एक्स, एन टी ओ जैसे उर्जस्वी असंवेदनशील विस्फोटकों का विकास एवं उपयुक्तता साबित हुई हैं। विस्फोटकों के आघात संवेदनशीलता पर चाप लगाया जा सकता हैं। इससे दुर्घटना टाली जाएगी और मनुष्य, वित्त एवं यांत्रिकी क्षति के आपत्ति से हम सुरक्षित रह सकेंगे, यह विश्वास मिला हैं।

संदर्भ

1. Hand Book of Explosives, By S Fordhan.
2. Chemistry of Explosives, By Jacqueline Akhavan.

रेडियोधर्मी तत्वों के विसंदूषण हेतु वर्तमान मानक चिकित्साएं एवं अनुसंधान

ध्रुव कुमार निषाद
नाभिकीय औषधि एवं सम्बद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली

परिचय

आज पूरे विश्व में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, खाद्य प्रसंस्करण एवं ऊर्जा उत्पादन जैसे क्षेत्रों में रेडियोधर्मी पदार्थों के उपयोग में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है, जोकि "शांति के लिए परमाणु" की अवधारणा का प्रसार कर रही है। इस प्रकार रेडियोधर्मी पदार्थों का बड़े पैमाने पर उपयोग जाने–अनजाने समस्त संसार को रेडियोधर्मी दुर्घटनाओं के प्रति अतिसंवेदनशील भी बना रहा है। दुर्घटनावश यदि ये रेडियोधर्मी पदार्थ मनुष्य के संपर्क में आ जाते हैं तो मानव शरीर को बाह्य एवं आन्तरिक रूप से संदूषित कर देते हैं और इनका शरीर में जमाव के घातक परिणाम भी हो सकते हैं। रेडियोधर्मी पदार्थ अल्फा, बीटा, तथा गामा विकिरण उत्सर्जित करतें है, जोकि शरीर की कोशिकाओं और महत्त्वपूर्ण अंगों को नुकसान पहुँचाती है। आयोनाइजिंग विकिरण के प्रभाव से कोशा मृत्यु, अपॉप्टोसिस, जीन उत्परिवर्तन तथा कैंसर जैसी समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। इस प्रकार से होने वाली क्षति आयोनाइजिंग विकिरण की ऊर्जा पर निर्भर करती है। रेडियोधर्मी तत्वों का अन्तर्ग्रहण अंतःश्वसन, अंतःक्षेपण, इन्जेशन, अथवा त्वचा द्वारा अवशोषण हो सकता है। अंतर्गृहीत रेडियोधर्मी तत्व अपने भौतिक एवं रासायनिक गुणों के आधार पर पूरे शरीर में वितरित हो जाते हैं।

गंतव्य अंगों में जमा रेडियाधर्मी पदार्थ द्वारा जनित विकिरण खुराक का निर्धारण करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक निम्नवत हैं।

- गंतव्य अंग में जमा रेडियोधर्मी पदार्थ की मात्रा।
- उत्सर्जित विकिरण का प्रकार एवं ऊर्जा।
- प्रतिधारण समय (प्रभावी अर्द्ध–आयु)।

नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र से निकले कचरे, नाभिकीय हथियार, रेडियोथेरेपी इकाइयां, प्रयोगशालाएं, खदानें, डर्टी बम, एवं रेडियोधर्मी पदार्थों के परिवहन के दौरान दुर्घटना रेडियोधर्मी संदूषण के संभावित स्रोत हैं। आये दिन घटित हो रही नाभिकीय दुर्घटनाओं (उदाहरणार्थ फुकुशिमा दुर्घटना) को ध्यान में रखते हुए रेडियोधर्मी संदूषण के उपचार हेतु नवीन एवं अनुसंधानित दवाओं व तरीकों को खोजे जाने की बहुत आवश्यकता है।

डीकार्पोरेशन उपचार

ऐलन एम हयूज के अनुसार "किसी भी कोशिका या ऊतक में जमा रेडियोधर्मी पदार्थ के निष्कासन अथवा निवारण को डीकार्पोरेशन कहते हैं।"

शरीर द्वारा अर्न्तग्रहण किये गये रेडियोधर्मी पदार्थों का अधिकांश प्रतिशत कुछ दिनों में स्वतः ही निष्कासित हो जाता है जबकि कुछ भाग अपने रसायनिक गुणों के आधार पर विभिन्न महत्त्वपूर्ण अंगों में अवशोषित होकर जमा हो जाता है। उदाहरणार्थ आयोडीन थायरॉइड ग्रंथि में एवं कैल्शियम व समान रसायनिक गुणों वाले अन्य तत्वों जैसे स्टॉन्शियम, बेरियम, व रेडियम हडडी में सगृहीत होते हैं।

रेडियोधर्मी पदार्थों को चीलेटिंग एजेन्ट या किसी अन्य रेडियो–भेषज दवाओं की सहायता से शरीर के बाहर निकालने की प्रक्रिया को डीकार्पोरेशन कहा जाता है। इस प्रक्रिया में चीलेटिंग एजेंट रेडियोधर्मी पदार्थ के साथ युग्मन करके उनका उत्सर्जन कर देते है और डीकार्पोरेशन औशधियॉ रेडियोधर्मी पदार्थों की उत्सर्जन दर को बढ़ा देती हैं तथा इस प्रकार शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों में उनके संग्रहण को रोकती हैं। विभिन्न रेडियोधर्मी दुर्घटनाओं के दौरान संदूषित व्यक्तियों, जिन्होने दुर्घटनावश रेडियोधर्मी पदार्थों का अर्न्तग्रहण कर लिया है, उनका उपचार डीकार्पोरेशन चिकित्सा द्वारा किया जाता है। कुछ रेडियोधर्मी पदार्थो के डीकार्पोरेशन में उचित उपचार विधियॉ मिलने वाली विकिरण खुराक को 2 से 10 गुना तक कम कर सकती हैं।

डीकार्पोरेशन उपचार प्रकिया एवं औषधियॉ निम्नलिखित सिद्धान्तों पर कार्य करती हैं:

1. रेडियोधर्मी तत्व के अर्न्तग्रहण में कमी
2. अवरोधन एवं तनूकरण
3. मोबिलाइजेशन
4. चीलेशन

रेडियोधर्मी तत्वों के अर्न्तग्रहण में कमी: रेडियोधर्मी तत्वों के अन्तर्ग्रहण को रोकने या अन्तर्ग्रहण में कमी लाने हेतु निम्नलिखित विधियॉ अपनायी जा सकती हैं:

- त्वचा विसंदूषण।
- घाव सिंचन व उच्छेदन।
- गैस्ट्रोइन्टेस्टाइनल अवशोषण में कमी।

अवरोधन एवं तनूकरण: अवरोधक एजेंट किसी विशिष्ट प्रकार के ऊतक या अंग की चयापचय प्रक्रियाओं को संतृप्त करके किसी भी रेडियोधर्मी समस्थानिक के अन्तर्ग्रहण की दर को घटा देता है। उदाहरणार्थ, पोटैशियम आयोडाइड थॉयराइड ग्रंथि में जमा होकर रेडियोआयोडीन के अन्तर्ग्रहण को कम कर देता है।

समस्थानिकीय तनुकरण: अंर्तगृहीत रेडियोधर्मी तत्व के समान भौतिक व रासायनिक गुण वाले तत्वों को अहानिकारक तत्वों की भारी मात्रा रेडियोधर्मी तत्व की मात्रा का तनुकरण करके उनका अर्न्तग्रहण कम कर देती है। उदाहरणार्थ, पानी का ज्यादा उपयोग शरीर में अंर्तगृहीत ट्रिशियम की जैविक अर्ध–आयु कम कर देता है तथा इसका टर्नओवर बढ़ा देता है।

विस्थापन चिकित्सा भी तनुकरण चिकित्सा का ही एक रूप है, जिसमें एक भिन्न परमाणु संख्या वाला अहानिकारक तत्त्व रेडियोधर्मी तत्व के साथ अंतर्ग्रहण स्थल पर पहुॅचने के लिए प्रतियोगिता करता है। उदाहरणार्थ, कैल्शियम, रेडियोस्ट्रांशियम की अन्तर्ग्रहण दर में कमी लाता है।

मोबिलाइजेशन (संघटन चिकित्सा): मोबिलाइजिंग एजेंट वे पदार्थ होते हैं, जो कि किसी भी रेडियोधर्मी पदार्थ की प्राकृतिक टर्नओवर प्रक्रिया को बढ़ा देते हैं और शरीर से उनकी निष्कासन दर बढ़ा देते हैं। रेडियोस्ट्रांशियम के लिए कैल्शियम, फास्फोरस, तथा स्ट्रांशियम के लिए पैराथॉयराइड हार्मोन मोबिलाइजिंग एजेन्ट के उदाहरण हैं।

चीलेशन: बहुत सारे रासायनिक पदार्थ रेडियोधर्मी धातुओं का चीलेशन कर शरीर से उनका निष्कासन करते हैं। इस प्रक्रिया में चीलेशन एजेंट अपने विशेष रासायनिक समूह (लिगैंड) से हानिकारक रेडियोधर्मी धात्विक तत्वों का चीलेशन करके घुलनशील काम्पलेक्स का निर्माण करते हैं एवं आसानी से गुर्दे द्वारा उत्सर्जित हो जाते हैं।

चीलेशन थेरेपी बहुत ही प्रभावी चिकित्सा साबित हो सकती है, यदि यह रेडियोधर्मी तत्व के अन्तर्ग्रहण के तुरन्त बाद ही शुरू कर दी जाये। ईडीटीए (EDTA) तथा डी टी पी ए (DTPA) एफ डी ए द्वारा अनुमोदित चीलेटिंग एजेंट है जिनका उपयोग विभिन्न रेडियोधर्मी तत्वों के डीकार्पोरेशन हेतु किया जा रहा है।

रेडियोधर्मी तत्वों के डीकार्पोरेशन हेतु वर्तमान में उपलब्ध चिकित्सा औषधियों एवं विधियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित तालिका 1. में दर्शाया गया है:

तालिका 1. उपलब्ध डीकार्पोरेशन चिकित्साएं एवं औषधियां।

चिकित्सा	निष्कासित समस्थानिक	औषधि अर्न्तग्रहण मार्ग तथा खुराक	उपचार अवधि
एल्युमिनियम हॉइड्राक्साइड	स्ट्रांशियम–90	मौखिक 60–100 मिली	एक बार
एल्युमिनियम फॉस्फेट जेल	स्ट्रांशियम–90	मौखिक 100 मिली अर्न्तग्रहण के तुरन्त बाद	एक बार
अमोनियम क्लोरॉइड	स्ट्रांशियम–90 रेडियम–226	मौखिक 1–2 ग्राम	6 दिन
कैल्शियम	स्ट्रांशियम–90 रेडियम–226	मौखिक प्रचुर मात्रा में	
कैल्शियम–डीटीपीए जिंक– डीटीपीए	प्लूटोनियम–239, अमेरिकियम–241, क्यूरियम–244, कैलीफोर्नियम–252, थोरियम–232 तथा येट्रियम–90	इन्ट्रावेनस– 1 ग्राम, 250 मिली नार्मल सैलाइन अथवा 5 प्रतिशत ग्लुकोज में एक से दो घंटे के अन्तराल पर	5 दिनों तक
कैल्शियम ग्लूकोनेट	स्ट्रांशियम–90 रेडियम–226	इन्ट्रावेनस– 5 एम्प्यूल (500 मिग्रा कैल्शियम) 400 मिली पानी में प्रत्येक 4 घंटे पर	6 दिन
डाइमरकैप्राल	मरकरी, लेड, आर्सेनिक, गोल्ड तथा पोलोनियम–210	इंट्रामस्कुलर– 300 मिली/शीशी गहरे इंट्रामस्कुलर उपयोग हेतु 2.5 मिग्रा/किग्रा 2 दिन	10 दिन
पोटैशियम आयोडाइड	आयोडीन–131	मौखिक 130 मिग्रा प्रतिदिन (व्यस्कों के लिए)	कुछ मामलों में केवल एकल खुराक ही पर्याप्त है।
पोटैशियम फॉस्फेट डाइबेसिक	फॉस्फोरस–32	मौखिक– 250 मिग्रा की 1–2 टैबलेट एक गिलास पानी के साथ	
प्रापिलथायोयूरेसिल	आयोडीन–131	मौखिक– 50 मिग्रा टेबलेट 2 टेबलेट टी आई डी 8 दिनों तक	8 दिन
प्रूशियन ब्लू	सीजियम– 137 थैलियम–201	मौखिक– 500 मिग्रा प्रूशियन ब्लू प्रति कैप्स्यूल 1–3 ग्राम टी आई डी 100–200 मिली सोडियम बाई कार्बोनेट घोल के साथ	3 सप्ताह या अधिक
जल	ट्रिशियम	मौखिक– 3 से 4 लीटर प्रतिदिन	3 सप्ताह
सोडियम एल्जिनेट	स्ट्रांशियम–90 रेडियम–226	मौखिक– 10 ग्राम पाउडर पानी के साथ	
सोडियम बाईकार्बोनेट	यूरेनियम–235	इन्ट्रावेनस– 2 एम्प्यूल 1000 मिली क्व के साथ	अधिकतम 3 दिनों तक

वर्तमान में उपलब्ध डीकार्पोरेशन एजेंटों की कमियां

- वांछित प्रभावकारिता
- अधिक कीमत
- खुराक व उपचार अवधि का निर्धारण
- अपेक्षित मात्रा में अनुपलब्धता
- भारत जैसे देश में शोध एवं अनुसंधान का आधार
- प्रतिबंधित जन सूचना

डीकार्पोरेशन थेरेपी के क्षेत्र में अनुसंधान की आवश्यकता : भारत जैसी आर्थिक स्थिति वाले देशों में डीकार्पोरेशन एजेंट की उपलब्धता एवं इनकी ज्यादा महंगी कीमत अन्य देशों की अपेक्षा अधिक विकट समस्यायें हैं। अतएव रेडियोधर्मी तत्वों के डीकार्पोरेशन हेतु नवीन, सुरक्षित, प्रभावी तथा सस्ते चिकित्सा उपायों को खोजे जाने की नितान्त आवश्यकता है।

इनमास (डी आर डी ओ) की डीकार्पोरेशन अनुसंधान में भूमिका एवं योगदान

नाभिकीय औषधि एवं सम्बद्ध विज्ञान संस्थान, दिल्ली के तीमारपुर क्षेत्र में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन, रक्षा मंत्रालय द्वारा स्थापित एक महत्त्वपूर्ण प्रयोगशाला है। इस प्रयोगशाला का मुख्य उददेश्य हानिकारक नाभिकीय विकिरणों से होने वाली क्षति के लिए नवीन उपचारों को खोजना तथा विकिरण से बचाव के तरीको को अनुसंधानित करना है। पिछले लगभग एक दशक से इनमास नाभिकीय औषधि जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में अनुसंधानरत है और रेडियोधर्मी तत्वों के विसंदूषण हेतु कई तकनीकों एवं औषधियों का विकास कर चुका है। इनमास का नाभिकीय औषधि विभाग डीकार्पोरेशन चिकित्सा के सभी आयामों पर शोध कार्य कर रहा है और अब तक 20 से ज्यादा डीकार्पोरेशन औषधियों का विकास कर चुका है, जोकि मौखिक, श्वसनीय, तथा इंजेक्टेबल प्रकार की हैं। कुछ विकसित डीकार्पोरेशन एजेंटों का क्लिनिकल ट्रायल किया जा चुका है जबकि कुछ औषधियों के क्लिनिकल ट्रायल हेतु डी सी जी आई, भारत, हेतु अनुमति प्राप्त की जा चुकी है। आशा है कि इनमास निरन्तर अनुसंधान के नये आयामों को छूते हुए महत्त्वपूर्ण विकिरण सुरक्षा औषधियों के निर्माण में विश्व स्तरीय योगदान देगा, जो मानव जाति को परमाणु खतरों से सुरक्षा प्रदान करेंगे।

सुरक्षित दूरी से विस्फोटक पदार्थों का पता लगाने हेतु रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी का उपयोग

संजय गुलिया, स्वर्ण कुमारी, कमल गुलाटी, विजेयता गंभीर, तथा एम एन रेड्डी
लेजर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी केन्द्र, दिल्ली

परिचय

पिछले दो दशकों में आंतकवाद मानवता के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रुप में उभर कर सामने आया हैं। अधिकांश आतंकवादी हमलों में धातुयुक्त पात्रों का प्रयोग विस्फोटक पदार्थो को बम्ब में परिवर्तित करने में किया जाता हैं

हाल के आतंकवादी हमलों में प्लास्टिक के पात्रों का भी प्रयोग बम्ब बनाने में किया गया है। इस प्रकार के अप्रकट बम्बों को इम्प्रवाइज्ड इकस्प्लोसिव डिवाइस (I.E.D.) के नाम से जाना जाता है। ऐसे छिपे हुऐ बम्बों को ढूंढना एक बहुत ही जटिल समस्या है। आज एक ऐसी तकनीक विकसित करने की जरूरत है जो अप्रकट बम्बों को एक सुरक्षित दूरी से ढूंढ़ सके, मारक क्षमता 100 मीटर तक हो सकती है। अतः ऐसे उपकरण विकसित किये जाने चाहिए जो गुप्त बम्बों का एक सुरक्षित दूरी से पता लगा सके ताकि प्रचालक की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

सुरक्षित दूरी से बम्बों का पता लगाने में कुछ प्राकृतिक कठिनाइयां है जैसे कि वापसी प्रकाश तीव्रता का दूरी के वर्ग से प्रतीपक्रम ढगं से कम होना, वायु द्वारा अवशोषण तथा बिखराव (Scattering), आदि।

लेजर–आधारित स्पेक्ट्रोस्कोपी इस दिशा में एक कारगर उपाय प्रदान कर सकती है। लेजर–आधारित स्पेक्ट्रोस्कोपी कई प्रकार की होती है जैसे कि रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी (RS), लेजर इन्डूस्ड ब्रेकडाउन स्पेक्ट्रोस्कोपी (LIBS), लेजर–इन्डूस्ड फ्लूअरेसन्स (LIF), आदि। इनमें से रम्न स्पैक्ट्रोस्कोपी सबसे ज्यादा उपयुक्त तकनीक है। इसके आधार पर ऐसा उपकरण विकसित हो सकता है जो सुरक्षित दूरी से अप्रकट बम्बों कर पता लगा सके। यह तकनीक विस्फोटक की आणविक संरचना की जानकारी प्रचालक को सीधी प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त यह तकनीक चयनता में भी उत्तम है।

रम्न स्पेक्ट्रोस्कापी की विजिबल भाग में कम सान्द्रता, जैसे कि पी पी एम स्तर पर संभावना तलाशना अभी बाकी है। यहाँ हमने अपने अध्ययन में विस्फोट पदार्थो का 5 मीटर की दूरी से पता लगाया है। इस अध्ययन में सान्द्रता स्तर 100 पी पी एम रखा गया है।

प्रयोग

इस अध्ययन में प्रयोग किये गऐ उपकरणों को विधिपूर्ण तरीके से चित्र 1 में दिखाया गया है। इन उपकरणों में लेजर, आई. सी. सी. सीड संयोजित स्पेक्ट्रोग्राफ, आप्टिकस आदि हैं। फैल्स लैम्प पम्पड Nd:YAG लेजर (क्यूआंटल, फ्राँस) इस अध्ययन में प्रयोग हुआ है।

वापिस आणविक सूचना से पूर्ण प्रकाश किरणों को इक्ट्ठा करने के लिए छोटे आकार (व्यास–1 ईचं) की आप्टिकस का प्रयोग किया गया है। इस आप्टिकस में प्रकाश किरणों को समांतर बनाने वाला लैंस, उच्च तरंगदैर्घ्य को पास करने वाला निस्पादक, तथा अंत में समांतर किरण को

स्पैक्ट्रोग्रॉफ पर केन्द्रित करने वाले लैंस का प्रयोग किया गया है। इन्टेन्सफाइड चार्ज कपल्छ डिवाइस (आई सी सी डी) संयोजित स्पैक्ट्रोग्राफ (आई स्टॉर 720–25–यू) का प्रयोग रमन प्रकाश किरणों के विश्लेषण में किया गया। इसमें 1024 x 256 का पिक्सल सारणी है। (चित्र 2 से 5 तक)

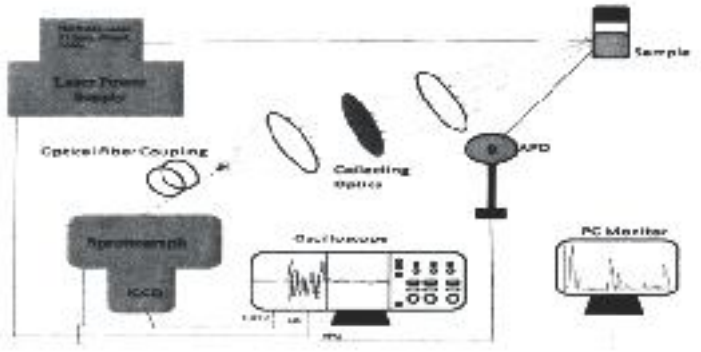

चित्र 1. आई. सी. सी. डी. आधारित रमन स्टैक्ट्रोस्कॉपी की प्रणाली।

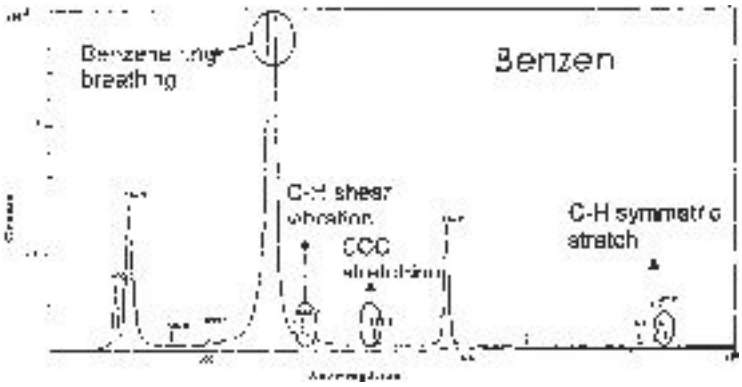

चित्र 2. रमन स्पैक्ट्रा (बेनजीन) 5 मीटर की दूरी से लिया गया।

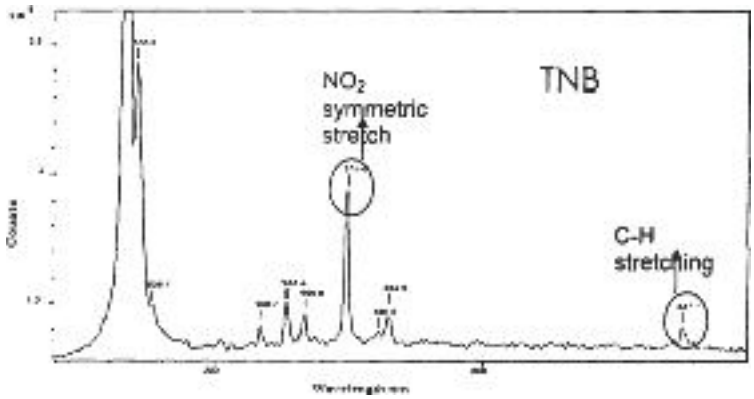

चित्र 3. 1,3,5– ट्राईनाइट्रोबनजीन का रमन स्पैक्ट्रम 5 मीटर की दूरी से लिया हुआ।

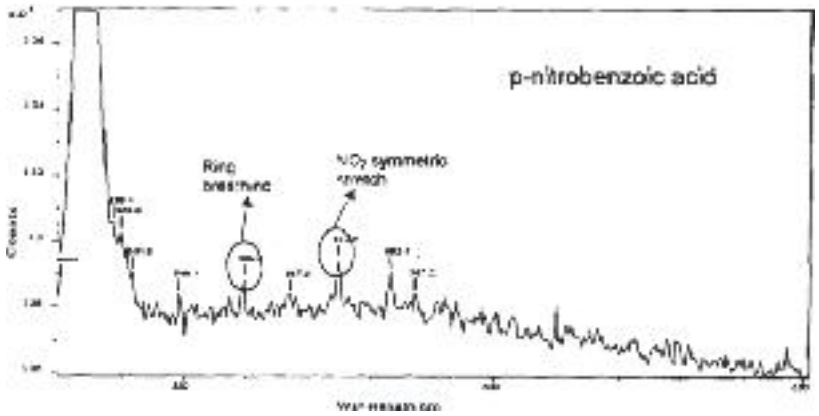

चित्र 4. पैरा–नाइट्रोबैनजीन का रमन स्पैक्ट्रम 5 मीटर की दूरी लिया हुआ।

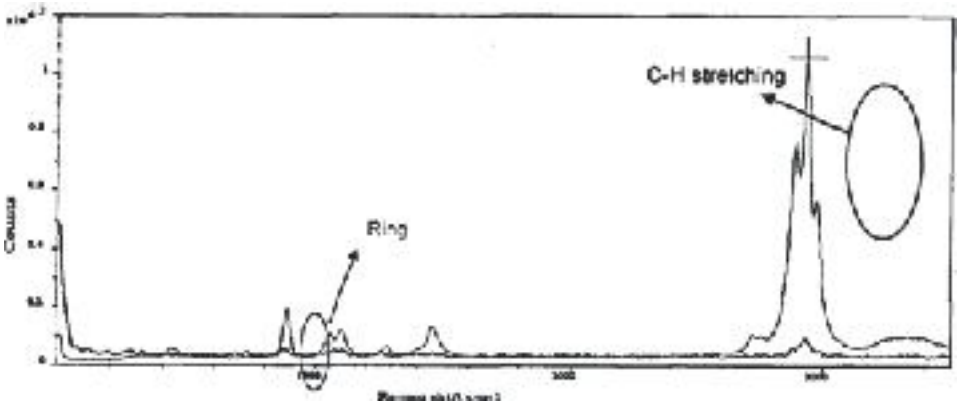

चित्र 5. आर. डी.–एक्स का रमन स्पैक्ट्रम 5 मीटर की दूरी से लिया हुआ।

परिणाम एवं विवरण

हमने इस अध्ययन की शुरूआत बनजीन, 1,3,5–ट्राईनाइट्रोबेनजीन और पी नाईट्रोबनजाँक पदार्थों से की। ये सभी पदार्थ विस्फोटक पदार्थों की तरह बेनजीन रिंग–आधारित संरचना रखते है। इन सब पदार्थो का 5 मीटर की दूरी से रमन स्पेक्ट्रा लिए गए। इन सब प्रयोगों में लेजर प्लस ऊर्जा 10 मीटर जूल रखी गई थी। आई सी सी डी डिटेक्टर के साथ Synchronice किया गया अर्थात् जब लेजर बन्द होता है तो डिटक्ट्र बंद होता है यह प्रक्रिया SNR को बढ़ाने मे सहायक सिद्ध होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह प्रक्रिया कम स्तर पर सांद्रतर वाले पदार्थो का रमन स्पैक्ट्रा लेने में कारगार सिद्ध होती है। इस अध्ययन में हमनें UV लेजर तथा VISIBLE लेजर का प्रयोग करते हुऐ रमन स्पैक्ट्रा लिऐ तथा बाकी सारे Parameter बराबर रखे गऐ। फिर UV और VISIBLE रमन स्पैक्ट्रा की तुलना की गई। तुलना करने पर यह पता चला कि UV रमन स्पैक्ट्रा का SNR 3370, 400 तथा 5 गुण बढ़ा हुआ पाया गया क्रमशः जब लेजर प्लस ऊर्जा 1 मिली जूल, 2 मिली जूल तथा 5 मिलीजूल रखी गई।

निकर्ष

यह अध्ययन हमें विस्फोट पदार्थो का सेंसर बनाने की तरफ एक कदम आगे ले जाएगा।

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी उपलब्धियां

दीपक राठी एवं फूलदीप कुमार
रोहतक, हरियाणा
रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र, दिल्ली

जिस संसार में हम निवास करते हैं तथा हम अपने चारों तरफ जिन पदार्थो का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं जैसे–पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा, पेड़, पर्वत, जीव–जन्तु आदि उनके सम्बन्ध में तथ्यों को जानने की और समझने की स्वाभाविक इच्छा हमारे मन में उठती है। कारण यह है कि उन्हें समझकर हम अपना सम्बन्ध उनसे स्थापित करना चाहते हैं। हमें ऐसा लगता है कि उन्हें समझे बिना हम सुखी नहीं हो सकते।

ऋग्वेद काल में भारत के आर्य मनीषियों तथा चिंतकों ने जहाँ एक ओर अपने स्वयं में तथा सृष्टि में अंतर्भूत तत्त्व को समझने का यत्न किया था, वहीं दूसरी और अपनी तथा सृष्टि की गति, रूप तथा व्यवहार को भी समझने का यत्न किया था। जहाँ उन्होंने ब्रह्म विज्ञान का विकास किया, वहीं भूत–विज्ञान का भी विकास किया।

ऋग्वेद के सर्वांग अध्ययन से पता लगता है कि गणित, ज्योतिष, भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, रसायन–विद्या तथा आयुर्वेद विज्ञान आदि की मूल बातों का उस समय के आर्यों को पता था। उसके पश्चात् भी इस क्षेत्र में खोज चलती रही जिससे इसका विकास–होता रहा। पुराने समय में यज्ञों के विधि–विधान इसी वैज्ञानिक क्रिया को लिए हुए होते थे। अग्नि उस समय प्रक्रिया का मुख्य साधन थी और आज भी अग्नि विज्ञान का मुख्य साधन है चाहे वह विद्युत के रूप में हो या सूर्य के रूप में।

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक (Scientists of Ancient India): वैदिक युग के पश्चात् होने वाले ज्ञात वैज्ञानिकों की नामावली इस प्रकार है :

लगध

इस वैज्ञानिक का समय अनुमानतः ई पू 300 वर्ष है। यह ज्योतिषाचार्य के नाम से विख्यात है। 'वेदांग ज्योतिष' इनका मुख्य ग्रन्थ है। इनका सम्बन्ध मुख्यतः ऋग्वेद से है। ऋग्वेद ज्योतिष नामक इस ग्रन्थ में 36 श्लोक हैं।

आर्यभट्ट (Aryabhatt)

यह ज्योतिषाचार्य ईस्वी सन् 576 में विद्यमान थे। ज्योतिष के क्षेत्र मे दो आर्यभट्ट हुए हैं। यह प्रथम आर्यभट्ट हैं। इन्होंने 'आर्य भट्टीय' नामक विख्यात ग्रन्थ लिखा जिसे आर्य सिद्धान्त भी कहा जाता है। इसमें 108 आर्य छंदों में ज्योतिष के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। अतः इसे 'आर्याष्ट शतक' भी कहते हैं। यह विद्वान गणितज्ञ भी थे। बीजगणित के क्षेत्रों में इनकी विशेष देन है।

आर्यभट्ट गुप्त काल के महान गणितज्ञ थे। उनके ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धान्त' अथवा 'आर्यभट्टीय' में सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण के कारणों पर सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया गया है। "पृथ्वी के आकार के विषय में उनकी जो गणना थी, वह वर्तमान ज्योतिषयों की गणना और निरूपण से बहुत कुछ साम्य रखती है। आर्यभट्ट यह जानने वाले प्रथम भारतीय थे कि पृथ्वी अपने चारों ओर घूमती है। उन्होंने सर्वप्रथम

ज्योतिष में जीवा का उपयोग ज्ञात किया तथा ग्रहों एवं ग्रहणों सम्बन्धी गणनाएँ की। उन्होंने जो वर्ष–मान निकाला, वह यूनानी ज्योतिषी और टॉलेमी (Tolemy) द्वारा रचित से अधिक शुद्ध है।"

डॉ म ग भाटवडेकर के अनुसार– "आर्यभटट् ने ई 500 में ही (पाई) का मान 3.1416 तक निकाल दिया था (यद्यपि वैदिक सूत्रों से ज्ञात होता है कि) अक्ष पर पृथ्वी घूमती है और और साथ ही सूर्य तथा पृथ्वी के बीच आकर्षण है। आर्यभट्ट ने इस ज्ञान को हजारों वर्ष बाद लिखा।" आर्यभट्ट को अनन्त का ज्ञान था तथा उसने पृथ्वी का व्यास 7905 मील एवं वायुमण्डल का विस्तार 55 मील बताया।

डॉ रतिभानुसिंह नाहर के मतानुसार– "आर्यभट्ट गुप्तकाल के सुप्रसिद्ध देवज्ञ थे। आर्यभट्ट ने पृथ्वी की परिधि की अनुमानतः जो माप की थी, आज तक वह प्रायः सही मानी जाती है। पृथ्वी गोल है तथा अपनी धुरी पर चलती है आदि बातों को प्रतिपादित करने का श्रेय आर्यभट्ट को ही प्राप्त है। नक्षत्र और खगोल विद्याओं के सम्बन्ध में इनकी मान्यताएँ काफी सीमा तक निर्दोष मानी जाती हैं। इन्होंने बताया कि सूर्य और चन्द्र ग्रहण के सम्बन्ध में राहु का कोई स्थान नहीं है। यह चन्द्रमा तथा पृथ्वी की छाया का फल है।"

आर्यभट्ट ने रेखागणित के क्षेत्र में त्रिज्यामिति (Trigonometry) के ज्ञान का भी विकास किया। गणित के महान विद्वान आर्यभट्ट ने 'ज्या' व 'कोटिज्या' की विवेचना की थी। ज्या व कोटिज्या गणित के वे आधार हैं जिनके द्वारा नक्षत्रों की सही गति तथा स्थिति का पता चलता है। यह तो निश्चित ही है कि गणित तथा ज्योतिष शास्त्र दोनों का पूर्णतः गठबंधन है, अतः इन दोनों ही शास्त्रों का भारत में एक साथ विकास सम्भव हो सका। आर्यभट्ट ने इस सत्य का पता लगाया कि पृथ्वी गोल है, वह अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है, साथ ही वह सूर्य के चारों और भी घूमती हैं। उन्होंने अपनी गणना से ठीक तरह से ज्ञात कर लिया था कि सूर्य के चारों तरफ पृथ्वी की गति का समय 365 दिन, 5 घंटे, 55 मिनट तथा 12 सेकंड है।

चरक (Charak)

यह विद्वान ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी में हुए थे। इन्होंने आयुर्वेद–विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है जो उन्हीं के नाम से "चरक–संहिता" कहलाता है। बी एन लूनिया का मत है कि– "चरक और शुश्रूत का 'चिकित्सा शास्त्र' गुप्तकाल में ही उन्नत रहा। इस युग का (गुप्तकाल का) दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नवीनतम' है जो 1890 ई0 पूर्वी तुर्किस्तान के कूचा में प्राप्त हुआ था। इसमें भेल, चरक, सुश्रुत संहिताओं के उपयोगी और लाभप्रद नुस्खों और योगों का संग्रह है। आयुर्वेद में भी प्रधान रूप से चिकित्सा के लिये वानस्पतिक औषधियों का प्रयोग होता था, किन्तु पारे तथा अन्य धातुओं के योग का प्रयोग प्रचलित हो रहा था।"

चरक कुषाण सम्राट कनिष्क के समय हुए थे। कनिष्क का काल ज्ञान–विज्ञान की दृष्टि से भी कतिपय क्षेत्रों में प्रगति का काल था। मुख्य रूप से इस युग में चिकित्सा (आयुर्वेद), धातु–विज्ञान एवं विभिन्न व्यवसायों में तकनीकी ज्ञान एवं कौशल का विकास हुआ। इस युग में भेषज चिकित्सा एवं 'शल्य–चिकित्सा में पर्याप्त प्रगति हुई। माना जाता है कि भारतीय आयुर्वेद की दो विभूतियाँ चरक और सुश्रुत कुषाण युग में ही हुए थे, उन्होंने क्रमशः भेषज (कायिक चिकित्सा) एवं शल्य चिकित्सा के अभूतपूर्व ग्रन्थों की रचना की ।

वराहमिहिर (Varahmihir)

वराहमिहिर का समय 505–587 ई0 माना जाता है। 'वृहत्संहिता', 'पंचसिद्धान्तिका', 'वृहज्जातक' तथा 'लघुजातक' इनके विख्यात ग्रन्थ हैं। वराहमिहिर उज्जयनी के निवासी थे। इन्होंने अपने पिता आदित्यदास से ज्योतिष का अध्ययन किया था। ये मुख्यतः सूर्योपासक थे। इन्हें भौतिकशास्त्री माना

जाता है। इन्होंने वृहज्जातक एवं वृहत्संहिता नामक ग्रन्थों में सूर्य, चन्द्र एवं तारों की गति, ग्रहण, ऋतु–परिवर्तन आदि का विवेचन किया है। वराहमिहित ने 'पंचसिद्धान्तिका' ग्रन्थ में गणित, ज्योतिष, जन्म कुण्डली तथा फलित ज्योतिष के सिद्धान्त स्पष्ट किये। इन्होंने यूनानियों के ज्योतिष सिद्धान्तों की प्रशंसा की है।

बी एन लूनिया का मत है कि–"गुप्त काल के दूसरे प्रसिद्ध ज्योतिषी और धातु–विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित एवं गणितज्ञ वराहमिहिर का 'वृहद्संहिता' ज्योतिष, भौतिकी, भूगोल, वनस्पति–विज्ञान और पशु– जीवन–शास्त्र का विवेचन करता है। आर्यभट्ट वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त अपने समय में विश्व के सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषी थे। इस युग में हिन्दू ज्योतिषयों ने इस बात की खोज कर ली थी कि आकाश–मंडल के ग्रह प्रतिबिम्बित प्रकाश से चमकते हैं, वह अपनी धुरी पर पृथ्वी की दैनिक चाल से परिचित थे और उसके ब्यास की भी गणना उन्होंने की थी।"

ऐसा माना जाता है कि ज्योतिष के क्षेत्रों में भारत ने युनानियों से कई बातें सीखीं। ज्योतिष के कई सिद्धान्तों जैसे भारतीय रोमन ज्योतिष पद्धति आदि पर यूनानी प्रभाव दिखाई देता है। गार्गी संहिता से ज्ञात होता है कि ज्योतिष के क्षेत्र में भारत यूनान का ऋणी है। प्रसिद्ध विद्वान वराहमिहिर ने यूनानियों को ज्योतिष का ज्ञाता होने से पूजनीय बताया है। डॉ भाटवडैकर का कथन है कि "वाराहमिहिर ने $axh^2 = y^2$ एवं $ax + b = 0$ समीकरणों का हल निकाला था और उन्होंने $ax^2+bx+c=0$ ज्यामितीय शृंखला को स्पष्ट किया था किन्तु इसकी कल्पना कर एक त्रुटि भी की थी। वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ 'वृहद संहिता' में वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं के ज्ञान से भूमि स्थित जल–स्रोत ज्ञात करने का ज्ञान दिया है।"

डॉ रति भानुसिंह नाहर के अनुसार–"वराहमिहिर गुप्तकाल के सबसे प्रसिद्ध ज्योतिषज्ञ थे। उन्होंने पाँच पुस्तकें लिखीं– (1) लघुजातक, (2) वृहज्जातक, (3) विवाह–पटल (4) योगमाया, (5) वृहत्संहिता, तथा (6) पंचसिद्धान्तिका। अंतिम ग्रन्थ में उन्होंने रोमक वशिष्ठ आदि सिद्धान्तों की विवेचना की है। यह आश्चर्य का विषय है कि वराहमिहिर जैसे निपुण ज्योतिषज्ञ ने भी ग्रहण के विषय में आर्यभट्ट की मान्यता का खण्डन किया और इस सम्बन्ध में पौराणिक धारण को सत्य स्वीकार किया है।"

सुश्रुत

सुश्रुत ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी के आयुर्विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान थे। उन्होंने जिस ग्रन्थ की रचना की है वह उन्हीं के नाम से 'सुश्रुत संहिता' कहलाती है। इनके इस ग्रन्थ में शल्य–चिकित्सा का गहन अध्ययन एवं विवेचन किया गया है।

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त गुप्तकाल के एक प्रसिद्ध ज्योतिषज्ञ थे। इसका समय 598 ई है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'ब्रह्मसिद्धान्त' की रचना 628 ई में की तथा 665 ई में 'खण्ड खाद्यक' ग्रन्थ की रचना की। वे भीनमान (राजस्थान) के निवासी थे। यह नगर 'माघ' महाकवि की जन्मभूमि है। ब्रह्मगुप्त के इन दोनों ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। 'अलबेरुनी' ने उनके दोनों ग्रन्थों की बड़े आदर सहित चर्चा की है। ब्रह्मगुप्त महान गणितज्ञ माने जाते है। उन्होंने रेखागणित व बीजगणित में अनेक नई मान्यताएँ स्थापित की है। उन्होंने पृथ्वी के घुमने का सिद्धान्त निकाला, जिसे यूरोपीय विद्वानों ने बहुत समय पश्चात् ज्ञात किया। बी एल लूनिया के अनुसार, "ब्रह्मगुप्त ने न्यूटन (Newton) के सिद्धांत को पहले ही घोषित कर निरूपण कर दिया था कि प्रकृति के नियम के अनुसार ही समस्त वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती है क्योंकि पृथ्वी का स्वभाव वस्तुओं को अपनी और आकर्षित करना है।"

नागार्जुन

नागार्जुन का समय 150 ई के लगभग माना जाता है। वह महान् रसायन–शास्त्रज्ञ था। वह बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन से सर्वथा भिन्न है। इन्हें सुश्रुत का संस्कर्ता भी माना जाता है। गुप्तकाल ने आयुर्वेद एवं रसायनशास्त्र (Medicine and Chemistry) के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण क्रान्ति उपस्थित कर दी। नागार्जुन ने यह सिद्ध किया कि सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा आदि खनिज धातुओं में भी रोग–निवारण की शक्ति विद्यमान है। 'पारद' (Mercury) का भी आविष्कार नागार्जुन ने किया।

वाग्भट्ट (Vagbhatt)

आयुर्वेद में तीन विद्वान चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट विख्यात हैं। इनके ग्रन्थों के नाम 'अष्टांग ह्रदय' और "अष्टांक–संग्रह" हैं। इनमें वाग्भट्ट ने चरक और सुश्रुत का सार लिखा है। वाग्भट्ट का समय छठी शताब्दी ईस्वी है।

भास्कराचार्य (Bhaskaracharya)

भास्कराचार्य भारत के विश्व–विख्यात ज्योतिषाचार्य हैं। लगभग 700 वर्षों से इनकी ख्याति विश्वभर में फैली हुई है। 'सिद्धान्त शिरोमणि' और 'कृष्ण–कुतूहल' नामक इनके विश्व–विख्यात ग्रन्थ हैं। इनका निवास स्थान सह्य पर्वत के पास विज्जड़विड़ नामक गाँव था। इन्होंने ज्योतिष का अध्ययन अपने पिता महेश्वर से किया था।

भास्कराचार्य भारतीय इतिहास के राजपूत युग में एक महान् वैज्ञानिक एवं गणितज्ञ थे। इन्होंने दो ग्रन्थों के अतिरिक्त ब्रह्मगुप्त द्वारा 665 ई0 में रचित ग्रन्थ 'खण्ड खाद्यक' की टीका लिखी। 'सिद्धान्त शिरोमणी' ग्रन्थ में ज्योतिशास्त्र में नवीन उद्भवनाएँ कीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सिद्धान्त शिरोमणी, करण कुतूहल' और 'करण केशरी' ग्रन्थों की रचनाएँ भी की। गणित के क्षेत्र में भास्कराचार्य का योगदान महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने न्यूटन (Newton) से बहुत पहले ही चलन गणित का प्रयोग ज्योतिष में किया। इससे यह सिद्ध होता है कि ग्रहमंडल तथा भूगोल सम्बन्धी गतिशास्त्र का भी परिचय भारतीयों को पहले से प्राप्त था।

महावीराचार्य

महावीराचार्य भी इस युग (गुप्तकाल) के एक महान गणितज्ञ हुए है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती गणितज्ञों के सिद्धान्तों पर टीकाएँ लिखी हैं। उनका ग्रन्थ 'गणितसार संग्रह' उल्लेखनीय है।

संदर्भ

1. श्री रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, भारतीय संस्कृति सस्थानम्, वाराणसी (1966).
2. डॉ एस एल नागोरो, भारतीय संस्कृति, बोहरा प्रकाशन, जयपुर (1985).
3. श्री गोरीशकंर हीराचन्द ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद (1951).
4. डॉ सत्यप्रकाश शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, मेरठ, 1975.

विश्व में विज्ञान और प्रौद्योगिकी व भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान का योगदान

भानुप्रकाश जोशी
शेखावटी सन्मार्ग, लक्ष्मणगढ, राजस्थान

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम देश की विविध सामाजिक–आर्थिक विकासात्मक जरूरतें पूरी करने की क्षमता से युक्त एक स्वदेशी प्रयास है। प्रमुख रूप से भारत के लिए प्रासंगिक अंतरिक्ष–प्रौद्योगिकी और अनुप्रयोगों को विकसित करने तथा उन्हें काम में लाने पर बल दिया जाता रहा है। संचार, प्रसारण और मौसम विज्ञान में सेवाएं प्रदान करने के लिए इनसेट प्रणाली की स्थापना की गई है। भारतीय दूर संवेदी (आईआरएस) उपग्रह प्रणाली की स्थापना प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए की गई है।

भारत के ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी–सी17) ने 15 जुलाई 2011 को अपनी 19वीं उड़ान के माध्यम से जीसेट–12 संचार उपग्रह का सफल प्रक्षेपण किया। यह पीएसएलवी की लगातार 18वीं सफल उड़ान थी जिसने एक बार फिर से इसकी उपयोगिता और विश्वसनीयता साबित की। उड़ान के समय 1410 किलोग्राम भार के साथ जीसेट–12 संचार उपग्रह में 12 एक्सटेंडिड सी–बैंड ट्रांसपोंडर्स थे और उसे सफलतापूर्वक भू–समकालिक कक्षा में स्थापित कर दिया गया। जीसेट–12 दूर–चिकित्सा, दूर–शिक्षा और आपदा प्रबंधन सहायता के क्षेत्रों में अंतरिक्ष आधारित अनुप्रयोगों को बढ़ावा देगा। भारत के अत्याधुनिक संचार उपग्रह, जीसेट–8 को, उड़ान के समय करीब 3100 किलोग्राम वजन के साथ, 21 मई 2011 को कोरू से एरियन–वी यान के साथ सफलतापूर्वक भू–समकालिक स्थानांतरण(ट्रांसफर) कक्षा (जीटीओ) में प्रक्षेपित किया गया। फ्रेंच इनसेट प्रणाली और केयू–बैंड में 24 हाई पॉवर ट्रांसपोंडर्स तथा एल 1 और एल 5 बैंड्स में संचालित दो चैनल वाले जीपीएस एडिड जियो अगमेंटिड नेविगेशन (जीएजीएएन) उपकरण से युक्त है। ट्रांसपोंडर्स इनसेट प्रणाली की क्षमता संवर्द्धित करेंगे जबकि जीएजीएएन उपकरण उपग्रह–आधारित संवर्द्धन प्रणाली (एसबीएएस) उपलब्ध कराएगा, जिसके माध्यम से जीपीएस उपग्रह से मिली सूचना के सटीक नियोजन को धरती–आधारित रीसिवर्स के नेटवर्क से बेहतर बनाया जाता है और भू–समकालिक उपग्रहों के माध्यम से देश में उपयोगकर्ताओं को उपलब्ध कराया जाता है।

भारत के ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी–सी16) ने अपनी लगातार 17वीं सफल उड़ान में तीन उपग्रहों यानि–रिसोर्ससेट–2, यूथसेट और एक्स–सेट को 20 अप्रैल 2011 को ध्रुवीय सूर्य–समकालिक कक्षा में स्थापित किया। इसरो द्वारा निर्मित रिसोर्ससेट–2–प्राथमिक उपग्रह एक अत्याधुनिक दूर संवेदी उपग्रह है, जो कृषि निगरानी, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, आपदा प्रबंधन सहायता के साथ ही साथ अवसंरचना नियोजन में कई अनुप्रयोगों और सेवाओं को सुगम बनाता है तथा वर्तमान में रिसोर्ससेट–1 द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे दूर–संवेदी डाटा की निरंतरता सुनिश्चित करता है। रिसोर्ससेट–1 का प्रक्षेपण 2003 में किया गया था। यूथसेट तारकीय तथा वातावरण सम्बंधी अध्ययन के लिए एक संयुक्त भारतीय–रूसी उपग्रह है। एक्स–सेट चित्र अनुप्रयोगों के लिए एक सूक्ष्म–उपग्रह है जिसका निर्माण नेनयेंग टैक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी (एनटीयू) सिंगापुर, ने किया है। एचवाईएलएएस (अत्यधिक अनुकूलनीय उपग्रह) उपग्रह का निर्माण ब्रिटेन के अवंती कम्युनिकेशंस के लिए इसरो/एंट्रिक्स

और ईएडीएस/यूरोप के एस्ट्रियम ने संयुक्त रूप से किया है। इसे 27 नवंबर 2010 को यूरोपीयन एरियन–5 वी198 यान से प्रक्षेपित और भू–समकालिक कक्षा में स्थापित किया गया।

इसरो ने सुपर–कंप्यूटर का निर्माण किया है, जो 220 टेराफ्लॉप्स (220 ट्रिलॉन फ्लोटिंग प्वाइंट ऑपरेशन पर सेकंड) के सैद्धांतिक अधिकतम प्रदर्शन से सम्बद्ध भारत का तीव्रतम सुपरकंप्यूटर होगा। इस सुपरकंप्यूटिंग सुविधा का नाम सतीश धवन सुपरकंप्यूटिंग फेसिलिटी रखा गया है और यह विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र (वीएसएससी), तिरूवनंतपुरम में स्थित है। नई ग्राफिक प्रोसेसिंग यूनिट (जीपीयू)–आधारित सुपरकंप्यूटर का नाम ''एसएजीए–220'' (सुपरकंप्यूटर फॉर एयरोस्पेस विद् जीपीयू आर्किटेक्चर–220 टेराफ्लॉप्स) रखा गया है। इसका इस्तेमाल अंतरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की जटिल समस्याओं को सुलझाने में किया जा रहा है।

पीएसएलसी–सी18 के माध्यम से सितम्बर के आखिर में मेघा–ट्रॉपिक्स उपग्रह के प्रक्षेपण की तैयारियां की जा रही हैं। मेघा–ट्रॉपिक्स (या एमटी–संस्कृत में मेघा का अर्थ है ''बादल'', ट्रॉपिक्स–''टॉपिक्स'' के लिए इस्तेमाल होने वाला फ्रांसीसी शब्द है) भारत और फ्रांस की अंतरिक्ष एजेंसियों इसरो और सीएनईएस का एक सहकारी प्रायोगिक अभियान है जिसका उद्देश्य आईटीसीएच (अंतर–ऊष्णकटीबंधीय समाभिरूपता क्षेत्र–इंटर–ट्रॉपिकल कंवर्जस जोन) विशेष तौर पर 10 डिग्री और 20 डिग्री अक्षांश के बीच, को प्रभावित करने वाली संवहनी प्रणालियों (जल चक्र और ऊर्जा विनिमय) का संतोषजनक सामयिक नमूनों के साथ अध्ययन करना है। मेघा–ट्रॉपिक्स, वैज्ञानिक उपकरणों और भूमध्यवर्ती कक्षा से विशेष निकटता के अपने अनूठे मिश्रण के साथ ऊष्णकटिबंधीय जलवायु प्रणाली के अध्ययन और जलवायु अनुसंधान के लिए (सूर्य–समकालिक कक्षाओं में अन्य मौसम उपग्रहों के डाटा के समरूप) बहुमूल्य डाटा उपलब्ध करा सकता है। आरआईसेट–1, इसरो (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन) का उपग्रह चित्र अभियान है जो सी–बैंड एसएआर (सिंथेटिक अपर्चर राडार) इमेजर नामक एक सक्रिय रडार संवेदी प्रणाली का इस्तेमाल कर रहा है। इस साल के आखिर तक इसके प्रकाश सम्बंधी आईआरएस श्रृंखला पर्यवेक्षण अभियान में एक महत्वपूर्ण माइक्रोवेव समपूरक प्रक्षेपित किए जाने की योजना है। भारतीय क्षेत्रीय नौपरिवहन उपग्रह प्रणाली (आईआरएनएसएस) एक स्वायत्त क्षेत्रीय जीपीएस आधारित उपग्रह नौपरिवहन प्रणाली है, जिसे भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा विकसित किया जा रहा है, यह अभी निर्माणाधीन है। आईआरएनएसएस में भू–समकालिक कक्षा में स्थापित सात जीपीएस नौपरिवहन उपग्रहों का समूह होगा, जो भारत भर में तथा भारत के आसपास के करीब 2000 किलोमीटर के क्षेत्र में 10 मीटर से ज्यादा की संपूर्ण स्थिति सटीकता (एब्सोल्यूट पोजीशन एक्यूरेसी) उपलब्ध कराएगा। इससे सामरिक उपग्रह नौवहन कार्यक्रम के सुदृढ़ कार्यान्वयन का मार्ग प्रशस्त होगा। स्वदेशी तकनीक से विकसित क्रायोजेनिक इंजन के प्रभाव और अवस्था को समझने के लिए समीक्षा समितियों की सिफारिशों को शामिल करते हुए प्रयास शुरू किए गए हैं। इंजन की ग्राउंड टेस्टिंग जारी है। स्वदेशी तकनीक से तैयार क्रायोजनिक इंजन के साथ जीएसएलवी की पहली उड़ान अगले साल की दूसरी तिमाही में सम्पन्न कराने का लक्ष्य रखा गया है। चार टन उपग्रह को जीटीओ में स्थापित करने की क्षमता वाला जीएसएलवी–मार्क 3 ज्यादा सशक्त प्रक्षेपण यान है। यह फिलहाल निर्माणाधीन है। 200 टन ठोस प्रोपेलेंट स्ट्रैप–ऑन बूस्टर्स का पहले ही सफलतापूर्वक स्थैतिक परीक्षण (स्टेटिक टेस्टिंग) किया जा चुका है। 110 टन तरल कोर अवस्था का उड़ान की पूरी अवधि के लिए सफल स्थैतिक परीक्षण किया जा चुका है। जीएसएलवी–एमके 3 परियोजना की जरूरतें पूरी करने के लिए आवश्यक परीक्षण और एकीकृत सुविधाएं स्थापित की गई हैं।

पृथ्वी से सौ किलोमीटर ऊपर अंतरिक्ष की सीमा आरंभ होती है। प्राचीन काल से ही मानव विभिन्न ग्रहों और अंतरिक्ष के रहस्य को समझने या उसके संबंध में अधिक–से–अधिक जानकारी रखने की इच्छा

रखता आया है। 4 अक्टूबर 1957 को सोवियत संघ ने स्पूतनिक नामक एक कृत्रिम उपग्रह अंतरिक्ष में भेजा था। यह उपग्रह 57 मिनट में पृथ्वी का एक चक्कर लगाता था। नवम्बर 57 में लाइका नामक एक कुतिया को अंतरिक्ष में भेजा गया। मनुष्य का अंतरिक्ष में प्रवेश 12 अप्रैल, 1961 को हुआ, जब पहली बार यूरी गागरिन अंतरिक्ष में गए। पहली बार अप्रैल 1969 में मानव ने अपने कदम चांद की धरती पर रखे। वर्ष 1961 से आज तक 400 से अधिक वैज्ञानिक और शोधकर्ता अंतरिक्ष में जा चुके हैं।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 1962 में भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति (इन्कोस्पार) से हुई। इसी वर्ष, तिरुवनन्तपुरम के निकट थुम्बा भू–मध्यरेखीय राकेट प्रक्षेपण केन्द्र (अर्ल्स) में काम शुरू हुआ। नवम्बर 1969 में भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम बनाया गया तथा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का गठन हुआ। भारत ने दो प्रकार के उपग्रह प्रक्षेपण यानों की रूपरेखा तैयार कर उनको इस्तेमाल योग्य बनाया है। इनमें से एक है ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी), जिससे भारतीय सुदूर संवेदी उपग्रह प्रक्षेपित किए जाते हैं और दूसरा है भू–स्थैतिक उपग्रह प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी), जिससे इन्सैट परिवार के उपग्रह छोड़े जाते हैं। पीएसएलवी 1600 किलोग्राम भार का उपग्रह ध्रुवीय कक्षा में स्थापित कर सकता है। एसएलवी उपग्रहों को भू–स्थैतिक अंतरण कक्षा और पृथ्वी की निम्न कक्षाओं में स्थापित कर सकता है। भारत के पास सर्वाधिक सुदूर संवेदी उपग्रह हैं।

दूरसंवेदी उपग्रह प्रणाली, आईआरएस–1 सी एवं आईआरएस–1 डी को विश्व के सर्वश्रेष्ठ असैनिक दूरसंवेदी उपग्रहों में गिना जाता है। उपग्रह–आधारित आपदा प्रबंधन सहायता (डीएमएस) के कार्य हैं जोखिमग्रस्त क्षेत्रों को पहचानने, क्षति का निर्धारण आदि सुलभ कराने के लिए डिजिटल डाटा बेस का सृजन, उपग्रह एवं वायुमंडलीय आंकड़ों के उपयोग से बड़ी प्राकृतिक आपदाओं की निगरानी तथा समुचित तकनीकी उपकरणों का विकास, एयरबोर्न लेजर टैराइन मैपर का उपयोग करके जोखिमग्रस्त क्षेत्रों के लिए आंकड़ों का अर्जन तथा आपातकालीन सहायता के लिए संचार व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण, बारहमासी निगरानी क्षमता की दिशा में एयरबोर्न सिंथेटिक अपर्चर रडार (असर) का विकास, एनआरएसए में निर्णय सहायता केन्द्र की एकल खिड़की सेवा प्रदाता के रूप में स्थापना और अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष एवं प्रमुख आपदा चार्टर का सदस्य होने के नाते इसमें सहायता।

सितम्बर 2004 में भू–स्थैतिक उपग्रह प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी–एफ01) द्वारा प्रक्षेपित एडुसैट, भारत का पहला उपग्रह है, जो शिक्षा के लिए समर्पित है। एडुसैट, वन–वे टीवी प्रसारण, इंटरऐक्टिव टीवी, वीडियो कान्फ्रेन्सिंग, कम्प्यूटर कान्फ्रेन्सिंग, वेब–आधारित इंस्ट्रक्शन आदि जैसे शिक्षा प्रदान करने वाले विकल्पों की व्यापक श्रृंखला उपलब्ध करा रहा है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी) इन्सैट की मौसम विज्ञान संबंधी आंकड़ा संसाधन प्रणाली (आईएमडीपीएस) के जरिए इन्सैट के आंकड़ों का संसाधन एवं प्रसारण करता है ।

वर्ष 2010 में जिओ सिन्क्रोनस सेटेलाइट लॉन्च व्हीकल (जीएसएलवी) के दो अभियान विफल हो गए थे–जीएसएलवी–एफ 06 दूरसंचार उपग्रह जीसेट–5पी को लेकर जाने वाले इस यान में प्रक्षेपण के एक मिनट बाद ही विस्फोट हो गया था और वह बंगाल की खाड़ी में जा गिरा था। जीसैट–5पी में 24 सी–बैंड और 12 विस्तारित सी–बैंड टांसपोंडर्स थे। जीएसएलवी–डी 3–जीसैट–4 को लेकर जा रहा जीएसएलवी–डी 3 का अभियान भी अप्रैल 2010 में विफल हो गया था। इन विफलताओं के कारण भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के आगामी कार्यक्रमों पर भले ही संदेह जताया गया हो, लेकिन भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के पीएसएलवी, सी–16 ने 20 अप्रैल 2011 को रिसोर्ससेट–2 एवं दो अन्य छोटे उपकरणों को ले जाकर उनको निर्धारित कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित किया। रिसोर्ससेट–2 पृथ्वी पर्यवेक्षण उपग्रह है। यह 1206 किलोग्राम का है तथा इसका जीवनकाल पांच वर्ष है । वर्ष 2003 में स्थापित किए गए रिसोर्ससेट–1 की तुलना में यह उपग्रह अधिक

उन्नत किस्म का है। रिसोर्ससेट–2 के प्रक्षेपण के साथ ही इसरो के दूरसंवेदी उपग्रहों की संख्या 10 हो गई है। यह धरती के अंदर खनिज पदार्थों के आंकड़े जुटाने में अधिक सक्षम होगा । समुद्री जहाज की स्थिति और गति की निगरानी के लिए इसमें स्वतः पहचान तंत्र (एआईएस) स्थापित किया गया है। यूथसेट–भारत और रूस के संयुक्त उपक्रम से तैयार 92 किलोग्राम का उपग्रह है जो तारामंडल और पर्यावरण का अध्ययन करेगा। एक्स–सेट–सिंगापुर के नानयांग टेक्नोलॉजिकल विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित 106 किलोग्राम का एक्स–सैट उपग्रह मानचित्रीकरण करने में सक्षम है।

अब तक कुल 18 अभियानों में से यह 17वां सफल अभियान था। 20 सितम्बर, 1993 को इसका पहला अभियान पीएसएलवी–डी1 विफल हो गया था। पीएसएलवी से अब तक 47 उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण किया जा चुका है, जिसमें 26 भारतीय उपग्रह और 21 विदेशी उपग्रह शामिल हैं। इन प्रक्षेपणों के द्वारा भारत व्यावसायिक दृष्टिकोण से विदेशी उपग्रहों को भी प्रक्षेपित करने वाले देशों की चुनिंदा सूची में शामिल हो चुका है। पीएसएलवी इसरो के विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र द्वारा वर्ष 1994 से डिजाइन और विकसित किया जा रहा है। चार स्टेज वाले इस रॉकेट में बारी–बारी से ठोस एवं द्रव ईंधनों का इस्तेमाल होता है। इसकी 44 मीटर लंबाई, 295 टन वजन और 2.8 मीटर का व्यास है। यह 620 किलोमीटर दूर भू–समकालिक स्थानांतरण कक्षा (सनसिंक्रोनस पोलर आर्बिट) में 1050 किलोग्राम भार के उपग्रह ले जाने में सक्षम है। प्रत्येक पोलर सेटेलाइट लॉन्च व्हीकल (पीएसएलवी) के प्रक्षेपण पर 1.7 करोड़ डॉलर का खर्च आता है। पीएसएलवी ऐसा परिवर्तनशील यान है, जो ध्रुवीय सौर समकालिक कक्षा, निम्न पृथ्वी कक्षा, और समकालिक स्थानांतरण कक्षा में कई उपग्रहों को स्थापित कर सकता है । अब तक के अभियान तालिका 1 में दिए गए हैं।

क्र.स.	पीएसएलवी	उपग्रह	तारीख	परिणाम
1	डी 1	आईआरएस –1 ई	20 सितम्बर, 1993	असफल
2	डी 2	आईआरएस– पी 2	15 अक्तूबर, 1994	सफल
3	डी 3	आईआरएस– पी 3	21 मार्च, 1996	सफल
4	सी 1	आईआरएस दृ 1 डी	29 सितम्बर, 1997	सफल
5	सी 2	ओशियनसैट व 2 अन्य उपग्रह	26 मई, 1999	सफल
6	सी 3	टीईएस	22 अक्तूबर, 2001	सफल
7	सी 4	कल्पना–1	12 सितम्बर, 2002	सफल
8	सी 5	रिसोर्ससैट–1	17 अक्तूबर, 2003	सफल
9	सी 6	कोर्टोसेट–1, हैमसैट	05 मई, 2005	सफल
10	सी 7	कार्टोसैट–2 और 3 अन्य उपग्रह	10 जनवरी, 2007	सफल
11	सी 8	एजाईल	23 अप्रैल, 2007	सफल
12	सी 10	टीईसीएसएएआर	23 जनवरी, 2008	सफल
13	सी 9	कार्टोसैट–2ए, आईएमएस–1 एवं 8 नैनो उपग्रह	28 अप्रैल, 2008	सफल
14	सी 11	चंद्रयान–1	22 अक्तूबर, 2008	सफल

15	सी 12	आरआईसैट–2 एवं एएनयूसैट	20 अप्रैल, 2009	सफल
16	सी 14	ओशियनसैट –2 एवं 6 अन्य उपग्रह	23 सितम्बर, 2009	सफल
17	सी 15	कार्टोसैट–2 बी और चार अन्य उपग्रह	12 जुलाई 2010	सफल
18	सी 16	रिसोर्ससैट–2 और 2 अन्य उपग्रह	20 अप्रैल, 2011	सफल

उपग्रह प्रक्षेपण में भारत कारोबारी छलांग पहले ही लगा चुका है। उसने पहली कारोबारी छलांग 23 अप्रैल 2007 को लगाई थी, जब भारत के उपग्रहीय प्रक्षेपण यान ने इटली के खगोल उपग्रह एंजिल का सफलतापूर्वक प्रक्षेपण किया था। इस पहले सफल कारोबारी प्रक्षेपण के बाद भारत दुनिया के पांच देशों, अमरीका, रूस, फ्रांस, और चीन के विशिष्ट क्लब में शामिल हो गया था। इस समय कुल 2468 उपग्रह अंतरिक्ष में घूम रहे हैं, लेकिन रिसोर्स सैट–2 ऐसा आधुनिक रिमोट सेंसिंग उपग्रह है जिससे प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन और प्रबंधन में मदद मिलेगी। 22 अक्तूबर 2008 को मून मिशन की सफलता के बाद इसरो का लोहा पूरी दुनिया मान चुकी है। चांद पर पानी की खोज का श्रेय भी चन्द्रयान–1 को ही मिला। भारत वर्ष 2016 में नासा के मिशन का हिस्सा बन सकता है और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) चंद्रमा के आगे के अध्ययन के लिए अमेरिकी जेट प्रणोदन प्रयोगशाला से साझेदारी भी कर सकता है।

भविष्य में अंतरिक्ष में प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। यदि इसी प्रकार भारत अंतरिक्ष क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे यान अंतरिक्ष यात्रियों को चांद, मंगल, या अन्य ग्रहों की सैर करा सकेंगे। भारत अंतरिक्ष विज्ञान में नई सफलताएं हासिल कर विकास को अधिक गति दे सकता है।

जीवित जीवाश्म साइलोटम नामक लुप्तप्राय पादप पर्णांग का भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में संरक्षण एवं परिवर्धन

एच सी पाण्डे
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून, उत्तराखंड

प्रस्तावना

भारत एक वृहद विविधता वाला क्षेत्र है, जहां विश्व की कुल 2 प्रतिशत भूमि पर विश्व की 7.1 प्रतिशत प्रजातियां पायी जाती हैं। भारत की जैव विविधता भौगोलिक एवं जलवायु की विभिन्न परिस्थितियों के कारण उष्ण कटिबन्धीय, उपोष्ण कटिबन्धीय, शीतोष्ण, हिमाद्री तथा मरूस्थलीय प्राकृतवासों में भली प्रकार परिलक्षित होती है। अनुमानतः देश में पौधों की 48,600 जातियां (विश्व के पादपों का 11 प्रतिशत) एवं प्राणियों की 81,000 जातियां (विश्व की 6.4 प्रतिशत) पायी जाती हैं। देश की पादप विविधता में पुष्प–युक्त आवृतबीजी पौधों की 17,500 जातियां, पुष्पी अनावृतबीजी पौधों की 64 प्रजातियां, पर्णांगोद्भिद् की 1,200 जातियां, हरितोद्भिद् की 2,850, भौवाक की 2,000, कवक की 13,000 तथा भौवाल की 12,500 प्रजातियों का योगदान है। देश की कुल वनस्पति विविधता में 35 प्रतिशत पुष्पी पौधें स्थानिक हैं, इन पौधों की उपस्थिति केवल भारत तक सीमित है।

भारतीय उपमहाद्विपों को कृषि जैव विविधता के क्षेत्र में हिन्दुस्तान केन्द्र के नाम से जाना जाता है। भारतवर्ष में फसली पौधों के स्रोत एंव विविधता के क्षेत्र में अनाज एवं मोटे अनाज की 52, फलों की 104, मसालों की 27, सब्जियों एवं दालों की 55, रेशेदार पौधों की 24, तिलहनों की 12 तथा विभिन्न पेय व मसालों की कई प्रजातियां यहां पर पायी जाती हैं।

पर्णांग एवं सम्बद्ध पर्णांग

इन्हीं महत्वपूर्ण पौधों की कड़ी में एक नाम पौधों की सुन्दर समूह पर्णांगों का भी है। पर्णांग पादप जगत का एक विशिष्ठ समूह है। पुष्प की अनुपस्थिति के कारण पर्णांग अपुश्पी पादपों से समानता दर्शाते हैं तथा संवहन उत्तकों की उप्लब्धि के कारण इन पादपों की पुष्पीय पौधों से समानता है। हमारे देश में पर्णांगों की लगभग 1200 प्रजातियां वर्णित हैं। पर्णांग् पक्षियों के पंखों के समान आकृति वाले शाकीय पुष्पविहीन पौधों का समूह है। पर्णांगों के इस समूह के अन्तर्गत ही सम्बद्ध पर्णांगों का समूह आता है। सम्बद्ध पर्णांग, पर्णांगों से अनेक प्रकार की विभिन्नता रखते हुये भी स्पष्ट रूप से पर्णांगों के अनेकानेक महत्वपूर्ण गुणों को स्वयं में समाहित किये हुये है। अपनी विशिष्ट आवासी अनुकूलताओं एवं आकार के कारण पूरे वनस्पति जगत में इनका विशिष्ठ स्थान है। इन पौधों का प्राचीन इतिहास बहुत समृद्ध रहा है। आज से 280–285 x 106 सालों पूर्व काबोनिफिरस युग था तब इस धरती पर विशालकाय डाइनासोरों का साम्राज्य था, इन्हीं के समकालीन इस धरती पर बड़े–बड़े पर्णांगों के वन थे। कार्बोनिफिरस युग में जहां भी दृष्टि जाती होगी वहां डायनासोर तथा यही विशालकाय पर्णांग एवं सम्बद्ध पर्णांगों के विशाल वन नजर आते होंगे। विशालकाय डायनासोर तो अपनी अल्पबुद्धि, विशालकाय शरीर व आलसीपन के कारण अपने लिए भोजन न जुटा पाने के कारण विलुप्त हो गये, आज इन जन्तुओं व पौधों के अवशेष जीवाश्म के रूप में धरती पर हमें प्राप्त होते रहते हैं। आदिकाल में हुये परिवर्तनों के कारण प्राचीन जैविक सम्पदा आज भी तेल व कोयले के विशाल भण्डारों के रूप में हमें प्राप्त हो रही हैं। इन्हीं प्राचीन

आदिकालीन पौधों के कुछ पूर्वज आज भी जीवित हैं। इन्हीं प्राचीन वंशजों को जीवित जीवाश्म के नाम से जाना जाता हैं। जीवित जीवाश्मों की श्रेणी में गिगो बाइलोबा तथा साइलोटम नुडम सर्वाधिक जाने जाते हैं।

पौधे के विलोपन के विभिन्न कारण

अन्य पौधों की भांति इस समूह के पौधे भी अनेक संकटों का सामना कर रहे हैं। वनों के भारी कटान, सड़कों का निर्माण, शहरीकरण, जंगलों की आग, भारी यातायात से फैलता वायु प्रदूषण, क्षतिग्रस्त होती ओजोन परत, अम्लीय बारिश, समुद्री तूफान, भूकम्प से अपरदन, भारी बारिश से खिसकते पहाड़, मृदा क्षरण, बढ़ती जनसंख्या, बढ़ती लकड़ी की मांग, ध्वनि प्रदूषण, प्रकाश प्रदूषण, सिकुड़ते वन क्षेत्र, वन्यजीवों के प्रति हिंसा आदि अनेकानेक ऐसे कारण हैं जो हमारी वनस्पति एवं जन्तु सम्पदा को लगातार क्षति पहुंचा रहे हैं। उपरोक्त समस्याओं से पुश्पी व अपुष्पी दोनों प्रकार के पौधे प्रभावित हो रहे हैं। संकटग्रस्त प्रजातियों को संरक्षित करने की दो विधियां बहुत कारगर सिद्ध हो रही हैं। प्रथम यथास्थाने (इन–सीटू), परास्थाने (एक्स–सीटू) तथा महत्वपूर्ण परन्तु कम प्रचलित उत्तक संवर्धन नामक विधियां हैं। परास्थाने संरक्षण के अनतर्गत पौधों को उनके प्राकृतवास से लाकर उद्यानों में रोपण एवं उतक संवर्धन विधि द्वारा उनकी संख्या में वृद्धि की जाती है। औषधीय गुणों युक्त पौधों को उनके प्राकृतिक, यथा–स्थाने संरक्षण करना सर्वानुकूल है। व्यापार के लिये पौधों के बुद्धिमतापूर्ण संग्रह एवं उपयोग कुछ राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय नियमों का पालन कर, करना उचित होगा, इससे हमारी बहुमूल्य पादप सम्पदा बची रहेगी।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण किस प्रकार सहायक

वनस्पति विविधता को वनस्पतियों की विभिनन जातियों, वंशों, कुलों आदि की समग्रता के रूप में जाना जाता है। जाति स्तर पर वनस्पतियों की पहचान के कार्य की दक्षता समूचे देश में प्रमुख रूप से भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा किया जाता हैं भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (बी एस आई) पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार के अन्तर्गत देश के जंगली पादप संसाधनों पर वर्गिकी और वानस्पतिक अध्ययन करने के लिये एक शीर्षस्थ अनुसंधान संगठन है। इसकी स्थापना 13 फरवरी 1890 को की गई थी। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का मूल उद्देश्य देश की पादप संसाधनों की खोज करना तथा आर्थिक महत्व की पादप प्रजातियों की पहचान करना है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने देश के वैज्ञानिक विकास के एक भाग के रूप में 1954 में इस संस्थान को पुर्नगठित किया। उत्तरोतर योजना अवधियों के दौरान स्थानिक, दुर्लभ, एवं संकटापन्न पादप प्रजातियों का स्वास्थाने तथा परास्थाने दोनों ही आवासों पर संरक्षण हेतु कार्य किया जा रहा है। इन्हीं कार्यक्रमों की श्रेणी में विभिन्न उद्यानों, आर्किडेरिया तथा फर्नरी में इन पौधों को संरक्षित करने की दिशा में कार्य किये जा रहे हैं।

साइलोटम नुडम क्या है?

साइलोटम नुडम नामक सम्बद्ध पर्णांग मनुष्य द्वारा किये जा रहे विदोहन तथा पौधों के प्राकृतिक आवासों से छेड़छाड़ का दंश भोग रहा हैं। इस अत्यन्त दुर्लभ पर्णांग की आबादी प्रतिदिन कम होती जा रही है। साइलोटम नामक पर्णांग साइलोटेसी नामक पादप परिवार का सदस्य है। आंग्ल भाषा में इसे विस्क फर्न के नाम से भी जाना जाता है। इस पादप का यह नाम ग्रीक भाषा के साइलोस जिसका अर्थ है, नग्न से लिया गया है अर्थात यह पर्णांग पत्ती–विहीन होता है, केवल नग्न डंठल के समान इसका पौधा होता है। पूरे विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका, एशिया तथा अफ्रीका में इसकी सीमित आबादी पायी जाती है। विश्व भर में दो प्रजातियां व एक हाईब्रिड प्रजाति ज्ञात है। इस पादप प्रजाति में कई महत्वपूर्ण अंगो का अभाव होने के कारण यह वैज्ञानिक समुदाय व शोधार्थियों में कौतुहल का विषय रहा है। यह पादप, पादप जगत में संवहन वडल वाले पौधों में सर्वाधिक कम विकसित माने जाते हैं। इस

पादप प्रजाति में जड़, पत्ती, फूल, फल व बीजों का अभाव होता है। इसका मुख्य भाग तना होता है। मुख्य रूप से इसकी उत्पत्ति संयुक्त राज्य अमेरिका में मानी जाती है। सन् 1800 में इस पादप प्रजाति के 400 लाख वर्ष पूर्व के जीवाश्म स्काटलैण्ड में मिले हैं। जिनकी समानता वर्तमान साइलोटम नुडम से काफी अधिक है। इस पौधे को पादप जगत के विकास प्रक्रिया की महत्वपूर्ण कड़ी माना जाता है। वैज्ञानिक समुदाय में यह हमेशा एक जिज्ञासा एवं कौतुहल का विषय रहा है।

आर्थिक महत्व

इस पादप की मानव समुदाय के लिये आर्थिक महत्व न के बराबर है, यद्यपि कई स्थानों पर भारतवर्ष में इसके तने को दुधारू पशुओं का दूध बढ़ाने हेतु उपयोग में लाया जाता है, परन्तु यह सब उपयोगितायें इस पादप प्रजाति हेतु एक खतरा ही बने हुये हैं। इसकी अनोखी आकारिकी के कारण कई अवसरों पर इसे सजावटी पौधे की श्रेणी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

इस पौधे का उच्च कक्षाओं में प्रयोगात्मक पत्रिकाओं में विकास की प्रक्रिया जानने हेतु उपयोग किया जाता था बाद में इसकी घटती संख्या को देखते हुये इसका प्रयोग बंद कर दिया गया। वैज्ञानिक उपकरण व सामग्री के ठेकेदारों द्वारा भी इस पौधें का काफी विदोहन किया गया।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा संरक्षण

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की वैज्ञानिक टीमें समय–समय पर सर्वेक्षण कार्य पर जाती रहती हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा आपने प्रायोगिक उद्यान में इस पौधे के केवल एक तने से इसको परास्थानें संरक्षण की शुरूआत भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के देहरादून परिमंण्डल में की गई। आज प्रतिवर्ष इसके गुणन प्रक्रिया के तहत इस दुर्लभ प्रजाति, जिसका व्यापार पूर्ण प्रतिबंधित है, कई पौधे सफलता पूर्वक उगाये जा रहे हैं। निकट भविष्य में इस पौधे के गुणनफल स्वरूप प्राप्त पौधों को संरक्षण कार्य में संलग्न भारत सरकार की अन्य संस्थाओं व गैर सरकारी संगठनों को देने से इनकी संख्या में और वृद्धि हो सकती है।

साइलोटम के परास्थाने संरक्षण हेतु सामग्री।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में पर्णांगों का एक्स सीटू संरक्षण–1

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में पर्णांगों का एक्स सीटू संरक्षण–2

इस पौधे का आवास अधिकतर चट्टानों की दरारों में ही रहता है। परन्तु दूसरे पौधों में भी अधिपादप के रूप में भी यह पौधा पाया जाता है, महत्वपूर्ण है कि यह प्रजाति अपना भोजन पत्तियों के बिना बनाने में स्वयं सक्षम है। इस प्रकार की आवासीय गुणवत्ता वाली प्रजातियों को परास्थाने उगाना, परिगुणित करना एक कठिन कार्य है परंन्तु भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र, देहरादून) के द्वारा यह कार्य अब बड़े पैमाने पर किया जा रहा है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,देहरादून में दुर्लभ में साइलोटम नूडम का एक्स सीटू संरक्षण।

सामाजिक विकास की वाहकः मोबाइल तकनीक

संदीप भट्ट
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश

प्रस्तावना

भारत में ही नहीं वरन संपूर्ण विश्व में मोबाइल एक आवश्यक उपकरण हो गया है। संचार के क्षेत्र में जितने कम समय में इस युक्ति ने तरक्की की है, संभवतया उतनी किसी अन्य माध्यम ने पिछली एक सदी में नहीं की। मोबाइल टेलीफोन की ही एक पद्धति है बस बुनियादी अंतर यह है कि इसमें किसी एक ही जगह पर रहने की आवश्यकता नहीं होती, जैसी कि परंपरागत टेलीफोन में होती है। मोबाइल एक सेल्युलर नेटवर्क से तथा उपग्रह से आपस में जुड़े हुए होते हैं। प्रस्तुत शोध मोबाइल द्वारा सामाजिक परिवर्तन और विकास की संभावनाओं को तलाशता है। इस शोध में यह जानने की भी कोशिश की गई है कि मोबाइल किस तरह दुनियाभर के अलग–अलग हिस्सों में मानव विकास में सहायक हुआ है, किस तरह मोबाइल ने वंचित लोगों की जिंदगियों में परिवर्तन को संभव किया है? यह शोध यह जानने की कोशिश भी करता है किस तरह सरकारी, गैर–सरकारी संस्थाओं ने अपनी योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए मोबाइल का सहारा लिया है, किस तरह मोबाइल हमारी राजनैतिक चेतना के स्तर में सुधार का औजार बना है? इस शोध में यह देखने की कोशिश भी की गई है कैसे हमारी सामजिक, राजनैतिक और आर्थिक सहभागिता को और बढ़ाने के साथ–साथ विभिन्न वर्गों के सशक्तिकरण तथा क्षमतावर्द्धन में मोबाइल तकनीक मददगार साबित हुई है।

सेल्युलर फोन को सेल फोन भी कहा जाता है। डी डी ओझा तथा सत्यप्रकाश ने अपनी पुस्तक ''दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी'' में लिखा है कि सेल्युलर फोन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपयोग प्राकतिक आपदाओं जैसे बाढ़, भूकंप आदि के समय होता है जब तारों पर आधारित सामान्य संचार प्रणालियां खराब हो जाती हैं। हमारे देश के गावो के क्षेत्रीय विस्तार के कारण यह और भी महत्त्वपूर्ण है''।

मोबाइल तकनीक के अंर्तगत एक ऐसे उपकरण को टेलीफोन से जोड़ दिया जाता है जिसे किसी भी स्थान पर ले जाया जा सकता है। आज यह मल्टीमीडिया युक्त एक सूचना–संवाद का उपकरण है। भारत में मोबाइल के शुरुआती दौर में यह सोचना बड़ा मुश्किल था कि नन्हा सा यह उपकरण किसी रोज इस तरह जिंदगी का जरूरी हिस्सा हो जाएगा। पिछले एक दशक से भी कम समय में देश में मोबाइल उपभोक्ताओं की संख्या में जबरदस्त इजाफा हुआ है। कुछ सालों पहले लोगों को चिट्ठियां लिखकर अपनी बात एक जगह से दूसरी जगह पहुंचानी होती थी। तार या टेलीग्राम की सुविधा भी थी। बाद में दूरसंचार की आधुनिक तकनीकें विकसित हुईं और फैक्स, टेलीफोन आदि से यह काम आसान हो गया। इंटरनेट ने सूचनाओं के आदानप्रदान के पूरे तरीके ही बदल दिए। किसी कंप्यूटर में इंटरनेट कनेक्शन होने भर से दुनिया के किसी भी कोने से कोई भी संदेश भेजने में आसानी हो जाती है। ऑडिया–वीडियो संदेश हों या पाठ के प्रारूप में, सब कुछ आसान हो गया। मोबाइल फोन के आने से यह और भी आसान हो गया। वर्तमान समय में मोबाइल ने एक युक्ति न होकर मीडिया का रूप ले लिया है। अब मोबाइल फोन में इंटरनेट की सुविधा मौजूद होने से बहुत कुछ बदल गया है। कोई

भी व्यक्ति खेत–खलिहानों में, बस में रेलवे प्रतीक्षालय अथवा रेल में यात्रा करते समय भी मोबाइल इंटरनेट की सहायता से पूरी दुनिया से जुड़े रह सकता है। अनगिनत सुविधाओं वाला यह छोटा सा उपकरण जो हमारी अनेक आवश्यकताओं के मुताबिक सेवा देने की क्षमता रखता है।

वर्ष 2000 में भारत में प्रति सौ व्यक्तियों पर केवल 0.3 मोबाइल उपभोक्ता थे। यह आंकड़ा 2005 में 7.9 उपभोक्ता और 2010 आते–आते 61.4 व्यक्तियों तक पहुंच गया। भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (ट्राई) के अप्रैल 2012 के आंकड़ों के अनुसार मौजूदा समय में लगभग 92.1 करोड़ से अधिक मोबाइल उपयोगकर्ता हैं। इनमें से 37.3 करोड़ से अधिक मोबाइल धारक अपने मोबाइल में इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में यह युक्ति समग्र विकास में बेहद कारगर साबित हो सकती है। मोबाइल विज्ञान और तकनीक के साथ मिलकर विकास की असीमित संभावनाओं को साकार कर सकता है।

विभिन्न जनमाध्यमों के समाज में बढ़ते दखल ने जनमानस में जानकारियों और जागरूकता के स्तर में बढ़ोतरी की है। जैसे–जैसे मीडिया तकनीकें विकसित हुईं साथ ही साथ संचार और संदेशों का प्रभाव भी बढ़ा है। मीडिया की संवादात्मकता बढ़ने से जनमानस की रूचि भी इसमें बढ़ी है। परंपरागत तौर पर हमारे यहां प्रिंट या मुद्रित माध्यम जैसे अखबार, पत्रिकाएं आदि हैं, ब्रॉडकॉस्ट माध्यमों में टेलीविजन, रेडियो आदि हैं, आउटडोर माध्यमों में होर्डिंग्स, बैनर, पोस्टर आदि हैं तथा पारंपरिक माध्यमों में नुक्कड़–नाटक, लोकगीत, लोकनृत्य आदि हैं। अब एक नया माध्यम मोबाइल भी मौजूद है जिसमें पाठ या टैक्स्ट के प्रारूप में सूचनाएं उपलब्ध हो सकती हैं तथा वीडियो या ऑडियो के विकल्प भी इसमें मौजूद हैं। मोबाइल भले ही मल्टीमीडिया वाला माध्यम हो लेकिन इसकी एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि यह एक प्रकार का व्यक्ति आधारित माध्यम है। किसी व्यक्ति विशेष की विशिष्ट आवश्यकताओं के हिसाब से इसमें सूचनाओं का आदान–प्रदान बहुत जल्दी होता है। मोबाइल पर इंटरनेट की सेवा उपलब्ध होने से यह युक्ति अत्यधिक असरकारी और लाभकारी दोनों हो जाती है। मोबाइल पर इंटरनेट सेवाएं शुरू होने के बाद अब छोटा सा यह उपकरण वैश्विकग्राम की असंख्य जानकारियों और सूचनाओं के भंडार को खुद में समेटे हुए है। विकासोन्मुखी इस मुल्क में कृषि और ग्रामीण विकास के दो आधारभूत क्षेत्र ऐसे हैं जहां आधुनिक विज्ञान की तकनीकें और देशज ज्ञान मिलकर मुल्क के पिछड़े इलाकों में एक नई क्रांति ला सकते हैं। मोबाइल यहां एक सशक्त कड़ी के रूप में काम कर सकता है। उन इलाकों में जहां सटीक और उपयोगी सूचनाओं का अभाव है वहां मोबाइल इंटरनेट के माध्यम से विकास को गति दी जा सकती है।

मोबाइल इंटरनेट कई तरह के सुवाह्य युक्तियों जैसे मोबाइल फोन, पीडीए और मोबाइल नेटवर्क जैसे वाईफाई नेटवर्क का अंतर्जाल है। ये सभी आपस में बिना किसी केबल या तारों से ही जुड़े होते हैं। इस तरह के नेटवर्क में पारंपरिक तौर पर इंटरनेट ब्राउज़ करने के लिए आवश्यक कंप्यूटर या किसी टेलीफोन केबल की जरूरत नहीं है। इन दिनों थ्री जी सेवाओं की चर्चा के बाद अब 4 जी की आहट हर ओर सुनाई दे रही है। इससे सूचनाओं के आदान–प्रदान की गति अद्भुत रूप से बदल जाएगी। ऐसे में मोबाइल इंटरनेट उपयोग करने वाले लोगों को भी इसका बड़ा लाभ मिलेगा।

विशाल क्षेत्रफल और विविधताओं के देश भारत में बहुत सारे क्षेत्र ऐसे हैं जहां मोबाइल के माध्यम से बेहतर प्रयास किए जा सकते हैं। कृषि, वानिकी, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन, ग्रामीण इलाकों में आजीविका और क्षमतावृद्धि में मोबाइल संचार नई क्रांति ला सकता है। निम्नलिखित क्षेत्रों में विशेष तौर पर विज्ञान और नए माध्यम मोबाइल की सहायता से बेहतर प्रयास किए जा रहे हैं।

कृषि एवं शिक्षा क्षेत्र में मोबाइल के अनुप्रयोग

भारत एक कृषि, प्रधान देश है जहां कुल आबादी का बड़ा हिस्सा किसी न किसी तरह कृषि, से जुड़ा हुआ है। खेती निश्चित तौर से बेहद श्रमसाध्य कार्य है। किसानों को उनकी फसलों, सब्जियों,

फलों आदि उत्पादनों के पर्याप्त दाम नहीं मिलते। मध्यस्थ किसानों की मेहनत का बड़ा हिस्सा खा जाते हैं। किसानों को बाजार भाव आदि मालूम नहीं होते। कई बार किसान सरकार द्वारा उपलब्ध करवाई जाने वाली सस्ती एवं आधुनिक तकनीकों का भी लाभ नहीं ले पाते। भारत में मोबाइल धारकों की संख्या खासी है। ऐसे में मोबाइल कृषि क्षेत्र में भी किसानों के लिए सहायक हो सकता है। टेलीनॉर, नामक मोबाइल सेवाप्रदाता कंपनी ने थाइलैंड के किसानों के जीवन में कई अहम बदलाव ला दिए। ''1677 किसान सूचना सुपरहाइवे'' नामक सेवा के अंर्तगत किसानों को बाजार के रूख, वाणिज्यिक फसलों, खेती की नई तकनीकों, समाचारों आदि संबंधित मुफ्त शॉर्ट मैसेज भेजे जाते थे। इन सेवाओं के वहां कई सकारात्मक परिणाम देखने को मिले। किसानों ने अपनी उत्पादकता बढ़ाई, आधुनिक तकनीकों के उपयोग के जरिए अपने लागत खर्च को कम किया और खेती–किसानी को लाभ का जरिया बनाया। टेलीनॉर ने सफल किसानों तथा कृषि विशेषज्ञों द्वारा अन्य किसानों के लिए सलाहकारी सेवा भी उपलब्ध करवाई।

12 अगस्त 2008 को आरंभ हुई इस सेवा के उपयोगकर्ता किसानों की संख्या जून 2012 तक 30,0000 तक हो गई है। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम इफ्को द्वारा इफ्को किसान संचार लिमिटेड की स्थापना की गई है जिसके द्वारा 18 अलग–अलग राज्यों में मोबाइल द्वारा किसानों को महत्त्वपूर्ण सूचनाएं दी जा रही हैं तथा उनकी खेती संबंधी जिज्ञासाओं के प्रश्नों का उत्तर विशेषज्ञों द्वारा मोबाइल पर ही दिया जाता है। मार्च 2012 तक इस सेवा के 1,32,4769 सक्रिय उपयोगकर्ता थे। ओशियन ऐग्रो ऑटोमेशन कंपनी द्वारा वर्ष 2009 में किसानों के लिए मोबाइल आधारित एक सेवा शुरू की जिसके द्वारा सिंचाई के उपकरणों को किसान घर बैठे नियंत्रित कर सकते हैं। यह सेवा किसानों की लागत को कम करती है तथा पानी का भी संरक्षण करती है। भारत में साक्षरता अभी भी एक बड़ी चुनौती है। यदि किसी देश की आबादी साक्षर नहीं होगी तो वहां की जनता की सामाजिक विकास में भागीदारी भी बहुत कम होगी। भारत में अभी भी कुल साक्षरता दर 74.4 प्रतिशत है। खासकर महिलाओं की साक्षरता दर महज 65.46 प्रतिशत ही है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो महिलाओं की साक्षरता दर और भी कम, 58.75 फीसदी है। इन इलाकों में कुल साक्षरता दर 68.91 प्रतिशत है। एमगुरूजी नामक एक पोर्टल द्वारा मोबाइल इंजीनियरिंग, प्रबंधन, चिकित्सा आदि विषयों से संबंधित विषयवस्तुओं के व्याख्यान, ट्यूटोरियल मोबाइल पर सुने जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यालयी कक्षाओं के पाठ्यक्रम, सामान्य ज्ञान संबंधी व्याख्यान भी मोबाइल के जरिए समझे जा सकते हैं। मोबाइल कैस साक्षरता बढ़ाने में सहायक हो सकता है इस क्षेत्र में निरंतर नए शोध एवं प्रयोग हो रहे हैं। इस तरह देखा जाए तो मोबाइल कृषि एवं साक्षरता जैसे आधार क्षेत्रों में काफी सहायक हो सकता है।

मोबाइल प्रशासन

ई गर्वर्नेंस या इलैक्ट्रॉनिक प्रशासन भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही एक महत्वाकांक्षी परियोजना है। जनता तक सेवाएं पहुंचाने की प्रणाली के सरलीकरण एवं उनमें सुधार करने के लिए यह परियोजना चलाई जा रही है। नागरिकों के लिए अनेक प्रशासनिक सेवाओं को सरल बनाने के लिए ई प्रशासन परियोजना चलाई जा रही है। इस परियोजना के संकल्पना पत्र में कहा गया है कि ''सभी सरकारी सेवाओं को आम आदमी तक, सामान्य सेवा वितरण केंद्रों के जरिए, उनके निवास स्थान में उपलब्ध कराने और आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताओं को किफायती दामों में पूरा करने के लिए ऐसी सेवाओं की कुशलता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करें।'' केरल सरकार ने सड़क परिवहन प्राधिकरण द्वारा मोबाइल–प्रशासन योजना के अंतर्गत कोई आवेदनकर्ता अपने आवेदन की स्थिति, बीमे तथा कर आदि की जानकारी मोबाइल पर ही प्राप्त कर सकता है। इसके साथ ही पुराने वाहनों की खरीद–फरोख्त में होने वाली धोखाधड़ियों से बचने का भी अनोखा तरीका इस संस्था ने

खोजा है। खरीददार अपने मोबाइल से खरीदे जाने वाले वाहन के इंजन तथा चेसिस आदि की संख्या एस एम एस द्वारा विभाग को भेज सकता है इससे चोरी किए गए वाहनों की खरीद–फरोख्त भी रुक सकती है। राष्ट्रीय ई–प्रशासन योजना के अंर्तगत नेशनल मोबाइल सर्विस डिलीवरी प्लेटफॉर्म (एम एस पी डी) शुरू किया गया है। इसके अंर्तगत नागरिक सरकारी सेवाओं के उपयोग के लिए किए गए अपने आवेदनों की स्थिति की जानकारी अपने मोबाइल से प्राप्त कर सकते हैं। राष्ट्रीय ई–प्रशासन योजना के अंर्तगत मोबाइल प्रशासन के कई प्रयोग निरंतर किए जा रहे हैं। इन सभी प्रयोगों में मोबाइल एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है जो ई–प्रशासन को और भी प्रभावी बना सकता है।

स्वास्थ्य, सशक्तिकरण और क्षमता वर्धन

लैंगिक समानता तथा महिला सशक्तिकरण किसी भी समाज में विकास का एक प्रमुख बिंदु होता है। समावेशी विकास के लिए महिलाओं की समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय भागीदारी अति आवश्यक है। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी ने महिलाओं के सशक्तिकरण में अहम भूमिका अदा की है। कस्बाई तथा शहरी क्षेत्रों में विशेषकर सूचनाक्रांति ने महिलाओं के विकास को गति दी है। मोबाइल के व्यापक प्रभाव एवं क्षेत्र को देखते हुए कई सेवा प्रदाताओं ने महिलाओं के लिए अनेक सेवाओं को शुरू किया है। इन सेवाओं में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वरोजगार आदि के बारे में सूचनाओं का प्रसार शामिल है। महिलाओं, बच्चों और वृद्धावस्था के लोगों के बीच स्वास्थ्य संबधी जानकारियों को मोबाइल के माध्यम से अधिक से अधिक लोगों तक बहुत कम लागत पर पहुंचाया जा रहा है। भारत में अब भी स्वास्थ्य सेवाओं की जानकारियों के प्रसार के लिए सरकारी अमला विज्ञापनों पर भारी खर्च करता है। बावजूद इसके लोगों में जानकारियों का बड़ा अभाव रहता है।

स्वास्थ्य विभाग सिर्फ ध्वनि आधारित संदेशों के द्वारा लक्षित जनमानस तक अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों के संबंध में सटीक सूचनाएं भेज सकता है। साथ ही यह सुविधा भी दे जा रही हैं कि कोई व्यक्ति यदि किसी तरह की अतिरिक्त जानकारी चाहता हो तो वापस कॉल कर पूछ सकता है। कई मामलों में निःशुल्क सेवाएं भी दी जा रही हैं। मोबाइल के माध्यम से तमाम तरह की सरकारी और गैरसरकारी संगठनों की रोजगारोन्मुखी योजनाओं का जनमानस के बीच प्रचार–प्रसार किया जा रहे हैं। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान तथा मीडिया लैब एशिया द्वारा 2002 में ''पर्सनल डिजिटल असिसटैंट्स'' नामक प्रयोग शुरू किया गया जिसके जरिए स्वास्थ्य संबंधी आंकड़े जुटाए जा सकते थे। इसके बाद टेलीमेडिसिन जैसा विचार भी आया। आज मोबाइल के जरिए 71 टेलीमेडिसिन केंद्र कार्यरत हैं जो 24 घंटे चिकित्सा परामर्श उपलब्ध करवाते हैं। सेंटर फॉर हेल्थ मार्केट इन्नोवेशन द्वारा मोबाइल केयर सपोर्ट एंड ट्रीटमेंट सिस्टम (एमसीएसटीएस) जैसी सेवाएं भी स्वास्थ्य क्षेत्र में मोबाइल तकनीक के उपयोग के जरिए बेहतर जीवन को सुनिश्चित करने के उदाहरण हैं। इस तरह मोबाइल समाज के विभिन्न वर्गों के लिए स्वास्थ्य संबंधी सूचनाएं देने और सशक्तिकरण के साथ–साथ क्षमतावर्द्धन का एक उपकरण भी है।

स्थान आधारित सेवाएं– बाढ़ या आपदाओं में विशेष सहायक

भारत बेहद विषमताओं वाला और बड़े क्षेत्रफल वाला देश है जहां बाढ़, सूखा, भूकंप, समुद्री तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं। ऐसे मुल्क में मोबाइल बेहद मददगार साबित हो सकता है। संदेश वॉइस एस एम एस या पाठ दोनों तरह से भेजा जा सकता है। राहत और बचाव कार्यों में मोबाइल के माध्यम से तेजी लाई जा सकती है। स्मार्ट फोन जैसे नए मोबाइल फोन बाजार में उपलब्ध हैं जो कि किसी कंप्यूटर की ही तरह काम कर सकते हैं। इनसे इंटरनेट पर काम किया जा सकता है। वीडियो कान्फ्रेंसिंग, वेब मेल, पाठ आधारित संदेश प्रेषित करने के काम इस तरह के मोबाइल से आसानी से किए जा सकते हैं। ब्लैकबेरी और अमेरिकी कंपनी एप्पल के आईफोन इस तरह के सभी

कार्य करने में सक्षम हैं। इंटेल नामक कंपनी ने भी एटम प्रोसेसर मोबाइल युक्तियों को ध्यान में रखकर ही बनाए हैं।

निष्कर्ष

पिछले कुछ सालों में मोबाइल तकनीक में जबरदस्त बदलाव आया है। आज यह सिर्फ संवाद का एक उपकरण भर नहीं है बल्कि एक पूर्ण मीडिया की तरह विकसित हो चुका है। इसमें नई तकनीकों का समावेश सतत् हो रहा है। लेकिन अब भी भाषाई समस्या इसमें एक बड़ी समस्या है। ग्रामीण इलाकों में अल्पशिक्षित और अशिक्षित जनता अब भी मोबाइल का उतनी आसानी से उपयोग नहीं कर पाती। अधिकतर मोबाइल फोन अंग्रेजी भाषा आधारित होते हैं। हलांकि अब हिंदी समेत अन्य भाषाओं में भी मोबाइल पर काम किया जा सकता है पर उन्नत सेवाओं का लाभ भाषाई दिक्कतों के चलते अभी भी लोग नहीं उठा पा रहे हैं। मौजूदा समय में मोबाइल कई क्षेत्रों जैसे सामाजिक विकास, जीवन को गुणवत्तापरक बनाने, शिक्षा के प्रसार, आपदा प्रबंधन, सामाजिक जागरूकता फैलाने में अहम भूमिकाओं का निर्वहन कर रहा हैं। यही नहीं मोबाइल के विकास ने लोगों के संवाद में सजीवता ला दी है। करीब एक दशक पहले हम टेलीफोन पर सिर्फ बातचीत ही कर सकते थे। लेकिन आज मोबाइल पर बैंकिग जैसे वित्तीय कामकाज भी संपादित किए जा रहे हैं। बाजार में कई मोबाइल सेवाप्रदाता तथा निर्माता कंपनियां मौजूद हैं और प्रतिस्पर्द्धा के कारण न सिर्फ उपकरणों की कीमतों में कमी आई है बल्कि सेवा दरें भी बहुत कम हुई हैं। 2009 से 2011 के बीच एक अनुमान था कि लगभग 22.9 करोड़ लोग मोबाइल सेवाओं से जुड़ेंगे। आज मोबाइल धारकों का आंकड़ा 92 करोड़ के आंकड़े को पार कर गया है। उम्मीद करनी चाहिए कि 4 जी की आहट के साथ आने वाले समय में मोबाइल सुदूर इलाकों में भी सूचना क्रांति से सकारात्मक बदलाव लाएगा और ग्रामीण क्षेत्रों में विकास प्रक्रिया को प्रगति पथ पर अग्रसर करने में मददगार होगा।

मोबाइल पर इंटरनेट तकनीक की विशेषताएं और चरणबद्ध विकास।

गुण	मोबाइल	परंपरागत इंटरनेट
युक्ति	छोटी स्क्रीन और अन्य सुवाह्य गैजेटस।	परंपरागत बड़ी स्क्रीन जैसे डेस्कटॉप कंम्प्यूटर आदि।
सुवाहय	अत्यधिक सुवाह्यता।	सीमाबद्ध सुवाह्य।
नेविगेशन	सीमित नेविगेशन सुविधाएं।	नेविगेशन युक्तियों जैसी माउस। कीबोर्ड आदि सुविधाओं के कारण अधिक नेविगेशन की सुविधाएं।
गति	मौजूदा समय में सीमित गति लेकिन 3 जी सेवाओं के बाद गति में बढ़ोतरी की उम्मीद।	बेहतर गति।
सुसंगतता	चुनने वाले या उपयोगकर्ता सिस्टम के चयन से सुसंगतता संबंधी परेशानियाँ आ सकती है।	सुसंगतता कम दिक्कतें।
संवाददाता	व्यक्ति केंद्रित और अत्यधिक संवादात्मक क्षमताओं वाला माध्यम।	उच्च संवादात्मक।

विभिन्न चरणों में दूरसंचार तकनीकों का तुलनात्मक विवरण।

चरण	तकनीक	गति	विशेशताएं
1 जी	ए एम पी एस (AMPS) (एडवांस मोबाइल फोन सिस्टम तकनीक) संकेतों का प्रसारण।।	20 के बी पी एस से कम	एनालॉग तकनीक आधारित, केवल आवाज या ध्वनि।
2 जी	जीएसएम ग्लोबल सिस्टम फॉर मोबाइल कम्युनिकेशन(GSM), सीडीएमए (कोड डिविजन मल्टिपल एक्सेस) (CDMA)	20 के बी पी एस से 90 के बी पी एस तक	ध्वनियां, एस एम एस, मल्टीमीडिया संदेश, गेम्स, आडियो–वीडियो तथा अन्य अनुप्रयोग।
3 जी	यू एम टी एस (यूनिवर्सल मोबाइल टेलिकम्युनिकेशन सिस्टम) (UMTS), हाई स्पीड डाउनलिंक पैकेट एक्सेस(HSDPA)	144 के बी पी एस से 14.4 एम बी पी एस तक	निरंतर वीडियो आदान प्रदान, संगीत, तेज वेबब्राउजिंग, ऑनडिमांड वीडियो, 3–डी गेम्स।
4 जी और विकसित	वर्ल्डवाइड इंट्रोपैराबिलिटी फॉर माइक्रोवेव्स एक्सेस (WiMAX)	100 एम बी पी एस से लेकर 1 जी बी पी एस तक	उच्च गुणवत्तायुक्त वीडियो का निरंतर संचरण, वीडियोकॉन्फ्रेंसिंग, आईपी टेलीफोनी।

राकेट मोटर में तनाव मापन

गोरख काची, जयश्री श्रीनाथ, कैलास राऊत, रेणु गिल, दत्तात्रेय,
प्रकाश क्षीरसागर, प्रवीण देशमुख, तथा विनायक रासने
उच्च ऊर्जा पदार्थ अनुसंधान प्रयोगशाला, पुणे, महाराष्ट्र

प्रस्तावना

राकेट का उपयोग पे–लोड को इच्छित स्थान पर ले जाने के लिए किया जाता है। विभिन्न प्रकार के ठोस नोदक राकेट मोटरों का विकास करना उच्च ऊर्जा पदार्थ अनुसंधान प्रयोगशाला के प्रमुख क्रिया कलापों में से एक है। विकास प्रक्रिया के दौरान ठोस नोदक पर विभिन्न प्रकार के नाशक तथा अविनाशक परीक्षण किए जाते हैं। ये परीक्षण, जैसे भौतिक, रासायनिक तथा यांत्रिक, प्रयोगशाला में ही किए जाते है। इन परीक्षणों के आधार पर विभिन्न बिंदु परिमाणों को मापा जाता है। इन बिंदु परिमाणों के आधार पर नोदक का राकेट मोटर में स्थैतिक पद्धति द्वारा परीक्षण किया जाता हैं। इस में दाब, प्रतिबल, तापमान, तथा तनाव का मापन किया जाता है। तनाव के मापन से राकेट मोटर के यांत्रिक में होने वाले बदलाव की जानकारी वैज्ञानिकों को मिलती है, जिससे वह अनुमान लगाते हैं कि मोटर की यांत्रिक स्थिति कितनी मजबूत है।

फायरिंग के समय राकेट मोटर के दाब से मोटर के आकार में होने वाले बदलाव को तनाव कहा जाता है। यह तनाव मापन करने के लिए रोफाक तान गेज का प्रयोग किया जाता है। इस राकेट में होने वाले बदलाव के मापन से ही तनाव का पता चलता है।

तनाव का मापन करने की कार्यप्रणाली

उपकरण विभाग में तनाव का मापन करने की सुविधा उपलब्ध है। चित्र 1 में दिखाए गये अनुसार उपकरणों की संरचना की जाती है।

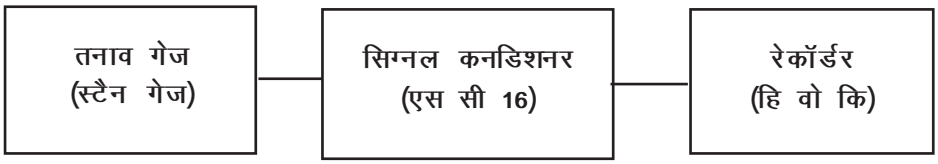

- **तनाव गेज (स्ट्रेन गेज)**

तनाव मापन करने के क्वार्टर ब्रिज, हाफ ब्रिज, फुल ब्रिज यह तीन प्रकार होते हैं। क्वार्टर ब्रिज में एक तनाव गेज, हाफ ब्रिज में दो, तथा फुल ब्रिज में तीन तनाव गेज कनेक्ट किए जाते हैं। उपकरण तथा राकेट मोटर के अनुसार अपेक्षित गेज का चयन किया जाता है। यह गेज सामान्यतः 120 रोकट, 350 रोकट के होते है।

- **सिग्नल कंडिशनर**

तनाव का मापन करने के लिए सिग्नल कंडीशनर उपकरण का प्रयोग किया जाता है। उपकरण विभाग में एस सी 16 चैनल नामक सिग्नल कंडीशनर उपकरण का प्रयोग किया जाता है। इस उपकरण में 16 चैनल तनाव का मापन किया जाता है। इस उपकरण की खासियत यह है कि यह गेज को

सन्तुलित करता है तथा गेज को लगने वाला विन्नत सप्लाय भी देता हैं।
इस उपकरण में व्हिस्टोन ब्रिज का प्रयोग होता है। यह उपकरण 5 प्रकार के कार्य करता है

1. वित सप्लाय :– व्हिस्टोन ब्रिज को उद्दिपित करने के लिए।
2. व्हिस्टोन ब्रिज का सन्तुलन :– फायरिंग के पहले आऊटपूट शून्य करने के लिए।
3. ॲम्प्लिफिकेशन :– गेज आऊटपूट स्तर बढाने के लिए।
4. शंट कॅलीब्रेशन :– वित सिग्नल को इंजिनियरींग सिग्नल में बदलने के लिए।
5. आऊटपूट :– रेकॉर्ड करने के लिए।

- **रेकॉर्डर**

उपकरण विभाग में (हि वो कि) नामक रेकॉर्डर उपकरण का प्रयोग किया जाता है। सिग्नल कंडिशनर का आऊटपूट रेकार्डर को दिया जाता है। जिससे आऊटपूट मॉनिटर तथा स्टोर किया जाता है। इसके बाद स्टोरड डाटा प्रोसेस करके अपेक्षित तनाव–समय का आलेख प्राप्त किया जाता है।

इस आलेख से प्राप्त हुआ तनाव मोटर के क्षमता के बारे में जानकारी देता है। यह जानकारी वैज्ञानिकों को राकेट मोटर विकास में फायदेमंद होती है।

तनाव का मापन करने की विधि

एच. टी. एम. (H.T.M.) और एल. टि. एम. (L.T.M.) राकेट मोटर मे आठ तणाव गेज (350 रोकट) का हमने मापन किया। जिसमें चार गेज ॲक्सिअली तथा चार गेज रेडिअली लगाये थे। गेज जिस जगह पर लगाना है उस जगह का मेटालिक आवरण पहले पॉलिश पेपर से क्लिन किया जाता है ताकि उस पर उगा पेन्ट, धूल निकल जाए।

चित्र 2 में दिखाए गये अनुसार गेजों के सुनिश्चित किये गये स्थानपर एच. टि. एम. (H.T.M.) मोटर व चित्र 3 एल. टि. एस. (L.T.M.) मोटर पर तणाव गेज लगाये गये थे।

गेज पर एक तरफ से फेव्हिबॉड लगाकर उस आवरण पर चिपकाया जाता है तथा गेज के दूसरी तरफ से गेज निकल न जाए इसलिए ॲडेह्स्वि टेप लगाया जाता है।

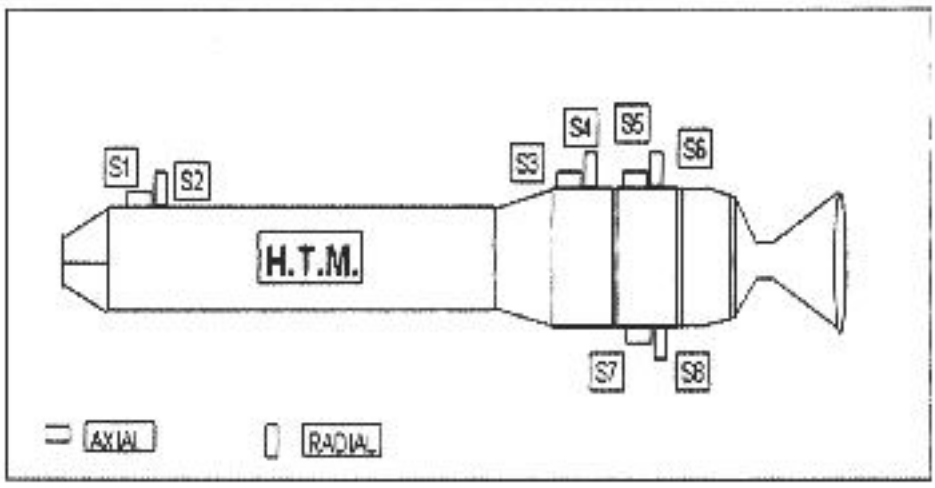

चित्र 2.

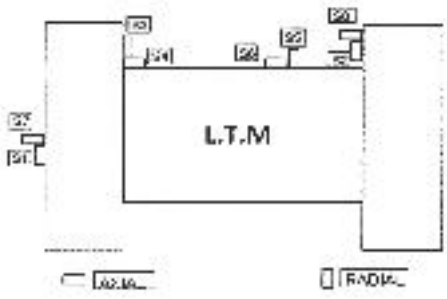

चित्र 3.

चित्र 4.

गेज को सिग्नल कनडिशनर से कनेक्ट करने से पहले गेज का रोकट मल्टिमीटर से चेक किया जाता है। इसके बाद गेज, सिग्नल का कनडिशनर को सिग्नल केबल (लगभग 150 मीटर) द्वारा कनेक्ट किया जाता है।

फायरींग के पहले गेज को सन्तुलित किया जाता है ताकि गेज का आऊटपूट शून्य हो। फायरींग के समय मोटार में दबाव के कारण तणाव विकसित होता है जो दबाव के अनुपातित होता है। यही वित अनुपातित तणाव सिग्नल, सिग्नल कनडिशनर को भेजा जाता है और आऊटपुट रेकॉर्ड करने के लिए रेकॉर्डिंग उपकरण को भेजा जाता है। जिसपर आऊटपुट मॉनिटर किया जाता है।

परिणाम

तणाव समय आलेख (चित्र 4) से यह पता चलता हैं की राकेट के स्थैतिक परीक्षण के समय अपेक्षित तणाव 600 मायको तणाव तक आता हैं।

निष्कर्ष

राकेट नोदक के विकास के समय जब स्थैतिक परीक्षण होता है तो मोटर का तणाय का मूल्यांकन करना अत्यंत आवश्यक हैं। इससे राकेट मोटर की तणाव सहन करने की क्षमता का पता चलता है और तणाव मापन द्वारा हम भविष्य में राकेट मोटर में होनेवाली दुर्घटनाओं को टाल सकते हैं। इसलिए वैज्ञानिकों को यह परिक्षण राकेट मोटर विकास में फायदेमन्द साबित होता हैं।

लेखकों के बारे में...

श्री सुरेश कुमार जिन्दल, वर्तमान में रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र (डेसीडॉक), दिल्ली के निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। आपने थापर अभियांत्रिकी तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, पटियाला, पंजाब से इलैक्ट्रॉनिक्स तथा संचार विषय में अभियांत्रिकी स्नातक उपाधि प्राप्त की। आपने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई आई टी), खड़गपुर से दूरसंचार विषय में प्रौद्योगिकी स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। आपको ऑपरेशन रिसर्च में प्रबंधन स्नातकोत्तर उपाधि भी प्राप्त है। आप सामरिक संचार के क्षेत्र में उत्कृष्ट विशेषज्ञता रखते हैं। आपने राष्ट्र हेतु स्वदेशी प्रौद्योगिकियों के विकास में विशेषतः संचार नेटवर्कों के अभिकल्पन तथा स्थापन में विशिष्ट योगदान दिया है। आपने राष्ट्र में प्रथम बार सुवाह्य संचार की नींव रखी। आपने नारद परियोजना के अंतर्गत रक्षा सेवाओं हेतु उपग्रह संचार तथा नेटवर्किंग के अभिकल्पन, विकास तथा स्थापन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। इस संचार प्रणाली का उपयोग श्रीलंका में भारतीय शांति सेना तथा भारतीय सेना के मध्य संचार हेतु किया गया। यह उस समय भारतीय सैन्य मुख्यालय तथा भारतीय शांति सेना के मध्य एकमात्र संचार की व्यवस्था थी। आपने कॉम्बैट नैट रेडियो (सी एन आर) के परियोजना निदेशक के रूप में भारत इलैक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड को यह प्रौद्योगिक हस्तांतरित की।

आपने राष्ट्रीय महत्त्व के विभिन्न कार्यक्रमों, जिनमें एकीकृत प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम भी शामिल है, के लिए सामरिक संचार आवश्यकताओं की पूर्ति में योगदान दिया। सामरिक संचार के परियोजना निदेशक के रूप में आपने 24X7X365 रूप में कार्य करने के लिए निर्मित विभिन्न संचार नेटवर्कों तथा प्रणालियों का अभिकल्पन, विकास तथा स्थापन राष्ट्र के विभिन्न स्थानों पर किया।

आपने 14 सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आपको अनेक पुरस्कार प्राप्त हैं, इनमें 2007 में प्रधानमंत्री द्वारा सामरिक योगदान हेतु विशेष सम्मान, 2012 में संचार तथा सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री द्वारा वेब रत्न सम्मान, तथा 2013 में राष्ट्र भाषा स्वाभिमान न्यास द्वारा राजभाषा रत्न सम्मान शामिल हैं। आपका नाम लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड में सबसे बड़ा हिन्दी विज्ञान सम्मेलन आयोजित करने के लिए विश्व रिकार्ड की श्रेणी में दर्ज है। आपको वर्ष 2014 में लोकप्रिय विज्ञान संचार पुरस्कार प्रदान किया गया है। आपकी तीन पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री फूलदीप कुमार, वर्तमान में रक्षा वैज्ञानिक सूचना तथा प्रलेखन केन्द्र (डेसीडॉक), दिल्ली में वैज्ञानिक के रूप में कार्य कर रहे हैं। आपने महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा से 2002 में इलैक्ट्रॉनिक्स तथा संचार विषय में अभियांत्रिकी स्नातक उपाधि प्राप्त की। आपने 2005 में गुरू जम्भेशवर विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा से पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। आप वर्ष 2005 से डी आर डी ओ में कार्यरत हैं। विज्ञान संचार, प्रलेखन तथा डिजिटल प्रकाशन आपकी विशेषज्ञता के क्षेत्र हैं। आप डी आर डी ओ समाचार (मासिक) तथा प्रौद्योगिकी विशेष (त्रैमासिक) प्रकाशनों के सम्पादक हैं। आपने राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में लगभग 60 शोध पत्र/आलेख प्रस्तुत किए हैं। आपने 18 सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आप चार राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा दो अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के आयोजन में सम्मिलत रहे हैं। आपको 2009 में शिक्षक विकास परिषद, गोवा द्वारा विज्ञान संचारक सम्मान, वर्ष 2011 एवं 2013 में प्रौद्योगिकी समूह पुरस्कार, वर्ष 2012 में वर्ष का वैज्ञानिक पुरस्कार, वर्ष 2013 में ईशीर, जोधपुर द्वारा विज्ञान श्री सम्मान, तथा वर्ष 2014 में लोकप्रिय विज्ञान संचार पुरस्कार प्रदान किया गया। आपका नाम लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड में सबसे बड़ा हिन्दी विज्ञान सम्मेलन आयोजित करने के लिए विश्व रिकार्ड की श्रेणी में दर्ज है। आपकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।